अंक 1

ISSN 0975-5217
वर्ष 2009

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका



मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

भैरवी

(संगीत शोध-पत्रिका)

(वर्ष 1 अंक 1; 2009)

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा 846 004

Scanned with OKEN Scanner

भैरवी (संगीत शोध-पत्रिका)

वर्ष-1, अंक : 1, 2009

प्रधान सम्पादक
डॉ. पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा 846 004

मूल्य :

इस अंक का मूल्य : 350/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 700/- रुपये / त्रैवार्षिक 2000/- रुपये

पंचवार्षिक 3200/- रुपये / आजीवन : 10000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 750/- रुपये / त्रैवार्षिक 2200/- रुपये

पंचवार्षिक 3700/- रुपये / आजीवन : 12000/- रुपये

(केवल मीनआर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)

(दरभंगा से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायलाय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक
विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स
1/10753, गली नं. 3 सुभाष पार्क,
नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032

Scanned with OKEN Scanner

सम्पादक मंडल



डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'



डॉ. वेद प्रकाश



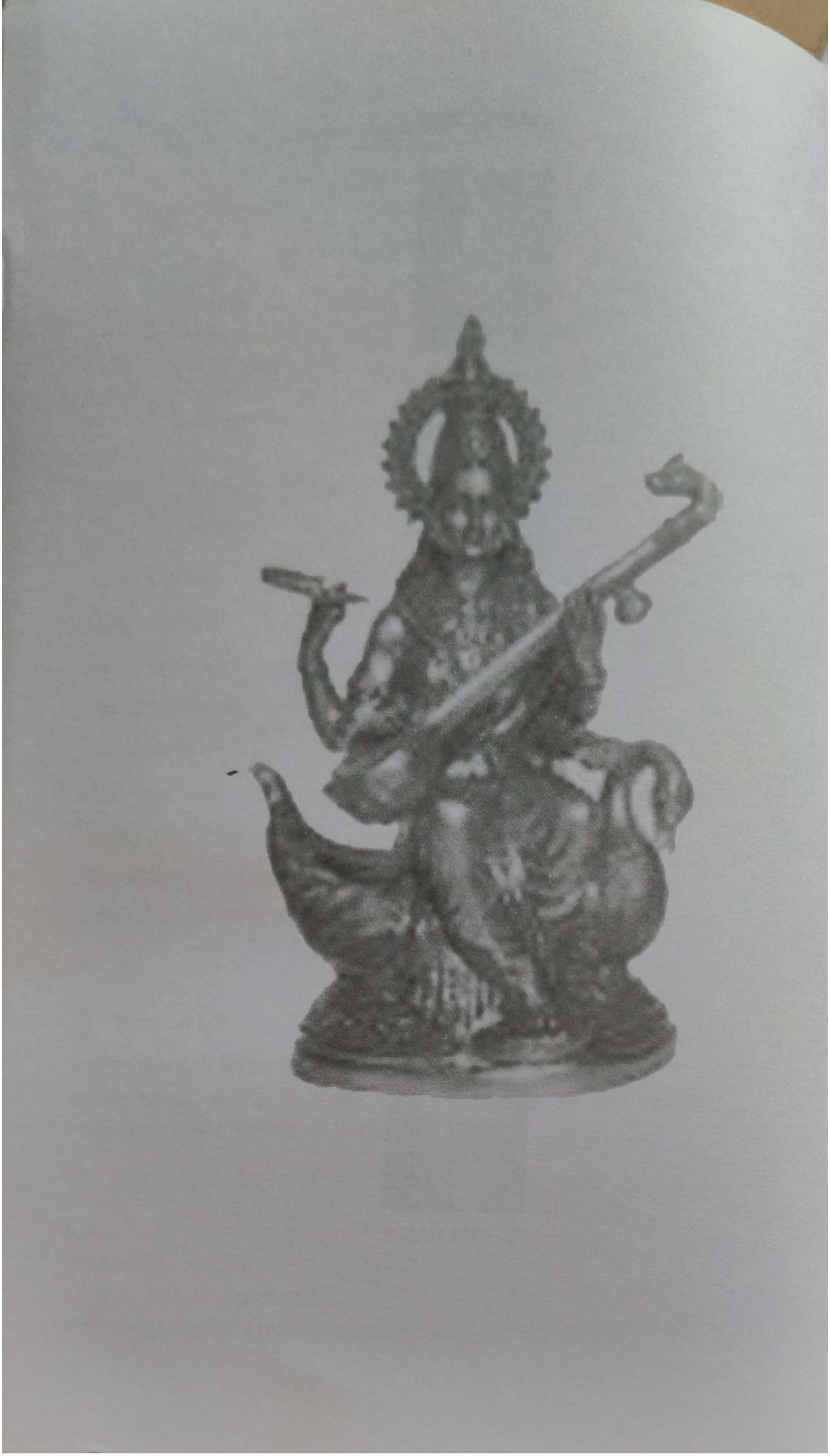
शिवनारायण महतो

प्रधान सम्पादक



डॉ. पुष्पम नारायण

Scanned with OKEN Scanner



Scanned with OKEN Scanner

संगीत नाटक अकादेमी
Sangeet Natak Akademi
NATIONAL ACADEMY OF MUSIC, DANCE AND DRAMA, INDIA
RABINDRA BHAVAN, FEROZESHAH ROAD, NEW DELHI-110 001
Tel. : 23387246, 23387247, 23387248, 23382495
FAX : 91-11-23382659, 91-11-23385715 GRAM : NATAKADEMI
E-mail: sangeetnatak@bol.net.in
Website:http://www.sangeetnatak.org

संचिका सं. 16-1/2009-10/2705

6 जुलाई 2009

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

महोदया,

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय द्वारा वार्षिक शोध पत्रिका प्रकाशन हेतु मिथिलांचल संगीत परिषद का गठन किया गया है। आशा है कि पत्रिका में प्रकाशित शोध आलेख संगीत, साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ रसिकजनों का ज्ञानवर्धन करेंगे।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

भवदीय,

(जयंत कस्तुआर)
सचिव

Scanned with OKEN Scanner

एस. गुणशेखरन
सचिव
Sahitya Akade

01 जुलाई 2009

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

शुभकामना संदेश

यह जानकर हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई कि मिथिलांचल संगीत परिषद् संगीत को समर्पित शोध-पत्रिका प्रकाशित करने जा रही है। संगीत प्रकृति का अनमोल वरदान है और यह जाति, धर्म, रंग, क्षेत्र ही नहीं बल्कि भाषा तक की सीमा को तोड़ता है। आज के तनाव और शोर भरे समय में संगीत और संगीत विषयक पत्रिकाओं की बहुत जरूरत है। इस दृष्टि से यह परिषद् एक बड़ा काम करने जा रही है।

आप सफलतापूर्वक इस शोध-पत्रिका का प्रकाशन करें और युवा पीढ़ी में संगीत के प्रति प्रेम जगाएं। हमारी हार्दिक शुभकामनाएं।

(एस. गुणशेखरन)

Scanned with OKEN Scanner

साहित्य अकादेमी

एस. गुणशेखरन
उपसचिव

Sahitya Akademi

01 जुलाई 2009

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

शुभकामना संदेश

यह जानकर हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई कि मिथिलांचल संगीत परिषद् संगीत को समर्पित शोध-पत्रिका प्रकाशित करने जा रही है। संगीत प्रकृति का अनमोल वरदान है और यह जाति, धर्म, रंग, क्षेत्र ही नहीं बल्कि भाषा तक की सीमा को तोड़ता है। आज के तनाव और शोर भरे समय में संगीत और संगीत विषयक पत्रिकाओं की बहुत जरूरत है। इस दृष्टि से यह परिषद् एक बड़ा काम करने जा रही है।

आप सफलतापूर्वक इस शोध-पत्रिका का प्रकाशन करें और युवा पीढ़ी में संगीत के प्रति प्रेम जगाएं। हमारी हार्दिक शुभकामनाएं।

(एस. गुणशेखरन)

Scanned with OKEN Scanner

Vivek Kumar Singh
IAS
Secretary

Art, Culture and Youth Department
Govt. of Bihar
Mob : 91-9431025393
Tel.:91-612-2211619, Fax : 91-62-2230173
E-mail : viveksingh89@gmail.com

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

शुभकामना संदेश

यह बड़े गर्व का विषय है कि स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा द्वारा वार्षिक शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका सारगर्भित होगी, क्योंकि इसमें संगीत से संबंधित राष्ट्रीय स्तर के संगीतज्ञ एवं शोध छात्रों के आलेख प्रकाशित किये जाएंगे। कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में यह सराहनीय पहल कही जाएगी। पत्रिका प्रेरणादायक होगी, यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

पत्रिका के प्रकाशन की सफलता हेतु मेरी असीम शुभकानायें।

(विवेक कुमार सिंह)

Scanned with OKEN Scanner

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा-846 008 (बिहार)

(Graded "B" by NAAC)

प्रो. मिश्री लाल ठाकुर
कुलपति

दूरभाष सं. : 06272-222463 (Off.)
22589 (Res.)
222598 (Res. Off.)
222680 (Res. Off.)
फैक्स सं. 06272-222598
ई-मेल : vc...inmu@indittimes.com

पत्रांक VCR-7D43/09 दिनांक 26.08.09

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

महाशया,

मुझे यह जानकर हार्दिक खुशी हुई है कि विश्वविद्यालय के स्नातको र संगीत एवं नाट्य विभाग द्वारा वार्षिक शोध पत्रिका प्रकाशित करने की योजना निरूपित की गयी है। इस हेतु विभाग के तत्वाधान में गठित मिथिलांचल संगीत परिषद् के प्रयासों की मैं सराहना करता हूं। मुझे आशा है कि यह शोध पत्रिका संगीत के क्षेत्र में भावी पीढ़ी के लिए पथप्रदर्शक का कार्य करेगी।

मैं इसके सफल वार्षिक प्रकाशन के लिए अपनी हार्दिक शुभकामना प्रेषित करता हूं।

दरभंगा
दिनांक 26.08.2009

26.8.09

(मिश्री लाल ठाकुर)
कुलपति

Scanned with OKEN Scanner

LALIT NARAYAN MITHILA UNIVERSITY
KAMESHWARANAGAR, DARBHANGA-846008 (BIHAR)

Dr. Padmasha Jha
Pro-Vice-Chancellor
Ex. MLC (Bihar)
Member
Parliamentary Hindi Advisory Board
Govt. of India

Mob. 9430938008
9334908572
(O)
(R)

पत्रांक 11200/09 दिनांक 20.08.09

सेवा में,

डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

महोदया,

आपके पत्र पत्रंक पी0जी0एम0डी0 546/09 दिनांक 13.07.09 से यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आपके विभाग द्वारा संगीत हेतु वार्षिक शोध पत्रिका प्रकाशन किया जा रहा है। यह अत्यंत गौरव की बात है कि मिथिलांचल संगीत परिषद के गठन से मिथिला की समृद्ध संगीत परंपरा को एक आयाम मिलेगा। आशा है कि पत्रिका में प्रकाशित शोध आलेख, संगीत, साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ इससे जुड़े लोगों का ज्ञानवर्धन भी करेगा।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

भवदीया

20/08/09

20.8.09
प्रति-कुलपति

Scanned with OKEN Scanner

हिन्दी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

डॉ. प्रभाकर पाठक
विश्वविद्यालय प्राचार्य एवं अध्यक्ष

नरगौना भवन, कामेश्वरनगर
दरभंगा-624 882
दूरभाष : 06272-247653
मोबाईल : 06272-222598

पत्रांक.....

दिनांक.....

सेवा में,

विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

महाशया,

वार्षिक शोध-पत्रिका प्रकाशन के संदर्भ में शुभकामना संदेश प्रेषित करने के लिए आपका पत्र मिला। आपकी विभागीय कार्यक्षमता और तत्परता सर्वविदित है। संगीत एवं नाट्य विभाग वैसे ही विश्वविद्यालय के लिए कला एवं संस्कृति का मानदंड होता है, फिर आपने शोध-पत्रिका की, सदुद्देश्य संबंधी, जो अपनी अवधारणा प्रतिफलित की है, वह अमूल्य है, प्रशंसनीय है, सुग्राह्य है और विश्वविद्यालय की कीर्ति के लिए उन्नायके संकल्प है।

मैं इसके सफल प्रकाशन के लिए अपनी हार्दिक शुभकामना प्रेषित करता हूं।

०८/०७/२००९

डा. प्रभाकर पाठक
संकायाध्यक्ष

Scanned with OKEN Scanner

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

डॉ. दयानिधि प्र. राय
कुलानुशासक

सचल दूरभाष : 9431080255

पत्रांक..... दिनांक.....

सेवा में,
डा. पुष्पम नारायण,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा वार्षिक शोध-पत्रिका का प्रकाशन करने जा रही है। पत्रिका को स्तरीय बनाने हेतु मिथिलांचल संगीत परिषद् का गठन एक बहुत ही सराहनीय कदम है।

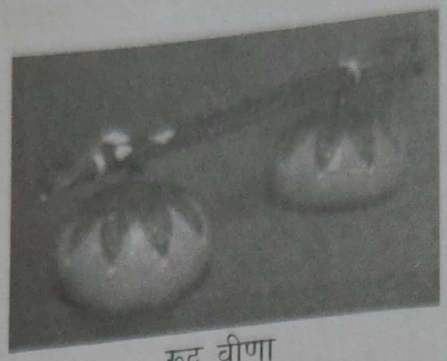
मुझे विश्वास है कि प्रकाशित होनेवाली पत्रिका ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ ज्ञानोपयोगी होगी जो अशांत, संवेदनहीन एवं निराश हो रहे समाज के लिए अपनी उपादेयता भी प्रमाणित करेगी।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी असीम शुभकामनाएं।

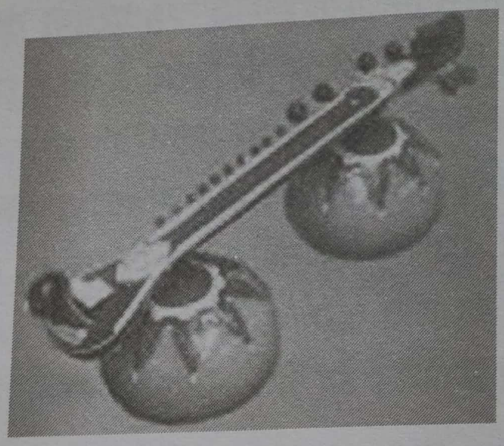
20.06.09

(दयानिधि प्रसाद राय)
कुलानुशासक

Scanned with OKEN Scanner



रूद्र वीणा



विचित्र वीणा

Scanned with OKEN Scanner



संपादक की कलम से ...

विदेहराज जनक की नगरी मिथिला ऋषि मुनियों की साधना भूमि तथा माता सरस्वती की क्रीड़ा स्थली रही है। असंख्य मीमांसकों, आचार्यों, वैयाकरणों, वेदाध्यायियों, नैयायिकों, तथा धर्मशास्त्रियों की दिव्य श्रृंखला मिथिला की विशिष्ट सांस्कृतिक निधि है। मिथिला में ही यजुर्वेद की संहिता की रचना हुई जिसमें प्रख्यात ईशावास्योपनिषद् अन्तर्मुक्त है। वेदान्त का उद्भव और विकास इसी मिथिला के वृहदारण्यक में हुआ। महर्षि याज्ञवल्क्य ने ईशावास्योपनिषद् का प्रणयन कर भारतीय दर्शन को अभिनव दिशा प्रदान की। भारतीय षड्दर्शनों में पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, न्याय, वैशेषिक और सांख्य का उद्गम स्थल मिथिला ही है। वैदिककाल से ही यह प्राचीन विद्या के केन्द्र के रूप में विख्यात रही है। गार्गी, मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल, कणाद्, उदयन, मण्डन, भारती, उदयनाचार्य, पक्षधर आदि यशस्वी मनीषियों के अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

मिथिला मध्य गायन की सुदीर्घ परंपरा रही है। नान्यदेव के आगमन (1097ई0) तथा हरिसिंह देव के राज्यकाल (1324ई0) के बीच मैथिल लोकसंगीत की विशेष प्रगति हुई। मैथिली लोकसंगीत के इतिहास में महाकवि विद्यापति का प्रादुर्भाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना है। कर्णाट वंश के बाद मिथिला में स्थापित ओइनवार वंशकाल के राजाओं शिवसिंह, कीर्ति सिंह आदि के समय में विद्यापति की गीति रचना का सम्यक् विकास हुआ। जिसने परवर्ती नाटककारों और पूरे पूर्वांचल के ब्रजबुलि के रचनाकारों को गहरे तौर पर प्रभावित किया। महाकवि विद्यापति ने पुरूष परीक्षा में "संगीत विध कथा" शीर्षकान्तर्गत इस रहस्य पर प्रकाश डाला है कि मिथिला के गायकों का आदर भारत के सुदूर क्षेत्रों में किया जाता था। "आइने अकबरी" में अबुल फजल ने लचारी या नचारी की चर्चा करते हुए तिरहुत के गीतों की उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। ज्योतिरीश्वर ने वर्णरत्नाकर में संगीत संबंधी वृहत चर्चा कर मिथिला के संगीत की प्राचीनता की ओर संकेत किया है। लोचन ने रागतरंगिनी में मिथिला में प्रचलित अनेक रागों को एतद्देशीय कहकर व्याख्यायित किया है। कविकुलगुरू कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' में अपभ्रंश में जो पद प्राप्त हुए है उनमें से अधिकांश का संबंध मिथिला के लोकसंगीत से है।

नान्यदेव कृत "सरस्वती हृदयालंकार" ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर', शुभंकर ठाकुर कृत 'श्री हस्तमुक्तावली', लोचन की रागतरंगिनी तथा मोहम्मद रजा की 'नगमात-ए-आसफ़ी' सदृश मौलिक सांगीतिक कृतियों ने भारतीय संगीत की धारा को विशेष रूप से प्रभावित किया है। नृत्य की हस्तक-मुद्राओं से संबंधित ग्रंथ 'श्री हस्त मुक्तावली' अनूठा और दुर्लभ है।

संगीत, साहित्य और कला तीन ऐसे प्रमुख क्षेत्र हैं जो मानव के व्यक्तित्व को महानता प्रदान करते हैं। तीनों क्षेत्रों का अपना-अपना स्थान एवं महत्व है। संगीत समग्र मानव जाति की भाषा होने के साथ-साथ भावनाओं के आदान-प्रदान का, मानव जीवन के परिष्कार, अलंकार और उत्कर्ष का साधन है। संगीत अंतःकरण का भोजन है जो परिस्थितियों द्वारा विकृत मानव-जीवन में आए हुए ध्वंसक संकल्पों का उन्मूलन कर, उसकी 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का मार्ग अवलोकित कर, जीवन को अलंकृत करता है।

Scanned with OKEN Scanner

वर्तमान समय में संगीत व्यवसाय के रूप में प्रकट हो रही है। क्रय विक्रय तथा मांग और परिपूर्ति के अर्थशास्त्रीय तत्वों का कला-क्षेत्र में बड़े पैमाने पर उपयोग होने लगा है। संगीत की नई आकर्षक कलावस्तु का निर्माण करने के लिए कलाकार कला के प्रति किसी स्तर तक समझौता करने को तैयार है। ऐसे समझौतों से कई बार संगीत की शुद्धता आहत होती रही है। आज का समाज प्रगतिशील है। अतः समय की मांग स्वस्थ संगीत के दायरे में रहकर भी पूरी की जा सकती है और इस क्षेत्र में परिवर्तन परिवर्द्धन के चरण संगीत के सीमाबद्ध विकास का इतिहास रच सकते हैं। आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि उपकरणों के आगमन ने संगीत को घराना परंपरा के बाहर भी स्थान दिया है। परंपरा निरंतर प्रगतिशील बदलावों के साथ चलती है।

संगीत किसी सामंतवाद, गणतंत्रवाद या किसी भी 'वाद' की विरासत नहीं होती, अपितु पूरे राष्ट्र की विरासत होती हैं। संगीत अध्येता एवं साधिका होने के नाते जब मैं इस ओर उन्मुख हुई तो यह कमी मुझे हमेशा कचोटती रही कि संगीत की कोई ऐसी 'शोध-पत्रिका' अवश्य हो जो संगीत की परंपरा को बरकरार रख सके। ललित कलाओं में खासकर संगीत पर स्तरीय लेखन नगण्य है। संगीत के बहुआयामी विषय को लेकर 'भैरवी' संगीत शोध-पत्रिका आप सुधी पाठकों के बीच आने को आकुल है। मुझे यह विश्वास है कि इस लघु प्रयास से संगीत का क्षेत्र, मार्ग और प्रशस्त होगा।

प्रकाशन के क्रम में 'प्रूफ रीडिंग' एक जटिल व उबाऊ प्रक्रिया है, किन्तु बगैर इसके बीच से गुजरे इसको साकार भी नहीं किया जा सकता। मेरे जानते अपने साधन और सीमाओं का सम्यक् उपयोग करते हुए मैंने शुद्धाशुद्धि एवं सजाने-संवारने की भरसक कोशिश की है, बावजूद इसके अगर कुछ त्रुटियां रह गयी हों तो मेरे क्षमा-याचना के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता। सुधी समाज 'क्षीर-ग्राही' होते हैं, अस्तु 'नीर' को मेरा पहला प्रयास समझ कर भूल जाएंगे।

पुष्पम नारायण

–डा. पुष्पम नारायण

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग,

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,

दरभंगा (बिहार) - 846 004

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		13
1.	संगीत की उत्पत्ति एवं उसकी शक्ति	*डा. मृदुला कुमारी*	19
2.	भारतीय संगीत में स्वर	*डा. नीरा चौधरी*	22
3.	नान्यदेवोक्त 'ग्राम'	*डा. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'*	25
4.	आधारभूत तकनीकी शब्द "कायदा" तबला वादन के संदर्भ में	*डॉ वेणु वनिता*	30
5.	उत्तर तथा दक्षिण भारतीय ताल पद्धति	*विवेक कुमार जैन*	35
6.	बिन तबला सब सून	*भीमसेन सरल*	37
7.	राग रागिनी की पद्धति में ध्यान परम्परा का विश्लेषण	*डा. मधु शुक्ला*	42
8.	वाद्यों के निर्माण में कला एवं विज्ञान की भूमिका	डा. रीता दास	46
9.	राग समय सिद्धान्त का पोषक : हवेली संगीत	*ऋचा शर्मा*	49
10.	सांगीतिक ध्वनि का जादू	*कामेश्वर कुमार*	51
11.	उत्तर भारतीय संगीत का परिवर्तित स्वरूप	*डॉ. प्रियदर्शिनी उपाध्याय*	54
12.	मध्यप्रदेश में भोपाल का सांगीतिक विकास : एक तथ्यात्मक अध्ययन भोपाल का मेवाती घराना	*डा. रविकुमार पंडोले*	57
13.	वर्तमान परिदृश्य में शास्त्रीय संगीत की छवि	*श्रद्धा गुप्ता*	63
14.	संगीतशास्त्र की निधि : सामवेद	*डॉ. नरेन्द्रनाथ झा*	65
15.	संगीत शास्त्र में नाद का महत्व	*अर्चना वर्मा*	69
16.	सूचना प्रौद्योगिकी वातावरण में हिन्दुस्तानी संगीत की व्यावसायिक सम्भावनाएँ	*डॉ. विवेक फड़नीस*	73
17.	संगीत उद्योग - व्यापार एवं रोजगार	*डॉ. रेनू निगम*	77
18.	.शास्त्रीय संगीत का आध्यात्मिक पक्ष	*डॉ. सोनिया बिन्द्रा*	80
19.	महिलाओं का ताल वाद्य वादन के क्षेत्र में योगदान	*अशोक कुमार*	83
20.	भारतीय शास्त्रीय संगीत में नारी का योगदान	*डॉ. सुदेश कुमारी*	85
21.	सौन्दर्यशास्त्र और ललितकला	*कुमारी कंचन*	88
22.	ललितकलाओं में संगीत का स्थान	*कुमारी बीभा*	90
23.	शास्त्रीय संगीत पर लोक संगीत का प्रभाव	*नूतन कुमारी*	92
24.	भारतीय समाज एवं भक्ति संगीत	*डॉ. शत्रुध्न ठाकुर*	94
25.	कर्नाटक संगीत पितामह : संत पुरन्दरदास	*डा. के. शशिकुमार*	97
26.	आदर्श संगीत संरक्षक बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह	*दीप्ति कुमारी*	99

Scanned with OKEN Scanner

27.	पंडित जगन्नाथ का ध्रुवपद-जगत में योगदान	विशाल जैन 1
28.	आधुनिक भारतीय संगीत के सूत्रधार पं. विष्णु नारायण भातखण्डे	डा. अल्पना कुमारी 1
29.	संगीत के क्षेत्र में विद्वान द्वय पं. नारायण भातखंडे व पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के योगदान	शोभा कुमारी 1
30.	भक्तिकालीन गेय काव्य में संगीत	डा. अरविन्द कुमार 1
31.	तुलसीदास के गीति काव्य में संगीत तत्व	डा. अश्विनी कुमार सिंह 1
32.	तुलसीदास के पदों में संगीत	डॉ. पुनीता वर्मा 1
33.	मीराँ के पदों में रागात्मकता	रिशु रानी 1
34.	'मूल्य-शिक्षा में संगीत' 'एक विवेचनात्मक अध्ययन'	डॉ. (श्रीमती) रेनू वर्मा 1
35.	प्रकृति के प्राणियों पर संगीतिक प्रभाव	राजेश कुमार गुप्ता 1
36.	संगीत चिकित्सा विधि का जीवन में महत्व	डा. संगीता श्रीवास्तव 1
37.	संगीत-जीवन दायिनी शक्ति	उदयशंकर कुमार 1
38.	योग क्रिया में संगीत का महत्व	सुरेन्द्र राम 1
39.	संगीत का मनोविज्ञानिक प्रभाव : सैद्धान्तिक विमर्श	अंजु कुमारी 1
40.	संगीत-प्रकृति का अभिन्न अंग	बुद्धिनाथ दास 1
41.	प्राणियों पर संगीत का प्रभाव	स्मिता सिन्हा 1
42.	संगीत से मानव समाज का उपचार	डॉ. सरोज द्विवेदी 1
43.	संगीत एवं उसके उपचारात्मक मूल्य	डा. किरण सिंह 1
44.	आदिवासी लोकसंगीत एवं उपचार	डा. रेखा कुमारी डा. पुष्पम नारायण 1
45.	बुन्देलखण्ड की लोक विधायें	डॉ. रामशंकर 1
46.	मिथिलांचल की संगीत परम्पराओं में भट्ट	डा. वेद प्रकाश 1
47.	लोक संस्कृति के आयाम : संगीत, साहित्य और कला	पुष्पवाणी एवं डा. पुष्पम नारायण 1
48.	मैथिली लोकगाथा में संगीत-साहचर्य	डा. शिव प्रसाद यादव 1
49.	महाकवि विद्यापति का सौंदर्य प्रेम	कुमारी मेनिका 1
50.	मैथिली लोकसंगीत में संगीत तत्व	डॉ. लालति कुमारी 1
51.	महाराष्ट्र के स्त्रियों का खेल नृत्य	संतोष दत्तात्रेय परचूरे डा. पुष्पम नारायण 1
52.	राजस्थान लोकनाट्य ख्यालः एक ऐतिहासिक विवेचन	कु. सोनिया करौला एवं डॉ. सुधा सहगल 19
53.	मिथिलांचल का लोकनाट्य : डोमकछ	मनोज कुमार झा 20
54.	मिथिला का संस्कार गीत–सोहर	आभा कुमारी 21
55.	ब्रज भूमि एवं संगीत	निहारिका 21
56.	राजस्थान के लोकनाट्यों में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट कथायें	रूपाली गुप्ता डॉ. सुधा सहगल 21
57.	मध्यकालिन मिथिला में संगीत चिंतन	रजनीगंधा 22

Scanned with OKEN Scanner

58.	भोजपुरी लोकगीत : एक समृद्ध लोकसंगीत परंपरा	*कुमार चंदन*	227
59.	लोकगीत का संक्षिप्त परिचय	*श्रीमती नीतु सिंह*	233
60.	मिथिला के विस्मृत मधुरोपासक गीतकार श्री मोदलता	*डा. सुनील कुमार ठाकुर*	236
61.	ज्ञात गीतों के अज्ञात रचनाकार संत "श्रीनिधि"	*फणीश कुमार*	240
62.	Theory of Rasa in Indian Art	*Dr. Jai Shakar Mishra*	243
63.	Classical Music in Shabad–Kirtan of Sikhism	*Dr. Sudha Sahgal*	246
64.	Ragas and Raginis	*Dr. Reena Sahay*	253
65.	Music -The Philosophy of life	*Prof. (Dr) Satyanaryan Thakur*	257
66.	Music—The Gate Way Treatment	*Dr. A D N Singh*	260
67.	Music and Its Effects	*Dr. Pushpam Narain*	269
68.	Musicological Study in Medieval Bengal : A Brief Survey	*Dr. Bisakha Goswami*	274

Scanned with OKEN Scanner



राग भैरव - ध्यान चित्र



राग भैरव - ध्यान चित्र

Scanned with OKEN Scanner

संगीत की उत्पत्ति एवं उसकी शक्ति

डा. मृदुला कुमारी*

संगीत की सृष्टि नाद से होती है। जिस तरह मिट्टी या पत्थर से मूर्त्ति, रंग से चित्र और ईट पत्थरों से महल तैयार होता है उसी तरह नाद से संगीत प्रस्फुटित होता है। मिट्टी आदि की तरह ही नाद संगीत का उपादान मात्र है। कोई नाद चाहे जितना भी श्रुति मधुर हो अकेला संगीत का रूप नहीं ले सकता क्योंकि ऐसे नाद में संगीत का रूप देखना वैसा ही है जैसा किसी पत्थर के ढोकें में बुद्ध की मूर्त्ति या रंग के ढेर में रम्भा मदलसा का चित्र देखना। किसी भी कला कृति के लिए अच्छे उपादान को ग्रहण करना उचित है और इस दृष्टि से संगीत के लिए कर्णप्रिय नाद भी आवश्यक है पर कर्णप्रिय नाद स्वयं न तो संगीत है और न संगीत के लिए अनिवार्य है। कला की सृष्टि उसके उपादान के रीतिगत उपयोग या प्रबन्ध से होती है। यह प्रबन्ध कलावान की कृति है। साधारण मनुष्य मीठी आवाज सुनकर ही तृप्त हो सकता है पर संगीत का पारखी यह देखता है कि किसी ने अपनी मीठी आवाज का किस रीति से उपयोग किया है। मीठी आवाज की भित्ति पर कैसी कारीगरी की है। जैसे अनेक रंगों के प्रबन्ध से चित्रकला की सृष्टि होती है। वैसे ही भिन्न-भिन्न तारता के अनेक उंचे-नीचे नादों के प्रबन्ध से संगीत कला की सृष्टि होती है। किसी नाद का प्रिय या अप्रिय वेदना कर्णेन्द्रिय तक ही सीमित होती है यह कर्ण तन्तुओं के स्पन्दन से उत्तेजित केवल शुद्ध और परिच्छिन्न मानसिक विकार है। पर संगीत की उत्पत्ति ऐसी अनेक मानसिक अनुभूतियों के क्रम और पारस्परिक सम्बन्ध होती है। एक आदिम मनुष्य को डूबते हुए सूरज का लाल चक्का देखकर हर्ष हो सकता है या खोखले बांस की नली में हवा के संचार से निकली हुई ध्वनि सुनकर तृप्ति हो सकती है पर ना तो चित्रकला केवल लाल रंग है और न संगीत केवल बांस की ध्वनि।

इस दृष्टि से संगीत केवल नाद नहीं वरन् भिन्न भिन्न तारता या स्थान के उचे नीचे स्वरों का क्रमबद्ध प्रबन्ध है अर्थात संगीत के विकास की पहली कड़ी अन्तराल है।

डार्विन ने अपने 'मानव अवतरण' में अनेक वैज्ञानिकों के निरीक्षणों के आधार पर यह बताया है कि पशु पक्षियों की ध्वनि में भी भिन्न भिन्न स्वरों के अन्तराल पाये जाते है और प्रायः ये अन्तराल ऐसे होते हैं जिनका उपयोग मनुष्य समाज अपनी संगीत कला में आज भी कर रहा है। कुत्ते पालतु होने के बाद चार या पाँच स्पष्ट स्वरों में भूंकने लगते हैं। घरेलू मुर्गे कम से कम एक दर्जन स्पष्ट स्वरों में बोलते है। रेवरण्ड लॉक उड ने अमरीका में पाये जाने वाले एक विशेष जाति के चूहे का वर्णन किया है। उन्होने बताया है कि यह चूहा अपने गले से अर्धस्वर तक का सच्चा अन्तराल निकालता है। यह कभी कभी अपने स्वर को ठीक ठीक एक अष्टक नीचे उतारता है। उन्होने इस चूहे के प्राकृतिक संगीत की स्वरलिपि भी तैयार की है। बहुतेरे पक्षियों में जो गायक जाति के समझे जाते है गले से आवर्त्तक ग्राम के स्वर संघात निकालने की क्षमता होती है। वाटर हाउस के निरीक्षण से पता चलता है कि वनमानुष जाति का हिल्वन आरोही और अवरोही मूर्च्छना में अर्धस्वर के सच्चे अन्तराल का प्रयोग करती है। और इसके निम्नतम और उच्चतम स्वर

* पूर्व अध्यक्ष, वि.वि. संगीत विभाग, ति. माँ. भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

में एक अष्टक का अन्तराल होता है, इसकी ध्वनि तीव्र और संगीतमय होती है। ओवेन ने भी जो एक गायक थे, इस निरीक्षण की पुष्टि की है। वनमानुष जाति में और भी जाति विशेष के पशु हैं जो तीन तीन स्वर शुद्ध अन्तराल के साथ गाते है।

वैज्ञानिको निरीक्षणों का यह मत है कि पक्षियों में संगीत का उपयोग विशेष रूप से निराशा, भय, क्रोध विजय या केवल आनन्द के भाव प्रकट करने में होता है। पशुओं में नर भी विशेषतः मैथुन की ऋतु में ही गाते हुए पाये जाते है। जब उन्हें प्रेम द्वन्द्व ईर्ष्या, क्रोध विजय आदि भावों को प्रकट करने की प्रेरणा होती है। मनुष्य का कण्ठ रज्जु स्त्रियों के कण्ठ रज्जु की अपेक्षा लम्बाई मे तिगुना होता है। ऐसा समझा जाता है कि विकास के आदिम काल में प्रेम क्रोध, ईर्ष्या आदि की उत्तेजना में कण्ठ के बार-बार व्यवहार में नर का कण्ठ रज्जु लम्बा हो गया है जो हो इतना सिद्व है कि भिन्न भिन्न भावों को प्रकट करने में पशु-पक्षी भी भिन्न भिन्न स्वरो के संक्रम का उपयोग करते हैं और वहीं से संगीत का आरम्भ होता है।

इस दृष्टि से यह आश्चर्य की बात नहीं कि मानव जाति के विकास के आदिमकाल में भी संगीत का अस्तित्व पाया जाता है। पुरातत्व के वेत्ताओं ने खोंहों मे पत्थर के औजारों और लुप्त जाति के पशुओं की हड्डियों के साथ रेनडीयर (प्राचीन जाति के हिरण) की हड्डी से और सिंग से बनी हुई बांसुरी पायी है। यह बहुत ही प्रस्तर युग की बात है। ले ओंमाडरअले ने जमीन के नीचे से एक 11 तारों का बाजा निकाला है जो प्रायः 5000 वर्ष पुराना है। इससे स्पष्ट है कि इतने प्राचीन काल में भी मनुष्य भिन्न भिन्न स्वरों का संक्रम को जानता था और उससे आनन्द उठाता था।

सुमेरी गायकों का 4600 वर्ष पुराना चित्र पाया गया है जिसमें कई तरह के बाजे और ढोलक दिख पड़ते है। मिश्र देश में प्रायः 4500 वर्ष पुराना एक चित्र पाया गया है। जिसमें 7 गवैये हैं। इनमें से दो तार के बाजे और तीन बांसुरी सरीखे बाजे बजा रहे है और दो इन सबों के बीच तालियां दे रहे है।

तात्पर्य यह है कि संगीत का विकास पशु पक्षियों से लेकर मनुष्य तक लगातार होता चला आया है और इसलिए मानव संगीत का विकास भी मानव जाति के विकास के साथ ही हुआ है। आदिम काल में पशु पक्षियों की तरह ही मानव जाति में भी संगीत की प्रेरणा प्रेम ईर्ष्या द्वन्द्व-विजय आदि भावो के प्रदर्शन के लिए होती थी। मैक्समूलर आदि भाषा तत्वज्ञों की धारणा है कि भाषा की उत्पत्ति के पहले संगीत की उत्पत्ति हुई है। क्योंकि विकास की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि अन्य जीवों की भांति मनुष्य को भी पहले केवल शुद्ध और व्यापक भावों को व्यक्त करने की प्रेरणा होती होगी जो केवल स्वर संधातों से किया जाता होगा। आगे चलकर जब मनुष्य का मस्तिष्क विकसित हुआ तो उसके एक-एक व्यापक भाव में विचारों की अनेक भिन्न भिन्न धाराएं खुल पड़ी इसी प्रकार प्रेम, ईर्ष्या, द्वन्द्व, विजय आदि शुद्ध व्यापक भाव जटिल होने लगें। यही से भाषा की उत्पत्ति हुई। जब भी किसी विचार को भाव से अनुप्राणित करना होता है तो वक्ता स्वर के उतार चढ़ाव या अन्तराल से काम लेता है। अर्थात सार्थक वाक्यों में संगीत का पुट डालता है। साधारण बोलचाल में भी वाक्यों का उच्चारण एक तारता पर या एक स्वर में नहीं होता। विधेयात्मक वाक्य अन्त में षडज से निचले पंचम पर, मध्यम के अन्तराल से गिरता है। प्रश्न सूचक वाक्य अन्त में पंचम तक उपर उठता है। जहाँ किसी शब्द पर जोर देना होता है वह एक स्वर उपर उठता है।

अफ्रीकावासी हब्शी जब उत्तेजित होता है तो उसके मुँह से वाक्य संगीत में ही निकलते है तथा आरम्भ में मानव जाति के सारे भावो का संकेत भी संगीत के द्वारा ही किया जाता था। बाद में भी भावों का संकेत संगीत के द्वारा ही किया जाता था जैसे आनन्द या प्रसन्नता के प्रबल भावों को व्यक्त करना या सारे समुदाय को युद्ध के लिए उत्तेजित करना हो तो संगीत का ही उपयोग होता था। गान का आविर्भाव पहले हुआ अथवा वाद्य का कुछ का विचार है गान का पहले प्रादुर्भाव हुआ तथा कुछ का विचार है कि वाद्य का। विचारकों का मत है कि मनुष्य पहले खोखले बांस में हवा की गति से निकले हुए ध्वनि से और धातु की खनक से आकर्षित हुआ

Scanned with OKEN Scanner

होगा। तथा बाद में उसके अनुरूप स्वर निकाल कर गान का अविष्कार किया होगा। लेकिन ज्यादा सत्य है कि संगीत का विकास पशु पक्षियों से ही होता आ रहा है इसलिए मानव जाति में भी गान की प्रवृति विकास के क्रम से ही मौजूद थी तथा बाद में बांस की नली में वायु की गति से या तार के छेड़ने से निकली ध्वनि को श्रुति मधुर पाया तो उसका उपयोग कण्ठ संगीत के साथ किया इस प्रकार वाद्य यंत्र के आविष्कार ने संगीत को मूर्त्तिमान कर दिया तथा वाद्य के बाद ही व्याकरण की तरह संगीत शास्त्र का निर्माण हुआ जिसने ग्राम्य संगीत को शास्त्रीय संगीत में बदल दिया। प्राचीन संगीत शास्त्र को देखने से भी यही पता चलता है कि पायथागोरस या भरत ने तार वाद्य यंत्रों के आधार पर ही संगीत के नियम निर्धारित किए है।

पशु पक्षियों के क्रियाकलापों में भी एक नियम दिखाई देता है, उनकी कृतियों में एक प्रकार की समानता होती है जो एक जाति के पशु पक्षियों के कार्यकलाप में अक्षुण्ण रहती है। अर्थात उनकी कृतियों में वर्गगत या जातिगत विशेषता रहती है लेकिन मानव जाति में मस्तिष्क के विकास के कारण बुद्धि प्रबल रहता है इसलिए मानव कृतियों में व्यक्तिगत विशेषता और विभिन्नता पायी जाती है। अतः कला का विकास वहीं से आरम्भ हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि कला मूलतः कृत्रिम है जिसका मुख्य उपकरण बुद्धि है। इसलिए यद्यपि संगीत की आदिम प्रेरणा भाव है फिर भी संगीत बुद्धि की कारीगरी से ही कला के रूप में खड़ा होता है। जब मानव संस्कृति के विकास के साथ-साथ भाव बुद्धि से अधिकाधिक नियंत्रित होने लगता है, तब कला का सच्चा संस्कृत रूप प्रकट होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संगीत कला का सच्चा विकास सभी जातियों में सभी देशों में संगीत शास्त्र के निर्माण के द्वारा हुआ है। अतः शास्त्रीय संगीत को ही उच्च संगीत का कला मानना उचित है।

जब संगीत का विकास बुद्धि के द्वारा हुआ तो निःसन्देह उसके गुणतत्व और सौन्दर्य को बुद्धि के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है और इस प्रकार संगीत कला का लक्ष्य भी क्षणिक इन्द्रिय सुख नहीं बल्कि स्थायी बौद्धिक आनन्द है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति लक्ष्य लक्षण युक्त संगीत शास्त्र के अध्ययन से ही हो सकती है। इतना ही नहीं किसी भी देश या जाति की या किसी भी युग की संस्कृति और उसकी बौद्धिक दशा का मूल्य उसके संगीत शास्त्र की विवेचना से आंका जा सकता है। प्रत्येक संगीत का भूत, वर्तमान और भविष्य है इसलिए उसके इतिहास उसके व्यवहार और उसकी संभावनाओं पर सहानुभूति के साथ विचार करके ही उसका महत्व समझा जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय संगीत में स्वर

डा. नीरा चौधरी*

भारतीय संगीत में राग का एक विशिष्ट स्थान है। इतना ही महत्व इसे भारतीय दर्शन और साहित्य में भी दिया गया है। संगीत में नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर और स्वर से राग की उत्पति मानी जाती है। मूलाधार नाद ही इस सृष्टि के उद्‌भव का मूल कारण है, क्योंकि परमात्मा का स्वरूप ही नाद-ब्रह्म है।

संगीत दर्पण में कहा गया है–

"गीतं नादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्‌वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम्॥ 13॥

–संगीत दर्पण

अर्थात्–सर्वगीत नादात्मक (नाद पर अवलंबित) है। वाद्य नाद उत्पन्नकर्ता होने से प्रशस्त है। नृत्य, गीत तथा वाद्य नाद के आधार से होता है। अतः ये तीनों कलायें नादाधीन मानी गई हैं।

"राग स्वरों का एक अदृश्य बल्कि अधिकतम संभावित वैयक्तिकता की तरह का क्रम है, जो मेलॉडी बनाने वाले स्वरों के सामीप्य से या स्वरों की विविक्तकता से, उस विशेष ढंग से जिसे साधारणतया उनका उच्चार किया जाता है, उसकी आवृति विशेष से या उसके विपरीत जिस गति से वह आवर्तित होता है, उसकी उपस्थिति से या अनुपस्थिति से और किसी अश्रव्य ध्वनि से संपुष्ट आधार-स्वर के संबंध से जाना जाता है।"

राग शब्द की व्याख्या करते हुए पॉप्ले ने लिखा है : "राग, स्वराष्टक में आनेवाले स्वरों का ऐसा क्रम है, जो सभी भारतीय गीतियों का आधार स्वरूप होता है तथा जो कुछ स्थिर स्वरों की प्रमुखता या विशेष स्वरों की क्रमिकता के द्वारा एक दूसरे से अलग पाया जाता है।"

वस्तुतः राग स्वराष्टक (आक्टेव–Octave) के स्वरों का ऐसा गीत्यात्मक विधान है, जो एक निश्चित मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए बनाया जाता है।

संगीत में स्वरों के संदर्भ में नाद शास्त्र में विभिन्न रसों के लिए उदात्त, स्वरित और कंपित स्वरों के प्रयोग का निर्देश मिलता है। हास्य, शृंगार के लिए स्वरित और उदात्त, वीर, रौद्र तथा अदभुत के लिए उदात्त तथा कंपित, करूण, वात्सल्य, भयानक के लिए उदात्त, स्वरित और कंपित का प्रयोग मान्य है। विभिन्न रसों के स्वरों का उल्लेख भरतमुनि ने इस प्रकार किया है–

तत्र हास्यशृंगारयोः स्वरितोदात्तैः।
वीर रौद्रादभुतेषु उदात्त कंपितैः॥
करूणवात्सल्यभयानकेषुदात्त स्वरित।
कम्पितैः वर्णेरूपयादयेत इति॥

–नाट्यशास्त्र, 19.38-39

भरत ने स्वरों को ही वर्ण कहा है। आगे चलकर भरत ने यह भी संकेत दिया है कि हास्य में मध्यम, पंचम, वीर, रौद्र, तथा अद्‌भुत में षड्‌ज, ऋषभः, करूण में गंधार, निषाद और वीभत्स तथा भयानक में धैवत का प्रयोग होना चाहिये–

हास्य शृंगारयोः कार्यो स्वरौ मध्यम पंचमौ।
षडजऋषभौ तथा चैव वीर रौद्राद्‌भुतेषु च॥
गान्धारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करूणे रसे।
धैवतश्चैव कर्तव्यौ वीभत्से समयानके॥

–नाट्यशास्त्र, 19.38-39

*संगीत विभागाध्यक्ष, मगध महिला महाविद्यालय, पटना

Scanned with OKEN Scanner

"संगीत मकरन्द" में षडज से निषाद तक स्वरों में क्रमशः अद्‌भुत एवं वीर, रौद्र, शान्त, हास्य, शृंगार, वीभत्स तथा करूण रस का निर्देश दिया गया है। बृहद्‌देशी तथा संगीत रत्नाकार में षडज, ऋषभ को वीर, रौद्र तथा अद्‌भुत रस प्रधान; गंधार को करूण रस; मध्यम, पंचम को हास्य एवं शृंगार रस प्रधान, धैवत को भयानक; वीभत्स तथा निषाद को करूण रस प्रधान बतलाया गया है।

भरत ने जातियों का भी रस निर्धारित किया है। विभिन्न रसों की दृष्टि से भरत ने जातियों की स्पष्ट व्याख्या की है–

मध्यमपंचमभूयिष्ठं हास्य शृंगारयोर्भवेत्
षड्जर्षभप्रायकृतं वीर रौद्राद्‌भुतश्च।
गांधारसप्तमयप्रायं करूणे गानमिष्यते
तथा धैवत भूमिष्कं वीभत्से सभयानके॥

–नाट्यशास्त्र, 29.13.40

इतना ही नहीं संगीत दर्पण में दामोदार पंडित ने भी स्वरों के रंग, ऋषि, देवता, छंद, रस, इत्यादि का वर्णन किया है। जो इस प्रकार है-

स्वरों के रंग

सात स्वरों का क्रम से रंग इस प्रकार है–

षड्‌ज (सा)	-	लाल (कमल के समान)
ऋषभ (रे)	-	पिंजर
गंधार (ग)	-	सुवर्ण
मध्यम (म)	-	श्वेत
पंचम (प)	-	काला
धैवत (ध)	-	पीला, और
निषाद (नि)	-	चितकबरा।

स्वरों के ऋषि

षड्‌ज	-	अग्नि
ऋषभ	-	ब्रह्मा
गंधार	-	चन्द्रमा
मध्यम	-	विष्णु
पंचम	-	नारद
धैवत	-	तुम्बरू, और
निषाद	-	धनद (कुबेर)

स्वरों के देवता

षड्‌ज	-	वह्नि
ऋषभ	-	ब्रह्मा
गंधार	-	सरस्वती
मध्यम	-	सर्व (इन्द्र)
पंचम	-	विष्णु
धैवत	-	गणेश, और
निषाद	-	सूर्य।

स्वरों के छंद

षड्‌ज	-	अनुष्टुप्
ऋषभ	-	गायत्री
गंधार	-	त्रिष्टुप
मध्यम	-	वृहती
पंचम	-	पंक्ति
धैवत	-	उष्णिक, और
निषाद	-	जगती।

स्वर रस

षड्‌ज तथा ऋषभ स्वर अद्‌भुत, रौद्र तथा वीर रस के योग्य हैं। धैवत स्वर वीभत्स तथा भयानक रस का, गांधार तथा निषाद स्वर करूण रस के योग्य है। धैवत स्वर वीभत्स तथा भयानक रस का, गांधार तथा निषाद स्वर करूण रस के तथा मध्यम और पंचम हास्य और शृंगार रस के हैं।

सौरीन्द्र मोहन टैगोर ने भी अपनी पुस्तक "द सेवन प्रिन्सिपल म्युजिकल नोट्स ऑफ द हिन्दूज" में सप्त स्वरों के देवता के संबंध में इस प्रकार वर्णन किया है–

स्वर देवता

षड्‌ज	-	अग्नि–षड्‌जाधिदेवः अग्निः।
ऋषभ	-	ब्रह्मा–ऋषभाधिदेवः ब्रह्मा।
गंधार	-	सरस्वती–गान्धाराधिदेवी सरस्वती।
मध्यम	-	महादेव–मध्यमस्वराधिदेवः महादेवः।
पंचम	-	विष्णु–पंचमाधिदेवः विष्णुः।
धैवत	-	गणेश–धैवताधिदेवः गणेशः।

Scanned with OKEN Scanner

और

निषाद - सूर्य–निषादाधिदेवः सूर्यः।

सांगीतिक सप्त-स्वरों के इन शास्त्रोक्त रस, छंद, ऋषि .... आदि विवरणों के अतिरिक्त एक स्थान पर सातों स्वरों के संबंध में निम्न विवरण भी प्राप्त हुआ है, जिसमें स्वरों के रंग, राजा, देवी-देवता, नक्षत्रों इत्यादि के बारे में उल्लिखित है। इसका आधार कुछ तो शास्त्रोक्त दिखता है, परंतु विवरण अवश्य ही नई दृष्टिकोण की ओर उन्मुख करता है, जो इस प्रकार है–

Sa (Shadaj) : Pink is the colour of the first musical note Sa. The moon is its planet and the pearl its gem stone. Sa derives its being from the call of the Peacock. Symbolised by the agnikund with agni as its deity. Sa has no particular hour of the day or season of its own. It is universal both in its place in time and it its appeal.

Re (Rishabh) : Re, the second note, emits a light greenish-yellow colour and has the emerald as its gem stone with mercury as its planet. Derived from the call of the Ox, Re is symbolised by the trimurti, and has Brahma as its ruling deity. It is a note that celebrates the sun-spangled hours of noon and the bright colours of spring.

Ga (Gandhar) : Whitish-red in its colour, Ga, the third note, is given over to the beautiful afternoons of summer. Rulled by Venus, it has the diamond as its gem stone and the Veena as its instrument. Ga derives its power from Saraswati, the Goddess of music, and its being from the voice of the goat.

Ma (Madhyam) : The fourth musical note, 'Ma', dedicates itself to the dulcet hue of monsoon evenings. So alike in colour to its own maroon. Symbolised by the Chakra, Ma has the sun for its planet and the ruby as its gem stone. Ruled by Vishnu this note stems from the call of the crane.

Pa (Pancham) : Crimson in colour, 'Pa', the fifth note, blends itself with the late evening hours of autumn with splendid assurance. Fittingly, it is derived from the tons of the koyal and has Lotus as its symbol. Ruled by Laxmi, Pa has Mars as its planet and the coral as its gem stone.

Dha (Dhaivat) : 'Dha' the sixth musical note, celebrate the midnight hour in winter. Creamish-yellow in colour, thin note has Ganesh as its deity and the rat as its symbol. Finding its birth in the call of the frog Dha has Jupiter as its ruling planet and the topaz as its gem stone; and

Ni (Nishad) : The last musical note 'Ni' is blackish-grey in colour to reflect the early morning hours of late winter. Ruled by Surya and symbolised by the God's own 7 horse chariot, Ni derives its being from the voice of the elephant. It has Saturn as its planet and the blue sapphire as its gm stone.

संदर्भ :

1. पद्माभः पिंजरः स्वर्णवर्णः कुन्दप्रभोश्वसितः।
   पीतः कर्बुर इत्येषां जन्मभूमिथो ब्रुवे ॥86॥
2. वह्निर्वेधा शशांकश्च लक्ष्मीकांतश्च नारदः।
   ऋषयो ददृदशुः पंच षड्जादींस्तुबरूर्धनी ॥88॥
   –संगीत दर्पण, पं. दामोदर, पृ. 31-32
3. "बह्निमब्रह्मसरस्वत्यः शर्वश्रीशगणेश्वराः।
   सहस्त्रांशुरिति प्रोक्ताः क्रमात् षड्जादिदेवताः" ॥89॥
4. "क्रमादनुष्टुप् गायत्री त्रिष्टुप् च बृहती ततः।
   पंक्तिरूष्णिक् च जगतीत्याहुश्छंदांसि
   सादिषु ॥ 90 ॥"
   –संगीत दर्पण, पं. दामोदर, पृ. 32

Scanned with OKEN Scanner

नान्यदेवोक्त 'ग्राम'

डा. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'*

"अथ किमुच्यते ग्राम शब्देन? ननु कति ग्रामा भवन्ति? कस्मादुत्पद्यते ग्रामः किं वा तस्य प्रयोजनम् ॥"[1]

अर्थात् ग्राम शब्द का क्या तात्पर्य है? ग्राम कितने होते हैं, ग्राम कैसे उत्पन्न होता है वा उसका प्रयोजन क्या है? तो,

"समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ ॥
यथा कुटुम्बिनः सर्व एकीभूत्वा बसन्ति हि।
सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितिः ॥
षड्जमध्यमसंज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल।
गान्धारं नारदो ब्रूते स तु मर्त्यैर्न गीयते ॥
सामवेदात् स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसम्भवः।
द्वावेतौ च इमौ ज्ञेयौ षड्जमध्यमलक्षितौ ॥
प्रयोजनं च यथा–स्वरश्रुतिमूर्छना-
तानजातिरागाणां व्यवस्थापनत्वं नाम प्रयोजनम्।"[2]

अर्थात् स्वर, श्रुति आदि से युक्त ग्राम, दो समूहवाचक होते हैं। जिस प्रकार एक कुटुम्ब में अनेक सदस्य एक होकर रहते हैं उसी प्रकार जहाँ (स्वरों की) व्यवस्था है, उसे लोक (सभी) में 'ग्राम' कहा जाता है। 'षड्ज' और 'मध्यम' नामक दो ग्राम हैं। ग्राम (गान्धार) को नारद कहते थे कि यह मनुष्य द्वारा नहीं गाया जाता है।

सांगीतिज्ञ स्वर सामवेद से उत्पन्न हुए और ग्राम इन स्वरों से उत्पन्न हुआ। उन दो ग्रामों को 'षड्ज' और 'मध्यम' नाम से जाना जाता है।

इन ग्रामों का प्रयोजन–स्वर, श्रुति, मूर्छना (मंतग ने 'मूर्च्छना' न लिखकर मूर्छना ही लिखा है), तान, जाति और रागों की व्यवस्था ही 'ग्राम' का प्रयोजन है।

इस प्रकार, सर्वप्रथम मतंग ने ही 'ग्राम' शब्द को पारिभाषित एवं विश्लेषित किया है।

यद्यपि सर्वप्रथम भरत ने ग्राम का उल्लेख किया है–*"अथ द्वौ ग्रामौषड्जग्रामोमध्यमग्रामश्चेति। अत्राश्रिता द्वाविंशतश्रुतयः स्वरमण्डलसाधिताः"*[3] अर्थात् दो ग्राम– षड्ज और मध्यम होते हैं। इनके अन्तर्गत बाईस श्रुतियाँ हैं। इसी प्रकार, दत्तिल ने भी ग्रामों को परिभाषित नहीं किया है। 'नारदीय शिक्षा' में भी ग्रामों (तीन)–षड्ज-मध्यम-गान्धार-का उनकी मूर्च्छनाओं के साथ उल्लेख मात्र किया गया है-श्रुतियों एवं स्वरों के साथ उन्हें स्थापित नहीं किया गया है-

"सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एको नपञ्चाश-दित्येतहस्वरमण्डलम् ॥"[4]

नारद के अनुसार भूलोक से षड्ज ग्राम, भुव लोक से मध्यम ग्राम उत्पन्न हुआ है तथा स्वर्ग से अन्यत्र गान्धार ग्राम नहीं है। ऐसा नारद का मत है और नारद के इसी मत को मंतग ने उल्लेखित किया है।

इसके बाद नान्यदेव ने अपने ग्रन्थ 'भरतभाष्यम्' में 'ग्राम' शब्द का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है-

"ग्राम-त्रयं-विभागं च श्रुति भेद कृतं तथा
द्वाविंशाति तथा श्रुति यथा ग्रामेष्वपि त्रिषु।"[5]

नान्यदेव ने तीनों ग्रामों का उनके स्वरों के साथ विश्लेषण किया है। ग्राम अपनी श्रुतियों के विभाजन के अनुसार निर्मित हैं, यथा–

*पूर्वअध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

बाईस श्रुतियों का सप्त स्वरों में सामान्य विभाजन 'षड्ज ग्राम' है, मध्यम ग्राम में षड्ज ग्रामिक पंचम एक श्रुति नीचे उतर जाता है, और गान्धार ग्राम में गान्धार की दो श्रुतियाँ बढ़ जाती हैं। ग्रामों के निर्धारण में श्रुतियाँ ही मुख्य कारण है। यहाँ षड्ज एवं मध्यम ग्राम को अन्य ग्रन्थकारों ने भी समझाया है परन्तु गान्धार ग्रामिक श्रुति एवं स्वरों की व्यवस्था नान्यदेव द्वारा ही वर्णित किया गया है। भरत ने तो गान्धार ग्राम के नाम का उल्लेख भी नहीं किया है। यद्यपि नान्यदेव ने भरतकृत 'नाट्य- शास्त्र' में वर्णित संगीत का विवेचन किया है–

"नान्यदेवकृत सरस्वतीहृद्यालंकारनाम्नो नाट्यशास्त्र व्यासख्यानस्य नामान्तरम्"

'सरस्वतीहृद्यालंकार' नान्यदेवकृत 'भरतभाष्य' की ही एक और संज्ञा है–

"इति महासामन्ताधिपतिः नान्यपतिः विरचिते सरस्वतीहृदयभूषणे 'भरतभाष्ये' प्रथमो अध्यायः। "

नान्यदेव के अनुसार, भरत ने तीनों ग्रामों की तानों का वैसा विवरण नहीं किया है जैसा विशाखिल ने किया है। नान्यदेव ने तीनों ग्रामों की तानों के विवरण में विशाखिल को ही आधार माना है।

नान्यदेव एवं अन्य ग्रन्थकारों द्वारा षड्ज एवं मध्यम ग्राम में व्यवस्थित स्वरों की श्रुतियाँ इस प्रकार होंगी-षड्ज ग्राम में षड्ज की चार, ऋषभ की तीन, गान्धार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार धैवत की तीन और निषाद की दो श्रुतियाँ है तथा मध्यम ग्राम में षड्ज की चार, ऋषभ की तीन, गान्धार की दो, मध्यम की चार, पंचम की तीन, धैवत की चार और निषाद की दो श्रुतियाँ हैं।

ध्यातव्य है कि तत्कालीन सभी स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर थे।

इसके बाद, नान्यदेव ने गान्धार ग्राम का भी वर्णन किया है। इसे लोक में प्रचलित नहीं होने का कारण इसके स्वरों का अतितारत्व और अतिमन्द्रत्व बताया है–

"अतितार अतिमन्द्रत्वान्नात्र गायन्ति मानवाः ॥"56 ॥[5]

परन्तु इसका कोई स्पष्टीकरण यहाँ नहीं है।

भरतभाष्यकार ने गान्धार ग्राम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। गान्धार ग्राम की यहाँ 'ग' ग्राम संज्ञा है जो नारदकृत 'संगीत मकरन्द' के गांधार ग्राम का परिचायक है। इसका कारण उसमें कई स्थानों पर शब्दों का लोप अथवा खण्डितावस्था है। उसमें निषाद की श्रुतियाँ भी स्पष्ट नहीं हैं। भरत भाष्य में इन तीनों ग्रामों के स्वरमण्डलप्रस्तार में गान्धार ग्राम एवं इसकी श्रुतियों का विभाजन है जो इस प्रकार है–

"चतुश्रुतिश्चगान्धारः पधौ त्रिश्रुतिकौ यदि
गान्धारग्राममित्येवं राजनारायणोऽभ्यधात्।"

× × ×

"ऊर्ध्वायतादि-रेखायां गान्धारं विन्यसेत्तथा।
ऊर्ध्वरिखाचतुर्थीया लिखित्तस्यां च मध्यमम् ॥
पतितायां द्वितीयायां पञ्चभ्यां चैव दक्षिणे।
धैवतं पंचमं चेति क्रमेण विनिवेशयेत् ॥
गान्धार-मध्यमाविद्ध-रेखा-पुच्छ-द्वये पुनः।
षड्जं-चैव निषादं विन्यसेत्क्रमशो क्रमशो बुधः ॥"[7]

इससे यह प्रतीत होता है कि 'संगीत मकरन्द' की मूल प्रति सम्भवतया नान्यदेव के पास उपलब्ध थी। 'संगीतमकरन्द' के गान्धार ग्राम से नान्यदेव का गान्धार ग्राम साम्य रखता है-

"यदाधस्त्रिश्रुतिः षड्जे मध्यमे तु चतुश्रुतिः।
रिमयोः श्रुतिरेकैका गान्धारस्य समाश्रया ॥
पंचमश्रुतिरेका च निषादश्रुतिसंश्रया।
गान्धारग्राममाचष्टे तपा तं नारदोऽब्रवीत् ॥
प्रवर्तकः स्वर्गलोके ग्रामोऽसौ न महीतले।"[8]

अर्थात् जब सामान्यतया षडज और मध्यम की चार-चार श्रुतियाँ तथा धैवत की तीन श्रुतियाँ निर्धारित हैं तो यहाँ (गान्धार ग्राम में) ग्रन्थकार ने ऋषभ और मध्यम एक-एक श्रुति लेकर उन्हें गान्धार में सम्मिलित किया है जिससे षड्जग्रामिक त्रिश्रुतिक ऋषभ द्विश्रुतिक हो जाता है और षड्जगामिक मध्यमत्रिश्रुतिक बन जाता है। ऋषभ और मध्यम की एक-एक श्रुति गान्धार में मिल जाने से गान्धार चतुःश्रुतिक हो जाता है। आगे निषाद पंचम की एक श्रुति लेता है (यहाँ कुछ संशय की स्थिति उत्पन्न होती है, यहाँ षड्ज की स्थिति स्पष्ट नहीं है जो 'ग' ग्राम में मात्र त्रिश्रुतिक है। श्लोक का अन्तिम भाग भी अपूर्ण दिखता है। 'निषादश्रुति' और 'संश्रया' शब्द के बीच कुछ शब्दों का लोप अवश्य है) परन्तु

Scanned with OKEN Scanner

इस संशय का आगे तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' में समाधान किया है (यहाँ भी यह प्रतीत होता है कि 'संगीत मकरन्द' की मूल प्रति शारंगदेव को भी उपलब्ध थी क्योंकि उपर्युक्त 'संगीतमकरन्द' में वर्णित गान्धार ग्राम के अधिकांश रूप वही हैं, मात्र उक्त असम्बद्धता को शारंगदेव ने स्पष्ट किया है–

"रिमयोः श्रुतिमेकैकं गान्धारश्चेत्समाश्रितः।
पश्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं श्रितः॥
गान्धारग्रामभचष्ट तदा तं नारदो मुनिः।
प्रवर्तते स्वर्गलोक ग्रामोऽसौ न महीतले॥"

यहाँ शारंगदेव के अनुसार धैवत पंचम की एक श्रुति लेता है और धैवत की एक श्रुति निषाद लेता है, पुनः निषाद एक श्रुति षड्ज की भी लेता है अर्थात् गान्धार ग्राम में पंचम त्रिश्रुतिक, धैवत त्रिश्रुतिक, निषाद चतुश्रुतिक और षड्ज त्रिश्रुतिक बन जाता हैं।

अब, यहाँ नान्यदेव के तीनों ग्राम इस प्रकार स्पष्ट होते हैं–

श्रुति सं.	*षड्जग्रामिक स्वर*	*मध्यमग्रामिक स्वर*	*गान्धारग्रामिक स्वर*
1	निषाद		
2			
3			
4	षड्ज	षड्ज	षड्ज
5			
6	ऋषभ		
7	ऋषभ	ऋषभ	
8			
9	गान्धार	गान्धार	
10	गान्धार		
11			
12			
13	मध्यम	मध्यम	मध्यम
14			
15			
16	पंचम	पंचम	
17	पंचम		
18			
19	धैवत		
20	धैवत	धैवत	
21			
22	निषाद	निषाद	

नान्यदेव ने तीनों ग्रामों को स्वीकार करते हुए उनकी मूर्च्छनाओं को भी वर्णित किया है। उन्होंने गान्धारग्राम जन्य छब्बीस रागों का भी उल्लेख किया है जो विशेष महत्वपूर्व है।

नान्यदेव ने बिल्कुल भिन्न एवं व्यावहारिक रूप में ग्रामों को परिभाषित किया है। उनके अनुसार, श्रुतियों की संख्या में न्यूनता एवं आधिक्य के द्वारा स्वरों के स्थानान्तरण पर ही ग्राम निर्भर है।

"एषां मध्ये श्रुत्युत्कर्षापकर्षवान् स्वरविशेष।
प्रधानभूतस्वरोपचितो ग्रामः इत्युच्यते॥"[10]

तीनों ग्रामों को वैदिक स्वरों–उदात्त, अनुदात्त और स्वरित–से संबंध बताया है। जो वैदिक काल में गान्धार ग्राम की उपस्थिति को प्रमाणित करता है-

"षड्जग्राम प्रसन्नादिरनुदात्त प्रधानकः।
मध्यमः स्वरितादिश्च स्यादुदात्त अनुदात्तवान्॥
उदात्तादिस्तु गान्धार ग्रामः सप्ति (?) रिहोच्यते।
एवं स्वरं त्रयकृता ग्राम त्रय भेदा भवेयुः॥"[11]

अर्थात्

षड्ज ग्राम–अनुदात्त
मध्यम ग्राम–स्वरित
गान्धार ग्राम–उदात्त

सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि नान्यदेव ने ही ग्रामों की संज्ञा षड्ज, गान्धार और मध्यम स्वर संज्ञाधारित होने का कारण भी बताया है क्योंकि यदि षड्ज और मध्यम ग्राम इन दोनों स्वरों के चतुःश्रुतिक होने के कारण हैं तो तीसरा ग्राम पंचम ग्राम भी हो सकता था, गान्धार ग्राम क्यों? (यद्यपि कुछ ग्रन्थकारों ने गान्धार ग्राम को 'पंचम ग्राम' भी कहा है) नान्यदेव ने कहा है कि–

"तर्हि गान्धारस्य द्विश्रुते कथं ग्रामत्वं? सत्यम्।
गान्धारः षड्जग्रामे मध्यमग्रामे च द्विश्रुतिः।
स्वरग्रामे तु चतुःश्रुतिरेव॥"[12]

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात् षड्ज और मध्यम ग्राम में गान्धार द्विश्रुतिक अवश्य है पर स्वनामधन्य ग्राम (गान्धार ग्राम) में चतुःश्रुति ही है।

नान्यदेवोक्त तीनों ग्राम आरोहात्मक क्रम में हैं, यथा–

षड्जग्राम–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम धैवत, निषाद।

मध्यम ग्राम–मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद, षड्ज, ऋषभ, गान्धार।

गान्धार ग्राम–गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद, षड्ज, ऋषभ।

पुराणों (वायु, मार्केण्डेय और अग्नि) में भी तीन ग्रामों का उल्लेख है।

नान्यदेव ने अपने ग्रन्थ में दो स्थानों पर गान्धार ग्राम को 'गान्धार पूर्वक' संज्ञित किया है-

"गन्धर्वै गीयते स्वर्गे ग्रामो गान्धारपूर्वकः
अतितार अतिमन्द्रत्वान्नात्र गायन्ति मानवाः ॥" [13]

संदर्भ सूची

1. मतंग, बृहद्देशी, देशी प्रकरण, अनुच्छेद, 30
2. वही, अनुच्छेद-31, श्लोक–85-88
3. भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय–अट्ठाइस, श्लोक-23 के बाद गद्यांश
4. नारद, नारदीय शिक्षा, प्रथम प्रपाठक, द्वितीय कण्डिका, श्लोक-4
5. नान्यदेव, भरतभाष्यम्, खण्ड-1, पृ0 72
6. वही, पृ0 76, श्लोक-24.
7. वही, स्वरमण्डलप्रकरणम्, पृ0 86, श्लोक 67-69.
8. नारद, संगीत मकरन्द, पृ0 5-6, श्लोक 54-56
9. शारंगदेव, संगीतरत्नाकर, प्रथमअध्याय, चतुर्थप्रकरण, श्लोक 4-5
10. नान्यदेव, भरतभाष्यम्, पृ. 72, श्लोक 35.
11. वही, श्लोक 37-38.
12. वही, पृ. 75, श्लोक-5
13. वही, पृ. 76, श्लोक-24

Scanned with OKEN Scanner

Estd.–1971-72

Ph. : 222507 (O)
226089 (R)

J.M.D.P.L MAHILA COLLEGE

MADHUBANI-847211
(A Constituent Unit of L.N.M.U. Darbhanga)

Ref. No.–

Date : ... ...



Dr. Meena Prasad
Principal,
JMDPL Mahila College
Madhubani.
Mob. 9430999010
E-mail – meena.prasad15@gmail.com

MESSAGE

I am very glad to know that the P.G. department of Music and Dramatics has established 'Mithilanchal Sangeet Parisad' and is publishing its Annual Music Journal.

Music as a form of art is something very essential in this worldly life which leads to entertainment, excitement and relaxation, and gives soothing effect to mankind. Hence the publication of this Journal will lead to encouragement, enrichment and promotion of higher education and finally betterment of society.

I, on behalf of JMDPL Mahila College, Madhubani extend my sincere greetings to the members of PG Department of Music & Dramatics and wish grand success of its Annual Publication.

- A CONSTITUENT UNIT OF LNMU, DARBHANGA
- IMPARTS TEACHING UPTO DEGREE (HONS.) STANDARD
- SINGLE WOMEN'S COLLEGE OF THE DISTRICT
- WELL MAINTAINED COMPUTER LAB
- SPORTS FACILITY AVAILABLE
- RICH LIBRARY & LABORATORY FACILITIES

22/8/09

(Dr. Meena Prasad)
Principal

To,
Dr.P. Narain
H.O.D.
PG Deptt of Music
LNMU, Kamesharnagar,
Darbhanga.

Scanned with OKEN Scanner

आधारभूत तकनीकी शब्द ''कायदा'' तबला वादन के संदर्भ में

डॉ वेणु वनिता*

प्रत्येक कार्य करने की एक विधि होती है परंतु उस कार्य को करने की प्रविधि ही 'तकनीक' है। प्रविधि अर्थात कार्य करने की विशेष (नियमबद्ध) क्रियात्मक परिभाषित विधि प्रविधि में प्रत्येक चरण नियमबद्ध रूप से बिना किसी परिवर्तन के संपन्न करना होता है।

कोई भी विचार मूर्त रूप से हमारे समक्ष तभी प्रस्तुत हो पाता है जब कार्य करने की क्रियात्मक प्रविधि को अपनाया जाय। वैसे तो प्रत्येक विषय या क्षेत्र में अपनी-अपनी तकनीक एवं तकनीकी शब्दों का महत्व अक्षुण्ण है परंतु जब हम ललित कलाओं पर ध्यान केंद्रित करे तो यह और महत्वपूर्ण हो जाता है। ललित कलाओं का भी अपना एक विज्ञान है एक तकनीक है।

सौंदर्य निर्मित एवं आंतरिक कला में सौंदर्य प्रमुख होता है, भावना की अभिव्यक्ति कला का उद्देश्य और इसकी आत्मा होती है। कला चाहे कोई भी हो उसमें सौंदर्य तभी उत्पन्न होता है जब कोई नियमित एवं तकनीकी रूप में प्रस्तुत किया जाता है अर्थात कलाकार जब कला का प्रस्तुतीकरण उचित तरीके से करता है तभी कला में अद्भुत सौंदर्य प्रस्फुरित होता है। प्रत्येक कला को प्रदर्शित करने के अपने कुछ विशिष्ट नियम एवं तत्त्व होते हैं जिनके योग से उस कला की तकनीक का निर्माण होता है। जब कला में निहित तत्वों को समन्वयात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है तभी उसमें एक आकर्षण उत्पन्न होता है जो मस्तिष्क को अविभूत कर आनंद की अनुभूति प्रदान करता है। कला का प्रस्तुतीकरण व्यवस्थित हो इस हेतु कला की तकनीक को आत्मसात करने के साथ-साथ उससे जुड़े सेतु रूप तकनीकी शब्दों (Technical terms) से पृथक नहीं हो सकते।

शब्द और नाद की सृष्टि से उत्पन्न इस ब्रह्माण्ड में जो तत्व संपूर्ण जड़ चेतन विश्व को समानभाव से विश्व को एक सूत्र को बांधता है वह 'संगीत' है। संगीत के दो आधार स्तम्भ हैं स्वर एवं लय। लय संगीत को ताल के माध्यम से स्थायी, सुगम, अनुभूति गम एवं लालित्य से परिपूर्ण बना देती है। ताल को प्रदर्शित करने के माध्यम हैं अवनद्ध वाद्य।

अवनद्ध वाद्य के अंतर्गत आने वाला सर्वोपरि तालवाद्य 'तबला आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रतिष्ठित, प्रचलित और लोकप्रिय वाद्य है यह संगीत कला के विभिन्न विधाओं में धुरी के रूप में कार्य कर रहा है। तबला वाद्य का प्रमुख कार्य विविध ध्वनि युक्त बोलों के सम्प्रयोग से ताल और लय की अभिव्यक्ति करते हुये संगत करना है। इस वाद्य का प्रयोग चाहे किसी भी रूप में हो वाद्य वादन विधि ही इसका प्राणरूप है। इसको सुव्यवस्थित आकृति प्रदान कर सुसज्जित करने व रंग भरने में स्वर माधुर्य हाथ का वजन लय पक्ष स्पष्टता साहित्य विविध रचनायें इत्यादि अनेकानेक क्रिया प्रधान तकनीकी तत्व है। जिनमें सर्वाधिक विकसित वादन सामग्री के साथ तबला वाद्य के स्वतंत्र वादन का भी अपना एक विस्तृत क्षेत्र विभिन्न घरानों की परम्पराओं के साथ उजागर हुआ है।

*बरेली कालेज बरेली

Scanned with OKEN Scanner

तबला वादन के दो प्रमुख भेद–

1. स्वतंत्र वादन 2. साथ संगत

स्वतंत्र वादन के अंतर्गत तबला वाद्य में विभिन्न वादन प्रकारों का प्रदर्शन किया जाता है यथा-उठान, पेशकार, कायदा, रेला, टुकड़े तिहाईयां आदि (इसके अतिरिक्त तबला वादकों ने अपनी रचना शक्ति के आधार पर गत तिपल्ली, चौपल्ली, कमाली वादन के क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है)।

तबला वादन के क्षेत्र में समस्त वादन विभिन्न वर्णों के उचित निकास एवं उपयुक्त प्रयोग पर निर्भर करता है जिस प्रकार वर्ण से शब्द और शब्द से वाक्य का निर्माण होता है उसी प्रकार तबले में वर्णों से छोटे-छोटे गोल समूह की सहायता से जब हम ताल बद्ध, छंद बद्ध रचना तैयार करते हैं तो उसको हम वादन प्रकार की संज्ञा देते हैं। संपूर्ण स्वतंत्र तबला वादन के यह प्रकार मानव शरीर के आंतरिक अंग हृदय, रीढ़ की हड्डी के समान है।

यदि तबला वाद्य के मौलिक स्वरूप के आधार पर निर्मित वादन प्रकारों की चर्चा करें तो कायदा, पेशकार, गत जैसे वादन प्रकारों को इस श्रेणी में वर्गीकृत कर सकते हैं। उसमें 'कायदा' एक मुख्य तकनीकी तत्व है। यह एक विस्तारक्षम रचना है जिसमें मूल बंदिश का विस्तार किया जाना संभव और आवश्यक होता है। इस वर्ग की रचनाओं में भरी और खाली के वर्णो का एक निश्चित क्रम दिखाई पड़ता है जिसके कारण रचना को दुहराया जा सकता है।

स्वंतत्र वादन के अंतर्गत 'कायदा' अत्यंत महत्वपूर्ण प्रत्यय है। कायदा एक वृहद और व्यापक शब्द है जिसका अर्थ नियम, क्रम, विधि रीति, धन, व्यवस्था, तरीका आदि है। व्यावहारिक दृष्टि से 'कायदा' शब्द के उपरोक्त अर्थों की हमारे जीवन में प्रत्येक पहलू में महत्वपूर्ण भूमिका है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समस्त प्रक्रियायें व्यवस्थित ढंग से संचालित होती हैं यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि 'विज्ञान और कायदा' शब्द एक दूसरे के समानार्थक हैं। जीवन के प्रत्येक कार्य नियमबद्ध, क्रमबद्ध, विधि विधान से तथा व्यवस्थित ढंग से परिलक्षित होते हैं। किसी भी वाद्य किसी भी कला और किसी भी विषय का ज्ञाता बनने अथवा उसका अध्ययन करने के लिये यदि हम तत्पर होते हैं तो सर्वप्रथम उसका तरीका समझने की चेष्टा करते हैं ताकि सरलता से मर्म तक पहुंचा जांय। बिना तरीका समझे किसी वस्तु का अध्ययन या अभ्यास करेगें तो उसमें अधिक समय की आवश्यकता है, अतः प्रतिभावान कलाकारों में तबला सीखने के लिये उसका तरीका अथवा 'कायदा' प्रचलित किया जिस प्रकार गायन सीखने से पूर्व अलंकारों का अभ्यास करना पड़ता है ठीक उसी प्रकार तबला सीखने से पूर्व कायदों का जिन्हें दूसरे शब्दों में तबला अलंकार कह सकते हैं का अभ्यास आवश्यक होता है। 'कायदों का अभ्यास कर लेने पर तबला वाद्य पर हाथ सिद्ध हो जाता है और वादक किसी भी ताल व किसी भी लय का सुगमतापूर्वक प्रदर्शन कर सकता है। 'कायदे' प्रारम्भिक रियाज और हाथ को तैयार करने तथा विस्तारूप में वादक को सृजनात्मक क्षमता बढ़ाने के लिये निर्मित किये गये हैं।

कायदा की रचना प्रक्रिया एवं विशेषतायें

कायदा की मूल रचना बनाते समय यह संकेत है कि उसमें कम से कम शब्दों का प्रयोग हो। कायदे की रचना इस प्रकार की जाती है कि जिससे विशेष शब्दों की पुनरावृत्ति करना बहुत सुलभ होता है, पुनरावृत्ति के प्रयोग में 'कायदे' का प्रत्येक एक नया पलटा मानों एक प्रकार का नवरूप धारण किया हुआ मूल कायदा ही हो सकता है।

मानक हिन्दी कोष के अनुसार–कायदा शब्द का अर्थ–कोई काम करने का अच्छा और व्यवस्थित या शिष्ट सम्मत ढंग, प्रकार प्रणाली या रीति सलीका, क्रम, करीना, चाल तथा नियम, विधान, विधि। सामान्य अर्थों में कायदा शब्द नियम, रीति, ढंग, व्यवस्था, क्रम, विधि, विधान और तरीका आदि रूपों में प्रयुक्त हुआ है।

तबला वादन के क्षेत्र में 'कायदा' शब्द फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'कैद' या 'प्रतिबंध' है। कुछ विद्वान 'कायदा' शब्द की व्युत्पत्ति उर्दू तथा अरबी भाषा से भी मानते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ रीति ढंग, तरीका, बंधन तथा अनुरोध होता है। कायदे को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं–

कायदा सुनियोजित एवं सुनिश्चित व्यंजन प्रधान

Scanned with OKEN Scanner

शब्द या शब्द समूह और उनके पूरक सहायक स्वर मध्य अंतिम शब्दों की बनी हुयी विस्तारक्षम, खंडबद्ध खाली भरी युक्त और तालाकार कलापूर्ण ऐसी रचना है जिसकी प्रस्तुति मध्य तथा द्रुत लय में होती है।

सरल रूप में इस प्रकार समझ सकते हैं कि बोलों का वह समूह जिसकी रचना ताल के अंगों की रक्षा करते हुये ताल को दो भागों में विभाजित कर दें और जिस रचना में एक प्रकार के बोलों का प्रयोग करते हुये उसका क्रमबद्ध विस्तार या प्रस्तार किया जाये उसे ही कायदा कहा जाता है।

कायदे की निम्न विशेषतायें हो सकती हैं-

1. कायदे की रचना में प्रयुक्त अक्षरों के अतिरिक्त अन्य किसी अक्षर का प्रयोग कायदे का विस्तार करते समय वर्जित होता है।
2. प्रत्येक कायदे में दो भाग होते हैं। पहला भरी और दूसरा खाली का। ये दोनों भाग के विभागों के अनुसार होते हैं। पलटे बजाते समय भरी के हिस्से में जो कुछ बजाया जाता है ठीक वही खाली के हिस्से में भी बजाना होता है। अक्षक का प्रयोग कायदे का विस्तार करते समय वर्जित होता है।
3. प्रत्येक कायदे में दो भाग होते हैं पहला भरी और दूसरा खाली का, ये दोनों भाग ताल के विभागों के अनुसार होते हैं। पलटे बजाते समय भरी के हिस्से में जो कुछ बजाया जाता है ठीक वही खाली के हिस्से में भी बजाना होता है।
4. कायदा सामान्य रूप से ठाह, दोगुन और चौगुन में बजाया जाता है। और अंतिम लय में उसका विस्तार कियाजाता है। परंतु जिन तवला वादकों को लय और लयकारी पर विशेष प्रभुत्व होता है, वे कायदे में लय के विभिन्न दर्जे बनाकर कायदा का प्रारम्भिक विस्तार करते हैं।
5. किसी भी कायदे का प्रारम्भ और अंत चाँटी अथवा लय पर वजाये जाने वाला वर्ण होता है जिन्हें स्वर्ण वर्ण कहा जाता है।
6. जिस प्रकार गायन में गला तैयार करने के लिये और स्वर वाद्य में हाथ तैयार करने के अलकारों का अभ्यास करना पड़ता है उसी प्रकार तबला वादन में हाथ की तैयारी में कायदों का अभ्यास आवश्यक है।
7. कायदा प्रायः एक आवर्तन का होता है परंतु कुछ कायदे दो आवर्तन के भी मिलते हैं।
8. शिक्षार्थियों को आरम्भकाल में कायदा ही सिखाया जाता है जिससे शुद्ध और स्पष्ट बोल बज सकें।

कायदे की समाप्ति तिहाई से करने की प्रथा है। पुरानी परम्परा के कलाकार एक अत्यंत आसान तिहाई लेकर कायदे का प्रस्तुतीकरण पूरा कर दिया करते थे किंतु आज विविध आकारों और विरामों की तिहाई लेकर कायदा समाप्त करने की प्रथा लोकप्रिय बनती जा रही है।

कायदा का अभ्यास और उसका कलात्मक प्रस्तुतीकरण सितार, सरोद की तबले के साथ संगत में भी प्रभावात्मक ढंग से उपयोग में लाया जाता है।

कायदे के अंग

कायदे के मुख्यतः चार अंग होते हैं अर्थात किसी कायदे का विस्तार करते समय जिन नियमों का पालन किया जाता है उन्हें ही कायदे के अंग कहते हैं ये प्रमुख चार अंग निम्नांकित हैं-

1. मुख, 2. दोहरा, 3. विस्तार, 4. तिहाई

1. मुख—कायदा का विस्तार करने से पूर्व जिस ढंग से कायदे की मुख्य रचना अथवा बंदिश को प्रस्तुत किया जाता है उसे मुख कहते हैं यह कायदे का प्रथम भाग होता है।

2. दोहरा—निश्चित सूत्र से बंधे हुये कायदे के पहले पलटे को दोहरा अथवा डोरा कहते हैं।

3. विस्तार—कायदे का विभिन्न पलटों द्वारा विस्तार करना इस भाग के अंतर्गत आता है। सर्वप्रथम कायदे के प्रारम्भ के बोलों जैसे-धा, धतिर जैसे बोलों द्वारा पलटे बनाये जा सकते हैं। इसके पश्चात तिट,

Scanned with OKEN Scanner

धागे, धागेधिन, धिनगिन आदि बोलों के मध्य अवग्रह प्रयुक्त कर कुछ बोलों पर दम देकर सूझबूझ द्वारा बजाये जायें।

कायदा जैसे विस्तारित वादन प्रकार को पूर्णता पलटों द्वारा ही प्राप्त होती है। पलटे बनाने से कल्पना शक्ति का विकास लय-बांट का ज्ञान एवं हाथों की तैयारी आती है।

4. तिहाई—कायदा का अंतिम अंग अथवा चरण तिहाई होता है, तिहाई से तात्पर्य वह बोल समूह को जिसको 'धा' सहित तीन बार बजाया जाये, तथा जिसका अंतिम 'धा' सम पर आये तिहाई कहलाता है। अतः कायदे का अंत कायदे में प्रस्तुत वर्णों के द्वारा निर्मित तिहाई से किया जाता है।

विभिन्न घरानों के कायदे

तबले के मुख्य छः घराने हैं दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फरूर्खाबाद, बनारस एवं पंजाब। यह अपनी पृथक वादन शैलियों द्वारा पहचाने जाते हैं। वादनशैली को ही बाज की संज्ञा दी गयी है। प्रत्येक घराने की वादनशैली में हाथ का रखाव, वर्णों का निकास एवं चयन भिन्न हो जाता है। उसी के अनुरूप विभिन्न घरानों के विभिन्न कायदे प्रचार में हैं जो उस घराने की वादनशैली गत विशेषताओं को उजागर करते हैं— उदाहरण

दिल्ली घराना — कायदा तीनताल

धाति टधा तिट धाधा — तिट धागे तिन किन
+ 2
ताति टता तिट ताता — तिट धागे धिन गिन
0 3

अजराड़ा घराना

धिंऽऽधागेन धाऽऽधागेन धातिरकिटधीकिट धिनतिनकिन
+
धाऽधाऽधाऽ धिनधाधिन धातिरकिटधीकिट धिनतिनकिन
2
धिनकतिंऽन्न तागेतिरकिट तागेतिटतागे त्रकतिनकिन
0
धाऽधाऽधाऽ धिनधाधिन धातिरकिटधीकिट धिनतिनकिन
3

लखनऊ घराना

धाऽतिट धागेत्रक धिनगिन धागेतिट
+
धागेनधा तिटधिट धागेत्रक तिनकिन
2

पंजाब घराना

धातिरकिटतक तिरकिटधातिर किटतकतिरकिट धिनगिन
+
धातीधागे धिनगिन धातीधागे तिनकिन
2

इसी प्रकार सभी घरानों के कायदे अपने निकास और गति सौंदर्य आदि विशेषताओं के साथ प्रचार में हैं।

विभिन्न जातियों के कायदे

जाति ताल की अंतर्निहित गति है। यह प्राचीन काल शास्त्र का एक प्रमुख सैद्धान्तिक आधार है। दक्षिण भारत में प्रयुक्त जाति उत्तर भारत में लय प्रकार के रूप में प्रचलित हैं। तिस्र, चतस्र, खण्ड, मिश्र एवं संकीर्ण इन पांच जातियों के क्रमशः 3, 4, 5, 7 एवं 9 मात्रा काल के अनुरूप ही विभिन्न कायदे प्रचार में हैं।

तिस्र जाति का कायदा

धाऽधा डनग तिरकि टतक
+
धाऽधि डनग दिंगति तकिन
2

चतस्र जाति का कायदा

धागेतिट धागेतिरकिट धिनगिन धागेतिट
+
धागेनधा तिरकिटधिट धागेतिरकिट तिनकिन
2

इसी प्रकार मिश्र में 7 एवं खण्ड में 5 मात्रा संख्याओं में निबद्ध कायदे भी मिलते हैं। परंतु

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त तिस्र और चतस्र जाति के कायदे सामान्य रूप से व्यवहार में प्रयोग किये जाते हैं।

तबला वादन के प्रस्तुतिकरण में मूलभूत घटक गढ़न, भाषा तथा निकास एवं रीति है। कायदा की रचना प्रक्रिया में भी इनका ध्यान रखा जाता है। कायदा में उस्तादों और पंडितों ने विविध प्रकार की जितनी असली रचनायें बनाना संभव था उतनी बनायी अर्थात गढ़न किया। तबले में जो अक्षर व शब्द बजते हैं उनकी सभी संभाव्य विस्तारक्षम रचनायें बांधी जा चुकी हैं। तबले की भाषा विशेषता चतस्र एवं तिस्र जाति नियमित एवं विकसित हुयीं हैं। तबले पर विविध स्थानों पर अलग-अलग उंगलियों से आघात करके जिन अक्षरों का निर्माण करना संभव था वे सब बन चुके हैं और उनके अनुरूप विभिन्न कायदे भी। निकास के कौशल से चार परिणाम साध्य किये जा सकते हैं। 1. नांद का छोटा बड़ापन 2. उसकी उच्च-नीचता 3. उसकी जाति और 4. वैचारिक विविधता और नवीनता। निकास के दृष्टिकोण से जो अलग-अलग पद्धतियां निर्माण हुयी हैं वे हैं शैली। अपार कल्पना शक्ति रखने वाले पुराने उस्तादों ने इसके अनुरूप तमाम कायदों की रचना की हैं और आज भी हो रही हैं।

कायदा को सार रूप में इस प्रकार से समझ सकते हैं-

कायदा अरबी भाषा के शब्द कैद से बना है इसका शाब्दिक अर्थ हैं बंधन या अवरोध। अतः कुछ निश्चत नियमों के बंधन में रहना ही कायदे से रहना है। यह तबला वादन की विशेष वादन सामग्री है। तबले की शिक्षा कायदे से ही शुरू होती है और स्वतंत्र वादन में इसका खूब प्रयोग होता है। कायदे का प्रस्तुतीकरण एकल तबला वादन का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग होता है। इसके लक्षण व विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार समझ सकते हैं–

1. तबले पर कायदा बजाया जाता है अन्य किसी लय तालवाद्य पर नहीं।
2. इसकी रचना केवल उन्हीं तालों में होती है जिनमें स्वतंत्र वादन किया जाता है जैसे–तीन ताल झपताल, रूपक, आड़ाचारताल आदि।
3. कायदे की रचना का विशेष कैद है कि ताल का स्वरूप और छंद उसमें स्पष्ट दिखता रहे।
4. कायदा दो बराबर के भागों में विभक्त होता है पहला भाग भरी का और दूसरा भाग खाली का होता है।
5. कायदे की रचना ऐसे बोलो से की जाती है कि उसका पलटा या विस्तार किया जा सके।
6. कायदा बजाने के पश्चात पलटा किया जाता है और पहले बराबर की लय में और फिर क्षमतानुसार दुगुन चौगुन आदि लयों में बजाया जाता है।
7. इसका समापन सदा उसके सर्वोच्च लय में और कायदे के बोलों से ही निर्मित तिहाई बजाकर किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर तथा दक्षिण भारतीय ताल पद्धति (लक्षण तथा लक्ष्यगत दृष्टि)

विवेक कुमार जैन

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक हर युग में ताल ही संगीत को आधार प्रदान करता रहा है। यह कार्य पहले घनवाद्यों द्वारा किया जाता था बाद में इसका स्थान अवनद्ध वाद्यों ने ले लिया। ताल के इसी सार्वभौमिक महत्व को स्पष्ट करते हुए आचार्य शारंग देव संगीत रत्नाकर के पांचवे अध्याय तालाध्याय में लिखते हैं-

तालस्तलप्रतिष्ठायमिति धातोर्घञि स्मतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम ॥2 ॥[1]

16वीं शताब्दी के अंत तक सम्पूर्ण भारत में एक ही ताल पद्धति प्रचलित थी परन्तु 17वीं शताब्दी के प्रथम चरण में तालों के स्वरूप में एक बड़ा परिवर्तन आया जिसने उत्तर से भिन्न दक्षिण भारतीय ताल पद्धति को जन्म दिया। इसका सर्वप्रथम निरूपण 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' तथा 'संगीत पारिजात' ग्रन्थ में प्राप्त होता है। चतुर्दण्डी प्रकाशिका में 8 तालों की चर्चा प्राप्त होती है—झोंपट, ध्रुव, मढ्य, रूपक, झम्पा, त्रिपुट, अठताल और एकताल।[2] इसमें झोपट को छोड़कर शेष सात ताल आज भी कर्नाटक संगीत में प्रचलित है और इनका स्वरूप और लक्षण भी लगभग वही है जो चतुर्दण्डी प्रकाशिका में प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ संगीत परिजात है इसमें झोंपट को छोड़कर शेष सप्त सूत्रादि तालों का ही प्रयोग हुआ है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों में कहीं-कहीं स्वरूप भेद अवश्य है।

इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त विरूपाक्षकृत 'तालचन्द्रिका' में भी ध्रुवादि 7 तालों का निरूपण है।[4] इन्होंने तालों की पाँच जातियाँ बताई हैं और जातियों के अनुसार तालों के लक्षण दिए हैं तथा किस ताल का प्रयोग किस जाति में होता है इसका भी उल्लेख किया है। किन्तु यदि वर्तमान लक्ष्यगत दृष्टि से विचार करें तो तालों के इन ग्रन्थोक्त लक्षणों तथा वर्तमान प्रयोग में सबसे बड़ा अन्तर हम यह पाते हैं कि आज तालों की पाँच जातियाँ, त्रयस्त्र, चतुरस्त्र, खण्ड, मिश्र संकीर्ण है। इस प्रकार सात ताल और पाँच जाति मिलाकर कुल पैंतीस तालों का समृद्ध स्वरूप आज कर्नाटक ताल पद्धति में है जबकि चतुर्दण्डीप्रकाशिका तथा संगीत परिजात में सूडादि सप्त तालों की चर्चा तो है परन्तु पांच जातियों और उनके अक्षरकाल का कोई उल्लेख नहीं है। तालचन्द्रिका ग्रन्थ में पाँच जातियाँ और उन पाँच जातियों के अनुसार ताल के लक्षण तो अवश्य दिए हुए हैं परन्तु उसमें भी एक प्रमुख अन्तर यह है कि केवल द्रुत और अणुद्रुत का काल क्रमशः 2 और 1 अक्षर निश्चित है शेष सभी लघु, गुरु, प्लुत का काल जाति के अनुसार बदलता रहता है जबकि वर्तमान में केवल लघु का मान जातियों के अनुसार बदलता है तथा शेष इकाइयाँ यथावत रहती हैं। इस प्रकार तालचन्द्रिका में कुछ लक्षण चतुर्दण्डिप्रकाशिका के तथा कुछ लक्षण आधुनिक ताल पद्धति से मिलते-जुलते दिखाई देते हैं अतः इसे चतुर्दण्डिप्रकाशिका और आधुनिक लक्ष्यगत ताल पद्धति के बीच की कड़ी के रूप में समझा जा सकता है।

*शोध छात्र (नेट) संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Scanned with OKEN Scanner

इसके विपरीत उत्तर भारतीय ताल पद्धति में तालों के लिए निश्चित पाटाक्षर अर्थात् 'ठेका' का विधान है। यद्यपि मध्ययुगीन ग्रन्थ संगीतोपनिषत्सारोद्धार में देशी तालों के लक्षणों के साथ पाट भी दिए गए हैं[4] परन्तु उससे ठेके के सन्दर्भ में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। ठेका शब्द आधुनिक ताल पद्धति की ही देन है। आज उत्तर में अलग-अलग तालों को उनके ठेके के माध्यम से ही पहचाना जाता है। यहाँ तक कि संगति करते समय भी तबला वादक ठेके के माध्यम से ही ताल के स्वरूप को स्थापित करता है और कार्यक्रम के अंत तक ठेके की ही पुनरावृत्ति द्वारा संगीत को आधार प्रदान करता है। ध्रुपद धमार में ताल विस्तार करते समय भी पखावज वादक ताल के ठेके को ध्यान में रखते हैं। जबकि दक्षिण में आज भी तालों के लिए ठेके का कोई विधान नहीं है। मृदंगम् वादक गीत के छन्द (गति) का अनुसरण करते हुए अपनी वादन क्षमता के अनुसार ताल में बोलों (पाटाक्षरों) का प्रयोग करते हैं। अतः इसमें वादक की क्षमतानुसार परिवर्तन संभव है। दक्षिण में आज भी अवनद्ध वाद्यों का मुख्य प्रयोजन गीत का उपरंजन करना ही है। ताल प्रदान करने का कार्य गायक वादक स्वयं हस्त क्रियाओं तथा ताली, खाली द्वारा करते हैं। इस प्रकार कर्नाटक संगीत में आज भी प्राचीन भरत वर्णित पुष्कर के नाट्यगत प्रयोग का अनुसरण अवश्य ही हो रहा है। वर्तमान में उत्तर भारतीय संगीत में काल, मान तथा उपरंजन दोनों ही कार्य अवनद्ध वाद्यों द्वारा किया जाने लगा है। इसी प्रकार ताल लक्षण देने के लिए उत्तर में आज द्रुत, अणुद्रुत, लघु, गुरु, प्लुत, सशब्द, निशब्द विद्या आदि के स्थान पर ताल में मात्राओं की कुल संख्या, ताल के विभागों की संख्या, हर विभाग में मात्राओं की संख्या के साथ ताल खाली का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में ताल लक्षण देने के लिए आज भी लघु, द्रुत, अणुद्रुत, विराम आदि प्राचीन अंगों का प्रयोग उनके मूल रूप में ना सही परन्तु किसी न किसी रूप में हो अवश्य रहा है। यद्यपि लय शब्द के मौलिक अर्थ में आज भी कोई परिवर्तन नहीं आया है जिसके अनुसार क्रिया के बाद होने वाली विश्रान्ति लय कही जाती थी। लयों के तीनों नाम और अर्थ आज भी वही है जो प्राचीन काल में थे परन्तु जहाँ तक इनके पारस्परिक संबंध की बात है तो आज उत्तर में तीनों लयों का यह संबंध पूरी तरह से समाप्त हो चुका है जिसके अनुसार क्रमशः एक दूसरे से दुगुनी-दुगुनी विश्रान्ति होने पर लय, द्रुत, मध्य, विलंबित कहलाती थी। हालांकि दक्षिण में त्रिविध लयों का यह संबंध आज भी जीवित है। परन्तु प्रमाण लय की दृष्टि से दोनों जगह एक सी स्थिति है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उत्तर तथा दक्षिण भारतीय ताल पद्धति भारतीय ताल पद्धति की दो धाराओं के रूप में आज हमारे सामने हैं। दोनों ही पद्धतियाँ अपने आप में समृद्ध हैं तथा भारतीय संगीत को आधार प्रदान करने और उसका उपरंजन करने में पूर्णतया सक्षम हैं। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति जहाँ अधिक प्राचीन, शास्त्र सम्बद्ध और सैद्धान्तिक है वहीं उत्तर भारतीय ताल पद्धति अधिक कलात्मक, व्यवहारिक और सुबोध है।

अतः लक्षण तथा लक्ष्यगत दृष्टि से भले ही दोनों पद्धतियाँ एक-दूसरे से भिन्न हो परन्तु प्राण तत्व के रूप में भारतीय संगीत को प्रतिष्ठा प्रदान करने के अपने मूल उद्देश्य की दृष्टि से दोनों एक ही हैं।

संदर्भ

1. डॉ. सुभद्रा चौधरी, शार्ङ्गदेवकृत संगीतरत्नाकर, तृतीय खण्ड, पृ. 2
2. डॉ. सुभद्रा चौधरी, भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान, पृ. 108
3. वही, पृ. 110
4. वही, पृ. 112
5. वही, पृ. 99

Scanned with OKEN Scanner

बिन तबला सब सून

भीमसेन सरल

"गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते॥"
—संगीत रत्नाकर, 1, 21

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं।

संगीत में लय-ताल

स्वर और लय संगीत के दो आधार स्तम्भ हैं। लय समस्त भौतिक पदार्थों व प्राणियों में विद्यमान है। लय का सम्बन्ध सृष्टि के प्रत्येक कण-कण से तो है, किन्तु संगीत से विशेष रूप से है। स्वर संगीत का आधार अवश्य है, किन्तु जिस समय किसी राग का विस्तार किया जाता है, उस समय आलाप, तान, सरगम इत्यादि विभिन्न लयों में ही किये जाते हैं। लय विहीन स्वर-विस्तार को हम पूर्ण कला नहीं कह सकते और ऐसा करने से जन रंजन भी नहीं होता। यदि हम लय विहीन स्वर-विस्तार को संगीत कला मानेंगे तो कोयल की कुहू-कुहू और बुलबुल की मधुर तानों को भी कला में स्थान देना पड़ेगा। जिस प्रकार हम किसी प्राकृतिक दृश्य जैसे—सूर्योदय-सूर्यास्त को चित्रकला नहीं कह सकते, उसी प्रकार कोयल अथवा पपीहे की मधुर पुकार को संगीत कला नहीं कह सकते। स्पष्ट है लय-विहीन स्वर-सौन्दर्य से संगीत कला अधूरी रह जाती है।

संगीत का मुख्य उद्देश्य आनन्द की सृष्टि करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति में ताल बड़ा सहायक होता है जो गीत लय प्रधान होते हैं वे जन-समूह को सरलता से प्रभावित कर लेते हैं। इसीलिए साधारण श्रोता लोक गीत जो कि लय प्रधान होते हैं आदि के साथ ताली देने लग जाती है। किसी भी संगीत कार्यक्रम में लय-ताल की लड़न्त-भिड़न्त सामान्य श्रोता को अधिक आकर्षित करती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भाषा के लिए व्याकरण और कविता के लिए छन्द जितना महत्वपूर्ण है, संगीत के लिए लय-ताल भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

ऐसा माना जाता है कि स्वर ज्ञान के पूर्व ही मानव ने लय-ज्ञान प्राप्त कर लिया था। संगीत में लय एवं ताल का अत्यन्त महत्व होता है। ताल एवं लय-धारणा से संगीत निबद्ध होकर रंजक होता है, उसकी रंजकता स्थायी बनती है, संगीत प्रभावी होता है, संयम से रस निष्पत्ति होती है, भाव एवं रस का आनन्द प्राप्त होता है, सौन्दर्यपूर्ण चलन एवं गतिभेद से संगीत अधिक मनोरंजक होता है। इसी कारण अतिप्राचीन काल से वर्तमान काल तक संगीत के साथ ताल-वाद्य की संगत आवश्यक मानी गयी है।

संगीत में लय निदर्शक वाद्य व परम्परा

संगीत में लय निदर्शन का कार्य प्राचीन काल में घन वाद्यों द्वारा होता था, ठोस होने के कारण घनवाद्यों में ढीलापन, दबाव या खिंचाव नहीं होता और इनकी ध्वनि सदा एक-सी रहती है। अतएव इनमें हनन करते हुए कालखण्ड को प्रत्यक्ष अभिव्यक्त करना आसान होता है। यद्यपि हाथों की क्रियाओं से भी काल विभाजन व लय को प्रत्यक्ष रूप से दिखाया जाता रहा है, परन्तु घन वाद्यों की ध्वनि जितनी गूँजदार, स्पष्ट, जोरदार व चित्ताकर्षक होती है, उतनी

* (यूजीसी-नेट/एसआरएफ), शोधार्थी, वाद्यसंगीत विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Scanned with OKEN Scanner

हाथों की क्रियाओं की नहीं। अतः घन वाद्य पर ताल (ठोके) देने से गायक-वादक और नर्तक सभी को अपनी कला प्रस्तुत करते समय ताल का स्पष्ट ज्ञान बना रहता है। इसीलिए प्राचीन काल से भारतीय संगीत में घन वाद्यों का प्रयोग मुख्यतः काल-मान स्पष्ट करने और ताल संबंधी 'प्रमाद निवृत्ति' अर्थात् 'बेताला न होने देने के लिए' किया जाता रहा है। मुख्यतः ताल के लिए प्रयोग किये जाने के कारण ही प्रधान घन वाद्य को 'ताल' कहा गया है, जो कि कांस्यनिर्मित और वर्तुलाकार होता है।

घन वाद्यों में ध्वनि होते हुए भी पाटों (ध्वन्यानुकृति- मूलक बोलों) की विविधता नहीं होती। अवनद्ध वाद्यों की वादन-क्रिया में हथेली, उँगलियों, पंजा, दण्ड (डंडी) आदि के विभिन्न प्रकार के प्रयोगों तथा मढ़े हुए चर्म पर अलग-अलग जगहों में प्रहार की विभिन्नता के कारण, एक ही स्वर विभिन्न रूपों में ध्वनित होने से विभिन्न पाटाक्षर उत्पन्न होते हैं। अतएव जहाँ घन वाद्य केवल ताल या उसकी गति के नियत रूप को प्रकट करते हैं, वहाँ अवनद्ध वाद्य विविध ध्वनियुक्त पाटों के प्रयोग से लय, यति, ग्रह, प्रस्तार आदि के द्वारा ताल में वैचित्र्य सृष्टि करते हुए संगीत का उपरंजन करते हैं। अतः इन विशेषताओं के कारण अति प्राचीन काल से ही तालवाद्यों के रूप में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग संगीत में होने लगा था। प्रागैतिहासिक तथा वैदिक काल से वर्तमान काल तक विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग लय-ताल साम्य हेतु होता आ रहा है। प्राप्त इतिहास के आधार पर वैदिक काल में भूमिदुन्दुभि व दुन्दुभि जैसे अवनद्ध (चर्माच्छादित) वाद्यों से लय-निदर्शन किया जाता था। भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' व शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर', विभिन्न पुराणों, रामायण, महाभारत, कालिदास की विभिन्न कृतियों इत्यादि में विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख संगीत में लय-निदर्शन हेतु प्राप्त होता है। जैसे—दुन्दुभि, पटह, मर्दल, मृदंग, पुष्कर, पणव, मुरज, झल्लरी, डमरू इत्यादि।

नाट्यशास्त्र में चतुर्विध आतोद्यों में अवनद्ध (चर्माच्छादित) वाद्यों को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है, जो गीत तथा वाद्य के साथ लय एवं ताल प्रदर्शन का कार्य करते हैं।

संगीत में तबले का प्रयोग, परम्परा, महत्व व क्षेत्र

वर्तमान संगीत जगत में अवनद्ध वाद्यों में सर्वाधिक विशिष्ट व महत्वपूर्ण स्थान तबले का है, परन्तु इस वाद्य के साथ दुर्भाग्य यह है कि इसकी उत्पत्ति व संगीत में प्रयोग में लाये जाने की परम्परा कब से शुरू होती है इसका स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक उत्तर भारतीय संगीत में ख्याल तथा ठुमरी गायन शैलियों का उद्भव हो चुका था। उस समय तक ध्रुपद-धमार गायन शैली और उनके साथी वाद्य पखावज का ही अधिक प्रचार था। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। ख्याल एवं ठुमरी जैसी शृंगारिक एवं मधुर गायन शैलियों के लिए पखावज वाद्य उपयुक्त न था। अतः किसी अन्य वाद्य की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और यही आवश्यकता तबले के जन्म और विकास की जननी है।

15वीं शताब्दी के पश्चात् ख्याल के प्रवेश और प्रयोग से तबले की प्रगति भी प्रारंभ हो गयी थी किन्तु आगे दो-सौ वर्षों तक ध्रुपद गायकी एवं पखावज वाद्य के प्राधान्य के कारण तबले को तत्कालीन विद्वान संगीतज्ञों ने पूर्णतः स्वीकारा नहीं था। ऐसा प्रत्येक नवीन प्रयोग के लिए होना स्वाभाविक भी है। सन् 1719 ई. में बादशाह मोहम्मद शाह रंगीले दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुए। उनके दरबार में उच्च कोटि के कवि एवं संगीतकार विराजमान थे। रंगीले का समय संगीत, कला एवं साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी माना जाता है, क्योंकि ध्रुपद-धमार गायकी के स्थान पर ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली जैसी गायन-शैलियाँ तथा वीणा के स्थान पर सितार जैसे नवीन तन्तु वाद्य का प्रचार एवं विकास इसी काल में हुआ है। कथक नृत्य शैली का प्रचार भी इन दिनों बढ़ने लगा। ख्याल तथा ठुमरी, दादरा, टप्पा इत्यादि शृंगार प्रधान गायन शैलियों व सितार जैसे तन्तु वाद्यों की संगत के लिए उस समय प्रचलित पखावज की गम्भीर ध्वनि उपयुक्त न थी। अतएव इन आवश्कताओं की पूर्ति हेतु अभिजात (उच्चांग) संगीत में तबले का प्रवेश हुआ। ख्याल इत्यादि शृंगार

Scanned with OKEN Scanner

प्रधान गायन शैली, सितार जैसे तन्तु वाद्य व कथक नृत्य शैली के साथ-साथ इन्हीं के अनुकूल व अनुरूप तबला भी विकसित होता गया।

ख्याल गायकी का प्रचार 15वीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था, परन्तु 15वीं से 18वीं शताब्दी तक के समयकाल में तबले के विकास के विषय में हम अनभिज्ञ हैं। रंगीले के शासनकाल में ही दिल्ली निवासी उस्ताद सिद्धार खाँ ढाढ़ी नामक एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार ने युग की बदलती हुई रुचि का गहराई से अध्ययन करके, उन दिनों के अभिजात संगोत में प्रवेश कर चुकने वाले एक प्राचीन ताल वाद्य की आकृति एवं रूप सज्जा में कुछ परिवर्तन किये, पखावज एवं समकालीन प्रचलित अवनद्ध वाद्यों की वादन-शैली, बोल-बंदिशों का आधार लेकर उस पर अर्द्ध पाणि एवं चाँटी प्रधान बाज का आविष्कार किया, अंगुलियों के रख-रखाव में परिवर्तन किये तथा उस पर अनेक बोल-बंदिशों की रचना करके उन्हें अपने वंशज एवं शिष्यों को सिखाकर एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। उ. सिद्धार खाँ द्वारा उठाये गये उस क्रांतिकारी कदम ने तबला की ऐसी विकास गाथा व विशाल परम्परा की नींव रखी जो आज संगीत जगत में हर विधा व क्षेत्र में अपनी प्रबल उपस्थिति दर्ज कराते हुए उसके अभिन्न अंग के रूप में अपनी पहचान बना चुका है। तबसे लेकर अब तक तबला के स्वरूप, वादन-शैली, साहित्य, सामर्थ्य में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं, हजारों इसके उच्च कोटि के कलाकार हुए हैं तथा स्थापित प्रमुख 6 घरानों का विकास हुआ है।

परिणामस्वरूप आज के उत्तर भारतीय संगीत में 'तबला' स्वर, मार्जना, प्रहार, पाटाक्षरों व विविध लयकारियों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होने के साथ-साथ अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण विश्व के समस्त अवनद्ध वाद्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

क्षेत्र—वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य की सभी विधाओं व क्षेत्रों में तबला लय-ताल दिग्दर्शन (संगत) हेतु प्रयुक्त होता है। सिर्फ उच्चांग संगीत में ही नहीं वरन्, सुगम संगीत, लोक संगीत, फिल्म संगीत, वाद्य वृन्द, नृत्य नाट्य, नृत्य गान इत्यादि संगीत प्रकारों व शैलियों में तबला प्रमुख संगत वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है। आज शास्त्रीय गायन की विभिन्न शैलियों में तबला संगत प्रयुक्त होता है। जैसे--ख्याल गायन शैली में तबला संगत अनिवार्य रूप से होती है तो ध्रुपद-धमार गायन शैली में भी आज पखावज की अनुपस्थिति में तबला से ही लय-ताल संगत प्रदान की जाती है। यह तबले की अपनी निजी विशेषता है कि वह पखावज के सदृश धीर-गंभीर ध्वनि व पाटाक्षर इत्यादि उत्पन्न करते हुए सफल संगत प्रदान करता है। उपशास्त्रीय गायन शैलियों जैसे ठुमरी, टप्पा, दादरा, कजरी, चैती इत्यादि में भी वर्तमान में तबला प्रचुरता के साथ प्रयुक्त होता है और आज इन सबका एक अभिन्न अंग बन चुका है। आज शायद ही ऐसी कोई उत्तर भारत में प्रचलित गायन शैली हो जहाँ तबला प्रयुक्त न होता हो।

वादन संगीत में भी लय-ताल की संगत तबला ही प्रदान करता है। सितार, सरोद, संतूर, शहनाई, बाँसुरी, वायलिन, सारंगी इत्यादि विभिन्न प्रकार के वाद्यों की संगत हेतु चाहे वह ख्याल अंग का वादन हो या गतकारी अंग का वादन तबला ही प्रयुक्त होता है, अन्य अवनद्ध वाद्य नहीं। हाँ, तबला के साथ-साथ कहीं-कहीं वादन संगीत में रंजकता बढ़ाने के उद्देश्य से पखावज या मृदंगम् का भी प्रयोग होता हुआ दिखलाई पड़ जाता है। फिर भी तबला के अभाव में नहीं। इतना ही नहीं सुरबहार या वीणा जैसे धीर-गम्भीर वाद्यों के साथ भी आजकल तबला प्रयुक्त होने लगा है। विभिन्न प्रकार के पाश्चात्य वाद्यों जैसे—क्लैरियोनेट, विभिन्न इलेक्ट्रानिक वाद्यों इत्यादि के साथ भी तबला प्रयुक्त किया जाता है।

कथक नृत्य शैली तो तबला के ऊपर अत्यधिक मात्रा में आधारित है। कथक के बोल-बंदिशों व तबला के बोल-बंदिशों इत्यादि में साम्य भी है। कारण कि इन दोनों का विकास कहीं न कहीं एक-दूसरे के पूरक रूप में साथ-साथ ही हुआ है। अतः कथक नृत्य बिना तबला के असंभव सा प्रतीत होता है। कथक नृत्य शैली के अलावा अन्य लोक प्रचलित नृत्यों में भी तबले का प्रयोग कर लिया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

संगीत में तबला संगत का क्षेत्र मात्र यहीं तक सीमित नहीं है। वर्तमान में तो इसका क्षेत्र इतना विस्तृत व व्यापक हो चुका है कि न सिर्फ उत्तर भारतीय संगीत वरन् दक्षिण भारतीय संगीत, पाश्चात्य संगीत इत्यादि क्षेत्रों में भी तबला संगत का क्षेत्र सुरक्षित व उपयोगी सा प्रतीत होने लगा है। उ. ज़ाकिर हुसैन जैसे सर्वोच्च शिखर पर विराजमान कलाकारों ने यह साबित भी कर दिया है।

तबला वाद्य की विशेषताएँ

तबले के अन्तर्गत आज इतनी खूबियाँ व विशेषताएँ समाहित हैं कि यह कुछ भी कर सकने में सक्षम है और उसकी इन्ही विशेषताओं के कारण यह संगीत की समस्त विधाओं व क्षेत्रों में अपनी बादशाहत कायम कर चुका है। तबला वाद्य की निम्न विशेषताओं को हम रेखांकित कर सकते हैं।

1. तबला की बनावट ऐसी है कि उसके दो भाग और वे भी ऊर्ध्वमुखी तथा ऊँचाई भी कम होने से यह पखावज की अपेक्षा वादन करने में सुविधाजनक रहता है।

2. पखावज के बायें मुख पर अंगुलियों द्वारा वादन नहीं किया जाता है जिस कारण दायें हाथ की तैयारी के साथ बायें हाथ की हथेली का बायें मुख पर उतनी शीघ्र गति से चलना कठिन हो जाता है। जबकि तबले के दायें तथा बायें-दोनों मुखों पर दायें-बायें दोनों हाथों की अंगुलियों का शीघ्रता से चलना तबले के अधिक उपयोगी होने का कारण बना है।

3. पखावज के किसी भी मुख पर घुमक निकालने की सुविधा नहीं होती है जबकि तबले के बायें मुख पर ढोल के समान घुमक भी निकाली जा सकती है। इस कारण तबला वादन में सुन्दरता बढ़ जाती है।

4. तबला में आंसदार (खुले) तथा बिना आंसदार (बंद) दोनों प्रकार के बोलों का वादन संभव होने से उसके वादन में मिठास उत्पन्न होती है। खुले तथा बंद दोनों प्रकार के बोलों का निकास सरल एवं संभव होने के कारण यह ध्रुपद-धमारादि और युक्त गायन, ख्याल गायन तथा सुगम संगीत साथ संगत करने में सक्षम होता है।

5. तबला ऊर्ध्वमुखी तथा ऊँचाई सीमित होने के कारण इस पर लयकारी व तैयारी के साथ वादन करने में सरलता होती है।

6. वर्तमान में ख्याल-गायन, सुगम-संगीत, वादन संगीत व कथक नर्तन का अधिक प्रचार-प्रसार होने से इनका हमसफर ताल वाद्य तबले का आज अत्यधिक मात्रा में प्रचार-प्रसार हो रहा है।

7. तबला के दायें अंग का भिन्न-भिन्न आकार में होना, जिससे भिन्न-भिन्न स्वरों के दायें उपलब्ध होने से भी तबला संगत के लिए अधिक उपयुक्त हो जाता है।

8. रागों की स्वर विशेषताओं के अनुसार तबला वाद्य निश्चित स्वर मध्यम, पंचम, निषाद और टीप किसी भी स्वर में प्राप्त हो सकता है।

तबले की इन्हीं निजी विशेषताओं के कारण संगीत के लिए आवश्यक दो आधार 'स्वर' व 'ताल' में से ताल निदर्शक के रूप में तबले का प्रयोग आज प्रचुरता से हो रहा है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जहाँ-जहाँ संगीत वहाँ-वहाँ तबला अर्थात् संगीत की कोई भी विधा, शैली या प्रकार हो सब जगह तबला संगत का स्थान, महत्व उपयोगिता व आवश्यकता सुरक्षित सा है। इस संबंध में **प्रो. मुकुन्द नारायण भाले (विभागाध्यक्ष, अवनद्ध वाद्य विभाग, इं, क.सं.वि.वि., खैरागढ़) जी का भी विचार दृष्टव्य है कि "जहाँ तबला बजता है, वहाँ तो बजता ही है, लेकिन वर्तमान में यह (तबला) अपने आपको इतना विकसित व सशक्त कर चुका है कि यह कहीं भी किसी दूसरे अवनद्ध वाद्य का स्थान सहजता से ग्रहण कर लेता है और उसकी कमी भी महसूस नहीं होने देता।"** संगीत का कोई भी क्षेत्र वर्तमान में तबला से अछूता नहीं रह गया है।

इस तथ्य से कोई भी इंकार नहीं कर सकता कि किसी भी कार्यक्रम की सफलता व असफलता में संगत वाद्यों की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ख्याल गायन हो रहा हो या सितार बजाया जा रहा हो या कथक नृत्य की प्रस्तुति दी जा रही हो और इन प्रस्तुतियों में तबला न बजे तो उसका परिणाम निश्चित ही आनंदकारी नहीं होगा और कार्यक्रम बुरी तरह असफल हो जायेगा। कई बार ऐसा देखने

Scanned with OKEN Scanner

में आया है कि तबला के स्थान पर किसी दूसरे अवनद्ध वाद्य जैसे—पखावज, ढोलक इत्यादि द्वारा संगत प्रदान की गयी और वह कार्यक्रम असफल हो गया, वहीं तबला बजने पर पूर्णतः सफल हुआ है। आज का संगीत जगत बिना तबला के अधूरा है। बिना तबला के संगीत प्रस्तुति नामुमकिन-सी प्रतीत होती है अर्थात् **"बिन तबला सब सून"** वाली कहावत वर्तमान में चरितार्थ होती है और निकट भविष्य में दूर-दूर तक तबले का कोई विकल्प भी नहीं दिखलाई पड़ रहा है।

निष्कर्षतः हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध **कवि रहीम जी** के एक लोक प्रसिद्ध दोहा—

"रहिमन पानी राखिये; बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे; मोती मानुष चून॥"

की भाँति तबले के सम्बन्ध में भी निम्न दोहा बिल्कुल सटीक प्रतीत होता है—

"सरलमन 'तबला' राखिये, बिन तबला सब सून।
'तबला' गये न ऊबरे, वादन-गायन-नृत्य॥"

Scanned with OKEN Scanner

राग रागिनी की पद्धति में ध्यान परम्परा का विश्लेषण

डा. मधु शुक्ला*

राग शब्द की व्युत्पति, रंज धातु से धञ् प्रत्यय लगने पर होती है जिसका अर्थ है-'रंगना'। भारतीय कोषों में भी रंज धातु से निष्पन्न रंजन, राग, या रंग शब्द क्रमशः रंगने की क्रिया, वर्ण तथा रंग (विशेषतः लाल रंगों के लिए) प्रयुक्त हुआ। पाणिनि ने रंज राग अर्थात–रंगने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। "मैदिनी कोश" में रंजनों राग जगने, रंजने रक्तचन्दने, अर्थात रंजन शब्द रंग उत्पन्न करने और लाल चन्दन के अर्थ में प्रयुक्त होता है रंज का अर्थ "रंगरेज" जो रंगता है।

रूढ़ अर्थ में भी राग शब्द, क्रोध क्रोधित, अनुराग आदि में प्रयुक्त है। राग शब्द अभिधा शक्ति के द्वारा, रंगना या रंग अर्थ का बोधक है। लक्ष्यार्थ से तन्मयता तथा व्यंग्यार्थ से अलौकिक आनन्द के रूप में स्वीकार किया गया है।

सृष्टि संरचना सिद्धान्त की कल्पना मात्र से ही दो तत्वों की आवश्यकता सिद्ध होती है माया-ब्रह्म, शिव-शक्ति, स्त्री-पुरुष दोनों ही सृष्टि के उत्पत्ति तथा विकास में समान रूप से योगदात्री हैं इस सिद्धान्त का प्रति दर्शन राग-रागिनी वर्गीकरण में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है संगीत दर्पण में उद्धत है–

शिव शक्ति समायोगाद्रागाणां सम्भवो भवेत्।
पंचास्यात् पन्च रागाः स्युः शठस्त गिरिजामुखम्॥

अर्थात शिव-शक्ति के संयोग से रागों की संरचना हुई महादेव जी के पाँच मुखों से पाँच राग और छठवाँ राग पार्वती मुख से निष्पन्न हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से राग-रागिनी पद्धति परम्परा का प्रारम्भिक ग्रन्थ संगीत-मकरन्द को माना जाता है इस परम्परा का संरक्षण संवर्धन मध्यकाल में अधिक होने से इसे मध्यकालीन परम्परा माना गया।

राग के दो रूप हैं नाद मय जो राग का शरीर है तथा भावमय जो शरीर की आत्मा है-

सुस्वर वर्ण विशेष रूप रागस्यबोधक द्वेधा।
नादात्म च देवमयं तत्क्रमर्तो नेकमेकं तु॥

अर्थात राग रूप सुन्दर स्वर वर्णो द्वारा राग को प्रत्यक्ष कर देता है।

ठाकुर जयदेव सिंह ने लिखा है राग के रस रूपी देवता पर शान्तचित होकर आत्मा में समाहित करें फिर राग के स्वरों द्वारा राग का आह्वान करें अब ध्यान मानसिक नहीं रहता वरन् वाचिक जो जाता है तब गायक उस देवता ध्यान तथा आह्वान नादात्मक रूप में करता है।

राग ध्यान परम्परा सगुणोपासना का एक अंग है अखंड, अनन्त, इन्द्रियातीत निर्गुण निराकर ब्रह्म जब साकार बना तभी वह सबको दृष्टिगोचर हुआ इसी प्रकार सुना जाने वाला नाद राग रूप में अवतरित हुआ तो उसके रूप चिन्तन की आवश्यकता हुई

राग के देव-देवी रूप की परिकल्पना 'आगम परम्परा' के साथ ही भरत परम्परा के राग रस सम्बन्ध में बीज रूप से आरोपित मान्य हैं।

संगीत शास्त्र ग्रन्थों में प्राप्त राग ध्यान परम्परा

1. संगीत मकरन्द में पुरुष राग, स्त्री राग, नपुंसक राग विभाजन मिलता है जिसका सम्बन्ध रसों से जोड़ा गया है। प्रत्यक्ष रूप से राग ध्यान की दृष्टि इस ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होती है। किन्तु रस

*प्रवक्ता, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

Scanned with OKEN Scanner

विवेचन के तत्वों से जोड़ने पर राग ध्यान का अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है।

2. पंचमासार संहिता में छः राग 36 रागिनियाँ बतायी गयी हैं तथा राग ध्यान में नायक नायिका स्वरूप को स्वीकार किया गया है देव-देवी रूप में नहीं।

3. संगीत दर्पण में शिवमत, रागाणौ मत का परिचय देते हुए हनुमत मत के अनुसार राग ध्यान की विवेचना है। इस ग्रन्थ में राग तथा जन्य परिवारों का सम्बध ऋतु से जोड़ा गया है—जैसे बसन्त तद्जन्य राग बसन्त ऋतु में, श्री तद्जन्य राग शिशिर ऋतु में। इस मान्यता के पीछे रागों का नादमय रूप तथा उसका प्रभाव प्रधान है।

4. चरवारिंच्छत ग्रन्थ में नारद ने राग को पुरुष तथा स्त्री नाम दिये हैं किन्तु 'ध्यान' को स्पष्ट रूप से विश्लेषित नहीं किया है।

5. राग विवोध में पं. सोमनाथ ने राग के नाद मय तथा देव रूप बताते हुए कहा कि नाद मय रूप अनेक हो सकते हैं किन्तु देवरूप एक ही है। इस ग्रन्थ के चतुर्थ विवके में रागार्णव मतानुसार 51 राग ध्यान दिये गये है।

6. लोचन ने रागतरंगिणी में हनुमत मतानुसार राग रागिणियों के नाम व ध्यान दिये हैं।

7. पं. पुण्डरिक विट्ठल ने अपने ग्रन्थ राग माला में राग नाम तथा ध्यान की विवेचना करने के साथ ही रागों के नादमय रूप को भी स्पष्ट किया है।

8. गणपतिनारायण देवकृत संगीत नारायण में संगीत रत्नमाला, नारद संहिता, संगीत सार, राग विवके के अनुसार 'राग ध्याय' परम्परा को वर्णित किया गया है।

9. सुधा कलश रचित संगीतोपनिषद सारोद्धार में विभिन्न रागो-भाषाओं का ध्यान देव—देवी रूप में वर्णित है।

10. दक्षिणात्य विद्वान शृंगार शेखर ने पुरुष स्त्री राग की चर्चा की है जो 'ध्यान' के अनुरूप ही है।

11. अहोबल ने संगीत पारिजात में हनुमत मत् का प्रतिपादन करते हुए राग ध्यान दिये हैं।

मध्य कालीन भक्त कवियों में तुलसीदास, मीरा, अष्टछाप कवियों में सूरदास, कुंभनदास, कृष्णदास, नन्द दास, गोविन्दाचार्य, गदाधर भट्ट, हितहरिवंश तथा व्यास की रचनाओं में राग-रागिनियों के पार्श्व में राग ध्यान की अवधारणा छिपी है। इसी काल में सूफी पीरों ने भी संगीत कला में योगदान दिया इनके एक-एक पदों में आत्मा—परमात्मा का दर्शन तथा कव्वाली शैली में सूफी सन्तों के शृंगार भाव का दर्शन प्राप्त होता है। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय गीतों में भी शृंगार, शयन, रासलीला आदि के भाव का वैविध्य दिखाई देता है।

इन भक्त कवियों तथा सूफी पीरों तथा शास्त्रीय राग चिन्तन में ध्यान परम्परा अध्यारमनुप्रेरित रही है। स्वर मय नादमय रूप जब गमक स्थाय राग के दस लक्षणों समन्वित होकर मूर्त राग रूप में साकार होता है। अब उसका आधार क्या हो इसमें आंशिक मतभेद भी दिखाई पड़ता है। किन्तु राग रागिनी रूप में ध्यान तो प्राप्त होता ही है। किसी ने राग रूप को देवत्व रूप में स्वीकार किया किसी ने नायक-नायिका रूप में इसकी परिकल्पना की। जैसे—संगीत दर्पण में राग भैरव का ध्यान है'—

गंगाधरः शशिकला तिलकस्त्रि नेत्रः।
सर्प विभूषित तननृगजतिः वासः॥
भास्वटित्रशूल कर एवं नृमुडधारी।
शुभ्राम्बरी जयति भैरव आदि रागः॥

अर्थात् जिसके मस्तिष्क में चन्द्रकला का तिलक है जिसके तीन नेत्र हैं जिसके शरीर पर सर्प विराजमान है। जिसने अपने शरीर पर हस्तिचर्म धारण किया हुआ है जिसके हाथ में त्रिशूल और गले में रूण्ड माला है और ये श्वेत वस्त्र धारण किये है ऐसा आदि भैरव राग है इसमें इसमें भैरव के गंभीर रूद्र रूप को इसके प्रतीकात्मक देवता शिव द्वारा व्यक्त किया गया है।

इसी प्रकार रागिनी के रूप में भैरवी को शिव भार्या रूप में प्रस्तुत किया है।

स्फटिक रचित पीढे रम्यकैलास शृंगे।
विकचकम लपत्रैरर्चयन्ति महेशम्।
करघृतघनवाद्या पीत वर्णायताक्षी।
सुक विभिरियमुक्ता भैरवी भैरव स्त्री॥

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात रमणीय कैलाश पर्वत के शिखर पर स्फटिक मणि के आसन पर बैठकर खिले हुए कमल के फलो से जो महादेव जी का पूजन करती है। जिसके हाथ में मंजीर है जिसका वर्ण पीला हो नेत्र विशाल है ऐसी भैरव की भार्या भैरवी है।

देव रूप के साथ ही राग ध्यान में मानुषी रूप का भी वर्णन प्राप्त होता है–

विनोदयंती दयितं सूकेशी।
सु कंकणा चामर चालनेन॥
कर्णे दधाना सुर वृक्ष पुष्पं।
वरांगनेयं कर्थिता वराटी॥

जिसके बाल अत्यन्त सुशोभित हैं जिसके हाथ में कंगन है जो अपने प्रिय को चमर डोलाकर प्रसन्न करती है जिसने अपने कानों में देव लोक के वृक्ष के पुष्प धारण किये हुए है ऐसी वारांगना वराटी कही गई है।

विविध रसों से युक्त ध्यान प्राप्त होते हैं जिनमें भक्ति, संयोग शृंगार, वियोग शृंगार, करूण, शौर्य, वैराग्य आदि विविध भाव प्राप्त होते हैं। रागों के नाद मय स्वरूप से भावाभिव्यंजना में विभिन्न ग्रन्थकारों के राग ध्यान में साम्य–वैषम्य दोनों ही प्राप्त होता है यहाँ सत्यता यही है कि राग दृष्टि सभी के व्यक्तिगत अनुभव पर ही आधारित है। अपनी कल्पनानुसार राग के दैविक तथा मानुषिक रूप की परिकल्पना आज भी राग चिन्तन तथा प्रयोग में व्याप्त है। हम राग रागिनी कह कर नहीं किन्तु स्त्री पुरुष की दृष्टि से राग ध्यान करते ही हैं यथा भैरवी बागेश्री को स्त्री रूप में तथा भैरव कान्हड़ा मल्हार को हम पुरुष राग की दृष्टि से देखते ही हैं और अध्यात्मानुप्रेरित भारतीय राग चिन्तन की विशिष्टता भी यही है। कुछ ग्रन्थकारों के राग स्वरूप निर्धारण में भी मतभेद है। किसी ने राग विशेष को पुरुष राग माना अन्य ने उसी राग को स्त्री राग।

कुछ ग्रंथों में राग ध्यान हिन्दी भाषा में भी प्राप्त होते हैं राग मेघ में राग तरंगिणी में प्रकृति चित्रण की झलक मिलती है–

नील विमल दल कमल देह दीपति अति सुन्दर,
वसन्न पीत जगमत सीतकर शुभ हृदये धर।
चातक चय करि विनय प्यास ग्रसित जेही आदत,
मन्द हास मधु मधुर वाम वन मध्य विराजत।
वरवीर तरून रनविशय महँ, लहत चहत जेहि सकल जन
सब राग रमय तिहुमुशन जन मोहत सुनधुनि मेघराग॥

पं. सोम नाथ ने राग विबोध में तोड़ी को धवलारम्भ रचना कहा है–

पीताम्बरोसित तनु लीन तालकृति रूपेण चापेशुः।
सारंगो गरूणां क्रोम्बुज कम्बुग दाधरिकरः॥

इस प्रकार विविध भाव रस से जुड़ी हुई राग ध्यान की परिकल्पना हमें प्राप्त होती है वो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आज भी राग चिन्तन में व्याप्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राग तरंगिणी–लोचन
2. रागो एवं रसों का आलोचनात्मक अध्ययन–डा. रीना सहाय
3. संगीत पारिजात–अहोबल
4. राग विबोध–सोमनाथ
5. भारतीय संगीत शास्त्र–तुलसी राम देवांगन
6. भारतीय संगीत का इतिहार–एस.एस. परांजपे
7. निबन्ध संगीत–हाथरस प्रकाशन
8. भक्ति कालीन साहित्य में संगीत तत्व–डा. उषा सिन्हा
9. संगीत शास्त्र–के. वासुदेव शास्त्री
10. संगीत समय सार आचार्य वृहस्पति
11. संगीत में तालरूप विधान–डॉ सुभद्रा चौधरी
12. संगीत दर्पण–पं. दामोदर
13. काकु का सांगीतिक विवेचन–डा. मधुरानी शुक्ला
14. संगीत समाधान–डा. मधुरानी शुक्ला

Scanned with OKEN Scanner

Ph. : 235140 (O)
223584 (R)

OFFICE OF THE PRINCIPAL

M.R.M. COLLEGE, DARBHANGA

Ref. No. 157/09

Date : 31.08.09

सेवा में,

विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ललित नारायण मिथिला विवविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा।

संगीत शोध पत्रिका के प्रकाशन हेतु
हार्दिक शुभकामनाएं

महिला उच्च शिक्षा की अग्रणी संस्था, पूर्णतः अनुशासनात्मक शैक्षणिक माहौल में महिलाओं को आत्मनिर्भर, सजग एवं कर्तव्यशील बनाने का सपना संजोये इस महाविद्यालय में कला एवं विज्ञान में अंतरस्नातक, स्नातक एवं स्नातकोत्तर तक एवं वाणिज्य में अंतरस्नातक की पढ़ाई की व्यवस्था है। परिसर में ही महिला छात्रवास की अच्छी सुविधा के साथ समृद्ध प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालय के साथ खेलकूद एवं राष्ट्रीय सेवा योजना की भी सुविधा उपलब्ध है।

अंतरस्नातक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य के साथ स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं की पढ़ाई प्रारंभ है।

भवदीय

31.8.09

(डा0 विद्यानांथ झा)
प्रधानाचार्य
एम0आर0एम0 कॉलेज

Scanned with OKEN Scanner

वाद्यों के निर्माण में कला एवं विज्ञान की भूमिका

डा. रीता दास

संगीत मुख्यतः प्रस्तुति कला है। स्वर एवं ध्वनि इसके मुख्य अंग है। जिससे संगीत रूप ग्रहण करता है, मुखरित और चित्रित होता है। गायन के लिए कण्ठ-स्वर और वाद्यसंगीत के लिए वाद्य-यंत्र सर्वोपरि माध्यम है। मानव शरीर को 'गात्र-वीणा' कहा गया है। जैसे वीणा से स्वर निकलते है और संगीत का रूप धारण करते है उसी प्रकार मानव शरीर, जिसका कंठ एक अंग है। कंठ से जो स्वर निकलते है वहीं गायन का रूप धारण करते है। उसी प्रकार वाद्य-संगीत के अंतर्गत जितने स्वर और श्रुतियां वाद्यों से ध्वनित की जाती है वे ही वाद्य-संगीत का रूप ग्रहण करती है तात्पर्य यह है कि वाद्य-संगीत में वादन का महत्व सर्वोपरि है। उत्तम संगीत यानि उच्च-स्तर का वाद्य-संगीत उत्तम वाद्य के बिना संभव नहीं है। वाद्य-वादन के क्षेत्र में सभी उत्तम कोटि के कलाकार अपना वाद्य-यंत्र उत्तम श्रेणी का रखते है। लेकिन मैं यहां मुख्यतः दो वाद्यों सरोद तथा सितार पर विवेचन कर रही हूं।

सामान्यतः विद्वानों का यह मत है कि सरोद-सितार 19वीं सदी के आरंभ से अच्छे ढंग से प्रचार में आया। 19वीं शताब्दी के मध्य तक इन दोनों वाद्यों की वादन कला को संगीत जगत में पूर्ण रूप से मान्यता प्राप्त हो गई थी। ऐसी मान्यता रही है कि सितार खुसरो खां द्वारा निर्मित हुआ। ये खुसरो खां नेमत खां सदारंग के भाई थे।

देश के पुराने संग्रहालयों में प्राचीन वाद्य-यंत्र देखकर पुराने वाद्यों की जानकारी मिलती है। उत्तर-भारत में इस दृष्टिकोण से संग्रहालय है। सबसे पुराना संग्रहालय (1) नेशनल म्युजियम दिल्ली, (2) लखनउ संग्रहालय एवं (3) कलकत्ता संग्रहालय। इन संग्रहालयों में प्राचीन वीणा के अनेक यंत्र संग्रहित है। वीणा, सितार या सुरबहार ये विभिन्न कालों में निर्मित हुए है। कलकत्ता संग्रहालय में महाराज जतिन्द्र मोहन टैगोर द्वारा प्रदत्त वाद्य-यंत्रों का एक संग्रह है। जिसमें विभिन्न प्रकार के वीणा और सितार संग्रहित है। अपने समय के महान सितार एवं सुरबहार वादक उस्ताद इम्दाद खां को सर्वप्रथम महाराजा जतिन्द्रमोहन ने कलकत्ता लाकर अपने दरबार में रखा। सितार-सुरबहार के निर्माण से लेकर उसकी वादन-शैली तक में उ. इम्दाद खां का बहुत बड़ा योगदान रहा।

महाराजा जतिन्द्रमोहन के दरबार में इनके अतिरिक्त प्रवीण सुरबहार वादक मोहम्मद हुसैन तथा सज्जाद हुसैन (पिता-पुत्र) रहते थे। ये दोनों बांदा के मूल निवासी थे। सेनिया बीनकार उमराव खां से रीवां में संगीत की शिक्षा ली। यहीं इन्होने कठिन अभ्यास कर सुरबहार वाद्य को एक शास्त्रीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। ये वीणा की शैली में सुरबहार पर आलाप, जोड़ और झाला बड़े ही शास्त्रीय ढंग से प्रस्तुत करते थे। वैसे लखनउ में भी सितार और सुरबहार के कुछ अच्छे वादक थे। लेकिन सुरबहार वादन में इम्दाद खां और उनकके सुपुत्र उस्ताद इनायत खां देश के शीर्षस्थ सुरबहार वादक के रूप में सुविख्यात हुए।

केन्द्रीय आकाशवाणी संग्रहालय, दिल्ली एवं कलकत्ता केन्द्र तथा देश के कुछ संगीत रसिकों के पास सितार के पुराने रिकार्ड आज भी उपलब्ध है। जिससे यह ज्ञात होता है कि सितार की ध्वनि में

अध्यक्ष, संगीत विभाग, जे.डी. वीमेंस कॉलेज, पटना

Scanned with OKEN Scanner

किस स्तर का विकास हुआ है। उ. विलायत खां ने सितार की बनावट और तारों की संख्या में कई परिवर्तन किए। उन्होने अपने सितार में खरज तथा लरज के तार निकाल दिए। उनकी मान्यतानुसार मन्द्र या अति मन्द्र तारों पर आलाप का काम सुरबहार पर सुन्दर ढंग से होता है। इसलिए मन्द्र स्वरों का काम सुरबहार पर उपयुक्त है, सितार में गतकारी, तान तोड़े, झाला कलात्मक तथा कर्णप्रिय होते है।

उ. विलायत खां ने वर्तमान सितार की आकृति में मूल परिवर्तन यह किया कि सितार के निचले भाग का आकार छोटा कर दिया तथा उपरी भाग का तुम्बा हटा दिया। जिससे सितार के वजन में भी कमी आ गयी और वादकों के लिए एक सहजता का अहसास हुआ परंतु ध्वनि के घनत्व में कुछ कमी अवश्य आ गयी। बावजूद इसके सिद्धहस्त कलाकारों की कल्पनाशीलता, श्रुति मधुर संगीत की सर्जना में कोई विशेष अंतर नहीं आया। ऐसे कलाकारों में उ. विलायत खां, उ. इमरत खां, उ. रईस खां एवं शाहिद परवेज का नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालय सितार वादक पंडित रविशंकर ने भी अपने विचारधारानुसार सितार को एक नवीन रूप प्रदान किया, जो मैहर घराने के अधिष्ठाता गुरु उ. अलाउद्दीन खां की देन है। मैहर घराने के सितार में उसकी आकृति, आकार, तारों की संख्या तथा उसकी मोटाई प्राचीन सितार से नवीनता लिए हुए है। इस शैली के सितार की लंबाई सामान्य सितार से अधिक होती है। नीचे एवं उपर के तुम्बे, दोनों का आकार भी बड़ा होता है। इसमें 'जबारी' एक गंभीरता लिए हुए होती है। जिससे सितार की झंकार एवं ध्वन्यात्मकता निखरती सी प्रतीत होती है। स्वरों में आस और एक ठहराव होता है। पं. रविशंकर ने अपने सितार में सुरबहार की गंभीरता एवं स्वरों की गहराई पैदा की।

प्रस्तुति एवं ध्वनि-प्रभाव की दृष्टि से पं. रामनारायण का सारंगी-वादन भी उल्लेखनीय है। इन्होने अपने सारंगी में अनेक परिवर्तन किए। पारंपरिक सारंगी की तुलना में इनकी सारंगी में तारों की संख्या, उसकी मोटाई, तारों की दूरी आदि में परिवर्तन से सारंगी में अधिक गूंज तथा ध्वनि में घनत्व आ गया। सच तो यह है कि वाद्य-वादन में राग धुन से पर्व सर्वप्रथम वाद्य-विशेष के स्वर का प्रभाव श्रोताओं के मानस पर पड़ता है, वह वाद्ययंत्र सरोद एवं सितार के 'तरबों' एवं बाज के तारों की छेड़ से प्रतीत हो जाता है।

वाद्ययंत्र सरोद के आकार-प्रकार तथा इसकी बनावट में 19वीं शताब्दि से लेकर 20वीं शताब्दि के छठे दशक तक अनेक परिवर्तन हुए है। संग्रहालय मे रखे सरोद को देखने से इसके आकार में आए परिवर्तन का पता चलता है। सर्वप्रथम सरोद के निचले बड़े 'तबली' (ड्रम) को देखने से पता चलता है कि 19वीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में इसकी तबली कुछ लंबे आकार का हुआ करता था। कालान्तर में क्रमशः यह गोलाकार बनाया जाने लगा। अतः इसकी आकृति का मानकीकरण (Standarization) हो गया। वर्तमान में इसकी आकृति गोलाकार ही हुआ करती है।

सरोद की दूसरी विभिन्नता इसकी लंबाई एवं उंचाई में देखी जा सकती है। प्राचीन सरोद की लंबाई अधिक होती थी। कुछ पुराने सरोदवादक रवाब वादक भी थे। इनमें से कुछ अफगानिस्तान से आए थे और कुछ कलाकार हिन्दुस्तान में विकसित रवाब बजाते थे। सरोद में पहले रवाब की भांतिं ही तांत के तार लगे होते थे। लकड़ी के प्लेट लगे होते थे। परंतु 19वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में सरोद में तांत के तार की जगह लोहे तथा पीतल के तार लगाये जाने लगे तथा लकड़ी के प्लेट की जगह स्टील के प्लेट लगाये जाने लगे।

20वीं शताब्दी में सरोद की मुख्यतः चार आकृतियां विशेष प्रचारित हुयीं, जो घराना विशेष के उस्तादों द्वारा तैयार की गयी थी। सरोद की ये चार आकृतियां या शैलियां है—उ. अलाउद्दीन खां की शैली, उ. हाफिज अली खां की शैली, उ. करामतुल्ला खां की शैली एवं उ. अमीर खां की शैली। उ. अलाउद्दीन की शैली को छोड़ तीनों शैलियों के सरोद में बाज के तारों की संख्या मात्र छह थी। जो आज तक है। ये तार खूंटियों से बंधे होते है। तरबों की संख्या मात्र सात थी जो आगे चलकर ग्यारह हो गयी। कुछ उस्तादों ने तबली की गोलाई को थोड़ा परिवर्तित कर नीचे की ओर लंबा कर दिया। करातुल्ला

Scanned with OKEN Scanner

तथा उ. अमीरखां के सरोद की तबली गोलाकार ही हुआ करती थीं।

वर्तमान सरोद को नवीन, आधुनिक तथा आकर्षक स्वरूप प्रदान करने में क्रांतिकारी कलाकार उ. अलाउद्दीन खां का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होने भी अपने सरोद की तबली का आकार गोलाकार ही रखा। परंतु सरोद पर अच्छी पकड़ हेतु इसकी उंचाई को कम रखा तथा तरब के तारों की संख्या पंद्रह कर दिया। उ. अलाउद्दीन खां ने अपने सरोद में नौ खूंटियां लगवायीं जो पूर्व में नहीं थी। बाज के तारों की संख्या नौ रखा। इनके सरोद में डंडे के उपर पांचवां तार अति मन्द्र पंच स्वर में मिला होता था क्योंकि अतिमन्द्र सप्तक में भी ये आलाप किया करते थे। इनके द्वारा निर्मित सरोद के स्वरों में ठहराव तथा गूंज अधिक होती थी।

इस प्रकार वाद्ययंत्र सरोद की आकृतियों में आए इन परिवर्तनों के संबंध में उल्लेखनीय तथ्य है कि वाद्यसंगीत के कलाकार अपनी सांगीतिक कल्पना एवं कलाचिंतन के साथ वादन की सहजता को देखते हुए अपने वाद्यों में परिवर्तन करते रहे है। वाद्ययंत्र सरोद एवं सितार में यह परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। सरोद-सितार में तुम्बा लगाने की परंपरा की पुष्टि प्राचीन मंदिरों की मूर्तियों एवं उन्हें हाथों मे रखे वाद्य के आकार-प्रकार से हो जाती है। तुम्बा युक्त वाद्य की ध्वनि में गहराई और गंभीरता आती है। तुम्बे को अंग्रेजी में Resonater कहते है। तुम्बा रहित सरोद का वजन कम होता है तथा बजाने में भी सुविधा होती है।

वाद्य यंत्र के आकार और उसकी आकृति में पृष्ठभूमि वादक कलाकार की सांगीतिक मान्यता और आस्था का सबसे अधिक महत्व होता है। कलाकार जैसा संगीत प्रस्तुत करने की इच्छा रखता है, उसी के अनुसार वह अपने वाद्यों का आकार-प्रकार भी देता है। इस तथ्य की पुष्टि भारतीय संगीत अंतर्गत विद्वान एवं महान वादक कलाकारों की प्रस्तुति एवं उनके वाद्यों से स्पष्ट होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वाद्यों के निर्माण में परिवर्तन एवं विकासमूलक अवधान होते हैं वादनकला के साथ वाद्ययंत्रों के निर्माण का अन्योन्याश्रय संबंध है। सच तो यह है कि संगीत एवं वाद्य एक दूसरे के पूरक है। ये कभी विलग नहीं हो सकते। वाद्य संगीत में वाद्यों से कलाकारो का इतना अधिक सानिध्य और संबंध है।

Scanned with OKEN Scanner

राग समय सिद्धान्त का पोषक : हवेली संगीत

ऋचा शर्मा

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित कृष्णभक्ति सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) के मन्दिरों की संगीत परम्परा ही 'हवेली-संगीत' के रूप में विकसित हुई। ब्रज में इसे आज भी कीर्तन के नाम से जाना जाता है। पुष्टिमार्ग ब्रज में प्रस्फुटित हुआ है किन्तु इसका प्रचार व प्रसार गुजरात में अधिक हुआ। यहाँ देव मन्दिरों को 'हवेली' कहते हैं। जैसे—द्वारिकाधीश के मन्दिर को गुजरात में "द्वारिकाधीश की हवेली" के नाम से जाना जाता है।

पुष्टिमार्ग की स्थापना संवत् 1550 वि. (सन् 1493 ई.) में उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले (ब्रज का केन्द्र) में (गोकुल गाँव के गोविन्द घाट पर) श्रावण शुक्ल 11 के दिन हुई थी। इस संगीत परम्परा का उद्भव तभी से माना जा सकता है।

पुष्टिमार्ग में अपने इष्टदेव (श्रीकृष्ण के बालरूप) की पूजा-अर्चना के तीन प्रमुख अंग माने गये हैं। राग (संगीत), भोग और शृंगार। इस भक्ति सम्प्रदाय में 'राग-सेवा' को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस परम्परा के भक्तगण अपने इष्टदेव को राग (संगीत) द्वारा ही प्रातःकाल निद्रा से जगाते हैं। राग से ही शृंगार (वस्त्र-आभूषण), राग से ही भोग (खाद्य सामग्री) और गोचारन आदि क्रियाओं के पश्चात् राग गायन से ही आराध्य को शयन कराया जाता है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति परम्परा में अष्ट प्रहर की नित्य सेवाविधि तथा वर्षोत्सव सेवाविधि का विधान स्वीकृत है। जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त आठ बार आठ सेवाओं और वसन्तोत्सव, हिंडोल तथा रासलीला आदि नैमित्तिक आचारों तथा लोक त्यौहार और वैदिक पर्वों के उत्सव, षट्ऋतुओं के उत्सव तथा श्रीकृष्ण की नित्य और अवतार लीलाओं के उत्सव का आयोजन किया जाता है।"[1]

इस परम्परा में श्रीनाथ जी के स्वरूप पूजन में शृंगार, भोग और राग (संगीत) द्वारा की गई सेवाविधि के अन्तर्गत संगीत तथा संकीर्तन को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रत्येक समय तथा उत्सव की झांकी में कीर्तन की व्यवस्था थी। हवेली में प्रतिदिन गाए जाने वाले पद नित्य-लीला के पद होते हैं। प्रत्येक दर्शन की पदावली में उसी के अनुरूप भाव होते हैं और पदों के राग भी समयानुकूल होते हैं।

इसी प्रकार का उल्लेख डॉ. सत्यभान शर्मा ने अपनी पुस्तक "पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा" (हवेली संगीत) के अध्याय-तृतीय 'पुष्टिमार्गीय मन्दिरों के संगीत का दैनिक व वार्षिक-क्रम' में किया है जो निम्नवत् है—

मंगला

कीर्तनियाँ भैरव राग की आलापचारी करते हैं और उसी राग में ताल मुक्त होकर अनिबद्ध गायन के रूप में श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की स्तुति के पद गाते हैं।

भगवान को जगाने के लिए रागभैरव, रामकली अथवा विभास राग का प्रयोग होता है। कलेवा के पद उपरोक्त रागों में ही गाए जाते हैं। तत्पश्चात् शीतकाल में विशेष रूप से खण्डिता के पद राग ललित में गाये जाते हैं।

*शोध छात्रा, (एसआरएफ), संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Scanned with OKEN Scanner

शृंगार

शृंगार करते समय कीर्तन बिलावल राग में गाये जाते हैं। शृंगार पूर्ण हो जाने पर कीर्तनियाँ शृंगार वर्णन के पद ग्रीष्म ऋतु में बिलावल राग में और शीत ऋतु में तोड़ी और आसावरी राग में गाते हैं।

राजभोग

भोजन भगवान के समक्ष रखकर राग धनाश्री में पद गाये जाते हैं। ये पद भी ऋतु अनुसार बदलते जाते हैं यथा—शीतकाल का पद धनाश्री राग में और ग्रीष्मकाल में राग सारंग में पद गाए जाते हैं।

उत्थापन

उत्थापन का पद राग नट में गाया जाता है। इस समय की सेवा के लिए धनाश्री तथा भीमपलासी के पद गाए जाते हैं।

सन्ध्या आरती

सन्ध्या आरती के लिए आरती के पद राग पूर्वी, नट तथा राग गौरी में गाये जाते हैं। रात्रि के भोजन के समय राग ईमन (यमन) के पद गाये जाते हैं। राग कान्हारा में पद गाकर भगवान को दूध पिलाया जाता है। इसके उपरान्त राग कल्याण में शयन के पद गाये जाते हैं। इसमें राग विहाग, मालव केदार आदि रागों का भी समावेश है। इन सभी रागों का प्रयोग रास में तथा विभिन्न लीलाओं में यथावत समयानुसार किया जाता है।"[2] शीतकाल में ठाकुर जी को शयन कराने हेतु राग बिहागड़ा में पद गाया जाता है।

हवेली संगीत परम्परा में राग विधान की दृष्टि से नित्य की अष्टयाम-सेवा का स्वरूप इसी प्रकार है।

प्रातःकालीन झाँकियों में जहाँ ग्रीष्मकाल में विलावल, सारंग राग गाये जाते हैं, वहीं शीतकाल में तोड़ी व आसावरी राग गाये जाते हैं।"[3]

अतिशय शीत में ललित, मालकोश, पंचम और नट राग गाये जाते हैं। किन्तु शाम की झाँकियों में उत्थापन व भोग के रागों में कोई अन्तर नहीं है। इनमें पूर्वी व गौर तथा नट रागों का ही प्रयोग मिलता है। शयन में प्रयुक्त राग केदार, गर्म राग व कल्याण, हमीर, अड़ाना ठंडे राग माने हैं।"[4]

इस तरह हम देखते हैं कि इस परम्परा में अनेक रागों के प्राचीन स्वरूप आज भी दृष्टव्य हैं। अनेक ऐसे राग जो आज लुप्त हो गये हैं, इस परम्परा में श्रवणीय हैं तथा आज भी सुने जा सकते हैं। अनेक रागों के अनेक प्राचीन प्रकारों के भी दर्शन यहाँ सम्भव हैं।

निष्कर्षतः समयानुकूल राग व साहित्य तथा साहित्य के अनुकूल संगीत-रचनाएँ इस परम्परा की निजी विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त अपूर्व राग नाम, संगीत के प्रबन्ध, नृत्य परक पद इत्यादि से समृद्ध यह संगीत परम्परा पाँच शताब्दियाँ बिता चुकी है और आज भी भारतीय संगीत के आध्यात्मिक पक्ष को प्रत्यक्ष रूप से समझने और उसे आत्मसात कराने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस दृष्टि से हवेली संगीत परम्परा को ना सिर्फ संगीत के आध्यात्मिक पक्ष बल्कि प्राचीन राग संगीत और उसमें निर्दिष्ट समय सिद्धान्त की एक पोषक परम्परा के रूप में भी समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. डॉ. राकेश बाला सक्सेना, ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, पृ. 58
2. डॉ. सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा (हवेली संगीत), पृ. 85

Scanned with OKEN Scanner

संगीतिक ध्वनि का जादू

कामेश्वर कुमार*

सुषिर वाद्य, तंत्री वाद्य, अवनद्ध वाद्य एवं धन वाद्य जैसे–नगाड़े, झांझ, बीन, बांसुरी आदि इन सबका स्थूल शरीर पर स्पष्ट, भिन्न एवं खास प्रभाव है। एक समय ऐसा था जब आवाज का उपयोग आरोग्य देने के लिए तथा आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए किया गया था। इसी सिद्धांत पर भारतीय संगीत आधारित है। विभिन्न राग और इन रागों में लगने वाले स्वरों के माध्यम से आरोग्यदायी और ऊंचा उठनेवाले प्रभाव उत्पन्न होते है।

आवाज पहले स्थूल धरातल पर स्पर्श करती है। जब हम इस पर विचार करते है कि किसी एक स्वर या ध्वनियों का प्रभाव क्या हो सकता है तो यह हमें इस पर गहराई से सोचने के तरफ ले जाता है। आज भी अधिकतर संपेरे भारत में पाए जाते है, वे अपनी पुंगी या बीन बजाकर, जो कि एक साधारण सा वाद्य है, अपने आस पास के कोबरा या अन्य सांपों का आकर्षित करते है। अक्सर यह प्रयोग में देखा जाता है कि किसी भी प्रकार का सांप पुंगी या बीन की आवाज सुनकर आकर्षित होता है। बीन की आवाज सुनते ही सबसे पहले वे अपनी बॉबी से बाहर आते है जहां वे रहते है और तब उनके स्नायुमंडल पर एक खास प्रभाव पड़ता है जो उन्हें बीन की आवाज के करीब और करीब लाता है। वे अपनी मूल प्रवृति को भूल जाते है जो कि प्रत्येक जीव में, अपने को मनुष्य एवं अन्य जीवों के हमले से बचाने में देखी जाती है। उस वक्त वे उसे एकदम भूल जाते है। वे किसी व्यक्ति या किसी वस्तु को भी नहीं देख पाते है। उस समय वे परमाह्लाद की स्थिति तक उपर उठते है। कोबरा अपना सिर उठाना शुरू करता है और कभी दाएं, कभी बाएं हिलने लगता है। जब तक यह वाद्य बजता है। कोबरा अह्लाद की स्थिति में हिलता रहता है। हमें यह दिखाता है कि मनुष्य पर ध्वनि के मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव के साथ, स्थूल शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। भारत में ऐसे वीणा वादक है जिन्हें प्रभाव उत्पन्न करने के लिए आध्यात्मिक अपूर्वता उत्पन्न करने के लिए सिंफनी (Symphony) बजाने की आवश्यकता नहीं होती। उन्हे केवल वीणा हाथ में लेकर एक स्वर पर आघात करना होता है। जैसे ही वह एक स्वर पर आघात करते हैं वह अंतः प्रवेश कर जाते है। एक या दो स्वरों पर आघात करते ही वह श्रोता को सुरबद्ध कर देते हैं। वह आवाज सभी स्नायुओं पर अपना काम करती है तथा प्रभाव डालती है। यह तंत्र वाद्य पर बजाने की तरह है जो कि प्रत्येक हृदय में है। उनका वाद्य केवल एक स्रोत बन जाता है। जिसका प्रत्युतर प्रत्येक हृदय में शत्रु और मित्र में समान रूप से पाया जाता है। किसी अत्यंत विरोधी व्यक्ति को किसी सच्चे वीणा वादक के सामने आने दिजीए, वह अपना विरोध बनाए नहीं रख सकता है। जैसे ही स्वर उस व्यक्ति को छूता है उसमें पैदा होनेवाले आन्दोलनों से वह मित्र हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए भारत में ऐसे वीणा वादक संगीतज्ञ कहलाने की अपेक्षा 'वीणा के जादूगर' कहलाते है। उनका संगीत जादू है।

*शोध छात्र, ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

रहस्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार श्वास, जीवन प्रवाह या प्राण है। यह जीवन-प्रवाह, गट के तारों, मृदंग या नगाड़ों के चमड़े में भी विद्यमान रहता है। जीवन का एक भाग इन वस्तुओं में भी रहता है। इस हद तक इनका जीवन-प्रवाह सुना जा सकता है जिससे कि वह जीवित प्राणियों के जीवन-प्रवाह का स्पर्श कर सके और उसे अतिरिक्त जीवन दें। इसी कारण से आदिवासी जातियां जिनका केवल नगाड़ा या फूंकनेवाला साधारण वाद्य है। उन वाद्यों को सदैव बजाते रहने से ऐसी स्थिति में पहुंच जाते हैं कि उन्हें पराह्लाद की प्राप्ति होती है।

ब्राह्मण जब वेद-पाठ करते है तो अभी भी वह केवल वहां जो लिखा है या उसके अर्थ का ही अभ्यास नहीं करते, वे प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक ध्वनि के उच्चारण का भी अध्ययन करते हैं, वर्षो और वर्षों तक इसका अभ्यास करते है। ब्राह्मण कानों से आवाज को एक बार सुनकर यह नहीं सोचता कि—"मैंने याद कर लिया है" नहीं वह विश्वास करता है एक शब्द को हजार बार दोहराने से एक दिन ऐसी चुंबकीय शक्ति एवं विद्युत शक्ति व जीवन प्रवाह उत्पन्न होगा जो कि आवश्यक है और केवल दोहराने से ही आता है। जीवन प्रवाह का कार्य करता है, जो श्वास के रूप में आता है आवाज के रूप में प्रकट होता है और दूसरे व्यक्ति को स्पर्श करता है। तथा यह पांच ज्ञानेन्द्रियों का स्पर्श करता है—चक्षुरेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय और त्वचेन्द्रिय। पर व्यक्ति आवाज को केवल कानों द्वारा ही नहीं सुनता है बल्कि वह आवाज को शरीर के प्रत्येक छिद्र से सुनता है, यह पूरे अस्तित्व में पैठता है और इसका खास प्रभाव, रक्त प्रवाह की लय को घटा देता है या बढ़ा देता है या तो यह स्नायु-मंडल को जाग्रत कर देता है या उसे आराम पहुंचाता है। यह एक व्यक्ति को अधिक संवेगात्मक होने के लिए उकसाता है या उसे शांति प्रदान करते हुए शांत रखता है। ध्वनि एवं उसके असर के अनुसार एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न होता है।

इसलिए आवाज की जानकारी व्यक्ति को एक जादुई यंत्र दे सकती है, जिसके द्वारा वह दूसरे व्यक्ति के जीवन को सुविधानुसार घुमा सकता है, स्वर मिला सकता है और नियंत्रित कर सकता है। पुराने गायक अपनी आध्यात्मिक साधना का प्रभाव अपने उपर पहले अनुभव करते थे। वह एक स्वर को आधे घंटे तक गाया करते थे और उस स्वर के प्रभाव का अपने शरीर के विभिन्न केन्द्रों पर अनुभव करते थे कि कौन-सा जीवन प्रवाह इससे उत्पन्न हुआ है और कैसे इसने अंतदृष्टि की शक्तियों को खोला है, कैसे इसने उत्साह की सृष्टि की, कैसे इसने अतिरिक्त शक्ति दी, कैसे शांति दी और कैसे आरोग्य प्रदान किया? उनके लिए यह सिद्धांत नहीं था, बल्कि अनुभव था।

आवाज दृश्यमान होती है, चमक के रूप में। वही शक्ति जो दिखाई देने से पहले आवाज के रूप में आती है, स्थूल शरीर द्वारा सोख ली जाती है। इस तरह स्थूल शरीर स्वास्थ्य लाभ करता है और नई चुंबकीय शक्ति से भर जाता है।

मनोविज्ञान का सूक्ष्मता से अध्ययन करने से, आप यह पायेंगे कि गायकों के पास सामान्य व्यक्ति से अधिक चुंबकीय शक्ति होती है। स्वयं के अभ्यास द्वारा उनकी अपनी आवाज, उनके उपर प्रभाव डालती है, जिससे वह स्वयं में बिजली उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक बार जब वह अभ्यास करते है नई चुंबकीय शक्ति से भर जाते है। यही गायकों के चुंबकीय आकर्षण का रहस्य है।

जब हम आवाज के भीतरी सिद्धांत के सार पर आते है, जितना इसको प्रकृति के नजदीक रखा जाता है, यह अधिक शक्तिशाली और अधिक जादुई होता है। प्रत्येक पुरुष या स्त्री की आवाज में अपना एक निश्चित नाद होती है। पर जब आवाज निर्माता यह कहता है कि नहीं, यह आल्टो, सप्तेनो, टेनर या बेस है, वह उसे सीमित कर देता है जिसे सीमित नहीं किया जा सकता। क्या तब इतनी सारी आवाजें है? उतनी आवाजें है, जितनी आत्माएं है, उनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता हैं जैसे ही गायक को वर्गीकृत कर दिया जाता है। उसे उसी नाद में गाना पड़ता है।

श्वास प्रवाह के तीन स्तर है—पहला, साधारण श्वास जो कि नथुनों के बाहर और भीतर किया जाता है। यह प्रभाव बाहर पहुंचता है और एक खास असर डालता है। जब व्यक्ति होठों से फूंकता है तो श्वास-प्रवाह अधिक तेजी से परिचालित होता

Scanned with OKEN Scanner

है। इसलिए इलाज करनेवाले, जिन्होने इस सिद्धांत को समझा है, इसका प्रयोग करते है। तीसरे स्तर पर, जिसमें श्वास बहुत तीव्र होती है वह है आवाज। क्योंकि इस स्तर पर आवाज के रूप में आनेवाली श्वास, जीवनदायिनी है।

निष्कर्ष—स्थूल शरीर पर ध्वनि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हैं जब कोई गायक किसी भी प्रकार के गायन का प्रस्तुतिकरण करता है तो श्रोतागण उसके गायन के भाव से भावविभोर हो जाते है। जैसे—जब गायक दुःख भरी गानों का प्रस्तुतीकरण करता है तो श्रोतागण दुःखी व उल्लास वाली गानों को प्रस्तुत करता है तो श्रोतागण खुश होते है। अतः स्पष्ट है कि स्थूल शरीर पर ध्वनि का प्रभाव सदैव पड़ता है। जिसके कारण मनुष्य अपनी बाहरी दुनिया को भूल जाता है और ध्वनि के प्रभाव से प्रभावित रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर भारतीय संगीत का परिवर्तित स्वरूप

डॉ. प्रियदर्शिनी उपाध्याय*

परिवर्तन प्रकृति का एक अनिवार्य एवं शाश्वत् नियम है। परिवर्तन की परम्परा रूपी सरिता में कभी कुछ घटता है तो कुछ नया जुड़ता है। इस प्रकार भारतीय संगीत समय के इस परिवर्तन से किस प्रकार प्रभावित हुआ इसके आंकलन हेतु प्रस्तुत प्रपत्र के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करने का एक प्रयास है।

मानव के साथ ही संगीत की उत्पत्ति हुई, ऐसा सर्वविदित है जैसे-जैसे मानव की जीवन शैली में सुधार होता गया ठीक उसी क्रम में भारतीय संगीत में भी परिष्कार होता गया। जब मानव भाषाहीन था तब संगीत भी भाषाहीन था जैसे-जैसे मानव सभ्य एवं सुसंस्कृत होता गया ठीक उस प्रकार संगीत में भी बदलाव आने लगा जैसे पाषाण युग में मानव ने पत्थरों का प्रयोग करना सीखा तो उसमें पत्थरों के ही वाद्य यंत्र बनाए, लौह और कास्य युग में भी उसने सम्बन्धित वाद्यों का आविष्कार किया इस प्रकार समय-समय पर आवश्यकतानुसार संगीत में परिवर्तन होते गए।

अगर हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो कह सकते हैं कि संगीत हमारी हर सभ्यता का अहम हिस्सा रहा है और अगर हम भारतीय कलाओं की बात करें तब भी यह कह सकते है कि संगीत का दर्जा वाली सभी यानर्स (Genres) में हमेशा से महत्त्वपूर्ण रहा है क्योंकि किसी भी सभ्यता या संस्कृति का कोई भी हिस्सा कभी भी स्थिर नहीं रहा तो संगीत भी इस बदलाव की प्रक्रिया से नहीं बच पाया।

सुव्यवस्थित भारतीय संगीत की उत्पत्ति सामवेद से ही मानी गई है। वैदिक युग में मनुष्य वैदिक ऋचाओं (hyms) का गान ईश्वरोपासना के लिए किया करता था यह अभियान ही सामगान कहलाया।

प्राचीन कालीन भारतीय संगीत पूर्णतः भक्ति संगीत था जो केवल मंदिरों तक ही प्रतिबन्धित था और जिसका प्रयोग पूजा-पाठ से सम्बन्धित रीति-रिवाजों के लिए ही किया जाता था। हमारा प्राचीन संगीत, ध्रुपद ही का गायन था जो प्रबन्ध गायन था। वाद्यों में वीणा, पुष्कर, वंशी, बाँसुरी जैसे वाद्यों का प्रायः प्रचलन था। प्राचीन भारतीय संगीत अलौकिक एवं दिव्य संगीत माना गया है।

मध्यकाल में भारतीय संगीत में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया, जो संगीत मंदिरों में ईश्वरोपासना के लिए प्रयुक्त होता था वह संगीत अब राजमहलों के वातावरण में जनता के लिए आयोजित होने लगा था। मध्यकाल में यूनानी और अबर का संगीत घुल मिल गया लेकिन फिर भी प्राचीन ध्रुपद शैली का अपना स्थान था। मध्यकाल में तानसेन ने एक हजार से भी अधिक ध्रुपदों की रचना की और ध्रुपद गायन को पराकाष्ठा तक पहुँचाया। अमीर खुसरो ने सहतार और पखावज जैसे वाद्यों में बदलाव लाकर सितार तबले का आविष्कार किया।

18वीं शताब्दी में एक बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन आया ख्याल शैली का आविर्भाव हुआ। 19वीं शताब्दी, में, राग ताल में भावों की अभिव्यक्ति की स्वंत्रता के लिए टप्पा, ठुमरी शैलियों का समावेश भारतीय संगीत में हुआ। ख्याल गायन के साथ-साथ गजल गायकी को ठुमरी का शास्त्रीय स्वरूप देकर इसमें

*वरिष्ठ प्रवक्ता - संगीत गायन, महात्मा गांधी (पी.जी.) गर्ल्स कॉलेज, फिरोजाबाद।

Scanned with OKEN Scanner

निखार पैदा किया गया। इस युग तक आते-आते संगीत घरानों तक सीमित हो चुका था। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विष्णुद्वय के प्रयासों से संस्थागत शिक्षण के रूप में संगीत जन-जन तक पहुँचा।

आधुनिक युग में भारतीय शास्त्रीय संगीत के ख्याल गायन का प्रचलन है। भारतीय वाद्यों में सितार, सरोद, संतूर, वॉयलिन, शहनाई, हारमोनियम, तबला ढोलक आदि प्रचलन में है। तानपूरे का प्रयोग गायन और वादन संगीत में आधार स्वर (Bade notes) देने के लिए किया जा रहा है। परम्परागत वाद्य यंत्र जैसे लोक वाद्यों को शास्त्रीय संगीत में स्वतंत्र वाद्यों के रूप में प्रतिष्ठा मिली। कुछ प्राचीन वाद्य धीरे-धीरे लुप्त हो गए जैसे सुरबहार एवं रूद्र वीणा। हारमोनियम ने संगत के क्षेत्र में सारंगी को पीछे कर दिया। अवनद्व वाद्यों में तबला वाद्य को स्वतंत्र स्थान प्राप्त हुआ जो पहले संगत का साधन माना जाता था।

परिवर्तन की इस श्रृंखला से वादन भी अछूता नहीं रहा। आज के आधुनिक परिवेश में भी वाद्यों में कई अविष्कार हो रहे हैं। कुछ को पूर्णतः नवीन रूप में सामने लाया जा रहा है।

सन्तूर जो कि पहले कश्मीरी लोक वाद्य के रूप में प्रचलित था आधुनिक समय में शास्त्रीय संगीत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिया वाद्य माना जाने लगा है।

पं. ब्रज भूषण काबरा जी ने विदेशी वाद्य का भारतीयकरण कर डाला। उन्होंने गिटार में 1 चिकारी और ड्रोन के लिए सरोद की तरह डाले। इसी के साथ बारह तरब के तार डाले। इस तरह गिटार की ध्वनि में काफी परिवर्तन कर दिया।

सुप्रसिद्ध सरोदवादक बाबा उलाउद्दीन खाँ साहब ने सरोद में अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए। प्राचीन सरोद में मुख्य 6 तार 7 तरब हुआ करती थी। बाबा ने तरबों की संख्या बढ़ाकर 15 कर दी थी तथा 4 तार और बढ़ाए जिन्हें राग के मुख्य स्वरों में मिलाया जाता था। इन प्रयासों ने सरोद को न केवल भारत में बल्कि विश्व में लोकप्रियता प्रदान की।

आगरा के दिनेश शांडिल्य जी ने 6 फीट लम्बी बाँसुरी जो कि पीवीसी पाइप की बनी हुई है इतनी बड़ी बाँसुरी को बजाने की तकनीकी विकसित करी साथ ही कई जगह इसका प्रदर्शन किया। दुर्ग मध्यप्रदेश के निवासी स्व. अजगर प्रसाद जी ने जलतरंग की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए जलतरंग के प्यालों का स्टेंड बनाया जिस पर आघात करने से प्याले का पानी बाहर छलकता नहीं था और स्वर की गूँज यथावत रहती है। बैंगलोर के श्री राजनारायण जो स्वयं इलैक्ट्रॉनिक इंजीनियर है। रियाज की समस्या को ध्यान में रखकर इलैक्ट्रोनिक ताल माला का अविष्कार किया। इस पोर्टेबल उपकरण को बैटरी और विद्युत दोनों से चलाया जाता है। इसमें विभिन्न तालों के ठेके विभिन्न लयों में उपलब्ध है इसी तरह श्री राजनारयण जी ने इलैक्ट्रॉनिक तम्बूरा भी बनाया।

अगर हम आधुनिक सर्वाधिकार लोकप्रिय भारतीय सिने संगीत की बात करें तो कह सकते है कि 20वीं सदी का जो भारतीस सिने संगीत अपनी सुरीली रचनाओं के लिए सदा याद किया जाता है इस काल के सिने रचनाकारों ने जहाँ शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, चतुरंग, भजन, गीत, गजल, लोरी आदि का प्रयोग किया वहीं आज के आधुनिक समय में फिल्म संगीत की परिभाषा ही मुश्किल हो गई है क्योंकि दृश्य विधा (Visual mode) के कारण इसके मायने ही बदल गए हैं। आज पूर्णतः फ्यूजन हुआ है गायकी का, वाद्यों का, संगीत का, लोक संगीत का तथा शास्त्रीय संगीत का पूर्ण समावेश हुआ है। आज पुरानी मैलोड़ीज (melodies) को आधुनिक सांगीतिक व्यवस्था (modern musial arrange-ments) के साथ मिश्रित (blend) किया जा रहा है। इस तरह से रीमिक्स युग की शुरूआत हो गई जैसे उस्ताद सुल्तान खान का 'पिया बसंती रे' जिसमें लोक संगीत को उपशास्त्रीय संगीत के साथ मिश्रित (blend) किया गया है।

संक्षिप्त रूप में इतना कह सकते है कि आदिकाल से अब तक संगीत कला मानव जीवन पर सकारात्मक रूप से प्रभाव डालती रही है चाहे किसी भी शैली के रूप में प्रचलित रही हो। शास्त्रकारों की कल्पना से उद्भूत, शास्त्र नियमावलियों में बँधकर, शास्त्रीय संगीत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती

Scanned with OKEN Scanner

आई है। कभी गुरू शिष्य परम्परा के रूप में तो कभी संस्थागत शिक्षण के रूप में।

संगीत कला युग युगान्तर से मानव जीवन की अभिन्न सहचरी रही है। कभी ईश्वरोपासना का प्रमुख आधार बन कर, तो कभी मनोरंजन कर साधन बन कर आज एक चिकित्सा (Therapy) के रूप में मानव को शारीरिक एवं मानसिक तनाव से मुक्ति दिला रही है। संक्षिप्त रूप में संगीत कला में आदिकाल से वर्तमान समय तक सर्वोत्तम रूप में विभिन्न क्षेत्रों में मानव जाति की सेवा की है।

संदर्भ

1. डॉ. शेफाली यादव 'आधुनिक युग में वाद्यों का बदलता परिदृश्य'।
2. डॉ. कंचन माहेश्वरी 'स्वतंत्रता' के पश्चात् भारतीय संगीत'।
3. Dr. Lovely Sharma 'Exploration in Music'

Scanned with OKEN Scanner

मध्यप्रदेश में भोपाल का सांगीतिक विकास : एक तथ्यात्मक अध्ययन भोपाल का मेवाती घराना

डा. रविकुमार पंडोले

1. घराना–अर्थ

घराने अपने परिवार के किसी श्रेष्ठ और पराक्रमी पुरुषों की परम्परा से अपने को आबद्ध करने की सहज प्रवृत्ति है।

डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे के अनुसार–घराना रीति या शैली का दूसरा नाम है। कला सौंदर्य का आविष्कार करती है और इसी के किसी विशिष्ट अंग पर अधिकार प्राप्त हो जाने के कारण "घराने" का जन्म होता है। [1]

श्री बामनराव देशपांडे के अनुसार–घराना माने निशानी या पहचान के हिसाब से गायकी की विशिष्ट गति बनाये रखने वाली लेकिन उसमें हर गायक के साथ नई बातें समाहित करने वाली और इस प्रकार सिलसिला बनाये रखने वाली एक परम्परा है।[2]

विद्वानों के मत एवं घराने शब्द के भावार्थ का विवेचनोपरांत यदि घराना शब्द को परिभाषा में आबद्ध करना है तो कहा जा सकता है कि–संगीत में घराना वह परम्परा है जिसकी स्वर-तालादि अंगों की भिन्नता से विशिष्ट पहचान होती है, तथा शैली के मूल विशेषताओं का सिलसिला बना रहता है।[3]

2. घराना परिचय

ख्याल शैली के घरानों के उदय के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य रहा है कि ख्याल का विकास अधिकतर विभिन्न नरेशों के राजाश्रय मिलने के कारण इन परम्पराओं को स्थायीत्व प्रदान हुआ। संगीत में इस शताब्दी में गीतों के विविध प्रकार प्रचलित रहे। ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, गजल, कजरी आदि की अपनी शैलियां हैं। ध्रुपद गायन में बानियां रही वैसी ही ख्याल गायन में घराने रहे। इस गीत शैली का आरंभ भारत में सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के जमाने से हुआ। उनकी सभा के कलाकार सदारंग-अदारंग नामक दो भाईयों ने इसकी नीव डाली। कालान्तर में ख्याल गायकी के निम्न घराने भारत में आज भी प्रचलित है। जैसे दिल्ली, लखनऊ, ग्वालियर, आगरा, किराना, जयपुर, मेवाती, रामपुर और गोखले घराना आदि। इन घरानों में दिल्ली लखनऊ ग्वालियर घराने सबसे प्राचीन हैं। शेष घराने किसी न किसी रूप में इन्हीं से संबद्ध है।[4]

मेवाती घराना : संक्षिप्त इतिहास

ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के काल में ग्वालियर घराना की स्थापना हुई। नत्थन पीर बख्श, बड़े मोहम्मद खां, चिंतामन मिश्र, नारायण शास्त्री एवं अन्य कई कलाकारों को महाराजा सिंधिया के दरबार में एकत्रित होने का अवसर मिला। दौलत राव सिंधिया के दरबार में बड़े मोहम्मद खां, मूर्धन्य गायक थे। उन्हें दरबार में 1400 रूपये प्रतिमाह वेतन एवं आने जाने के लिए हाथी की सवारी प्राप्त थी।[5]

उसी समय में यहां हद्दू खां, हस्सू खां, नत्थू खां, तीन भाईयों का ग्वालियर आगमन हुआ। इनके

*प्रवक्ता, राजकीय एम.एल.बी.जी.पी.जी. कॉलेज, भोपाल

Scanned with OKEN Scanner

दादा नत्थन पीर बख्श, जो कव्वाल बच्चों का लखनऊ घराना से संबंधित थे, ने इन्हें लखनऊ से ग्वालियर लेकर आये। ग्वालियर में नत्थन पीर बख्श ने तीनों पोतों को संगीत की शिक्षा दी व खूब तैयार गायक बनाया। नत्थन पीर बख्श ने अपने तीनों पोतों को ध्रुपद, ख्याल के साथ-साथ टप्पा की भी शिक्षा दी।[6]

"नत्थन पीर बख्श ने महाराजा दौलतराव जी से भेंटकर तीनों बच्चों की कला कौशल की संपूर्ण जानकारी दी और प्रार्थना की कि यदि तीनों बच्चों को बड़े मुहम्मद खां का गाना छिपकर सुनाया जावे तो वे बड़े मुहम्मद खां का गाना वैसा ही सुना सकते हैं। इस तरह महाराजा की स्वीकृति से तीनों पोतों को बड़े मुहम्मद खां का गाना आत्मसात करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसी काल से तीनों भाईयों को गायक के रूप में सम्मानित किया गया।

हद्दू खां, हस्सू खां और नत्थू खां द्वारा ग्वालियर में अनेक शिष्यों का निर्माण हुआ। हस्सू खां के शिष्यों में, वासुदेव बुआ जोशी, देवजी बुआ, गुले इमाम खां, और हद्दू खां के शिष्यों में बड़े बालकृष्ण बुआ, बंदे अली खां, बाला गुरु जी, छोटे मोहम्मद खां (पुत्र) रहमत खां (पुत्र) इनायत हुसैन खां, विष्णुपंत छत्रे, बन्ने खां और नत्थू खां के शिष्यों ने ग्वालियर की गायकी का प्रसार अपने योग्य शिष्यों के माध्यम से संपूर्ण देश में किया।[7]

हद्दू खां के दो पुत्र थे छोटे मोहम्मद खां और रहमत खां। इनकी दो पुत्रियां थीं बड़ी पुत्री का विवाह बंदे अली खां (किराना घराना) बीन वादक तथा छोटी पुत्री का विवाह इनायत हुसैन खां (सहारनपुर घराने) से हुआ।[8] छोटे मोहम्मद खां की पुत्री का विवाह मेवात के उस्ताद घग्गे नजीर खां से हुआ जो भोपाल के दरबार में गायक थे। उस्ताद घग्गे नजीर खां एक प्रसिद्ध प्रतिभावान मेवात के गायक थे। वे छोटे मोहम्मद खां के भतीजे और शिष्य थे। भोपाल के पं. नत्थूलाल एवं पं. चिमनलाल उनके शिष्य थे।

मेवाती घराने के मूलपुरुष उस्ताद घग्गे नजीर खां, बड़े मुहम्मद खां साहब के पुत्र वारिस अली खां के शागिर्द थे। उस्ताद नजीर खां के बड़े भाई वहीद खां जो कि गुलाम कादिर खां के शिष्य थे को उस जमाने के विख्यात बीनकार उस्ताद बंदे अली खां से तालीम मिली थी। उस्ताद हद्दू खां, हस्सू खां की बेटियां से इन दोनों का विवाह हुआ और ये इन उस्तादों के रिश्ते में आ गये।[9]

ग्वालियर में हद्दू खां और हस्सू खां के जमाई बन जाने के बाद बंदे अली खां और घग्घे नजीर खां वापस लौटे तब घग्घे नजीर खां साहब के सारे के सारे अनुयायियों और हितैषियों ने उनसे अपील की कि "आप मेवात में पैदा हुए हैं तो आप अपनी गायकी को मेवात के नाम से क्यों नहीं चलाते" आप इस घराने के संस्थापक बन जाईये। आप इस चीज को धारण कीजिए और आप मेवात के संस्थापक बन जाईये।"[10]

उस्ताद घग्घे नजीर खां का जन्म स्थान बेरला है, जो राजस्थान के मेवात इलाके और पुराने अलवर स्टेट में तथा हरियाणा के पास आता है नजीर खां साहब ने भी इस सुझाव को स्वीकार कर लिया और इसी से इस ख्याल गायकी का नाम मेवाती घराना चल पड़ा।[11]

उस्ताद घग्घे नजीर खां साहब रियासत जोधपुर में राज गायक रहने के बाद भोपाल दरबार के गायक बने थे। उनके मन में यह तमन्ना थी कि इतनी जो विद्या उन्होंने हासिल की है किन्हीं होनहार युवकों के गले में उसे चढ़ा सकूं तो मेरी साधना सार्थक हो सके।[12]

उस्ताद घग्घे नजीर खां ने दो युवकों नत्थूलाल और चिमनलाल को हिन्दुओं जैसा इंतजाम करके और प्यार जताकर 14 वर्ष तक गाने की तालीम भोपाल में दी। नजीर खां से तालीम प्राप्त करने के बाद ये दोनों भाई भोपाल से वापस आये और ग्वालियर के पास दतिया नाम की एक रियासत में इन दोनों को यथायोग्य सम्मान मिला।[13]

"बड़े भाई पं. नत्थूलाल ने पं. मोतीराम को तालीम दी। इस तरह पं. जसराज के पिता पं. मोतीराम जी को हरियाणा में पं. नत्थूलाल जी से तालीम मिलना प्रारंभ हुआ। पं. मोतीराम जी की नौ वर्ष की उम्र से 16 वर्ष की उम्र तक लगभग 7 वर्ष तक तालीम चलती रही। बाद में कुछ ही दिनों में पं. नत्थूलाल जी का स्वर्गवास हो गया।"[14]

Scanned with OKEN Scanner

पं. मोतीराम कश्मीर स्टेट के गायक थे। कश्मीर छोड़ने के बाद वे वर्धा में श्रीमान शंकरराव मेघे के पास रहे। नागपुर में कार्यक्रम के दौरान, हैदराबाद के दीवान साहब सर कृष्ण प्रसाद बहादुर ने उन्हें हैदराबाद रियासत चलने का अनुरोध किया। हैदराबाद के नवाब साहब उन्हें दरबारी गायक का सम्मान देना चाहते थे। 30 नवम्बर 1934 को यह सम्मान दिया जाने वाला था किन्तु पं. मोतीराम का 29 नवम्बर 1934 को ही हैदराबाद में स्वर्गवास हो गया।[15]

"मेवाती घराना सभी घरानों में नया है। एक ही घर में तीन पीढ़ियां अगर गाती-बजाती है तो वह भी एक घराना बन जाता है। मैं अपने घर में चौथी पीढ़ी हूं। मेरे पिता जी के मामा (पं. नत्थूलाल जी) मेरे पिताजी (पं. मोतीराम जी) और मेरे बड़े भाई साहब (पं. मनीराम) और मैं (पं. जसराज)। इस घराने के जो जाने माने लोग हैं, उनमें से साणंद के बापू साहब एक हैं। आपने उस्ताद घग्धे नजीर खां साहब के भाई मुनव्वर अली खां का गाना सीखा।"[16]

मेवाती घराना शिक्षा पद्धति[17]

1. राग प्रशिक्षण—मेवाती घराने में तालीम देने की जो पद्धति है उसमें सर्वप्रथम राग भैरव से प्रारंभ करते हैं। राग भैरव के प्रशिक्षण के दौरान मुख्यतः गंधार, निषाद, मध्यम, धैवत, स्वरों के वजन पर ध्यान दिलाया जाता है। मगर भैरव राग ही सिखाते हैं। पलटे भी उसी लिहाज के होते हैं। उसके बाद राग मुलतानी सिखाया जाता है। मुलतानी के बाद 'रात की पूरिया' राग सिखाया जाता है। उसके बाद जौनपुरी की थोड़ी तालीम दी जाती है। मेवाती घराना में यमन-बिलावल का क्रम काफी देर बाद आता है। लगभग 5-6 वर्ष बाद। शिष्यों में जिनकी जैसी लगन होती है उनके अनुसार अभ्यास का उनका अपना क्रम होता है।

2. ताल प्रशिक्षण—मेवाती घराने में राग सिखाने के पूर्व तबला सिखाया जाता है जिससे तबला वादक को साथ लेकर बैठने की जरूरत नहीं पड़े। प्रारंभ में तबले के ठेके बगैरह सिखा देने के कारण तबले वाले के साथ बैठकर बहुत कम रियाज कराया जाता है।

3. भाव पक्ष—मेवाती घराना में गायकी में भाव को बहुत प्रधानता दी जाती है। सुरों से भाव पैदा हो, इसके साथ-साथ इस लिहाज से शब्दों की भी तालीम दी जाती है। बंदिश के अर्थ को समझकर अपना गायन प्रस्तुत करना, शब्दों को सुनकर जिस प्रकार के भाव मन में उजागर होते हैं उन्हें गाने की कोशिश करना ही भाव की अवतारणा का एक सरल माध्यम है।

4. समूह गान—एक समय इस घराने में "समूह गान" की प्रथा थी, जबर्दस्त महिमा थी। आगे वह एकल गान में आ गई, मगर फिर भी श्रोताओं को साथ में लेकर वह पुनः प्रारंभ हो गई। घराने में शिष्यों को इस प्रकार के दृष्टिकोण से परिचित कराते हैं। आहिस्ता- आहिस्ता अपने आचरण से अपने हाव-भाव से अपनी बंदिशों के जरिए जितना भी समझाया जा सके समझाया जाता है।

5. बंदिशें—मेवाती घराने में उस्ताद धग्गे नजीर खां साहब से लेकर अभी तक अनेकों बंदिशें बनी हैं। मेवाती घराने में रचनाएं अच्छे शब्दों को लेकर होती है। आघात तो इस घराने में होता ही नहीं। कुछ घरानों में आघात द्वारा 'सम' दिखाई जाती है। इस घराने में बिना आघात के 'सम' दिखायी जाती है। बंदिशों में 'सम' भी एक समर्पण भाव के साथ दिखाते हैं। बंदिशों का पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्ति से ताल्लुक है। इस पंथ में मंदिर के अंदर बालकृष्ण की जो सेवा होती है उसमें "बिहाग" गाया जाता है, उसमें समर्पण भाव होता है। संगीत रागदारी का ही नहीं संस्कृति का संस्कार भी इस घराने में देखने को मिलता है।

मेवाती घराना—गायन की विशेषताएं[18]

1. रागों का चयन—प्रचलित एवं कोमल स्वरों के रागों का प्रयोग किया जाता है।

2. स्वरोच्चार—आवाज बनाने की अपनी एक स्वतंत्र शैली है। मधुर आवाज से गायन। स्वर लगाने का अपना एक विशेष अंदाज है। गायकों का स्वर बेहद मधुर, नाजुक, कोमल प्रकृति का होता है।

3. चीज बंदिश प्रयोग अंग—ख्याल की बंदिश पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना अनिवार्य। घरानेदार

Scanned with OKEN Scanner

बंदिश गाने की प्रथा है। बंदिशे आध्यात्मिक भाव पूर्ण होती है।

4. राग विस्तार अंग—राग की बढ़त बंदिश की बढ़त से की जाती है। राग विस्तार में या आलापों में बहलावा, छोटी-छोटी गमक तानों के साथ बढ़त होती है। शब्दों के प्रसार के समय सरगम का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। सरगम का प्रयोग गमक के साथ होता है।

5. तान प्रस्तार अंग—तीनों सप्तकों में गमक युक्त ताने और सपाट तानों का प्रयोग किया जाता है। अलंकारिक तथा वक्री तानों का भी प्रयोग किया जाता है।

6. लय ताल अंग—विलंबित लय का प्रयोग किया जाता है। गायकी लय से एकरूप होती चलती है। प्रचलित ताल, एक ताल, झपताल, त्रिताल, आदि अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

7. आविर्भाव-तिरोभाव—राग के स्वरूप को स्पष्ट, शुद्ध रखने के उद्देश्य से आविर्भाव-तिरोभाव का प्रयोग कम ही किया जाता है।

8. मींड का प्रयोग—मींड का काम उसी राग के स्वरों को लेकर बड़ी सहजता से किया जाता है। उस राग में जो स्वर नहीं होते उन्हें टालते हुए मींड ली जाती है। यह विशेषता अन्य किसी घराने में दिखाई नहीं देती।

9. आघात—पूरे गायन में आघात कहीं नहीं होता। 'सम' भी बिना आघात के विशेष रूप से दिखाया जाता है।

10. प्रारंभ—"ऊँ अनंत श्रीं हरि नारायण तूं" या "वक्रतुण्ड महाकाय" गणेश श्लोक से राग के स्वरों में आलाप कर ख्याल प्रायः प्रारम्भ किया जाता है। शब्द को भाव के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया जाता है। यह विशेषता पं. जसराज के गायन में अधिक दिखाई देती है।

11. ठुमरी-भजन—ठुमरी के स्थान पर भजन गाया जाता है। घराने में समूह गान की प्रथा थी। बीच में यह लुप्त होकर पुनः श्रोताओं के साथ समूह गान किया जाने लगा है।

मेवाती घराने के प्रवर्तक संक्षिप्त परिचय[19]

उस्ताद घग्गे नजीर खां—उस्ताद घग्गे नजीर खां एक प्रसिद्ध प्रतिभावान मेवात के गायक भोपाल में थे। वे उस्ताद छोटे मोहम्मद खां के भतीजे और शिष्य थे। भोपाल के पं. नत्थूलाल उनके शिष्य थे। उनका जन्म 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। पं. नत्थूलाल अपने समय के शीर्ष गायक थे।[20]

पं. मोतीराम—पं. मोतीराम विख्यात गायक थे। वे भोपाल रियासत के दरबारी गायक थे। इन्होंने अपने मामा पं. नत्थूलाल से संगीत की शिक्षा ग्रहण की। उन्हें 1913 में हैदराबाद दरबार में निजाम के द्वारा आमंत्रित किया गया था किन्तु उनका अकस्मात ही निधन हो गया। तदुपरान्त उनके बड़े पुत्र पं. मनीराम उनके स्थान पर हैदराबाद के दरबारी गायक नियुक्त किये गये। उन्होंने अपने भाई ज्योतिराम के अतिरिक्त श्री चुन्नीलाल, धीरजलाल, मनीबेन और शंकरराव मेघे को संगीत की तालीम दी। मणिबेन का विवाह प्रसिद्ध बीनकार आबिद हुसैन के साथ सम्पन्न हुआ। [21]

पं. मनीराम—पं. मनीराम अपने समय के प्रसिद्ध शीर्ष गायक थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा अपने पिता पं. मोतीराम से प्राप्त की। उनके बड़े भाई पं. प्रताप नारायण तबला एवं गायन के सिद्धहस्त कलाकार थे। उनके पिता की मृत्यु के पश्चात उन्हें हैदराबाद दरबार का संगीतकार नियुक्त किया गया। कुछ समय पश्चात् वे शाहनन्द राज्य के दरबारी संगीतज्ञ बनाये गये। वे अपने अंतिम समय में कलकत्ता आकर बस गये जहां उन्होंने कई शिष्य तैयार किये। उनमें से प्रसिद्ध एवं विख्यात पं. जसराज, श्री बंशीलाल कपूर, भीकू भाई भास्वर, व्योम-व्योम चतुर्वेदी, डॉ. भारती पील्लै, डॉ. संतोष मुकर्जी, कृष्णकान्त रोहतगी, मुकुन्दलाल लाठ, लक्ष्मीबाई कृष्णमूर्ति, सोम तिवारी, पुरुषोत्तम जालान और सुकुमार दत्ता आदि।[22]

Scanned with OKEN Scanner

पं. प्रताप नारायण—बम्बई निवासी पं. प्रताप नारायण जी मेवाती घराना के गायक पं. मनीराम के लघु तथा पं. जसराज के ज्येष्ठ भ्राता थे। आपका समस्त परिवार कला और संगीत के प्रति समर्पित थे। पं. प्रताप नारायण मस्त स्वभाव के सुप्रसिद्ध गायक तथा शिक्षक थे।[23]

पं. जसराज—पं. जसराज का जन्म हरियाणा के हिसार में 1930 में हुआ। इनके पिता का असामयिक निधन इनकी अल्पायु में ही हो गया था। उन्होंने अपने भाई पं. प्रताप नारायण एवं पं. मनीराम से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ में उन्हें तबला वादन में विशेष रूचि थी। पं. प्रताप नारायण ने उन्हें उच्च श्रेणी का तबला वादक बनाया। पन्द्रह वर्ष की आयु में उन्हें देश के सभी प्रसिद्ध कलाकारों जैसे पं. रविशंकर, पं. डी.बी. पलुस्कर, पन्नालाल घोष, कुमार गंधर्व आदि के साथ संगत एवं मंच प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु कुछ कारणों से उन्होंने तबला वादन छोड़कर पं. मनीराम जी से परम्परागत गायन सीखना प्रारंभ किया। वे जल्द ही मधुर गायक बन गये और कलकत्ता के आकाशवाणी केन्द्र से उनके गायन का प्रसारण होने लगा। उन्हें 1952 में नेपाल के महाराजा के द्वारा आमंत्रित किया गया था। महाराजा ने उनकी बहुत प्रशंसा की तथा उन्हें 5000 स्वर्ण मुद्राओं से सम्मानित भी किया। उस समय उन्हें बहुत ख्याति एवं सम्मान प्राप्त हुआ। उनका विवाह प्रसिद्ध फिल्म निर्माता पं. व्ही. शांताराम की पुत्री मधुरा से हुआ। उनके भारत तथा विदेशों में कई एल.पी. रिकार्ड्स प्रसारित हुए एवं उन्हें कई देशों में आमंत्रित किया गया। उनका शिष्य और बेटा सारंगदेव प्रसिद्ध संगीतकार है जिसने दूरदर्शन के कई कार्यक्रमों जैसे उड़ान, मृगनयनी आदि सीरियलों में मधुर संगीत दिया है। पं. जसराज को कई सम्मानों से अलंकृत किया गया है। जिनमें "हरिदास सम्मान", दीनानाथ मंगेशकर सम्मान, बंगाल संगीत महाविद्यालय द्वारा "शुरेर गुरु", पद्म श्री 1975 में, संगीत नाटक अकादमी 1988, पद्म भूषण 1990 आदि। वे एकमात्र शास्त्रीय गायक हैं जिन्हें हार्वर्ड विश्वविद्यालय इंग्लैण्ड द्वारा भी सम्मानित किया गया है।[24]

मनी बेन—एक मधुर एवं विख्यात शास्त्रीय गायिका है जिनका विवाह जयपुर घराने के प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद आबिद हुसैन खां से हुआ।[25]

मेवाती घराने की शिष्य परम्परा[26]

(1) उस्ताद घग्घे नजीर खां (2) पं. नत्थूलाल (3) पं. चिमनलाल (4) पं. मोतीराम (5) पं. ज्योतिराम (6) पं. पूरनचन्द (7) पं. मनीराम (8) पं. प्रतापनारायण (9) पं. राजाराम (10) पं. जसराज।

पुरुष वर्ग

(1) डॉ. मुकुन्द लाट, जयपुर (2) हंसमुखलाल चावड़ा, अहमदाबाद (तार-शहनाई) (3) वेणुगोपाल स्वामी, वृन्दावन (कृष्ण कथाकार) (4) चन्द्रशेखर स्वामी, गुलबर्गा (5) गिरिश बजलवार, इलाहाबाद (6) शाङ्.र्गदेव पुत्र, शिष्य संगीत-निर्देशक (7) रतनमोहन शर्मा हरियाणा, मुंबई (8) संजीव अभ्यंकर, पुणे (9) परेश नाईक, बंबई (10) डॉ. अरविन्द थत्ते (हारमोनियम) (11) नीरज पारिख, अहमदाबाद (12) हेमांग मेहता बंबई (13) कृष्णकांत पारीख, अहमदाबाद (14) शिवदास, बेंगलूरकर (15) अंबेजोबाई (15) शाम गुंजकर, नांदेड़ (16) मुकेश देशाई (दिल्ली, अब अमेरिका) (17) राधारामण कीर्तने, बंबई (18) विजय साठे, पुणे (19) गिरीश अत्रे, सोलापुर (20) यशवंत क्षीरसागर, औरंगाबाद (21) कुमार बालानंद सिन्हा, उत्तरप्रदेश (22) खंडालकर, पुणे (23) रमेश नारायण, त्रिवेन्द्रम् (24) गणेश नारायण पंडित।

महिला वर्ग

(1) श्वेता जवेरी, अहमदाबाद (2) शोभा अभ्यंकर, पुणे (3) कला रामनाथ, मद्रास (व्हायलिन) (4) तृप्ति मुखर्जी, कलकत्ता (5) गार्गी सिद्धान्त, असम (6) दुर्गा (पुत्री), शिष्या (7) अनुराधा पौढ़वाल, बंबई (8) साधना सरगम (घाणेकर) बंबई (9) सीमंतनी ठकार, दिल्ली (10) नीरजा रटेरिया, कलकत्ता (11) आशा लोहिया, केवड़ा (12) उषा व्होरा, बड़ौदा (13) मरीना आलम, अमेरिका (14) श्यामली चक्रवर्ती, कलकत्ता अब बंबई (15) ललिता शर्मा, कलकत्ता (16) नाशिद कमाल, बांगलादेश (17) वसु सुंदरराज, अमेरिका।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ ग्रन्थ

1. ग्वालियर घराना–डॉ. अरूण महादेव बांगरे–पृ. 13
2. पूर्वोक्त
3. पूर्वोक्त
4. पूर्वोक्त, पृ. 14
5. पूर्वोक्त, पृ. 19
6. ग्वालियर घराना परम्परा विशेषताएँ–डॉ. जयन्त खोत (शोध-पत्र)
7. ग्वालियर घराना–डॉ. अरूण महादेव बांगरे–पृ. 21
8. रंग दर्पण पत्रिका, भोपाल–मई–2006–पृ. 39
9. मुक्त संगीत संवाद–साक्षात्कार–पं. जसराज–पृ. 309
10. पूर्वोक्त
11. पूर्वोक्त
12. पूर्वोक्त
13. पूर्वोक्त, पृ. 310
14. पूर्वोक्त, पृ. 311
15. पूर्वोक्त, पृ. 311
16. पूर्वोक्त, पृ. 312
17. पूर्वोक्त, पृ. 309-324
18. घराना 'द हेरीटेज मेवाती (एचएमव्ही, एचटीसीएस-850643/रागरंग-एफएमआर-065
19. म्यूजिशियन्स ऑफ इंडिया–अमलदास शर्मा, पृ. 240
20. पूर्वोक्त
21. पूर्वोक्त
22. पूर्वोक्त, पृ. 240-241
23. स्मारिका–अवध सांस्कृतिक कला केन्द्र, 1997
24. मुक्त संगीत संवाद–साक्षात्कार–पं. जसराज, पृ. 321
25. म्यूजिशियन्स ऑफ इंडिया–अमलदास शर्मा, पृ. 241

Scanned with OKEN Scanner

वर्तमान परिदृश्य में शास्त्रीय संगीत की छवि

श्रद्धा गुप्ता*

हर युग में परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे। पर क्या कभी सोचा है कि ये परिवर्तन होते कहाँ है? यदि इस प्रश्न की गहराई में जाए तो निश्चित ही ज्ञात होगा कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ये परिवर्तन मनुष्य के अन्दर होते हैं। मनुष्य की मानसिकता में, उसके नज़रिये में, सुविधाओं का भोग करने वाली उसकी इच्छाओं में जैसे-जैसे मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है वैसे-वैसे वह परिवर्तन एक परिवार, एक समाज, एक देश, काल, परिस्थिति में भी झलकने लगता है और अनायास ही एक नया रूप, एक नया आकार लेता जाता है। परिवर्तन ही तो वह शक्ति है जो चेतन को जड़ होने से रोकती है। नहीं तो, यह दुनिया कब की खत्म हो गई होती है।

हर युगों-युगों से परिवर्तन एक नवीन आकार लेता रहा है और फलस्वरूप नये-नये मापदंड बनते और बिगड़ते रहें हैं। हमारा भारतीय संगीत भी इससे अछूता नहीं रहा है। प्राचीन काल में जिसे मार्गी संगीत कहा गया वही आज शास्त्रीय संगीत के रूप में परिभाषित है, उपस्थित है। यकीनन इसके आकार-प्रकार में परिवर्तन आया है परन्तु इसकी आत्मा आज भी वही है। तभी तो इसे शास्त्रीय संगीत या Classical Music कहा गया है जिसका अर्थ है शाश्वत, अखंड, चिर-स्थाई। वास्तव में शास्त्रीय संगीत एक यात्रा है नाद से अनाहद की ओर। ज्ञात से अज्ञात की ओर। मार्गी संगीत का भी तो यही उद्येश्य रहा है—खोज। तो फिर यह प्रश्न उठता है कि परिवर्तन हुआ कहाँ है? पुनः यही उत्तर मिलता है कि हमारे दृष्टिकोण में, हमारी सोच में। हम अपने उद्येश्य से भटक रहे हैं न कि हमारा संगीत। हमने उसे एक चोला पहना दिया है और वह छटपटा रहा है, व्याकुल है इस चोले को उखाड़ फेंकने के लिए। इस चोले की चुभन से वह कराह रहा है, चीख रहा है।

आमतौर पर आजकल अक्सर यह कहा जाता है कि शास्त्रीय संगीत का पतन हो रहा है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि पतन हमारा हो रहा है न कि उसका। शास्त्रीय संगीत की स्थिति ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार दिन के समय आकाश में तारों की। अगर दिन में तारे न दिखे तो हम यह कतई नहीं कह सकते कि तारों का अस्तित्व ही नहीं है। आवश्यकता है तो अपने नज़रिये को बदलने की।

हर युग में सकारात्मक और नकारात्मक पहलू साथ-साथ चलते रहे हैं और जीवन के दर्शन को देखा जाए तो हम पाते हैं कि नकारात्मक पक्ष वह कारक है जो सकारात्मक पक्ष को अस्तित्व प्रदान करता है। यदि बुद्ध ने जन जीवन की पीड़ा को न देखा होता तो शायद उन्हें आत्म-ज्ञान ही नहीं होता और न ही वह दुनिया के समक्ष यह प्रस्तुत कर पाते कि—सत्य क्या है?

वर्तमान, जिसे हम वैश्वीकरण का युग कहते हैं यह भी सकारात्मक और नकारात्मक के बीच झूल रहा है। जीवन के हर पक्ष पर वैश्वीकरण का सदप्रभाव व दुष्प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। हमारा शास्त्रीय संगीत भी इसी कड़ी का एक अंश है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि शास्त्रीय संगीत में परिवर्तन नहीं हुआ है, इसकी

*शोध छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Scanned with OKEN Scanner

आत्मा में परिवर्तन नहीं हुआ है अपितु हमारी सोच में परिवर्तन हुआ है, हमारी संवेदनशीलता में परिवर्तन हुआ है। नतीजतन जहाँ वैश्वीकरण ने शास्त्रीय संगीत की पहचान को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए नए-नए मार्ग खोले हैं वहीं दूसरी ओर हमारे संगीत को बाजारीकरण की बेदी पर लटका दिया है। आज बहुतेरे संगीतकार, संगीत शिक्षक, संगीत शिक्षार्थी इसे आजीविका का साधन मात्र समझ रहे हैं। यह कोई दोष नहीं है, परन्तु हम भूल गये हैं कि इन सबसे परे यह एक दर्शन भी है, आत्मा का परमात्मा में विलीन होने का एक साधन भी है। वास्तव मे हम शास्त्रीय संगीत की आड़ में एक स्वांग रच रहे हैं जो बाजार के विज्ञापनों की भाँति बेचा जा रहा है। नाम, यश, धन, क्षणिक सफलता, श्रोताओं को आकर्षित करने की प्रवृत्ति तथा अति प्रयोगवादी रवैये के कारण कलाकार अपनी कला के साथ ही समझौता करने लगा है।

भले ही 'वैश्वीकरण' शब्द नवीन हो पर प्राचीन काल से ही यह अस्तित्व में रहा है। प्राचीन काल से ही हमारे संगीत पर वैश्वीकरण का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। तुरूष्क, तोड़ी, बोट्ट आदि राग नाम तथा रबाब जैसे वाद्य इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ख्याल पद्धति फ्यूज़न संगीत की ही देन है जो आज हमारे संगीत में इस प्रकार रच-बस गया है जिस प्रकार नीर-क्षीर का मिश्रण, जिसे हम अलग नहीं कर सकते। किन्तु आज फ्यूजन के नाम पर भारतीय संगीत और पाश्चात्य संगीत के साथ होने वाले प्रयोग एक आकर्षक उत्पाद (Product) की भाँति जन सामान्य के सामने प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनमें स्थायित्व ही नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि क्यों फ्यूजन संगीत की देन होते हुये भी ख्याल को शास्त्रीय संगीत की उपमा दी गई वहीं आज इन प्रयोगों को स्वयं वह संगीतकार शास्त्रीय संगीत की उपमा देने से कतराते हैं जो यह प्रयोग कर रहे हैं? यह एक विचारणीय विषय है। दुर्भाग्य की बात है कि वैश्वीकरण के इस युग में संगीत शिक्षण संस्थाओं एवं अत्याधुनिक संचार के माध्यम से संगीत जन-जन तक पहुँच तो रहा है परन्तु उचित एवं आदर्श रूप में नहीं। हमारे संगीत को आघात पहुँचाने वाले ऐसे बहुत से कारक हैं जिनका कारण भी हम हैं और निराकरण भी हम ही हैं। जिस प्रकार एक पौधा एक वृक्ष तभी बनेगा जब उसकी जड़ें मजबूत, लम्बी एवं गहरी होंगी वरना वह गिर जाएगा। ठीक उसी प्रकार हमारे संगीत की गहराई, दृढ़ता एवं व्यापकता को हमें नज़रअंदाज किये बिना उसे एक ऐसा स्वरूप प्रदान करना है जो मौलिक हो, स्थायी हो और अपने आप में शाश्वत हो।

हर युग में ऐसे युग पुरुष हुए जिन्होंने संगीत को जड़ होने से बचाया है। आज भी आवश्यकता है कि हम अपने संगीत को मात्र एक आकर्षक उत्पाद बनाने की चेष्टा न करें अपितु उसकी आत्मा तक पहुँचने का प्रयत्न करें।

Scanned with OKEN Scanner

संगीतशास्त्र की निधि : सामवेद

डॉ. नरेन्दनाथ झा*

भारतीय संगीत का बीज वेद-मन्त्र में निहित है। चारों वेद क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद छन्द में लिखित है। सामवेद तो पूर्ण रूप से संगीतशास्त्र पर ही आधारित है। वेद के मन्त्र गाये जाते थे। मन्त्र को ऋक् कहा जाता है तथा उसका गान सामगान कहलाया जाता था।[1]

मिथिला भारत के अग्रगण्य भू-भाग में से एक है, जहाँ प्राचीन काल से ही सामवेद का अपना पृथक् महत्त्व रहा है। यहाँ कोई भी कार्य सम्पादन वेद मंत्र पर आधारित होता है। यहाँ जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त संगीत का चर्चा आवश्यक होता है। पूजा-पाठ-यज्ञ-संस्कार तथा अन्यान्य सभी अशुभ-शुभ कार्य का प्रारंभ एवं अन्त वेद पाठ खासकर सामगान अवश्य रूप से होता है। सामगान में उदात्त, अनुदात्त, प्रेक्ष्व, विनत, कर्षण, अतिक्रम, अभिगीत आदि स्वरोच्चारण के निर्देश एवं लिपि अथवा संकेत होता था एवं उसी निर्देश के अनुसार सामगान होता था। सामगान के श्रीगणेश प्रणव 'ओम', उच्चारण से किया जाता है जो वर्त्तमान स-नि-रे स्वर संयोग से अभिव्यक्त हो सकता है।[2] मिथिलामे गायत्री जपका महत्त्व सबसे अधिक है। गायत्री सामगान का प्रदर्शन द्रष्टव्य है–

1 2 |3 । 2 2 | 3 । 2 3 | 2 | द्य
त त्स वि तु र्व रे ण्यं भ र्गो देवस्य धीमहि।
2 3 1 2 3 ।| 2
धियो यो नः प्र चोदयात् ॥[3]

सामवेद पाठ के मूल में तथ्य का होना अवश्यभ्भावी है। तथ्य से परे का पाठ वर्जित है। सामवेद में समान सम एवं विषम छन्द अथवा लय का प्रयोग होता था। अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती, विराट् आदि छन्द क्रमशः यशकामी, वीर्यकामी, पशुकामी, अन्नप्रार्थी आदि अनुष्ठान के लिए पाठ होता है।[4]

संगीत है क्या? उसका व्याख्या करना भी उचित होगा। संगीत शब्द का व्याख्या करने के पश्चात् उसमें तीन स्वरूप का दिग्दर्शन होता है जो क्रमशः गान, वादन एवं नर्त्तन है-

गीतं वाद्यं नर्त्तन च त्रयं संगीत मुच्यते।
मार्ग-देशी-विभागेन संगीतं द्विविधं मतम् ॥[5]

गीत में आत्माभिव्यंजन, अर्थशक्ति की विशिष्टिता तथा नाद-सौन्दर्य रहते हैं। काव्य और संगीत के शास्त्रीय नियम से पृथक् होकर गीत वैयक्तिक आत्मानिष्ठता को अभिव्यक्त करता है। इसमें रागात्मक वृत्ति कल्पना द्वारा भावोत्तेजना, संगीतात्मकता द्वारा रसानुभूति होता है। उसमें व्यञ्जना शक्ति अधिक एवं वर्णना शक्ति कम होता है।[6] जबकि संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों अनिवार्य है। संगीत में शब्द की अपेक्षा स्वर का विस्तार तथा संकोच होता रहता है। शब्द और अर्थ का स्थान उसमें कम होता है–स्वर के प्रसार में उसकी प्रधानता रहती है। संगीत में स्वर एवं लय के सामञ्जस्य तथा तालगति की महत्ता होती है।[7] गीत एवं लय प्रारंभ का रूप है तो संगीत विकसित रूप। गीत का अस्तित्व अकेला है तथा संगीत का मिश्रित।

वेद शब्द 'विद्' धातु में 'धञ्' प्रत्यय से बनता

*एम. ए., (मैथिली), साहित्याचार्य, (NET, J.R.F.–S R. F. - U.G.C. – Delhi)

Scanned with OKEN Scanner

है जिसका अर्थ होता है 'ज्ञान'[8]। सिद्धान्त कौमुदी में 'विद' धातु का पाठ चार अर्थों में किया गया है—

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेप्विदं क्रमात्॥[9]

उक्त सभी अर्थों मे विद् धातु से वेद शब्द निष्पन्न होता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी उक्त चारों अर्थों के वाचक विद् धातु से वेद शब्द को निष्पन्न माना है। उनका कहना है कि जिससे सभी मनुष्य सत्विद्या जानते है, प्राप्त करते है विचार करते है और विद्वान होते हैं अथवा सत्विद्या की प्राप्ति के लिए जिसमें प्रवृत्त होते हैं वे वेद कहलाते हैं।

विदन्ति-जानति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्ते विचारयति, विन्दन्ते लभन्ते सर्वे मनुष्याः सत्विद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।[10]

वेदों के लिए त्रयी शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ है कि वेद तीन है 'पुरूसूक्त के मन्त्र में भी तीन वेदों का ही नाम मिलता है—

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद यजुस्तस्मादजायत॥[11]

वस्तुतः वेद चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। अथर्ववेद में मारण—मोहन-उच्चाटन सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन किया गया है। सम्भवतः यह विषय उन समान द्वारा अनाद्वत रहा हो अतः इसकी गणना वेद के अन्तर्गत न की गई हो।

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का 'विशिष्ट स्थान है। भगवान श्री कृष्ण ने वेदों में सामवेद को ही अपना स्वरूप मानकर इसकी महत्ता की घोषणा की है (वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः)।[12]

शौनक ने तो यहाँ तक कहा है कि जो साम को जानता है वही वेद के रहस्य को भी जानता है। ऋग्वेद कहता है कि जो व्यक्ति जागरणशील है उसी को साम की प्राप्त होती है "योजागार तमु सामानि यन्ति"[13] अथर्ववेद में साम को परब्रह्म को लोकभूत माना गया हैं। यामानि यस्य लोमानि।[14]

सामगायन की परम्परा अर्वाचीन न होकर प्राचीनतम है। जहाँ तक की ऋग्वेद में भी सामगायन की परम्परा विद्यमान रही है। उस समय यज्ञानुष्ठान ऋत्विज उच्च स्वर में साम गायन करते थे। यही साम-गायन संगीत शास्त्र की आधारशिला है।

साम का अर्थ है गायन। ऋचाएँ जब विशिष्ट गान पद्धति से गायी जाती है तो उसे साम कहते है। जैमिनीय सूत्र में गीति को ही साम की संज्ञा प्रदान की गई है। "गीतिषु सामाख्या"।[15] बृहदारण्यकोपनिषद में साम शब्द की व्युत्पति इस प्रकार की गई है, साका अर्थ है ऋक् और अम् का अर्थ है स्वर। इस प्रकार ऋक् से सम्बद्ध स्वर प्रधान गायन को साम कहते हैं सा च अमश्चेतितत्साम्नः सामत्वम्। तया सह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः यत्र वर्वते तत्सामः।[16]

इस प्रकार जो गान भिन्न-भिन्न स्वरों में ऋचाओं पर गाये जाते है उसे साम कहते हैं। छन्दोग्योपनिषद में बताया गया है कि वाणी का व्यवहार ऋक् में निहित है और ऋक् का सार साम मे सन्निहित है। यदि ऋक् वाणी है तो साम उसका प्राण है। साम की गति स्वरों में निर्दिष्ट हुआ करती है, स्वर ही साम का सर्वस्व है या प्रधान अंग है, "ना साम्नो गतिरिति स्वर इति हो वाच।"[17]

इस प्रकार विशिष्ट स्वरों के सन्निवेश का नाम साम है। साम का अर्थ गान पर स्वराधिष्ठान के रूप में जब इसका सम्बन्ध ऋचाओं से होता है तब वह गेय का बोधक होता है। साम शब्द वस्तुतः गान का द्योतक है। इसीलिए ऋग्वेद के समस्त गेय मंत्रों के लिए साम का प्रयोग होने लगा है। जिन ऋचाओं के ऊपर ये साम गाये जाते थे उनको सामयोनि के नाम से अभिहित किया जाता रहा है।[18]

सामवेद के ऋत्विज का नाम है—'उद्गाता'। उद्गाता ऋग्वेद की ऋचाओं का शास्त्रीय तथा परम्परागत रूप से गायन करता था। उद्गाता के उपयोग के लिए इन ऋचाओं का संकलित रूप सामवेद है।[19] सामवेद के दो भाग हैं आर्चिक तथा गान। इसमे आर्चिक शब्द का अर्थ ऋक् समूह है। सामवेद में इन मन्त्रों का स्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि ये गायन के लिए निहित हो ये गेय मन्त्र गान संहिताओं में संकलित है। इसमें प्रथम पांच प्रपाठकों की ऋचाएँ ग्राम गान से अभिहित हैं तथा षष्ठ प्रपाठक की ऋचाएँ 'आरण्यगान' नाम से अभिहित है।

गान मन्त्रों के चार प्रकार है—ग्रामगान, आरण्य-गान, ऊहगान, और उह्यगान। ग्रामगान को वेयगान या प्रकृति गान भी कहते है। पूर्वार्चिक का प्रथम

पाँच अध्याय ग्रामगान के अन्तर्गत आता है। आरण्य गान को रहस्य गान भी कहते हैं। ऐसे गान का स्वरूप आरण्य संगीत की स्वर लहरियों से निर्मित हुआ है; इसलिए इसका नाम आरण्यगान पड़ा। ऊहगान और उह्यगान का आधार ग्राम गान और आरण्यगान है। "उहगान ग्रामे गेयवत् उह्यगान-मारण्यगेयवत्' ।[20]

वैदिक काल में यज्ञादि के शुभ अवसरों पर होता के द्वारा गायन करने के लिए जिन ऋचाओं का संग्रह किया गया उसे ही साम कहते है।[21] होता द्वारा ऋचाओं के गानों का निम्न प्रकार से देवताओं की स्तुति किये जाते हैं–

अग्न या याहि वीतये गृणानो हव्य दातवे।
नि होता सत्सिवर्हिषि ॥[22]

इन मन्त्र के द्वारा होता कहते हैं कि–"हे सर्वश्रेष्ठ नेता हम उपासकों के जीवन में प्रगति देने के लिए हमारे हृदय में प्रकट होएँ, तथा हमारे सब कार्यों में व्याप्त हो जाने के लिए हमें नया आध्यात्मिक जन्म देने के लिए, हमसे कान्ति पैदा करने के लिए, हमारे दुर्गुनों को परास्त करने के लिए, हमारे पापों को भस्म कर देने के लिए, आग गुरुवत उपदेश करते है दानयोग और भोगयोग वस्तुओं को देने के लिए आप अनादि गुरु है। आप अपनी ओर उपासक का आह्वान करते दाता और चराचर के अत्ता हो, आप हमारे हृदयासनों पर निरन्तर विद्यामान हो।

त्वमग्ने यज्ञतो होता विश्वेषांहितः।
देवोभिर्मानुषे जने ॥[23]

हे सर्वाग्रणी आप यज्ञिय विचारों और यज्ञिय व्यवहारों के ज्ञानदाता हो तथा सबका हित करते हो और उत्पन्न प्रत्येक मनुष्य में अपनें दिव्य गुणों समेत निहित हो।

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमुतये महे।
देवो हव्यसि नो दृशे ॥[24]

हे प्रकाश स्वरूप जगन्नेता अन्धकार को भगाने वाले सूर्य के सदृश अंधकार को भगाने वाले अपने ज्योतिर्मय स्वरूप को हम उपासकों के लिए प्रकट कीजिए, ताकि हमारी महान रक्षा हो सके। आप हमारी ज्योतिर्मय देव है, अंतर्दृष्टि के लिए। इस प्रकार होता क्रमशः विभित्र देवताओं के लिए ऋचाओं का गान किये हैं जिसे सामवेद के अन्तर्गत रखा गया है। इसी प्रकार इन्द्र की स्तुति में कहते हैं कि–

यस्ते ननग्वं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमोमदः।
तेनू नुनं मदे मदेः ॥[25]

हे अनन्त कर्मों अनन्त प्रज्ञाओं वाले, आपका जो निश्चय ही अत्यन्त यशस्वी आनन्द रस है, उस द्वारा आप निश्चय ही सदा आनन्दित रहते हैं उस द्वारा हमें भी आनन्दित कीजिए।

त्वमिन्द्रि वलादधि सहसो जात ओजसः।
त्वग्वं सन्वृषन्वृषेदसि ॥[26]

हे परमेश्वर आप ध्यान के बल से मन के साहस से और आत्मा के तेज से प्रकट होते हैं। हे शक्ति की वर्षा करने वाले आप वास्तव में शक्ति वर्षा करने वाले हैं।

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्तिवर्हिरानुषक।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥[27]

जो उपासक जगदग्रणी को अपनी आत्मा में प्रदीप्त करते है और सदा युवा परमेश्वर जिन उपासकों का सखा बन जाते है, वे उपासक निरन्तर इस परमेश्वर के लिए हृदयासन बिछाए रखते हैं, यह निश्चित है।

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानिमानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥[28]

मनुष्य सम्बन्धी इन सब धनों का ब्रह्माण्ड के स्वामी में पूर्ण रूप से समर्पित करने की इच्छा करने वाले हम उपासक प्रभु की भक्ति करते है।

देवो वो द्रविनोदाः पूर्ण विवष्ट वाचिसम।
उद्वा सिञ्चध्व मुपवावृणध्वमदिष्द
वो देव ओहते ॥[29]

धनों के देने वाले अग्निदेव हवि से सम्पन्न और सब ओर से सिञ्चित तुम्हारे स्त्रक की भी कामना करे और होता के चमस को सोम से सम्पन्न करें। फिर वे अग्नि तुम्हारी हवि का हवन करें।

अग्निनरो दीधितिभिरन्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
*दूरे दृशं गृहपतिमथव्युम् ॥*30

Scanned with OKEN Scanner

अत्यन्त यशस्वी दूर से ही दर्शनीय गृहरक्षक एवं हाथों से उत्पन्न किए अग्नि को ऋत्विग्गण अंगुलियों से प्रकट करते हैं।

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमधिगो।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥[31]

हे अग्ने तुम हमे ओजस्वी धन लाकर दो तुम्हारी गति कभी नहीं रूकती। तुम हमें स्तुत्य धन से सम्पन्न करो और अन्न के मार्ग को प्रशस्त करो।

इस प्रकार सामवेद गीति प्रधान वेद है, सामगानों द्वारा उपासक में सामवेद की भावनाओं को प्रतिष्ठित किया गया है। संगीत का जीवन में बड़ा ही महत्त्व है। गद्य भाषाओं के द्वारा श्रोताओं पर उतना प्रभाव नही पड़ता, जितना कि संगीत द्वारा पड़ता है भक्तिमय सात्विक गानों द्वारा चित्त की सात्विक वृत्तियों को जागृत कर उसमें एक तन्मयता बनी रहती है अर्थात चित्त की सात्विक वृतिधारा के रूप में प्रवाहित होती रहती है, जिससे सात्विक चित्तवृत्ति प्रभाव में राजरसिक और-तामसिक चित्तवृत्तियों का प्रवेश नही हो पाता है। जैसे निःस्तब्ध जलाशयों में जल पृष्ठ की समता होती है, उसी प्रकार संगीत द्वारा चित्तवृत्ति में समता बनी रहती है। इसी समता की दृष्टि से सम्भवतः सामवेद को साम कहा गया है।[32]

इस प्रकार हम कह सकते है कि गान अर्थात संगीत का प्राण सामवेद ही है और गान का उद्गम स्थान सामवेद है तथा साम गान का प्राण स्वर है, साम गान का प्रारंभ भी ओम स्वर से होता है ओमिति "सामान गायन्ति" और साम का अवसान भी इसी स्वर से होता है, इन्हीं स्वरों के आधार पर साममन्त्रों का गायन होता है। इन्हीं गीतात्मक मन्त्रों का सामवेद में संकलन किया गया है।

सन्दर्भ-संकेत

1. संगीत प्रदीप—बुलबुल मित्रा-पृष्ठ संख्या-5.
2. स्वामी प्रज्ञानन्द, भाग-2, पृष्ठ संख्या—28.
3. तत्रैव—पृ. 30.
4. भारतीय संगीतेर इतिहास, भाग—2 पृ. सं. 10.
5. संगीत दर्पण, भूमिका, पण्डित दामोदर।
6. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डॉ. तेजनारायण लाल, पृ. 215-16.
7. तत्रैव, पृ. 215.
8. वैदिक साहित्य का इतिहास—वि. प्र., पृ. सं. । डॉ. पारसनाथ द्विवेदी।
9. सिद्धान्त कौमुदी—भट्टोजी दीक्षित चुर्गादिगण पृ. सं. 421.
10. ऋग्वेद—भाष्य भूमिका, प्रकाशक—वैदिक शोध संस्थान, पूना—1937 ई. ।
11. ऋग्वेद—10/10/9 प्रकाशक—तत्रैव।
12. गीता-वेदव्यास—10-22 पृ. सं. 33, गीता प्रेस, गोरखपुर सं-2063.
13. ऋग्वेद 5/44/14, प्रकाशक—वैदिक शोध संस्थान, पूना, 1937 ई. ।
14. अथर्ववेद 9/6/2 प्रकाशक—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
15. जैमिनी सूत्र—2/1/36 संपादक—शास्त्री।
16. बृहदारण्योपनिषद—1/3/22 प्रकाशक—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
17. छन्दोग्योपनिषद—1/84. प्रकाशक—तत्रैव।
18. सामवेद—सायण भाष्य, भाग-1, पृ. 22, सम्पादक—पं. रामस्वरूप शर्मा गौड़ प्रकाशक—चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2005 ई. ।
19. वैदिक साहित्य का इतिहास, वि. प्र., पृ. सं. 88 डॉ. पारसनाथ द्विवेदी।
20. पुष्प सूत्र, भाष्य 8/87.
21. सामवेद, सम्पादक—पं. श्री राम शर्मा आचार्य, प्रकाशक—संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब (वेदनगर), बरेली, उ. प्र. 243003, संस्करण-2005 ई. ।
22. सामवेद, पूर्वार्चिक, अ. का. ऋ. सं. 1,
23. तत्रैव, ऋ. सं. 2.
24. तत्रैव, ऋ. सं. 10.
25. तत्रैव, ऐन्द्र काण्ड, ऋ. सं. 2.
26. तत्रैव, ऋ. सं. 6.
27. तत्रैव, ऋ. सं. 9.
28. तत्रैव, आरण्य काण्ड, ऋ. सं. 8.
29. तत्रैव, मन्त्र सं. 6.
30. तत्रैव।
31. तत्रैव।
32. सामवेद-भूमिका, सं. रामस्वरूप शर्मा गौड़, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, संस्करण-2005 ई.।

Scanned with OKEN Scanner

संगीत शास्त्र में नाद का महत्व

अर्चना वर्मा

धर्मार्थकाममोक्षणाभिदमेवैकसाधनम।
नादविधां परां लब्ध्वा सरस्वत्याः प्रसादतः॥
कम्बलाश्वत्तरौ शम्भो कुंडलतां गतौ।
पशुः शिशुर्मृगोवाडपि नादेन परितुष्यति॥

नाद भारतीय विचारधारा और निरूपण का एक प्रमुख विषय रहा है। वैदिक वाक तंत्रोक्त नाद, दर्शनोक्त शब्द, स्पंद, ध्वनि एंव व्याकरणोक्त स्फोट उसी के विभिन्न नाम रूप और विवेचन है।

शब्द ब्रह्म के रूप में वह सृष्टि के विकास की सर्वप्रथम क्रिया और स्फूर्णा मानी गयी है।

वाणी के विभिन्न रूप परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी में उसी का क्रमबद्व वैज्ञानिक विकास और अवस्थापन निदर्शित है। संगीत शास्त्र का प्राण, ध्वनियो का मूल स्त्रोत ही नाद माना गाया है। तंत्रो आगमों में शिव और शक्ति के मिलनोदभव महाबिंदु से अणुत्तर लिपि तक इस प्रपंचात्मक सृष्टि का मूल ही नाद और बिंदू का रहस्य है। योग साधना में नादोपासना ही मुख्य है। वैयाकरणों ने अपने स्फोट सिद्वांत मे इसी का सारगर्भित पर अत्यंत गूढ विवेचन किया है। यही वैदिक वाक् है। इस प्रकार नाद हमारे दैहिक, मानसिक, आध्यात्मिक जीवन का एक प्रधान अंग और विवेच्य विषय रहा है।

नाद को भारतीय आचार्यो ने ब्रह्य स्वरूप धोष विशेषः कहा है। सभी धर्मो और साधना प्रणालियों में नाद का महत्व और वैशिष्टय स्वीकार किया गया है। ईसाई, इस्लाम, यहूदी, पारसी सभी धर्मो में नाद की व्याख्या मिलती है। इंजील के अनुसार 'शब्द' ही प्रारंभ में था, ईश्वर ही शब्द था। पाइथागोरस ने इसे ही 'म्यूजिक आप दि स्फियर्स' व 'लैग्वेज ऑफ दि सोल' कहा है। यही नाद..ए..आसमानी" है .. धुन। पर नाद का जितना गूढ विवेचन भारतीय दार्शनिकों और ऋषियों नें किया है, वह अत्यंत दुर्लभ है। नाद ही सृष्टि का आधार है निर्गुण, अपरिवर्तनशील, देश कालातीत।

आत्मदर्शन के लिए और आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिए नाद साधना व नादानुसंधान उत्कृष्ट उपाय है। मंत्र जप में सर्वातिशायी महिमा नाद की ही है। नाद का संबंध जिस प्रकार जप और मंत्र से है उसी प्रकार संगीत से भी। उसे पाणिनीय शिक्षा में "कठमन्युषुतु धोषा : स्यु संवृत्रानाद भागिनः" कहा गया है। संगीत दर्पण में उसें प्राण स्वरूप कहा गया है। और संगीत दामोदर में नाद रूप पर ज्योतिनार्दरूपी परं हरिः कहा है। ब्रह्य की पराशक्ति का ही रूप नाद है। अंलकार कौस्तुभ के अभिमत में :

नागेरूद्वर्व हृदेस्थानान्मारूतः प्राण संज्ञकः
नदति ब्रह्यरनध्रान्ते तेन नाद प्रकीर्तितः।

भर्तृहरिः भर्तृमित्र पंतजलि ने नाद का 'नित्यत्व' स्वीकार किया है। नाद ही प्रणव का रूप है। सभी वर्ण उससे प्रस्फुटित होते है। समूचा ब्रह्यांड ही नादात्मक है। नाद सूक्ष्म ध्वनि प्रवाह को सुनने से समझने की क्षमता का विकास है। नाद अग्नि और प्राण के संयोग से उत्पन्न होता है। नाद के बिना न ज्ञान संभव है और न शिवत्व।

नाद से तीनों देवों की सम्मिलित उपासना होती

*शोध छात्र

Scanned with OKEN Scanner

है। योगियों की तो अवधारणा रही है कि "एको नादात्मकों वर्णः सर्ववर्णा विभागवान।" "नाद से योगी दिव्य देह वाला होता है और उसमे दिव्य गंध रहती है।" इसी से वराह श्रुति के अनुसार नादोपासना सभी साधनाओं का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

नाद में 'न' प्राण का 'द' अग्नि का सूचक 'आ' दोनो की संधि का। शरीरस्थ यह नाद दो बिंदुओ का योजक है। ऊर्ध्व बिंदु और अधो बिंदु में ऊर्ध्व बिंदु सहस्त्रार में और अधो बिंदु मूलाधार में स्थित है। इनके मध्य में सभी गौण बिंदु है। जिन्हे चक्र कहते है। इन समस्त बिंदुओं का योग साधना नाद के द्वारा ही सपन्न होंता है। यह नाद सहस्रार से मूलाधार तक व्याप्त है।

विकृतिया के नष्ट होने पर श्वास प्रश्वास अंतर्मुख होकर नाद में ही परिणति लाभ करते हैं। यदि केश की नोक के सौ हजार भाग करें तो उसका फिर भाग करने पर जो आधा भाग होगा, वह नाद का स्वरूप होगा। यही नाद मंत्र चैतन्य का हेतु है। स्व संभुत नाद स्थूल से सूक्ष्म सूक्ष्मतर बन जाता है। योगी की चित्तावस्था बाह्य जगत से हटकर आत्मशक्ति में ही केद्रित हो जाती है। यही योगी अपने स्वभाव के स्रोत में बहकर मुक्ति लाभ करता है।

परांचिरवानि व्यतृणत स्वयम्भू
तस्मात परा पश्यन्तिनान्तरात्मन्
कश्चित धीरः प्रत्यागात्मनैक्षद
आवृतचक्षुरमृतेत्वमिच्छन ॥

मन इंद्रियों की सहायता से विषयोन्मुख होता है। उनसे विमुख होने के लिए 'आवृत चक्षु' का होना आवश्यक है। यही श्रुति के अनुसार मन की प्रतिबोध अवस्था है। साधना में मन एकाग्र एवं स्थित होकर स्त्रोतपन्न होता है। तब नादानुसंधान की ओर दृष्टि रखनी पडती है। मूलाधार और सहस्राधार के मध्य सुषुम्ना में प्रवाहित मन की स्थिरता से विचित्र नाद ध्वनि सुनायी पड़ती है एवम् आत्मज्योति का दर्शन क्रमशः होता है। इसी स्त्रोत में जप भी आत्मज्योति का दर्शन और प्राण की यह सम संगति ही भव और भाव के बीच ऐक्य स्थापन करती है।

नाद एंव ध्वनि भूतःक्व चिदम्येति विंदुनाम। नाद ब्रह्म परामात्मा की वाणी सुनता है। भाषा परिच्छेद में ध्वनि रूप। यही नाद का सूक्ष्मतर होता है, मध्यमा नादश्च सूक्ष्मत" भाषा परिच्छेद में कहा गया है।

शब्दो ध्वनिश्च वर्णाश्च मृदंगादिभवो ध्वनिः
कंठसंयोग जन्यमानो वर्णादयः कादयो मताः

संगीत दर्पण के अनुसार स्वंय सरस्वती भी नाद समुन्द्र का पार नही पा सकती। नादाप्देस्तु पंर पांर न जानति सरस्वती। "संगीत दर्पण" के अनुसार प्राण ही नाद है। सभी वर्ण उसमें परिस्फुट होते है। यह जगत ही नादात्मक है आहत और अनाहत उसके दो भेद है। संगीत का सारा शास्त्रीय विधान नाद की सता पर ही आश्रित है।

'संगीत दामोदर' के अनुसार नादोत्पत्ति इस प्रकार है–

आकाशाग्निमरूज्जातो नाभेरूर्ध्व सम्यमच्चरन्
मुखेडतिव्यक्तिमायाति यः स नाद इतीरितः
स च प्राणिभवोडप्राणि भवश्चोभयसंभवः

आकाश स्थित आग्नि से मरुत निकलता है। यही मरूत नाभि देश से ऊर्ध्व देश में संचिरत होकर, जब मुख में सम्यक रूप से प्रस्फुटित होता है, तब उसे 'नाद' कहते हैं'। वहिह मारूत संयोगान्नादः।" मूलतः यह तीन प्रकार का है–

प्राणिभवः–देहादि से उत्पन्न
अप्राणिभवः–वीणादि से उत्पन्न
उभयसम्भव–वंशादि से उत्पन्न

इस नाद के बिना न गीत संभव है, न स्वर, न राग। बिना नाद के ज्ञान नही हो सकता, नाद शक्ति के बिना शिव भी असमर्थ है, 'न नादेन बिना ज्ञानं न नादेन बिना शिवः। वही संगीत में धातु मात्रा को ही गीत कहते है। धातु नादात्मक और मात्रा अक्षरात्मक होती है। नाद ही गीत का मूल कारण है, गीत नादात्मकम। ध्वनि की इच्छा से अंतःकरण चालित होता है और उससे शरीरस्थ अग्नि चोट खाकर भभक उठती है। उसी उद्दीप्त अग्नि से ब्रंह्म-ग्रंथि स्थित वायु क्षुब्द होकर उर्ध्व पथ मे गमन करती है और वही ध्वनि, नाद या श्रुति है। हृदय से उत्पन्न नाद को मंद्र गले से उत्पन्न नाद को तार कहते है। संगीत रत्नाकर के प्रमाण से 22 प्रकार के

Scanned with OKEN Scanner

नाद निकलते है। जहाँ जप साधना में अनाहत नाद की प्रधानता है, वही संगीत में आहत नाद की प्रत्येक राग की द्विविध विचारणा की गई है।

आचार्य मतंग ने संगीत शास्त्र में नाद के सगुण और निर्गुण दोनों रूपो की व्याख्या करते हुए कहा है कि नाद के बिना न गीत है, न स्वर है, न नृत्य है, संपूर्ण जगत का आंनद ही नाद है, इसी प्रकार पार्श्व देव ने भी स्वर, राग, वाद्य ताल को नादमय और नादजन्य माना है। शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में महर्षि पतंजली का अनुसरण करते हुए नाद को शब्द ब्रंह्म मानकर नाद तनु को प्रमुखता दी है। यही मत सिंह भूपाल का भी है। स्वरेण संल्लीयते योगी स्वरेण सन्धेद योगम अर्थात संगीतमय स्वर साधना है, स्वर ही विश्व का प्राण है, नाद संहिता में कहा है कि सचराचर जगत में पशु पक्षी कीट सब में गीत भाव विधमान रहता है।

आज तो संगीत से धेनु का अधिक दुग्ध देने का प्रमाण सर्वविदित है। हरिण तो संगीत के कारण ही आत्म विस्मृत हो अपनी नाभि खोज बैठता हैं। समुन्द्र का शेरो जंतु का संगीत प्रेम प्रसिद्व है। फ्रांसीसी प्राणी शास्त्री वास्तेव अनन्द्रे ने अपने अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राणियों को संगीत से प्रसन्नता व उत्साह प्राप्त होता है। भर्तृहरि ने स्पष्ट कहा "संगीत कला विहीनः साक्षात पशु पुच्छहीनः।" आज जापान के विधालयों में सदाशयता व अनुशासन के लिए संगीत की शिक्षा दी जाती है।

आचार्य अभिनवगुप्त का कथन है कि इस शरीर में संवित् (चेतना) में प्रथम स्पंद (चेष्टा, गति अथवा कंपन) से प्राण (वायु) ही उच्चासना द्वारा (अक्षर) इत्यादि के विशिष्ट रूप से रहित जिस वाक् का जन्म होता है वह नाद रूप होती हुई चित् की हर्ष, शोक आदि वृत्तियों अथवा विधि ओर निषेध इत्यादि अभिप्राय को उस कार्य के संकेत के द्वारा अथवा तादात्मय के द्वारा श्रुति कुहर तक पहुँचा देती है।

भारतीय चिंतको ने प्राण सप्तक विज्ञान में प्राण की जिन सप्त अवस्थाओं का विवेचन किया है, पाणिनीय शिक्षा के अनुसार वे इस प्रकार है, तेजस, वायु, श्वास, नाद, श्रुति, स्वर, वर्ण। आत्मा बुद्वि से संयुक्त होकर मन का अर्थो के साथ विवक्षापूर्वक संयोग कराती है। मन कायास्थित अग्नि प्रताड़न करता है और वायु क्षुब्धं। वायु उर प्रदेश में मंत्रादि स्वर उत्पन्न करती है जो छंदोमयी वाणी को समुत्पन्न करती है। कंठ में माध्यनिन्दन रूप, मध्य में त्रिष्टुप रूप तथा शीर्ष स्थान में तार रूप। वही वायु मस्तिष्क में आकर पुनः प्रताड़ित हो ओष्ठ में आती है जहां से वणोत्पत्ति होती है। कला, स्थान, प्रयत्न तथा अनुप्रदान इन पाँच रूपों मे वर्ण की उत्पत्ति का ज्ञान अभिष्ट है। मन से कामना का उदय होता है, कामना की पूर्ति व्यापार पर निर्भर है, व्यापार का आधार कायाग्नि है। मन की कामना का प्रथम आघात इसी कायाग्नि पर होता है, जिससे वह क्षुब्ध होकर उर्ध्व संचरण करती है क्योकि प्राण और कायाग्नि दोनो तेजोमय है, यही वायु है। यही वायु श्वास में परिणत हो जाता है यही रव है, जो प्राण की तीसरी अवस्था है। जब शिरोगुहा में पहुँचता है तब प्रतिध्वानित होता है, वह प्रतिध्वनित अवस्था ही 'नाद' है नाद व्याप्त होकर (श्रुति) बन जाता है, जो आगे वर्णो की प्रतिष्ठा करती है। नाद का अभ्यांतर रूप ही श्रुति है और यह श्रुति-भाव आगे बढ़कर ब्रंह्माकाश में स्थित होकर स्वर बन जाता है। यही स्वर संगीत का आलाप है। उर कंठ और शिर के साथ टकराकर आघात-प्रत्याघात में यह वर्ण बन जाता है, जो प्राण की सप्तम अवस्था है। इस प्रकार वाक् शक्ति ही प्राण शक्ति है। यही प्राण का सप्तक विज्ञान है।

शिव जब शांत और निष्कल गुणातीत अवस्था से सृष्टि रचना में उन्मुख होते है, तो अव्यक्त से व्यक्त की ओर उनकी इस इच्छात्मक क्रिया के उच्छन्न या स्फुरण को ही नाद कहते है।

इस प्रकार यह नाना रूपात्मक जगत शिव की इच्छा का ही परिणाम है, उनमें ही इसकी स्थिति और लय है। सर्वभूतात्मक सृष्टि शिव शक्ति प्रकाश-विमर्श की ही विभक्ति है। नाद और विंदु इस सृष्टि प्रक्रिया के मूल स्त्रोत है। शक्ति का यह अजस्त्र स्त्रोत जगत के अणु-परमाणु में निरतर प्रवाहमान है, उसी प्रकार नाद भी कुंडलिनी और उसकी जागृति ही स्वात्म शक्ति का साक्षात्कार कराती है। नादोपासना में इस जागृति का विभिन्न

Scanned with OKEN Scanner

चक्रों के भेदन का, नादांत और उससे परे भूमि का वर्णन किया गया है। तंत्र ने कुण्डलिनी को ही शक्ति पीठ मनोहरम् कहा है, भास्कर राय ने इसी को 'शब्द ब्रम्हमयी विभु' कहा। यह श्रवण का विषय नही है, 'अश्रोत विषय' है यही परा पश्यंती, मध्यमा और वैखरी का उद्गम है। यथा–

चैतन्य सर्वभूताना शब्दब्रम्हेति में मति।
तत प्राप्य कुण्डालिनीरूप प्राणिना देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाडविर्भवति गधपद्यातिभेदतः।

नाद सर्व प्रथम पंश्यती बनता है, तदुपरांत मध्यमा और अन्त में वर्णात्मक रूपवैखरी। वाक् के चार रूपों में ही ब्रह्म शब्द की उपासना की जाती है। शब्द..ब्रह्म में परिपूर्णता प्राप्त कर ब्रह्म, आत्म, दर्शन, दिव्य ज्ञान और अद्धयत्व का बोध होता है ... शिव के सामरस्य का। यही शास्त्रोक्त भूमा तत्व है, जिसके लिये श्रुति कहती है कि 'भूमा ही अमृत है' नाद साधना में वाक, मन और प्राण की एकान्विति है। वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार ये तीनों ही ऋक, जयुः और सामवेद है। इसी से वाङ्मे मनसिप्रतिष्ठिता, मनोमे वाचि प्रतिष्ठितम्। ॐ आविरावीर्यएधि ॐ आविरामीर्ध एधि मन और वाक् की एकता भाव और भव की एकता है। यथा मनसा मनुते तथा वाचावदति जैसा मन वैसी ही वाणी। चैतन्य रूप परमात्मा आविः है, स्वतः प्रकाशमान। किंतु हमारे निकट वे स्वतः अथवा परतः किसी प्रकार प्रकाशमान नही इसीलिए आवीः एधि मेरे निकट स्वं प्रकाश तत्व प्रकाशित हो। यही नादोपासना और नादानुसंधान है। नाद बिंदुपनिषद में स्पष्ट कहा है। बिना दृश्य के ही जिसकी दृष्टि स्थिर है, बिना प्रयत्न के ही जिसकी प्राणवायु स्थिर है, बिना किसी अवलंब के ही जिसका मन स्थिर है, वह योगी प्रणव के अंतवर्ती तुरीय स्वरूप नाद में ही स्थित है। शंकराचार्य ने योग तरावली में नादानुसंधान की स्तुति में कहा है–

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां मन्मेह तत्वपद लयानाम
भवत्प्रसादात पवनेन साकं
विलीयते विष्णुपदे मनो मे॥

इति ॐ तत् सत्।

Scanned with OKEN Scanner

सूचना प्रौद्योगिकी वातावरण में हिन्दुस्तानी संगीत की व्यावसायिक सम्भावनाएँ

डॉ विवेक फड़नीस

विश्व की सांस्कृतिक परंपरा में भारत अग्रणी है। ऐश्वर्य, शालीनता, उत्कृष्टता का उद्घोषक भारत कई हजार वर्षों की कला व संगीत के अजर-अमर प्रतीकों का भंडार है। हमारे देश को सांस्कृतिक उत्कण्ठा ने राजनीति के कई उतार-चढ़ाव देखे। विदेशी अधिपतियों के द्वारा देश की संपदा का लूटन देखा, व्यापार की आंख-मिचौनी देखी, पतन-अभ्युदय का ज्वार-भाटा देखा फिर भी देश की कला पनपती रही। प्रत्येक आज-कल के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। यदि हमें आज को समझना है तो कल का सम्यक अध्ययन करना होगा। यही बात हिन्दुस्तानी संगीत में चरितार्थ होती है। इतिहासज्ञ जानते हैं कि लगभग एक सहस्र वर्षों तक भारत में विदेशी शासन रहा। जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में अन्यान्य संस्कृतियों के सम्पर्क में आयी। इस सम्मिश्रण से कतिपय क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति का ह्रास भी हुआ। भारतीय संगीत की परम्परा जन-जन को नवजीवन देने वाली प्राणदायनी गंगा की तरह प्राचीन काल से ही एक वेगवती धारा के रूप में अखंड प्रवाहित होती हुई वर्तमान समय तक पहुंची है। आज हिन्दुस्तानी संगीत का जो रूप हमारे सम्मुख उपस्थित है वह एकाएक किसी खोज या बौद्धिक उपज द्वारा निर्माण नहीं हुआ। उसके मूलरूप में निरन्तर वृद्धि और परिवर्तन होते-होते ही उसका वर्तमान स्वरूप निश्चित हुआ है। वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत एक अत्यन्त विस्तृत और सुदृढ़ परम्परा लेकर नवीन युग की ओर बढ़ रहा है। संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रारम्भ होने से संगीत के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी क्रांति हुई। अन्य विषयों के साथ-साथ संगीत की पुस्तकें भी छपने लगी। कक्षायें चलने लगी। तथा परीक्षायें भी होने लगी। साथ ही उपाधियां भी प्राप्त होने लगी। उपाधि प्राप्त करने के बाद सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं, शिक्षक पद के लिये नियुक्यिां भी होने लगी। धीरे-धीरे प्रतिष्ठा और व्यावसायिकता की भावना जागृति के चलते शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी हुआ।

हिन्दुस्तानी संगीत में जहाँ प्रचार-प्रसार के साधन बढ़े वहीं कलाकारों में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के चलते श्रेष्ठतम् साबित होने के लिए प्रौद्योगिक आधारित तकनीकी प्रयोग/सहयोग लिया जाने लगा। चाहे वह वाद्य निर्माण संबंधी हो या प्रदर्शन संबंधी हो। स्वतंत्रता पश्चात सूचना तकनीक के विस्फोट और दृश्य मीडिया क्रांति में निश्चित तौर पर हिन्दुस्तानी संगीत कलाकारों को एक अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। जब प्रसिद्धि आती है तो पैसा भी आता है। सहज ही ऐसे देश के अधिकतर सुपरिचित संगीतज्ञों की अपनी दुनिया है। मान-सम्मान है और आर्थिक निर्भरता भी। ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण मानव जगत में नित नये प्रयोग हो रहे हैं। जब ये प्रयोग जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं, तब मानव फिर अभिनव अनुसंधान से प्रवृत्त हो जाता है। यद्यपि संगीत स्वयं एक विज्ञान है किन्तु इसकी सिद्धि के लिये वर्षों की तपस्या अपेक्षित है। स्वतंत्र्योत्तर काल से तकनीकी विज्ञान एवं जन-माध्यमों के प्रभाव

*वरिष्ठ प्रवक्ता, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, जिला-सतना, मध्य प्रदेश

Scanned with OKEN Scanner

से संगीत के क्षेत्र का अत्यंत व्यापक रूप से विस्तार हुआ है। वैश्विक कारपोरेट संस्कृति, निर्बाध पारगमन तथा व्यापार की सुविधा, संचार का विस्तार और वैश्विक संपर्क बढ़ा है। मीडिया वैश्विक समाज की संकल्पना से अभिभूत है। प्रतिस्पर्धा और पूँजी उसके नियामक तत्त्व हो गये है। व्यापारीकरण के विचार का वह संवाहक दिखाई देने लगा है तथा अर्थिक वैश्वीकरण का वह अनुसरणकर्ता बनता जा रहा है। वैश्वीकरण ब्राण्डों का प्रमोशन, शक्तिशाली छत्रपों/राज्यों का प्रचार तथा वैश्विक (विकसित देशों से प्रवाहित) प्रतिमानों का अनुगमन, वह यही कार्य करता दिखाई दे रहा है। प्रसार, प्रौद्योगिकी, पूँजी और मुनाफा उसके विस्तार के परिचायक हो गये हैं।

ग्लोबलाइजेशन का दौर चल रहा है। सूचना और तकनीक के कारण काम करने के तौर-तरीकों में बदलाव आया। तो बाजार भी विशाल हो गया है। जहाँ सभी के लिए अवसरों की समानता है, लाखों-करोड़ों नहीं कई ऐसे रोजगार हैं, जिन्हें शुरू करने के लिए आपको बहुत अधिक पूंजी निवेश की जरूरत नहीं पड़ती। पर आप अपनी मेहनत के द्वारा जितना चाहें उतना कमा सकते हैं। संगीत के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक के प्रयोग में पूर्व में ग्रामोफोन रिकार्ड, रेडियो, टेलीविजन का प्रयोग/सहयोग व्यावसायिक एवं प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण रहा। इस प्रौद्योगिकी द्वारा आजीविका बहुमूल्य सहारा भी मिला, वहीं पैसे के साथ प्रचार-प्रसार एवं प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक के क्षेत्र में कम्प्यूटर के पर्दापण से सम्पूर्ण विश्व में क्रान्ति आयी। कम्प्यूटर आधारित प्रौद्योगिकी सूचनाओं का संग्रहण करना, क्षण भर में उन्हें विश्व के कोने में बैठकर दूसरे कोने के व्यक्ति से न सिर्फ संपर्क साधना बल्कि उस तक अपने विचारों का आदान-प्रदान करना अब बायें हाथ का खेल हो गया है। इस क्रान्ति का परिणाम है कि आज समूचा विश्व छोटा नजर आता है। सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति की शुरूआत भारत में हुई। विभिन्न सेटेलाइटों की लांचिंग के साथ। इसरो के वैज्ञानिकों ने अत्याधुनिक सेटेलाइटों का विकास किया व इन्हें फ्रेंच गुयाना से अन्तरिक्ष में छोड़ा। इन सेटेलाइटों के काम प्रारम्भ करने के साथ ही भारत में सूचनाओं के आदान-प्रदान के क्षेत्र का विस्तार प्रारम्भ हुआ। विश्व के सभी विकसित देशों की तरह भारत में भी सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग सभी क्षेत्रों में किया जा रहा है। इनमें शिक्षा, मनोरंजन, व्यवसाय, कृषि व विदेश व्यापार के क्षेत्र शामिल हैं। इसके प्रयोग से कार्यपद्धति में तीव्रता आयी है। भौतिक विज्ञान ने जिस तरह अन्य क्षेत्रों में अपना प्रभाव दिखाया और विभिन्न आविष्कारों ने जीवन के कई क्षेत्रों में नये-नये परिवर्तन किये, संगीत का क्षेत्र भी उससे अछूता न रहा। वैसे तो आविष्कार प्रत्येक युग में हुये। 20वीं शताब्दी में जितने आविष्कार हुए और नये-नये यंत्रों का विकास हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ।

वर्तमान वैज्ञानिक सूचना प्रौद्योगिकी युग में जिसमें वीडियो कांफ्रेंसिंग (दूरस्थ शिक्षण प्रणाली), नेट कांफ्रेंसिंग, इंटरनेट (विचार-विमर्श, सूचनाओं का आदान-प्रदान) द्वारा शैक्षणिक गतिविधियों की जानकारी शोध के लिये आवश्यक जानकारी, वैश्विक आधार पर वृहद विषयक जानकारी घर बैठे सम्भव है। शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में अनन्त सम्भावनायें हैं—वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक संदर्भ में हिन्दुस्तानी संगीत की संभावनायें भी असीमित हैं। प्रत्येक प्रौद्योगिकी तकनीक परिवर्तन के साथ सम्भावनायें गुणात्मक अभिवृत्ति करती हैं। यदि विषयक विशेषज्ञता के साथ सामान्य स्तर पर ही प्रौद्योगिकी का अतिरिक्त ज्ञानार्जन प्राप्त करना किसी भी व्यावसायिक परिदृश्य के लिए हितकारी हो सकेगा। वर्तमान व्यावसायिक प्रतिस्पर्धात्मक युग में भविष्य की व्यावसायिक रूपरेखा तय करने के लिए समयानुरूप/युगानुरूप वैज्ञानिक दृष्टिकोण को साथ लेकर चलना ज्यादा श्रेयस्कर है। विभिन्न विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं प्रशिक्षण संस्थाओं में मान्यताप्राप्त सभी विषयों के विकास की नवीन प्रवृत्तियों का आत्मसात करने पर ही परिणात्मक व गुणात्मक अभिवृद्धि हो सकेगी। कैरियर प्लानिंग में भी पालक वर्ग को छात्र की अभिरुचि, विशेषज्ञता चुनने की स्वतंत्रता/साहस के साथ लिंगाधारित भेद-भाव की समाप्ति भी आवश्यक है। सामान्य ज्ञान प्रशिक्षण के पश्चात किसी भी विषय की विशेषज्ञता प्राप्ति हेतु लक्ष्य के आधार पर कार्ययोजना का निर्धारण करते हुए श्रमजीवी बनना

Scanned with OKEN Scanner

उचित होगा। अनुशासन, शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक आधार की व्यापकता, वैज्ञानिकता, प्रमाणिकता में अभिवृद्धि, प्रकाशन, प्रसारण आदि व्यवसायीकरण में सहायक सिद्ध होते हैं।

सफलता के लिए सिर्फ पढ़ाई ही काफी नहीं है, इसके लिए कुछ स्किल्स का भी होना जरूरी है। कुशल एवं योग्य लोगों के लिए सम्भावनायें हमेशा अपना दरवाजा खोले रखती हैं। "फर्स्ट इंप्रेशन इज द लास्ट इंप्रेशन" पर इसके साथ ही किसी पर अपना प्रभाव छोड़ने के लिए अच्छा कम्यूनिकेशन स्टाईल भी जरूरी है। आज पसंदीदा पाठ्यक्रम के साथ अच्छी फैकल्टी व क्वालिटी एजुकेशन जैसी बातें भी अहम हो गई है। छात्रों के सपनों (उम्मीदों) की उड़ान में सहायक बनना आवश्यक है। अपना नाम दांव पर लगाने के लिए हिम्मत चाहिए, सच्चाई पर डटे रहने के लिए हिम्मत चाहिए, किसी भावना के साथ काम करने के लिए हिम्मत चाहिए। भावी जरूरत के अनुसार खुद को तैयार करें। जिस क्षेत्र में पढ़ाई कर रहे हैं उसकी अच्छी समझ विकसित करें तथा संबंधित कैरियर के लिए अपनी स्किल्स बढ़ायें। अपने एप्टीट्यूड, व्यक्तित्व और वास्तविक क्षमता का मूल्यांकन करते हुए ही कैरियर चुने। सकारात्मक सोच रखें। बदलती स्थितियों को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ने की योजना बनायें। उच्च शिक्षा के लिये अवसर हमेशा मौजूद है। किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए अनुशासित रहना बेहद जरूरी है। काम पूरा करते समय, समय-सीमा का ध्यान आवश्यक है। साथ ही कार्य की गुणवत्ता भी आवश्यक है। खुद के काम का स्वयं सही मूल्यांकन करें। अपने कमियों को नोट करें और उन्हें दूर करने का प्रयास करें। इसमें कोई दो राय नहीं कि सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति एवं ग्लोबलाइजेशन ने पूरी दुनिया को एक सूत्र में बांध दिया है। इसलिए अब कोई भी व्यक्ति या समाज एक दूसरे से अलग नहीं रह सकता। इसका सीधा फायदा यह भी हो रहा है कि देश व समाज आपस में लगातार मेल-जोल बढ़ाने में लगे हैं। यही वजह है कि अब सभी के फायदे और नुकसान एक दूसरे से जुड़ गये हैं। इसलिए यदि यह कहें कि इससे प्रतिस्पर्धा में भारी इजाफा हुआ है, तो गलत नहीं होगा।

अन्य विषयों की भांति संगीत में भी उक्त सम्भावित दृष्टिकोण सफलता प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण हैं। सफल बनने में मौलिक योग्यता, सैद्धान्तिक योग्यता अनिवार्य योग्यता के अतिरिक्त अन्य योग्यतायें हैं जो समयानुसार परिवर्तित होती हैं। परन्तु समयानुसार उन विशिष्ट योग्यता को समझना एवं अनुसरण करना भी सफलता प्राप्ति के लिए आवश्यक समझना चाहिए।

1. विकास की मुख्य धारा से जुड़ना।
2. नवाचार की जानकारी (Innovative Approach)
3. निराश भावनाओं का त्याग (Positive minded)
4. आधुनिक तकनीक की बेहतर समझ
5. चुनौतियों के लिए साहसिक प्रवृत्ति
6. अनुसंधान प्रवृत्ति
7. विकसित राष्ट्र के लिए आशायें/महत्वाकांक्षायें/ क्षमताओं पर विश्वास आदि।

वैषयिक विशेषज्ञता हासिल करने के अतिरिक्त प्रौद्योगिकी आधारित ज्ञान एवं उसका उपयोग जहाँ तक वर्तमान में लाभदायक है, रोजगार परक है परन्तु इसकी भी अपनी सीमायें एवं कठिनाइयाँ हैं, जैसे-

1. इतना सब कुछ होते हुये भी कम्प्यूटर की मर्यादा है, उसको नियन्त्रित करने वाले/चलाने में सक्षम मानवीय प्रवृत्ति अर्थात नियत में दुष्प्रभावी प्रवृत्ति कार्य प्रकृति के लिये विरोधाभाषी हो सकती है।
2. शिक्षा में नई-नई समस्या जैसे—कम्प्यूटर में वायरस का आना, इंटरनेट हैकिंग, बिजली की कमी, वर्तमान उपलब्धता के अनुसार हानिप्रद है।
3. इंटरनेट पर अश्लील साहित्य का उपलब्ध होना लक्ष्य प्राप्ति में बाधक हो सकता है।
4. संगीत के क्षेत्र में गुरु-शिष्य परम्परा को कायम न रख पाना अर्थात मानवीय मूल्यों का ह्रास होना है।

Scanned with OKEN Scanner

5. दूरस्थ शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से 'स्वर' की महत्ता को बरकरार रखने में कठिनाई का होना, राग, स्वर लगाव का आत्मिक आनन्द, ठोस जानकारी में अव्यवस्थित तकनीकी प्रभाव के चलते परेशानी हो सकती है।

बहरहाल कला, कला के लिए या कला जीवन के लिए, यह चर्चा भारतीय संस्कृति के प्राचीन विचारधाराओं के साथ बहस का मुद्दा बना रहेगा, लेकिन इतना तय है कि ग्लोबलाइजेशन के इस युग में जहाँ पं. रविशंकर जी, पं. विश्वमोहन भट्ट, उस्ताद अली अकबर खाँ, उस्ताद जाकिर हुसैन, पं. शिव कुमार शर्मा, पं. हरिप्रसाद चौरसिया आदि कलाकारों द्वारा समय-समय पर राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अन्तर्गत ग्रेमी अवार्ड, फ्रेन्च का कला साहित्य पुरस्कार या फिर ए.आर. रहमान को विशिष्ट संगीत रचना के लिए प्राप्त ऑस्कर पुरस्कार विश्व समुदाय में हिन्दुस्तानी संगीत की प्रतिष्ठा को द्यो कराता है। निश्चित ही इसमें वर्तमान में उपलब्ध प्रौद्योगिकी का कहीं न कहीं उल्लेखनीय योगदान रहा है। इसलिए हिन्दुस्तानी संगीत का परचम वर्तमान प्रौद्योगिकी संदर्भ में "जय हो" का उद्घोष ही प्रासंगिक जान पड़ता है।

संदर्भ सूची

- गौरव शर्मा, कम्प्यूटर.
- डॉ. सुनीरा कासलीवाल, संगीत शिक्षा.
- एस. जूसली, एडवांस्ड इनफॉर्मेशन टेक्नालोजी.
- डॉ अलका सिंह, भारतीय संगीत शिक्षण के क्षेत्र में संगीत, फरवरी 2002.
- डॉ. व्रज मोहन गुप्त, जनसंचार, विविध आयाम.

Scanned with OKEN Scanner

संगीत उद्योग - व्यापार एवं रोजगार

डॉ० रेनू निगम*

वर्तमान समय में विश्व के बदलते परिवेश में भारत की आर्थिक एवं सामाजिक छवि जहां मजबूत हो रही है वहीं संगीत का परचम भी पूरी रवानी के साथ विश्व भर में गहरा रहा है। आज भारतीय संगीत का जादू सर चढ़कर बोल रहा है। इस बात को पाश्चात्य संगीत के लोकप्रिय कलाकार गेडाल्फ भी मानते है।

भारतीय संगीत पर यदि विहंगम दृष्टि डाली जाए तो शास्त्रीय संगीत का अपना एक अलग मुकाम हैं समाज के एक खास वर्ग का रूझान शास्त्रीय संगीत की ओर है परंतु यदि सामान्य रूप से दृष्टि डाली जाए तो आज चित्रपट संगीत ने भारत ही नहीं वरन् विश्व भर में लोकप्रियता के जो कीर्तिमान स्थापित किए है उसको कोई नकार नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ए. आर. रहमान को 'आस्कर अवार्ड' का मिलना है। यह भारत के लिए बड़े गर्व की बात है। आज बच्चे से बूढ़े तक चित्रपट संगीत से जुड़े है तथा अपनी अभिरूचि अनुसार इन गीतों को गाते व गुनगुनाते मिलते है। चित्रपट संगीत की यह विशेषता है कि इनके गीतों में बहुत विविधता है। जहां इनमें एक ओर विशुद्ध भारतीय संगीत (शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, भजन, गजल, लोकगीत आदि) देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य संगीत का भी समुचित आनन्द इन गीतों के माध्यम से मिलता है।

जैसा कि सभी लोग जानते हैं कि सामान्य रूप से संगीत का सीधा संबंध मनोरंजन से लगाया जाता है और इसे मनोरंजन के सर्वोच्च साधन के रूप में माना जाता है। कुछ वर्षो पूर्व तक संगीत को समाज में सिर्फ हॉबी के रूप में स्वीकारा जाता था, रोजगार से इसका ज्यादा लेना देना नहीं था परंतु मनोरंजन की दुनिया मे आयी क्रांति ने युवाओं में संगीत के प्रति एक नया आकर्षण पैदा कर दिया है तथा इसकी बढ़ती हुयी लोकप्रियता ने इसे उद्योग, व्यापार एवं रोजगार का रूप दे दिया है। आज (Music Industry) यानि संगीत उद्योग का भविष्य बहुत उज्जवल दिखलाई दे रहा है।

समाचार पत्रों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अगले पांच वर्षो में भारतीय संगीत उद्योग (Indian Music Industry) विश्व में सबसे बड़े बाजार के रूप में उभर कर आने वाली है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2011 तक ग्लोबल मीडिया और मनोरंजन उद्योग (Entertainment Industry) का बाजार दो ट्रिलियन अमरीकी डालर के लगभग होगा और इससे म्यूजिक/एनटरटेनमण्ट इन्डस्ट्री से अभिरूचि रखने वालों के लिए कैरियर की असीमित संभावनाएं होंगी।

आज संगीत उद्योग एक अहम रोजगार देनेवाले उद्योग का रूप ले चुकी है तथा इससे म्यूजिक कैरियर के अनेक रास्ते खुल गए हैं जैसे संगीत निर्देशक, अरेन्जर, गीतकार, पार्श्व गायक-गायिका, सहायक कलाकार, संगतकार, साउंउ रिकार्डिस्ट, साउंड इन्जीनियर, तकनीशियन्स, म्यूजिक थेरेपिस्ट, कैसेट एवं सीडी कंपनियां तथा इनसे संबंधित अनेक छोटे-बड़े, रोजगार परक क्षेत्र। यही नहीं संगीत के क्षेत्र में शिक्षण, परफार्मेन्स, कंसर्ट, लाइव शो, डिस्क जाकी, विडियो जाकी, रेडियो जाकी के रूप में भी

*रीडर एवं अध्यक्ष, ए.एन.डी.पी.जी. कॉलेज, कानपुर

Scanned with OKEN Scanner

कैरियर बनाया जा सकता है। यही नही शास्त्रीय, भजन, गजल, लोक, पॉप, फ्यूजन आदि के कलाकार के रूप में भी कैरियर बनाया जा सकता है।

आज स्थिति यह है कि चित्रपट के गीत जब एक बार तैयार होकर बाजार मे आते है तो उनके कैसेट एवं सीडी का व्यापार शुरू हो जाता है और साथ ही शुरू हो जाता है इन गीतों के माध्यम से रोजगार का दूसरा दौर।

आजकल हर छोटे बड़े शहर में आठ-दस लोगों का एक दल कुछ संगीत वाद्यों (इलेक्ट्रॉनिक), गायकों एवं गायिकाओ के साथ इन चित्रपट गीतों को तैयार करके अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते है। सामान्य रूप से ये 'आरकेस्ट्रा पार्टी' और बड़े शहरों में 'बैण्ड' कहलाते हैं। ये अपनी ख्याति एवं मेहनत के अनुसार इन कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने का अच्छा खासा भुगतान लेते है। अतः इसे हम सिने संगीत द्वारा रोजगार का दूसरा दौर कह सकते है। इसी कड़ी में एक नयी विधा माता के जागरण एवं चौकी को जो आज बहुत प्रचलित हो गयी है, को भी जोड़ा जा सकता है। इन जागरण पार्टियों की विशेषता है कि इनके द्वारा गाए जाने वाले गीत, माता की भेटें एवं भजन 90% फिल्मी गीतों पर आधारित होते हैं जो माता के भजनों की पैरोडी बनाकर प्रस्तुत किए जाते हैं। इससे इन गीतों की पैरोडी लिखने वाले गीतकारों एवं गायकों आदि को भी रोजगार मिलता है। यही 'पैटर्न' अन्य देवी देवताओं के भजनों के लिए भी अपनाया जाता है। यही नहीं इन फिल्मी गीतों पर आधारित पैरोडी वाले भजनों को छोटे बड़े कलाकार, छोटी बड़ी कंपनियों से अपना एलबम बनवाकर, कैसेट एवं सीडी के माध्यम से पैसा एवं नाम, दोनों कमाते हैं। आज संगीत उद्योग ने नए नए आयाम खोल दिए है अतः केवल चित्रपट संगीत ही नहीं वरन् विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों के कैसेट व सीडी भी बहुत लोकप्रिय हो रहे हैं जैसा कि मृणाल पाण्डेय, संपादक कादम्बनी कहती है—"भोजपुरी, गढ़वाली, पंजाबी, हरियाणवी और पुरबिया बोली के लाखों संगीत-कैसेट और सीडी देश में धड़ाधड़ बिक रहे हैं।"

वर्तमान समय में होटलों में गायन की प्रथा भी आम हो गयी है। यहां भी गायक, तीन चार वादकों के साथ गजलं एवं फिल्मी गीतों का कार्यक्रम प्रस्तुत कर अच्छा रोजगार कर लेते हैं। इस रोजगार का आधार भी कैसेट एवं सीडी है जो कि संगीत उद्योग का एक प्रमुख भाग है।

यही नहीं आज समाज में इस उद्योग के द्वारा विभिन्न प्रकार से रोजगार किया जा रहा है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है आज के कथा वाचक, जो अपने प्रवचन को सरस बनाने के लिए बीच-बीच में भजन एवं संकीर्तन गाते है जो प्रायः इन्हीं फिल्मी धुनों पर आधारित होते हैं। इसके लिए छोटी आरकेस्ट्रा पार्टी भी साथ रखते है। इससे इन सभी को संगीत परक रोजगार मिलता है।

संगीत जहां आध्यात्म से जुड़ा है वहीं मनोरंजन से भी जुड़ा है। मनोरंजन की दुनिया में दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों पर फिल्मी गीतों पर आधारित प्रायोजित कार्यक्रम आ रहे है। इनकी लोकप्रियता भारत ही नहीं वरन् विदेशों में भी बहुत है। इसका प्रमाण है जीटीवी का सारेगमप, स्टार प्लस का वाइस ऑफ इंडिया, सोनी टीवी का इंडियन आइडल, अंताक्षरी एवं अन्य कार्यक्रम आदि। जनता को अपने साथ जोड़ कर ये चैनल वाले एसएमएस के माध्यम से जहां लाखों का आर्थिक लाभ उठाते हैं वहीं कलाकार यश, कीर्ति और पैसा कमाते है।

'आकाशवाणी' जो दूरदर्शन के प्रचार में आ जाने से अपनी लोकप्रियता खोन लगा था, पिछले पांच-छः वर्षों में नए कलेवर के साथ प्रस्तुत हुआ। देश में आज आकाशवाणी के 250 केन्द्र तथा 350 निजी आकाशवाणी केन्द्र है जो श्रोताओं को मनोरंजन की दुनिया की सैर कराते है। रेडियो एफएम के विस्तार ने आकाशवाणी के मनोरंजन में एक नया अध्याय जोड़ कर, इसमें भी रोजगार की संभावनाएं प्रबल कर दी है।

आज के बदलते हुए वैश्विक परिवेश में जहां एक ओर शिक्षा का नवीनीकरण हो रहा है वही दूसरी ओर संगीत के क्षेत्र में भी नवीनीकरण हो रहा है। गीतों का स्वरूप बदल रहा है। रीमिक्स गीतों का दौर चल गया है। लोकप्रिय एवं प्रचलित फिल्मी गीतों को 'रिद्म' के नए अंदाज में अरेन्ज कर, नए रंग के साथ प्रस्तुत करनेवाले प्रोड्यूसर- डाइरेक्टर ने

Scanned with OKEN Scanner

इनमें भी रोजगार की संभावनाएं खोज ली हैं।

संगीत की लोकप्रियता को देखते हुए कलाकारों ने आज विभिन्न कंपनियों द्वारा अपने प्राइवेट (शास्त्रीय, गजल, भजन, लोकगीत, पाप आदि) एलबम निकलवा कर कीर्ति और पैसा दोनों ही अर्जित की है।

जैसा कि सभी जानते है कि फिल्म इन्डस्ट्री ग्लैमर की दुनिया है और उस ग्लैमर का प्रभाव संगीत पर भी पड़ा है। जहां एक ओर इसका प्रभाव संगीत के विडियो एलबम्स में देखने को मिलता है वही दूसरी ओर इसके माध्यम से रोजगार के नए रास्ते भी खुल गए है।

इन सब तथ्यों को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान परिदृश्य में संगीत ने एक उद्योग का रूप ले लिया है जिससे इस क्षेत्र में रोजगार, कैरियर या जॉब की असीमित संभावनाओं ने जन्म लिया है जैसा कि सग कला ग्रुप के अध्यक्ष श्री बी.एस.के. सूद कहते हैं–"इस क्षेत्र में आज करियर की असीमित संभावनाएं है। पहले यह क्षेत्र कुछ खास लोगों के इर्द-गिर्द ही घूमा करता था, लेकिन हाल के वर्षों में टी.वी चैनल्स द्वारा म्यूजिकल टैलेन्ट हंट शो को बढ़ावा देने से इस क्षेत्र के प्रति युवाओं का आकर्षण बढ़ा है। लेकिन इस क्षेत्र में प्रवेश की इच्छा रखने वालों में म्यूजिक के प्रति पैशन होना चाहिए।"

इसमें कोई दो राय नहीं कि आज संगीत को भारतीय सभ्य समाज में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त हैं यह सिर्फ मनोरंजन का साधन न रहकर बहुत से लोगों को रोटी रोजी प्रदान कर रहा है। इसकी बढ़ती हुयी लोकप्रियता ने संगीत को उद्योग के रूप में विकसित किया है, जिससे रोजगार के अनेक रास्ते खुल गए है। अतः वर्तमान स्थिति में संगीत उद्योग दोहरे-तिहरे रोजगार का मापदण्ड बन गया है और इसका व्यापार आज धनार्जन का अच्छा साधन बन गया है।

सन्दर्भ

1. संगीत निबंध माला–जगदीश नारायण
2. संगीत विशारद–लक्ष्मी नारायण गर्ग
3. संगीत-बोध–यादवेन्द्र कुमार
4. सांगीतिक एवं धार्मिक परंपरा–भारती शर्मा
5. भारतीय शास्त्रीय संगीत : शास्त्र, शिक्षण व प्रयोग–राजीव त्रिवेदी
6. निबंध संग्रह–लक्ष्मी नारायण गर्ग
7. Aspects of Indian Music—Sumati Muttkar
8. Terminology of Musical Terms—S. Bandopadhyaya
9. फिल्म संगीत इतिहास अंक
10. संगीत शोध अंक

पत्र एवं पत्रिकाएं

1. संगीत (मासिक पत्रिका)
2. संगीत कला विहार (")
3. कादम्बनी (")
4. आकाशवाणी संगीत सम्मेलन 2007 (प्रसार भारती)
5. दैनिक जागरण (दैनिक समाचार पत्र)
6. अमर उजाला (")
7. हिन्दुस्तान (")
8. राष्ट्रीय सहारा (")
9. आज (")

Scanned with OKEN Scanner

शास्त्रीय संगीत का आध्यात्मिक पक्ष

डॉ. सोनिया बिन्दा

हृदयस्थ भावों की नादमयी ललित अभिव्यक्ति ही संगीत है। संगीत में अन्तर्निहित एक ऐसा कौशलपूर्ण लालित्य, जो दृष्टा एवं श्रोता के हृदय को आकृष्ट करता है, तथा उसके चक्षुओं के दर्शन की प्यास बुझाता है। उसके अन्तः करण की भूख को शान्त करता है, उसकी श्रवणेन्द्रियों को सुनने की लालसा को तृप्त करता है, और उसकी मानसिक सन्तुष्टि का कारण होता है। संगीत एक ऐसी विद्या है जिसमें प्रतिभा, व संस्कार के साथ-साथ बहुत तप, त्याग और परिश्रम की आवश्यकता होती है। इससे आत्मतुष्टि के साथ-साथ पारलौकिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। संगीत का आधार नाद है। नाद अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक है। वह इतना सूक्ष्म है, कि प्रकृति के कण-कण में उसकी सत्ता पायी जाती है। इसीलिए संगीत भी अत्यन्त सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक हैं। संगीतज्ञ के अन्तः करण में संगीत का रूप सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है, और जब वह कंठ या वाद्य के द्वारा उसे व्यक्त करता है, तो वह स्थूल हो जाता है। इसी सूक्ष्मता और स्थूलता के कारण संगीत का प्रभाव जड़ और चेतन दोनों पर पड़ता है। संगीत में यही नाद ब्रह्म का द्योतक माना गया है। धार्मिक अभिव्यंजना इसी संगीत रूपी नाद से सम्भव है। शास्त्रीय संगीत और आध्यात्मिकता से नाद अटूट रूप से जुड़ा है।

शास्त्रीय संगीत व आध्यात्मिक संगीत

भले ही संगीत का उद्गम मानव की सहज भावनओं अदम्य प्रेरणाओं का अभ्यंतर हुआ हो, परन्तु उसका विकास तथा लालन पालन धर्म के आश्रय में हुआ है। धार्मिक अभिव्यंजना भारतीय ललित कलाओं की आधार भूमि रही है। लौकिक परम्परा में उद्भूत होने पर धार्मिक परम्पराओं पर उसकी प्राण प्रतिष्ठा होती रही है। जिसका उदाहरण है—प्राचीन काल से ही संगीत दो धाराओं में प्रवाहित था-एक वह जिसका प्रयोग धार्मिक समारोहों पर धार्मिक विधि विधान के अन्तर्गत किया जाता था, और दूसरा वह जिसका प्रयोग लौकिक समारोहों पर किया जाता था, और जिसका उद्देश्य केवल लोगों का मनोरंजन करना था। वैदिक या साम संगीत का समावेश पहली धारा में होता है और अवैदिक या लौकिक संगीत का समावेश दूसरी धारा में होता है।

वैदिक काल में ये दोनो धाराऐं समानान्तर रूप से चलती रही, और समय-समय पर एक दूसरे को प्रभावित भी करती रही। प्रथम धारा 'मार्गी' शाखा कहलाई, तथा दूसरी देशी धारा कहलाई। दोनो का मूलाधार या स्तोत्र जन संगीत या लोक संगीत था। केवल अन्तर यह है कि प्रथम को संस्कार और परिष्कार प्राप्त होने के कारण उच्च श्रेणी या शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त हुआ और दूसरा लोक रुचि अनुकूल विकसित होने के कारण सामान्य जनता में लोकप्रिय हुआ। मार्ग संगीत शास्त्रीय संगीत के नियमों से बद्ध रहा, दूसरा लोक संगीत के नियमों से नियन्त्रित रहा। प्रथम में अनुशासन नियमों का था, दूसरे मे अनुशासन लोकरुचि का था। आज की गायन शौलियों में संगीत में अन्तर्निहित भक्ति या आध्यात्मिकता को सहज की अनुभूत किया जा सकता है। भक्ति की यह परम्परा विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से प्रचलित है। सामवेद

*संगीत विभाग प्रवक्ता (तबला वादन), एन. के. बी. राम. जी. पी.जी. कालेज, चन्दौसी (मुरादाबाद)

Scanned with OKEN Scanner

ऋग्वेद का ही रूपान्तर है। सामवेद गायन की दृष्टि से जरूर भिन्न है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से सर्वथा अभिन्न है। सामवेद के सभी मन्त्र ऋग्वेद से गृहित है। केवल अन्तर है, जहाँ ऋग्वेद का पाठ आधुनिक काव्यपाठ या कविता गायन के समान रहा, वहाँ सामवेद का गायन आलापों से युक्त शास्त्रीय संगीत के समान रहा। सामवेद का संगीत भारत के इतिहास में प्रथम भक्ति संगीत होने का अधिकारी है। यह वह संगीत है, जिसमें भक्तों ने अपनी आराध्य विषयक भावनाओं को स्वरों में बाँधा है। इन गीतों की सरसता का मूल आत्मीयता तथा आत्म निवेदन में है। ऐहिक समृद्धि तथा पारलौकिक वैभव पाने की इच्छा से जिन ऋचाओं का निर्माण हुआ, उन्ही को तत्कालीन संगीतकारों ने स्वर प्रदान किया।

संगीत प्राचीन काल से ही धर्म से जुड़ा था, और मध्यकाल में अपने आध्यात्मिक स्वरूप की चरम सीमा पर विकसित हो रहा था। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण की भावना को ही भक्ति या आध्यात्मिकता कहते है। ये भक्ति कुछ लोग जप-तप करके प्रदर्शित करते है, तो कुछ उपासना के माध्यम से, और कुछ गेय रूप में संगीत में भजन कीर्त्तन करके अपने इष्ट को रिझाते है। बल्लभ, चैतन्य, सूरदास, मीरा, तुलसी, पुरन्दरदास, त्यागराज, तुकाराम, नरसी, गोरख, हरिदास, जयदेव, विद्यापति, धर्मदास, रैदास, पलटूदास, दादू, सुन्दरदास, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, इत्यादि सन्त भक्तों ने स्वर और शब्द की चेतन शक्ति से ही भगवान् का अनन्य प्रेम उपलब्ध किया, तथा जगत को सत्य का सन्देश भी दिया। आलवार सन्तों ने रस सिक्त करके उत्तर को भी उससे आप्लावित किया। इन सन्तों की परम्परा में ही रामानुजाचार्य जी की परम्परा को पोषित करने वाले स्वामी रामानन्द हुए, जिन्होनें भक्ति संगीत के क्षेत्र में भेद की दीवारो को समाप्त करके, समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उसे संव्य बना दिया। मध्यकाल में आध्यात्मिकता अपने चरम उत्कर्ष पर थी, और इसी समय निर्गुण सन्त भक्ति, प्रेममार्गी सूफी भक्ति, प्रेमलक्षण कृष्ण भक्ति तथा मर्यादा मार्गी राम भक्ति की प्रेरणा से संगीत पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त कर चुका था। इस काल के भक्त गायकों द्वारा प्रसारित जीवन के मूल्य और मर्यादाएँ आज तक लोक में प्रतिष्ठित है, क्योकि सभी सन्त गायक समान रूप से सांसारिक भोग विलास को हेय और त्याज्य दृष्टि से देखते थे।

शास्त्रीय संगीत में अन्तर्निहित भक्ति तत्व

भक्ति परक काव्य को ही भजन कहा जाता है। छन्द और स्वर की दृष्टि से भक्ति गीत के लिए कोई बन्धन नहीं है। फिर भी गेय पद स्वर, राग एवं ताल से विभूषित होकर जब प्रस्तुत किये जाते है तो उनसे रस की जो अजस्त्र धारा बहती है, वह अनिर्वचनीय होती है। भक्ति संगीत के पद में इष्ट के रूप और गुण का कीर्त्तन होता है। भक्ति गीत को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थो का साधन बताया गया है। भक्ति गीत प्रेम के द्वारा श्रेय की उपलब्धि कराने में अद्वितीय है। भक्तिपरक पद था विष्णुपद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद पद्धति के जनक है। इससे पूर्व स्त्रोभ या स्तोत्र गान (ईश्वरपरक स्तुति गान) ने प्रबन्ध गान को पुष्ट किया था। इन सबका आदि रूप सामगान वस्तुतः स्तोत्र पाठ का ही गेय रूप था। जहाँ भक्त ईश्वर के स्वरूप का ध्यान न करते हुए, केवल उसकी सत्ता का चिन्तन करता है। वह निर्गुण या निराकार उपासना कहलाती है, और जहाँ भक्त ईश्वर को सजीव या साकार रूप से उपासना करते है वह सगुण के नाम से अभिहित है। शास्त्रीय कलाकारों की कृतियाँ कालान्तार में लुप्त हो गई किन्तु भक्त कवियों के भजन पद और कीर्त्तन परम्परागत कंठो में अक्षुण्य रहे। हिन्दी भक्ति साहित्य ही क्या? समस्त भारतीय साहित्य में भक्ति ने काव्य को संगीत के साथ ही स्वीकार किया है। गेयता के कारण ही संगीतमय भक्ति काव्यकाल के बीच प्रभावपुंज स्थिति में बना रहा।

शास्त्रीय संगीत में आध्यात्मिकता का अविरल प्रवाह

काव्य या संगीत की परिणति है, रस संचार। काव्य में रस की निष्पत्ति शब्द, अर्थ और भाव युक्त छन्दों से होती है, और संगीत में रस का संचरण सप्त स्वर, एवम् अंग संचालन एवं विविध तालों के माध्यमों से होता है। हिन्दी भक्ति धारा में संगीत साधना का अंग था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने पुष्टि

Scanned with OKEN Scanner

भक्ति एवं नवधा भक्ति में कीर्तन का समावेश किया था। पुष्टिमार्गीय सेवा विधि में अष्ट प्रहार की झाँकी के अनुकूल ही संकीर्तन, एवं पदों का गायन होता था। अष्ट छाप के कवि सूरदास, कुम्भनदास, नन्ददास, परमानन्द, छीतस्वामी, चतर्भुज दास, गोविन्द दास एवं कृष्णदास कवि ही नही थे वरन् महान संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे। स्वामी हरिदास एवं गोविन्द स्वामी के शिष्यत्व में गायक तानसेन ने गान विद्या सीखी थी। महाकवि सूरदास ने "मना रे करि माधौ से प्रीत।" गाकर सम्राट अकबर को आश्चर्य चकित किया था। राजा बल्लभ सम्प्रदाय के श्री हरि व्यास ने राग माला पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ रचा था। मीरा, राजा आसकरण, गंग, ग्वाल आदि भक्त कवि भी संगीत के ज्ञाता थे। सूर मल्हार, सूर सारंग, मीराबाई की मल्हार, सूर और मीरा के नाम से प्रचलित राग, आज भी गाये जाते है। अष्ट प्रहर की नित्य सेवा तथा सर्वोत्सव की सेवाओं के लिये बाल लीला से लेकर रास लीला तक के कृष्ण चरित की समयानुकूल राग रागिनियों में बद्ध पदों को भक्तगण गाते थे। इस सभी सन्त कवियों सूर, कबीर, मीरा, मलूक आदि के पदों के लिए राग रागिनियों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। गौड़ी बिलाबल, सौरठ, बसन्त, सारंग, धनश्री, मारु, भैरव, तौड़ी, आसावरी, रामकली, मल्हार, शुद्ध कल्याण, रामकली, केदार, कान्हड़ा नट, नटनारायण, आदि प्रमुख शास्त्रीय रागों का उल्लेख पदों के साथ मिलता है। कृष्ण भक्त कवियों ने संगीत के शास्त्रीय स्वरूप का भी चित्रण किया है। संगीत के भेद, प्रभेद, अंग, उपांगो के साथ ही, नाद, 22 श्रुति, ग्राम, 19 मूर्च्छना, 49 कूटतान, सप्त स्वरों के नाम (षडज, रे, ग, म पा धा नि सा) सप्तक, सरगम, औड़व, षाड़व, सम्पूर्ण आरोही अवरोही आदि संगीत की शास्त्रीय शब्दावली का उल्लेख किया है। गायन के प्रकार में ध्रुपद और धमार का उल्लेख भी पदों में मिलता है। सूरदास ने "छहो राग छत्तीसो रागिनि इक, इक नीके गावेरी।" कहकर अपना संगीत ज्ञान दर्शाया है। इसी शृंखला में मीरा जी के राग जोगिया–

"हेरी मै तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाणें कोय।" अन्य मीरा साहित्य में अधोलिखित राग रागनियों का उल्लेख हुआ है–तिलंग, ललित, हमीर, कान्हरा, त्रिवेनी, गूजरी, नीलावरी, कामोद, मुलतानी, मालकौस, झिझोंटी, सौरठ पट मंजरी, गुन विलावल, प्रभाती, श्यामकल्याण, मल्हार, रामकली, जोगिया, होली, सारंग, आनन्द भैरव बागेश्वरी एवं भावती, देरुआसावरी, तोड़ी इत्यादि का प्रयोग मिलता है।

इन सभी भक्त गायकों, गायिकाओं के ये पद शास्त्रीय संगीत की समृद्धि को अपार समृद्ध कर विस्तृत विवेचना को प्रस्तुत करते है, जो तालबद्ध, स्वरबद्ध होकर भक्ति संगीत की अविरल प्रवाह में और तीव्रतम वृद्धि कर रहे है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आध्यात्म तथा शास्त्रीय संगीत का गठबंधन भारतीय परम्परा में द्वढ़मूल रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत शान्त मस्तिष्क के लिये केवल मनोविनोद का साधन नही, वरन् ईश्वर के अनुसंधान से परम मंगल का विधायक है। नारद, तुम्बरु से लेकर मध्यकालीन भक्त कवियों तक संगीत ही आराधना का माध्यम रहा है। देवालयों में पूजा परिपाटी के अन्तर्गत गीत तथा नृत्य का प्रचलन प्राचीन काल से आधुनिक काल तक बराबर प्रचलित है। चाहे वह भक्तों के संकीर्तन के रूप में हो अथवा देवदासियों के रूप में हो। प्राचीन स्थापत्य तथा चित्र कला में नृत्य संगीत के आयोजन बहुशः उत्कीर्ण पाये जाते है, जो संगीत के अधिभौतिक महत्व के द्योतक माने जा सकते है।

सहायक ग्रन्थ

1. साहित्य निबन्ध–डॉ. द्वारिकाप्रसाद
2. संगीत बोध–शरच्चन्द्र परॉजपें
3. संगीत निबन्ध संग्रह–हरिचन्द्र श्रीवास्तव
4. भारतीय संगीत ऐतिहासिक विश्लेषण–डॉ. स्वतन्त्र शर्मा

Scanned with OKEN Scanner

महिलाओं का ताल वाद्य वादन के क्षेत्र में योगदान

अशोक कुमार*

प्राचीन काल से ही महिलाओं का संगीत के तीनों विधाओं (गायन, वादन और नृत्य) के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका और योगदान ही नहीं रहा है बल्कि महिलाओं ने पुरुषों के बराबर सभी क्षेत्रों में अच्छा नाम रौशन किया है। पुरुषों के समान कला को बुलंदियों पर पहुंचाने का महिलाओं ने भी काम किया है।

प्राचीन काल में महिलायें द्वारा तबला के सदृश ताल वाद्यों द्वारा लोक संगीत/नृत्यों में संगति किये जाने का प्रमाण मिलता है। इसका प्रमाण नई शोध के अनुसार ईसा पूर्व 200 वर्ष की अर्थात् आज से 2200 वर्ष पूर्व की एक बौद्ध गुफा में डा. आबान ई. मिस्त्री जो "पखावज और तबला के घरानें एवं परंपरायें" शोध ग्रन्थ की महिला लेखिका है। उनके अनुसार उन्हें एक इन्द्र शिल्प मिला है। जिसमे तबले जैसे वाद्य का तथा उसकी वादिका का स्पष्ट चित्रांकन किया गया है। पुरातत्व विभाग की पत्रिका के निर्देशानुसार महाराष्ट्र के लोनवाला गिरि नगर के निकट भाजा नाम की गुफा बौद्ध धर्म के हीनयान ग्रंथ के उन्नति काल में शृंग राजाओं के समय की है। इसकी गुफा नं. 14 इन्द्रशिल्प के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत इन्द्रशिल्प लगभग बारह फीट उंचा है। इसमें इन्द्र ऐरावत पर गज संचालन कर रहे है और वीणा वादक वीणा बजा रहा है। पास में एक स्त्री वादिका खड़ी है, जो सामने रखे तबले जैसे दो चर्मवद्ध अवनद्ध वाद्यों को दोनों हाथों से बजा रही है। 12 फीट उंचे उस इन्द्रशिल्प में तालवादिका की मूर्ति केवल 9 इंच की है। उस वादिका के सामने जो वाद्य की जोड़ी देखी जाती है, वह निश्चित रूप से तबला जैसा कोई वाद्य है जो आधुनिक तबले डग्गे का पूर्वज लगता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय सदी में तबला जैसे वाद्य का प्रचलन भारत में था और उस तालवाद्य को बजाने वाली महिलायें भी थीं।

प्राचीन युग के बाद मध्ययुग में सत्रहवीं शताब्दी के युग के एक चित्र में राजकुमार दारा शिकोह के हरम (अंतःपुर) में नर्तकियों के नृत्य गान के साथ खड़ी हुई एक स्त्री वादिका द्वारा अपने कमर मे बंधी तबला जोड़ी बजाए जाने का चित्रण मिलता है।

इसी प्रकार मोहम्मद शाह रंगीले के सन् 1745 के बने एक चित्र में भी उसके हरम (अंतःपुर) में नर्तकियों के नृत्य गान के साथ बैठी हुई एक स्त्री वादिका द्वारा तबला जोड़ी बजाए जाने का चित्रण मिलता है।

आधुनिक युग में भी ग्रामीण क्षेत्रों में पूजा, भजन, कीर्तन, शादी-व्याह आदि के शुभ-अवसर पर महिलाओं द्वारा संगीत में ताल वाद्यों द्वारा वादन किये जाने का प्रचलन हैं अभी वर्तमान युग में डा. आबान ई. मिस्त्री जो "पखावज और तबला के घराने एवं परंपरायें" शोध ग्रंथ की लेखिका है, उनका मुम्बई में "स्वर साधना समिति" प्रसिद्ध संगीतालय है। वे देश के प्रथम महिला तबला वादिका है जिनका नाम देश ही नहीं विदेशों में आदर के साथ लिया जाता है। वे एक विद्वान और अनुभवी महिला तबला वादिका है जो देश के कई विश्वविद्यालयों से जुड़ी है।

आज हमारे देश में कई विश्वविद्यालयों,

*व्याख्याता, संगीत विभाग, जी.डी.एम. कॉलेज, हरनौत (नालंदा)

Scanned with OKEN Scanner

महाविद्यालयों में महिला तालवाद्य वादन के क्षेत्र में कार्य कर रही है। यह उनका ताल वाद्यों द्वारा संगीत के क्षेत्र में महिलाओं द्वारा वादन किया जाना अत्यंत प्रशंसा का विषय है साथ ही आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। मैं आशा करता हूं कि भविष्य में पुरुषों के समान महिलायें भी इस ताल वाद्यों के वादन क्षेत्र में अग्रसर रहेंगी और संगीत का चतुर्दिक विकास होगा।

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय शास्त्रीय संगीत में नारी का योगदान

डॉ. सुदेश कुमारी*

नारी को दृष्टि में रखकर जब हम इतिहास के पन्ने पलटते है तो यह जीवंत तथ्य उजागर होता है कि नारी का अस्तित्व विराट है, वह आदि शक्ति है, सृष्टि की मूल है, और जीवन की प्रगति की मूलाधार हैं। समाज सभ्यता एवं संस्कृति की जन्मदात्री हैं। चिरकाल से ही नारी ने अपनी दिव्य प्रतिभा, सुसंस्कार-शीलता से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रगति परक हस्तक्षेप किया है। वेदकाल की गार्गी मैत्रेयी से लेकर आधुनिक काल की सरोजनी नायडु, इंदिरागाँधी महादेवी वर्मा, लता मंगेशकर, आदि कुछ ऐसे ही विशिष्ट उल्लेखनीय नाम है जिन्होने न केवल मध्ययुगीन इतिहास को महिमा मंडित किया है वरन भारत को विश्व के समक्ष गौरवान्वित भी किया है। इनमें से कुछ तो आज भी अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में विकासोन्मुखी भूमिका निभा रही है। इस तथ्य से इस बात की पुष्टि होती है कि सभ्यता के विकास काल से ही नारी को समाज में उच्च स्थान एवं सम्मान प्राप्त होता रहा है। वैदिक काल नारी की प्रगति का उत्कर्ष काल है, इसमें नारी का रत्न माना गया है।

भारतीय संगीत परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय संस्कृति संगीत एवं अन्य ललित कलायें वास्तव में संस्कृति का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति में एकीकरण की जो क्षमता है, उसे इन्हीं कलाओं से प्राप्त हुई है। चूँकि संगीत का सम्बन्ध सभ्यता और संस्कृति के साथ रहा है, अतः समय-समय पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रभाव इस पर पड़ते रहे हैं। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भाव भूमि पर प्रवाहित होती रही है, तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण-कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। पूजा के अवसरों पर गाये जाने वाले संगीत की पवित्रता और धुनों की मनोरंजकता ऐसी धुरियाँ हैं, जिनके आस-पास सारा संगीत घूमता हैं। वास्तव में भारतीय संगीत का वैशिष्टय उसके सनातन स्वरूप में है, जो प्राचीन काल से अब तक अपनी मूल अभिव्यंजना के कारण अक्षुण्ण है।

भारतीय संगीत धर्म के आश्रय में पला बढ़ा और धार्मिक अभिव्यंजना उसकी आधार भूमि हैं, इसलिए हमारे प्राचीन ग्रंन्थों तथा वेदों में धार्मिक संगीत पुष्ट रूप से विकसित हुआ। यही दैवीय संगीत संस्कार बद्ध, परिमार्जित तथा परिष्कृत रूप लेकर शास्त्रीय नियमबद्ध हुआ जो शास्त्रीय संगीत कहलाया, तथा जो संगीत लोक रुचि के अनुसार गाया बजाया गया और जिसका असीमित प्रवाह लोक जीवन में प्रवाहित हुआ जो लोक संगीत की परिधि में आता है अर्थात लोक संगीत कहलाता हैं। इस संगीत की पुष्ट धरातल शास्त्रीय संगीत है जो कलाकारों तथा बुद्धिजीवी वर्ग में रच बस गया और उन्नति के नित नये सोपान पार करके आज हमारे सामने उपस्थित है।

इन सभी संगीत की विकासात्मक प्रगति के लिए पुरुष कलाकारों का योगदान तो रहा ही हैं, साथ ही इनमें कुछ महिला कलाकारों का योगदान भी सराहनीय हैं।

*प्रभारी (संगीत वादन), गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद।

Scanned with OKEN Scanner

आदिकाल से ही कोमलता की व्यवस्था में पली नारी जाति सुकुमारता व कोमलता की प्रतीक संगीत को अपनाती रही उसने संगीत में अपनी भावनाओं की कोमलता, कंठ की मधुरता और हृदय की सुकुमारता में साम्य देखा और उस नारी ने अपने सुमधुर कण्ठ में उस संगीत को बिठा लिया जिसे पुरुष वर्ग विशेष परिश्रम के पश्चात् भी उतना सुमधुर बनाने में सफल न हो सका। संगीत चूँकि मधुर भाव में हो, तो नारी सुमधुरता को लिए हुए है, संगीत रस पूर्ण है, और नारी रस की अधिष्ठात्री व भावनाओं की प्रतीक है। यही कारण है कि अनादि काल से ही नारी और संगीत दो विभिन्न रूप न होकर एक समझे जाने लगे और नारी में संगीत का होना स्वाभाविक हो गया।

प्राचीन काल में संगीत में नारी की स्थिति

हमारे आदि कालीन ग्रन्थ वेद भी उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करते है, तथा उस काल में भी जहाँ संगीत का वर्णन है, वहाँ नारी को ही गाता हुआ प्रदर्शित किया गया है, न कि पुरुष को। प्राचीन काल में गृहस्थ कार्यो के अतिरिक्त नारी की सांस्कृतिक उन्नति भी परमू आवश्यक मानी जाती थी, तथा संगीत की शिक्षा ही उसकी सांस्कृतिक उन्नति की प्रसाधन मानी जाती थी। ऋग्वेद में गाती हुई स्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है–

"समुत्वा धीमिरस्वरन्हिवर्ता सप्रजामय, विप्रमाजा विवस्वतः"

"भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास" के अनुसार विदर्भ सभा में भी एकत्रित महिलाओं का ऋकगान करते हुए प्रदर्शित किया गया है। संगीत में गायन, वादन व नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश होने के कारण ऋग्वेद में कई स्थानों पर नृत्यकुशल स्त्रियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है–

"ऋधि पेशांसि वपेत नृतूरि वापोरातु वक्ष उस्रोव वजदम"

इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में तो सामगान में स्त्रियों के ही संगीत नृत्याभिरुचि का उल्लेख है। विशेष कार्य कहा गया है। इसी तरह तेतिरीय संहिता और मेंत्रायिणी संहिता में भी स्त्रियों को संगीत नृत्याभिरुचि का उल्लेख हैं।

उपरोक्त कथन स्पष्ट करते हैं कि संगीत के क्षेत्र में नारी का अपना एक विशेष स्थान था, महाभारत काल में स्त्रियों की संगीत शिक्षा के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं। उत्तरा की संगीत व नृत्य शिक्षा अर्जुन द्वारा हुई थी तथा महाभारत के "विराटपर्व" में इसका स्पष्टतः उल्लेख है।

अतः स्पष्ट है कि सामगायन आदि ब्राह्मण कुल की स्त्रियां करती थी, साथ ही क्षत्रिय कुल में भी संगीत व नृत्य कला का प्रचलन था तथा अभिजात वर्ग भी इससे अछूता नहीं था।

मध्यकाल के शास्त्रीय संगीत में स्त्रियों का योगदान

इस काल में राग, गायन प्रचलन हो गया था। ध्रुपद और ख्याल भी प्रचलित हुए। इस काल में भारतीय कलाओं का पूर्णतः पतन हुआ। मुस्लिम साम्राज्य होने के कारण भारत की प्रगति पूर्ण रूपेण अवरुद्ध हो गई। संगीत के क्षेत्र में योगदान बहुत कम देखने को मिलता है फिर भी कुछ महिला कलाकार जैसे राजा मान सिंह तोमर की रानी मृगनयनी ने मिलकर संगीत के क्षेत्र में जो किया वह आज भी प्रमाणिक रूप में ग्वालियर में सुरक्षित है। इन दोनों ने मिलकर ध्रुपद शैली का अविष्कार किया तथा इसका प्रचार-प्रसार किया।

ग्वालियर में आम जनता में संगीत के प्रति बहुत जागृति थी, घर-घर में संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई देती थी, नारियां भी संगीत की शिक्षा लेती थी और सार्वजनिक संगीत सम्मेलनों में भाग लेती थी। इसी श्रृंखला में इस काल में महिला उच्चकोटि की संगीतज्ञ मीराबाई का भी नाम आता है। मीराबाई गायन तथा नृत्य में निपुण थीं। यह कृष्ण भक्त कवि थी। झांझ, करताल व इकतारा सहित नृत्य के साथ गायन करते हुए संगीत के तीनों अंगो से संयुक्त साधन करने पर पूर्ण रूपेण श्रेय इन्ही को उपलब्ध है। आपकी गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग-रागनियों तथा लोक गीतों की धुनों का

Scanned with OKEN Scanner

अदभुत सम्मिश्रण हुआ हैं। आपके पदों में लगभग 90 राग, रागनियों का प्रयोग देखने को मिलता है। इस काल में भारतीय नारियों में नारीत्व की उच्च गरिमा जागृत करने का श्रेय इन्हीं को जाता हैं। आपका नाम भारतीय संगीत में सदैव अमर रहेगा। इसके अतिरिक्त कुछ अस्पष्ट से नाम इस काल में महिला कलाकारों के प्राप्त होते हैं, जैसे सहजोबाई, दयावती इत्यादि। ये सभी कृष्ण भक्त कवि थीं।

इसके अतिरिक्त इस काल में शृंगारिक पक्ष अधिक होने से उसमें भाव चित्रण स्त्रियों का ही प्रधान था, उनका सौन्दर्य उनका हाव भाव, उनकी वेश-भूषा, आभूषण इत्यादि पर विधिवत साहित्य लिखा गया है। ठुमरियों का भाव प्रदर्शन भी महिलाओं के द्वारा ही होता थां सारांश में स्त्रियोचित भावों का अत्यधिक प्रदर्शन इस काल में हुआ।

आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत में महिलाओं का योगदान

19वीं शताब्दी तक आते-आते संगीत व शिक्षा केवल संगीत द्वारा जीविकोपार्जन करने वालों के लिए ही उपयुक्त समझी जाती थी। यदि किसी घर की स्त्री के सम्बन्ध में यह पता चले कि वह संगीत में रुचि रखती है, तो वह परिवार वालों के लिए लज्जा की बात समझी जाती थी। 1850 ई. तक नारी शिक्षा समाप्त हो चली थी, तथा ब्रिटिश सरकार के अत्यधिक परिश्रम करने पर भी प्रथम चालीस वर्षो में नारी समाज को शिक्षा व संगीत मे सफलता नहीं मिल सकी। इसका मुख्य कारण था बाल-विवाह, 1920-25 में सरकार द्वारा विवाह की अवस्था 14 वर्ष नियत हुई तब उसे नारी शिक्षा में विशेष सहायता मिली। भारत मे सदा से ही छोटे-छोटे राज्यों की प्रधानता होने के कारण गायिकाओं, नर्तकियों की संख्या अधिक रही।

आधुनिक काल में भातखण्डे जी तथा विष्णुदिगम्बर जी के सतत् प्रयत्नों से संगीत जन-जन में फैला प्रत्येक घर के लोग उसे अपनाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक कान्फ्रेंस में गायिकाये बुलाई जाती हैं। आज माणिक वर्मा, हीराबाई बड़ोदकर, गगूबाई हंगल, सिद्धेश्वरी देवी, रोशन कुमारी, गिरिजा देवी, बेगम अख्तर, रसूलन बाई, लता मंगेश्कर, ऊषा, आशा भोसले, आरती मुद्गल ये सभी उच्च कोटि की गायिका है। इसके अतिरिक्त सरोद वाद्य में भी शरण रानी, जरीन दारुवाला, तबले में आबान मिस्त्री, पखावज वादन में इन्दौर की चित्रांगना पन्त आंगले इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। नृत्यांगनाओं में दमयन्ती जोशी, सोनल मानसिंह वैजयन्तीमाला, मल्लिका साराभाई, सारंग बहने शहनाज और अर्शनाज यामिनी कृष्णमूर्ति, सितारा देवी जी का नाम आदर से लिया जाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज नारी प्राचीन वेदकालीन नारी की भांति विवाह के पूर्व अन्य विद्याध्ययन के साथ ही संगीत कला का भी अध्ययन करती हैं। विशेष रूचि वाली नारियॉ रेडियों, फिल्मों में भी गाती हैं तथा उच्च स्तर प्राप्त करने पर संगीत सभाओं में भी आदर का स्थान प्राप्त करती हैं। और शास्त्रीय संगीत के नित नये आयाम प्रस्तुत कर रही है जो आज महाविद्यालयों में प्रवक्ता वर्ग में छात्राओं का संगीत विषय में जिसमें तीनों क्षेत्र आते हैं, गायन, वादन तथा नृत्य का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत निबन्ध संग्रह—हरिशचन्द्र श्रीवास्तव
2. संगीत बोध—शरद्चन्द्र परांजपे।

Scanned with OKEN Scanner

सौन्दर्यशास्त्र और ललितकला

कुमारी कंचन*

वर्त्तमान युग में सौंदर्यशास्त्र एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित हुआ है जिसका मूल उद्देश्य सौंदर्य का अध्ययन एवं मूल्यांकन करना है।

जर्मनी के दार्शनिक बामगार्टन को आधुनिक सौंदर्यशास्त्र का प्रवर्त्तक या जनक [Father of (modern) Aesthetics] कहा जाता है, क्योंकि सर्वप्रथम इन्होनें ही 1750 ई. में एस्थेटिक की व्याख्या कर सौंदर्यशास्त्र को अध्ययन की एक स्वतंत्र व पृथक शाखा घोषित किया। इनके अनुसार, "एन्द्रिय माध्यम से पूर्णत्व की अनुभूति सौन्दर्य है।"

Aesthetics शब्द मूलतः ग्रीक भाषा के Aesthetikos शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है ध्यानपूर्वक देखना, समझना तथा अनुभव करना। यही भारतीय दार्शनिकों की भी मौलिक विशेषताएँ हैं।

सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा निम्न प्रकार है–

हीगेल के मतानुसार, "सौंदर्यशास्त्र ललित-कलाओं का दर्शन है।"

स्पारशाट के शब्दों में, "Aesthetics I shall take to be that part of Philosophy which deals with problems arising mainly out of the existence of beautiful things and men's responses to them; and out of the intellectual activities connected there with."

के. सी. पाण्डेय ने सौंदर्यशास्त्र को 'स्वतंत्र कलाशास्त्र' कहा है। इनके अनुसार, "स्वतंत्र कलाशास्त्र स्वतंत्र कलाओं का विज्ञान एवं दर्शन है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से दो बातें स्पष्ट सामने आती हैं–

(1) सौंदर्यशास्त्र कला का सैद्धांतिक विवेचन है और

(2) कला से संबंधित मानव व्यवहार और सैद्धांतिक अध्ययन है।

सौंदर्यशास्त्र ललितकलाओं का शास्त्र है। इसे ललितकलाओं का सौंदर्य विधान भी कह सकते हैं, क्योंकि विधान शब्द सिद्धांत और प्रक्रिया दोनों पक्षों को ग्रहण करता है। अतः सौंदर्यशास्त्र आज अध्ययन के स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है।

सौंदर्यशास्त्र का विषय-क्षेत्र निम्न प्रकार है–

(1) कलाओं का विधिवत वर्गीकरण और उनके अंतः संबंधों का अध्ययन।

(2) सौंदर्य रूप विज्ञान अर्थात विभिन्न कलाओं की रचना व शैली का विस्तृत अध्ययन।

(3) कला के ऐतिहासिक सिद्धांत।

सौंदर्यशास्त्र के रूपरेखा इस प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं–

(1) सौंदर्य का अभिप्राय

(2) कला का अभिप्राय एवं सौन्दर्यतत्व

(3) कलाकार का कर्तव्य

(4) कला की अभिव्यक्ति व प्रस्तुतीकरण

(5) सौंदर्यानुभूति

(6) कलाओं की सौंदर्य परंपराओं की सुरक्षा तथा नया सुझाव।

सौंदर्य को प्रभावित करने वाली कला के दो भेद माने गये हैं–(1) ललितकला और (2) उपयोगी कला। ललितकला के अन्तर्गत मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, साहित्य इत्यादि आते हैं। इनमें संगीत के

*शोध छात्रा, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति. मा. भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

द्वारा सौंदर्य स्वतः सिद्ध हो जाता है। संगीत की सौंदर्य शक्ति ही मानव को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की ओर ले जाता है।

सौंदर्य तत्वों का विभाजन चार भागों में किया गया है–ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, कलात्मक, दार्शनिक तथा काव्यात्मक।

सौंदर्यशास्त्र का मूल विषय सौंदर्य के स्वरूप की व्याख्या है। इससे संबंधित विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोण निम्न प्रकार हैं–

(1) **अध्यात्मवादी दृष्टिकोण**–प्लेटो, हीगेल आदि सौंदर्य को ईश्वर स्वरूप और संपूर्ण सृष्टि को ईश्वर की कला की कलाकृति मानते हैं।

(2) **बुद्धिवादी दृष्टिकोण**–लॉक, कांट के अनुसार; सौन्दर्य बुद्धि का गुण है। बुद्धि विचार से सुन्दर की उपमा ही सौन्दर्य है।

(3) **रूपवादी दृष्टिकोण**–अरस्तू, बर्क आदि सौंदर्य का अस्तित्व रूपगत विशेषताओं में मानते हैं अर्थात सौंदर्य को पदार्थ का गुण मानते हैं।

(4) **उपयोगितावादी दृष्टिकोण**–इस मत के समर्थकों का कहना है कि उपयोगिता में ही सौंदर्य का गुण है।

(5) **भाववादी दृष्टिकोण**–इनके अनुयायी मन में उठने वाले भावों को लोगों तक पहुँचाने की कला को सौंदर्य मानते हैं।

(6) **मूल्यवादी दृष्टिकोण**–इस दृष्टि को मानने वाले किसी मूल्य (Value) को सौंदर्य मानते हैं।

(7) **साहचर्यवादी दृष्टिकोण**–इस मत के अनुयायी सौंदर्य को व्यक्ति के संस्कार एवं व्यवहार के सुंदरता से संबंधित बताते हैं।

इस प्रकार सिद्धांतों का नये दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने वाला विज्ञान ही सौंदर्यशास्त्र है। इसके अंतर्गत मुख्यतः ललितकलाओं के मौलिक सामान्य तत्वों का अध्ययन किया जाता है।

सान्तायना के अनुसार, "सौंदर्य के अंतर्गत सभी मूल्य समन्वित होते हैं। "

प्लेटो के अनुसार, "Unity within variety is beauty."

निष्कर्षतः सौंदर्य इन्द्रियों को प्रभावित कर सुखद रस से आनंद विभोर कर देती है। अतः इन्द्रिय सुख की अनुभूति ही सौंदर्य है और सौंदर्यशास्त्र एक स्वतंत्र शाखा के रूप में सौंदर्य के अध्ययन एवं गुण आंकने का शास्त्र है। कला सौंदर्य में ही उसकी आनंद प्रदायिनी शक्ति निहित होती है।

Scanned with OKEN Scanner

ललितकलाओं में संगीत का स्थान

कुमारी बीभा

कला मानव-संस्कृति एवं सौंदर्य की उपज है। कार्य कुशलता ही कला है तथा 'आनंद-दान' ही कला का उद्देश्य है। कलाओं को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है—ललितकला और उपयोगी कला।

जिस कला में लौकिक अर्थात सांसारिक तथा अलौकिक अर्थात आध्यात्मिक दोनों आनंद मिलते हैं, उसे ललितकला कहते हैं। ललितकला मनुष्य के सौंदर्य बोध की प्रतीक है तथा विकसित अवस्थाओं की परिचायक है। परन्तु उपयोगी कलाएँ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबद्ध है। ये अलौकिक आनंद की सिद्धि में ही सहायक सिद्ध होती हैं। इसमें थोड़ा बहुत सौन्दर्य का भाव रहता है परन्तु वह गौण है।

संस्कृत वाङ्मय के अनुसार, ये पाँच भेद माने जाते हैं। इनमें से प्रथम तीन वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला को 'दृश्य' माना जाता है तथा संगीतकला और काव्यकला को मुख्यतः 'श्रव्य' कहा गया है। ऐसे हमारे यहाँ 64 कलायें मानी गयी हैं जिनमें संगीतकला, चित्रकला और काव्यकला विशेष महत्व रखता है। इनमें संगीतकला अधिक प्रभाव डालने वाली कला है। मनुष्य के हृदय में सोये हुए भावों को जगाने में संगीत जितना सक्षम है उतनी और कोई विधा नहीं। जैसे—प्रसन्नता, शोक, समर्पण इत्यादि।

संगीतकला में एक विशेष प्रकार के गुण हैं जिसमें मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षियों को भी आकर्षित करने की शक्ति रहती है।

शॉपेन हॉवर का कहना है, "केवल संगीत ही ऐसी कला है जो श्रोताओं से सीधा सम्बन्ध रखती है। इसे किसी भी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती।"

संगीत का क्षेत्र अत्यंत व्यापक और विस्तृत है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों संगीतकला के अंतर्गत आते हैं। इसके सौन्दर्य और आकर्षण से चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के प्राणी मुग्ध हो जाते हैं किन्तु वास्तु, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं से सिर्फ चेतन प्राणी आकृष्ट होते हैं। किसी कविता को सुनकर मनुष्य भले ही मुग्ध हो जाये किन्तु जन्तुओं पर उसका प्रभाव शून्य होता है। संगीत ही ऐसी कला है जिसको सुनकर मनुष्य और जन्तु तो खुश होते ही हैं पेड़-पौधों तथा लताओं में भी हरियाली छा जाती है।

यद्यपि चित्र, काव्य और संगीत तीनों ललितकलाएँ एक दूसरे से अलग होते हुए भी आपस में इस प्रकार जुड़ी हुई हैं—जैसे-कपड़ा और सूत तथापि तीनों ललितकलाओं में एक ही चीज सामान्य है, वह है—लय। लय पर तीनों कलाओं का सौन्दर्य अवलंबित होता है। संगीत में लय उसका प्रधान तत्व है, इसलिए लय की संपूर्ण शक्ति संगीत कला में निहित रहती है। इस दृष्टि से भी संगीतकला अन्य कलाओं में अग्रणी हो जाती है।

संगीत मानव जीवन को नैतिक कर्त्तव्यों की ओर उन्मुख करता है। संगीत में इतना बड़ा आकर्षण है कि उसके सामने संसार की बड़ी-बड़ी वस्तुएँ भी फीकी पड़ जाती है। सांसारिक विषयों से जो सुख

*शोध छात्रा, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति. मा. भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

मिलता है उससे कहीं अधिक सुख संगीत से प्राप्त होता है। सामाजिक संघर्षों एवं जीवन की जटिल समस्याओं, चिंताओं और अशांति को दूर करने में जितनी संगीतकला सहायक सिद्ध होती है उतनी अन्य ललितकलायें नहीं। इसलिए संगीतकला को अन्य कलाओं से श्रेष्ठ माना गया है।

विद्वानों के अनुसार, "संगीत जैसी श्रेष्ठ दूसरी कला ही नहीं।"

Blasserna कहता है, "Music is certainly the least material of all the fine arts."

संगीतकला वह ललितकला है जिसका आधार नाद है। नाद दो प्रकार का होता है—सूक्ष्म तथा स्थूल। सूक्ष्म नाद अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत होता है जिसका प्रभाव चेतन प्राणियों पर होता है। संगीत जड़ और चेतन दोनों को मंत्रमुग्ध करती है जबकि अन्य ललितकलाएँ केवल प्राणियों को मुग्ध करती हैं। संगीत अन्तःकरण का भोजन है जो परिस्थितियों का मार्ग आलोकित कर जीवन को अलंकृत करता है तथा अनेक रोगों को दूर करने का एकमात्र साधन है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समाज को उत्तम, श्रेष्ठ और सफल बनाने के लिए प्रत्येक प्राणी को संगीत और साहित्य की शिक्षा देना अनिवार्य है। कलाओं द्वारा व्यक्ति भावुक बन जाता है और विद्या द्वारा तार्किक। जिनसे समाज का हित होता है। ललितकला में संगीत का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वह गतिशील है, आनंदानुभूति और भावाभिव्यक्ति में सक्षम है, चर और अचर पर प्रभाव डालने में समर्थ है, लोकरंजन है और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाला है।

इस प्रकार संगीतकला में जितनी उपयोगिता पाई जाती है उतनी अन्य ललितकलाओं में नहीं। साथ ही जो आनंद संगीत द्वारा मनुष्य को प्राप्त हो सकता है वह अन्य किसी ललितकला द्वारा संभव नहीं है। संगीत कला एक ओर मानव के मनोरंजन का साधन है तो दूसरी ओर आत्मसाक्षात्कार करने का माध्यम है। अतः ललितकला में संगीत कला का स्थान श्रेष्ठतम है।

Scanned with OKEN Scanner

शास्त्रीय संगीत पर लोक संगीत का प्रभाव

नूतन कुमारी

संगीत की उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई। प्रकृति के कण-कण में संगीत सरिता का कल-कल निनाद व्याप्त है। जीवन के हर क्षेत्र में संगीत का विशिष्ट स्थान है। संगीत एक ओर यदि स्वान्तः सुखाय होता है तो दूसरी ओर अध्यात्म का मार्गदर्शन भी कराता है। अतः संगीत मानव हृदय की कोमल झंकृति एवं अनुभूति है जो मानव की कलात्मक सर्जना का परिचायक है।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में कहा है कि "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतं मुच्यते।" अर्थात् गायन, वादन और नृत्य इन तीनों कलाओं के मेल को संगीत कहते हैं जो एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। विद्वानों के अनुसार "संगीत वो आहार है जिसके बिना मनुष्य एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता।" संगीत जीवन संचालन का परम तत्व एवं अन्तःकरण का भोजन है जो महान सौन्दर्य की आभा से सदा आलोकित करती रहती है। प्रचलित देशी संगीत को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है—शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत।

साधारणतः शास्त्रीय संगीत उसे कहते हैं जो शास्त्र के नियमानुसार प्रस्तुत किया जाय और लोक संगीत उसे कहते हैं जिसे कोई भी व्यक्ति उन्मुक्त रूप से गुनगुना उठे। महात्मा गाँधी ने कहा है—"लोक संगीत ही जनता की भाषा है।" पेरी के अनुसार, "लोकसंगीत मानव का उल्लासमय संगीत है।" ग्रीम ने कहा है कि "लोकसंगीत जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता की कविता है।" ("Folk song is the poetry of the people, by the people, for the people.")

लोकसंगीत शास्त्रीय संगीत का अविकसित रूप नहीं है और न शास्त्रीय संगीत ही लोकसंगीत का विकसित रूप है। दोनों का स्वरूप एक साथ अंकुरित एवं विकसित होते हैं और दोनों ही एक दूसरे से प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं। शास्त्रीय संगीत के मूल रागों की जननी लोक संगीत ही है तथा उसी के आधार पर शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों का महान भवन अवस्थित है। किन्तु जिस तरह शास्त्रीय संगीत का प्रेरक लोक संगीत है उसी तरह लोक संगीत का प्रेरक शास्त्रीय संगीत नहीं है। शास्त्रीय संगीत यदि लोक संगीत की ओर अभिमुख होता है तो उसकी लोकप्रियता बढ़ जाती है और भावपक्ष रसमय हो जाता है किन्तु यदि लोक संगीत शास्त्रीय संगीत की ओर झुकता है तो इसमें उसे 'कहीं ईंट कहीं रोड़ा' दिखाई पड़ता है जिससे शास्त्रीय संगीत के बोझ से वह अपने गुणों को खो बैठता है।

शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। शास्त्रीय संगीत ने लोक संगीत से जो प्राप्त किया है वह कल्पनातीत है। शास्त्रीय संगीत का आधार यद्यपि लोक संगीत माना जाता है तथापि दोनों के बीच बहुत बड़ी खाई है। लोक संगीत किसी प्रकार के शास्त्रीय नियम के चौखटे में आबद्ध नहीं है। वह बिल्कुल स्वतंत्र है। इनमें स्वतः भाव उत्पन्न हो जाता है किन्तु शास्त्रीय संगीत में वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर, लय, तालों का शुद्ध, प्रयोग तथा समय संबंधी शास्त्रीय नियमों का पालन अनिवार्य और अपेक्षित है। शास्त्रीय संगीत व्यक्तित्व साधना का प्रतीक है तथा लोक संगीत सामुदायिक साधना का।

*शोध छात्रा, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति. मा. भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

शास्त्रीय संगीत के अनेक संगीतज्ञों जैसे–तानसेन, बैजूबावरा, हरिदास आदि महान संगीतकारों की विरासत है तो लोकसंगीत ग्रामीण आँचलों में फैला हुआ मानवीय उल्लास की चटक चाँदनी है। शास्त्रीय संगीत घरानों की शक्लें इख्तियार करके विशृंखल हो गया है किन्तु लोक संगीत आज भी अपने सामूहिक रूप में अपने चौपालों, खेत-खलिहानों, गली-गलियारों, धार्मिक उत्सवों, जन्म, विवाह, मेले आदि में विद्यमान है। लोक संगीत हमारी सांस्कृतिक के प्रतीक, इतिहास की जिन्दा मिशाल तथा सफल काव्य की जननी है।

लोक संगीत में नौ रसों का सुन्दर और हृदयाकर्षक चित्रण मिलता है किन्तु शास्त्रीय संगीत में अनेक रसों का शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक, शांत आदि का चित्रण होता है। शास्त्रीय संगीत मनुष्य द्वारा निर्मित सिद्धांतों की बंदिश में रहता है जबकि लोक संगीत का निर्माण प्रकृति की प्रेरणा से मानव हृदय से निःसृत सुख-दुख के भावों से होता है। अतः लोक संगीत का स्थान एवं महत्व अक्षुण्ण एवं सुरक्षित है।

निष्कर्षतः अनेक विद्वानों के मतानुसार लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का बीज रूप है। शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र विज्ञ समाज है और लोक संगीत का क्षेत्र जनसाधारण। एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ एक शास्त्र प्रधान है तो दूसरा समाज प्रधान। किन्तु दोनों की आत्मा एक ही है।

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय समाज एवं भक्ति संगीत

डॉ. शत्रुध्न ठाकुर

भारत एक धर्म प्रधान देश है। प्रत्येक शुभ कार्य, धार्मिक अनुष्ठानों से आरंभ किया जाय भारतीय समाज के लिए शुभ दायक है। भारतीय समाज के साहित्य एवं संगीत दोनों जगत् प्रसिद्ध है और इन रचनाओं में भक्ति की सीमा भी चरम है। मानव जीवन के लक्ष्य एवं असीम आनन्द की प्राप्ति के लिए मन, वचन एवं कर्म से भगवान की भक्ति आवश्यक है। जब मनुष्य समर्पण की भावना से भगवान के प्रति अनन्य प्रेम-प्रलाप करता है तो वही भक्ति कहलाती है। भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है, जिसमें से भगवान के गुणों का गान सहज और श्रेष्ठ है। गान से अधिक संवेदनशील होने पर माधुर्य भाव अथवा सत्व का उद्रेक होता है।

विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन से विदित होता है कि आजतक अनेक ऐसे महान संत हुए हैं जिन्होंने संगीत के माध्यम से भगवान का नाम जपकर भगवत कृपा के पात्र हुए हैं। भगवान का प्रत्येक नाम एक मंत्र है, स्वर और लय के आधार से मंत्र की शब्द या चेतन शक्ति जाग्रत होती रहती है। वल्लभ, चैतन्य, सूर, मीरा, तुलसी, पुरंदरदास, तुकाराम, हरिदास, जयदेव, विद्यापति, त्यागराज, नरसी, गोरख, हरिदास, धर्मदास, नानक, मलूकदास, रैदास, पलटूदास, दाद, सुन्दरदास, चरनदास, सहजोबाई, इत्यादि संत भक्तों ने स्वर और शब्द की चेतन-शक्ति से ही भगवान का अनन्य प्रेम उपलब्ध किया तथा जगत् को सत्य का संदेश दिया।[1]

ईसा की 14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक का काल भक्ति साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। इस काल में भक्ति आन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था, और इसी समय निर्गुण संत भक्ति, प्रेममार्गी, सूफी भक्ति, प्रेमलक्षणा, कृष्ण-भक्ति तथा मर्यादामार्गी राम-भक्ति की प्रेरणा से हिन्दी के सर्वोच्य साहित्य का निर्माण हुआ, जिसके प्रभावस्वरूप शिल्प, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं को भी पूर्ण विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस काल को भक्ति काल कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस काल के भक्त गायकों द्वारा प्रसारित जीवन के मूल्य और मर्यादाएँ आजतक लोक में प्रतिष्ठित है क्योंकि सभी संत-गायक समानरूप से सांसारिक भोग-विलास को हेय और त्याज्य दृष्टि से देखते हैं, मिथ्या वैभव, पाखंड, धर्मभ्रष्ट तथा अत्याचारी प्रवृति की निन्दा की दृष्टि से देखते हैं। जीवन के सात्विक रूप, शास्त्रीय मर्यादाओं के पालन, जीव मात्र के प्रति दया तथा प्रेम की प्रवृत्ति को अपनाने पर वल देते हैं, ताकि मानव की प्रसुप्त क्रियात्मक शक्तियों का जागरण होकर अक्षय सुख और शांति की अभिवृद्धि हो।[2]

प्रारंभ से ही मनुष्य की प्रवृति में भगवान के प्रति प्रेम किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रवृति की अभिव्यक्ति सभ्यता के सभी स्तरों देशों एवं कालों में होती रही है और इसी का नाम भक्ति है।[3]

मीरा, सूर, तुलसी इत्यादि महान विभूतियों ने अपने भक्ति-काव्य को साहित्य तथा संगीत की दृष्टि से पूर्ण व्यवस्था दी। सामान्य जीवन से उठकर उनकी रचनाएँ शास्त्रीय संगीत तथा भाषा साहित्य तक को समृद्ध करने लगी।

---

*ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

'गीत' को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का साधन बताया गया है। भक्ति परक पद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद पद्धति के जनक है। इससे पूर्व स्तोत्र गान (ईश्वरपरक स्तुति गान) ने प्रबंध गान को पुष्ट किया था। इन सबका आदि रूप सामगान वस्तुतः स्तोत्र-पाठ का ही गेय रूप था, अतः आज भी भक्तिगान के माध्यम से नाद के वाह्य रूप का चेतना के साथ सम्बन्ध स्थापित करना संभव है।[4]

महाकवि सूरदास रचित अनेकों ऐसे भक्ति पद्य है जो संगीत के सुर, ताल से परिपूर्ण है। आश्चर्य की वात यह है कि, इस अंधे भक्त महाकवि के काव्य और संगीत गुरु कौन थे यह किसी को ज्ञात नहीं है। निबंध संगीत में उल्लिखित सूर की भक्ति और संगीत नामक लेख से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य भल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के पूर्व सूरदास केवल विनय और भक्ति के पद ही गाया करते थे और बाद में आचार्य के आदेशानुसार इन्होंने लीला का गायन किया। उन विनय और भक्ति के पदों में भी पुष्टिमार्ग की झलक मिलती है। आचार्य ने उनकी विशिष्ट काव्य-रचना, गायन-कला और भक्ति-भावना को देखकर अष्टछाप के भक्त संत कवियों में इन्हें प्रथम स्थान दिया।

तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास आदि इन्होंने भक्तिकाव्य लिखा। वे स्वयं गायक भी थे "जब सूरदास मरणासन्न अवस्था में पहुँच गए, तो इनके दर्शन के लिए आचार्य विट्टलनाथ के साथ अन्य संत कविगण भी गए। चतुर्भुजदास ने सूरदास से पूछा की पुष्टिमार्ग का स्वरूप कैसा है? इसपर इन्होंने केदार राग में यह पद गाया—

भजि सखि, भाव-भावक मेव।
कोटि साधन करो कोऊ तऊ न माने सेव
वेद-विधि को नेम नाहि, न प्रीत की पहचान।
व्रज बधू बस कियो मोहन, सूर चतुर सुजान॥

वस्तुतः पुष्टिमार्ग के अनुसार भक्त और ईश्वर में मर्यादा की कोई आवश्यकता नहीं है। बुद्धि के बदले हृदय की पवित्रता चाहिए। यदि हृदय पवित्र है, तो ईश्वर पास ही में है। इसी भाव के अनुसार इन्होंने सख्य और वात्सल्य भाव की भक्ति को श्रेष्ठ बताया है।

भक्ति के प्रकार—'नारद भक्ति-सूत्र' के अनुसार भक्ति के एकादस प्रकार हैं—(1) गुणमहात्म्याशक्ति (2) रूपाशक्ति (3) पूजाशक्ति (4) स्मरणशक्ति (5) दास्याशक्ति (6) सख्याशक्ति (7) कांताशक्ति (8) वात्सल्याशक्ति (9) निवेदनाशक्ति (10) तन्मयाशक्ति (11) परमविरहशक्ति। सूरदास ने अपने पदों के माध्यम से भक्ति का प्रचार किया है, जो सूर सागर में स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। इस मार्ग के अनुसार, भगवान को सर्वदा स्वभाव से भजनीय माना गया है।

इसी तरह बाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग आया है कि 'रामायण' के उद्भव का हेतु ही करूण संगीत की स्वरधारा है। व्याध द्वारा क्रौंच वध के हृदयद्रावक दृश्य को देखकर महर्षि वाल्मीकि के हृदय से जो शोकोद्गार आठ अक्षरों वाले सम वर्गवृत्त अनुष्टुप या श्लोक के रूप में फूट पड़ा था, वह एक गेयनियमबद्ध रचना ही थी—

मा निषाद् प्रतिष्ठांत्व।	8 वर्ण
मगमः शास्वती समाः।	8 वर्ण
यतक्रौज्यनिथुनादेश।	8 वर्ण
मवधीः काममोहितम्।	8 वर्ण

हे व्याधः तुझे अनंत काल तक कभी शांति न मिले क्योंकि तूने क्रौच पक्षियों के इस जोड़े में से एक अनुरागी साथी को निरपराध मार डाला है। रागात्मकता से सहज निष्पन्न इस श्लोक की संगीतात्मकता को महर्षि ने अपने एक शिष्य को समझाते हुए कहा—

'पादबद्धोउक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्वितः
शोकोर्तस्य प्रवृतो में श्लोके भवतु नान्यथा'।

भक्ति काव्यों के कुछ प्रकार ऐसे भी प्रचार में आए हैं, जिन्हें लोकधुनों का आश्रय प्राप्त हो जाने से वे साधारण जीवन और हिन्दू संस्कृत का अंग बन गए है। दैनिक जीवन में राग-द्वेष तथा हर्ष शोक के भाव प्रायः किसी न किसी क्षण में आते ही रहते हैं, जिससे मानव मन विचलित होता रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

इस अवस्था से मुक्ति पाने के लिए भक्ति गान और भक्ति नृत्य से बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। 'द्वारिका माहात्म्य' में लिखा है कि जो प्रसन्न चित्त से श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरों के पापों से मुक्ति पा लेते हैं।

भक्ति गीत पवित्र, वंदनीय तथा अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते हैं। भक्ति-काव्य में सत्य, शिव और सौन्दर्य का अद्‌भुत समन्वय है। इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाय तो भारतीय समाज भक्ति संगीत के अपार भंडार से भरा पड़ा है।

संदर्भ

1. निबन्ध संगीत, संकलक लक्ष्मी नारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 558
2. स्तोम, 2007, सम्पादक–डा. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', पृ. 28
3. मैथिली भक्ति काव्य का संगीत शास्त्रीय अध्ययन, (शोध प्रबन्ध), डा. लालति कुमारी, ल.ना.मि.वि. दरभंगा।
4. संगीत शिक्षा अंक, जनवरी-फरवरी, 1988।

Scanned with OKEN Scanner

कर्नाटक संगीत पितामह : संत पुरन्दरदास

डा. के. शशिकुमार

समय-समय पर इस धरती पर अनेक ऐसे महापुरूषों ने अवतार लिया है जिन्होने अपने क्रिया-कलापों से मानव जाति को भक्ति और प्रेम का सन्देश दिया। ऐसे ही एक संत महापुरुष हुए हैं पुरन्दरदास। सन्त पुरन्दरदास ने अपने भक्ति संगीत के माध्यम से कर्नाटक संगीत की जो सेवा की है उसके कारण इन्हें कर्नाटक संगीत के पितामह के रूप में जाना जाता है। पुरन्दरदास का जन्म 14वीं शताब्दी में बेल्लारी जिले में हम्पी के निकट पुरन्दरगदा नामक गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम वरदप्पा नायक था और माता का नाम कमलाम्बा था। एक धनी व्यापारी के पुत्र होने के कारण इनका पालन-पोषण अत्यन्त स्नेहपूर्ण वातावरण में सभी सुख-सुविधाओं के साथ हुआ। समयानुसार इन्हें महान विद्वानों के सानिध्य में शिक्षा प्राप्त करने हेतु रखा गया। जल्दी ही इन्होंने संस्कृत, कन्नड़ आदि भाषाओं पौराणिक कथाओं तथा संगीत में दक्षता प्राप्त कर ली। 11 वर्ष की आयु में इनका विवाह सरस्वती बाई से हुआ। 20 वर्ष की अल्पायु में माता-पिता के देहावसान के बाद उन्होंने अपने पिता के व्यापार को सम्भाला और उसे आगे बढ़ाया। शीघ्र ही इन्होंने अपनी कुशलता के बल पर अत्यधिक धन एकत्र कर लिया जिस कारण उन्हें **नव-कोटि नारायण** की संज्ञा दी जाने लगी। परन्तु ईश्वर ने तो इन्हें किसी अन्य उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु धरती पर भेजा था। भाग्य में श्री वृद्धि के साथ ही पुरन्दरदास के अन्दर कृपणता की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। अपने भक्त को मार्ग से विमुख होता देखकर स्वयं नारायण एक ब्राह्मण के वेष में उनेक द्वार पर आए और उनसे अपने पुत्र के उपनयन संस्कार में होने वाले खर्च में कुछ योगदान देने का आग्रह किया। परन्तु कृपण पुरन्दरदास ने इसे भविष्य पर टाल दिया। प्रतिदिन यही उत्तर मिलते रहने के कारण एक दिन निराश ब्राह्मण उनकी सहृदयी पत्नी के पास अपना निवेदन लेकर पहुँचा। पत्नी ने द्रवित होकर अपने नाक की कील ब्राह्मण को सौंप दी। प्रसन्न ब्राह्मण उसे बेचने पुरन्दरदास के पास गया। पुरन्दरदास कील देखते ही पहचान गया और अपनी शंका के समाधान हेतु सेवक को पत्नी के पास भेजा। सेवक को देखते ही वह भय से काँपने लगी और अपने जीवन का अंत करने का निश्चय कर लिया। उसने जैसे ही विषपान हेतु पात्र उठाया उसे अपनी कील के सदृश्य एक कील उस पात्र में मिली। इस चमत्कार से अचंभित सरस्वती बाई ने ईश्वर का धन्यवाद करते हुए यह कील सेवक को दे दी। कील देखकर पुरन्दरदास चकित रह गया और तत्काल सत्यता जानने हेतु अपनी पत्नी के पास आया। पत्नी से सारा वृतान्त जानने के बाद उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। इस घटनाक्रम के बाद पुरन्दरदास ने अपनी सारी सम्पदा को दान में दे दिया और सादा जीवन बिताने का निश्चय किया। इस हृदय परिवर्तन के बाद सबसे पहला गीत जो उन्होंने गाया वह था—"मोसाहोदेनल्लो" राग अडाना में। कर्नाटक संगीत में संत पुरंदरदास का योगदान अविस्मरणीय है। उनके विषय में सर्वप्रथम उल्लेख चिला तिरुमल द्वारा रचित "अन्नमाचार्य चरितयम्" में प्राप्त होता है। पुरन्दर दास को नारद मुनि के अंशावतार के रूप में भी जाना जाता है उन्होंने

*वरीय प्रवक्ता, कर्नाटक संगीत, संगीत एवं मंचकला संकाय, वाराणसी

Scanned with OKEN Scanner

लगभग 4, 75000 गीतों की रचना की है। उनकी रचनाएं "देवरनामा" या "दाशरपदगडो" के नाम से सम्पूर्ण दक्षिण भारत में आदर के साथ गाई जाती है। उनके द्वारा रचित गीतों में एक आदर्श संगीत की भांति संगीत के विविध रूपों वाद्य, ताल, आदि का सुन्दर सन्निवेश परिलक्षित होता है। संगीत शिक्षण के महत्त्व को समझते हुए उन्होंने स्वरावली, अलंकार, गीत, कीर्तनम् पिल्लारी आदि की भी रचना की है। कर्नाटक संगीत के इस अमर रचनाकार ने सबसे पहले मायामालवगौला राग के स्वर-सप्तक के महत्व को समझा और इसी समय से संगीत के विद्यार्थी अपने प्रारम्भिक स्वराभ्यास में इस राग का प्रयोग करने लगे। आज भी कर्नाटक संगीत में यह पद्धति प्रचलित है। पुरन्दरदास ने प्राचीन रागों को अपने भक्ति गीतों के माध्यम से एक ऐसे परिष्कृत रूप में जनता के सामने रखा जिसमें आत्मसात करने, ध्यान आकर्षित करने तथा लोकप्रिय होने की पर्याप्त क्षमता थी। उनकी इस महत्ता को स्वयं संगीत त्यागराज ने भी आदरपूर्वक स्वीकारा है। "वालजापेट वेंकटरमन भागवतार ने अपने गुरु त्यागराज पर लिखे ग्रन्थ "गुरुचरित्र" में भी पुरन्दरदास की महिमा का गुणगान किया है। ग्रन्थ में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि त्यागराज प्रतिदिन पुरन्दरदास, अन्नम्माचार्य, तथा वेंकट विट्टल द्वारा रचित भजनों को गाया करते थे जो, इस बात की पुष्टि करता है कि त्यागराज पुरन्दरदास को भक्तिमार्ग के एक महान सन्त के रूप में स्वीकार करते थे।

पुरन्दरदास द्वारा रचित भक्ति गीतों को बाद में भजन पद्धति के रूप में ग्रहण कर लिया गया और आज भी इनकी रचनाओं को इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक गाया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

आदर्श संगीत संरक्षक बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह

दीप्ति कुमारी*

संगीत साहित्य और शिल्प के विकास में राजे-महराजे का जितना सक्रिय योगदान रहा वह इतिहास के पन्नों के साथ-साथ जन जन पर छाया हुआ है, सच में सामंतवादी युग में संगीत एवं ललित कलाओं का बहुत ही विकास हुआ राजा-महराजाओं कला और संस्कृति के सजग प्रहरी थे। ऐसे ही संगीत के आश्रयदाता और संगीत कार कोशी क्षेत्रीय वर्तमान सहरसा के पंचगछिया ड्योढ़ी के बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह थे।

बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह का जन्म 1882 ई. में पंचगछिया के जमींदारी प्रियवत नारायण सिंह के यहाँ हुआ। पंचगछिया डयोढ़ी में संगीत की परम्परा पुरानी थी। सामंतो में बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह संगीतज्ञों के आश्रयदाता ही नहीं बल्कि खुद भी संगीत के सिद्ध तथा संगीत के संरक्षक एवं मर्मज्ञ थे।

वैसे राजा-महराजाओं के लिए संगीत सिर्फ आमोद-प्रमोद के लिए ही होता था। नये सामंत संगीतकारों को संरक्षण और उनको विलास करने में पूर्णतः उदासीन है। लेकिन पहले के सामंत इसके अपवाद हुआ करते थे। बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह जी के लिए संगीत उपासना थी। सामान्यतौर पर सुरा-सुन्दरियो के आंशिक विलासिताप्रिय सामंतो में ऐसे भी कई राजा हुए जो इन सभी कुरीतियों से बहुत अलग रह कर उच्च कोटि को विद्याव्यसनी तथा कलापारखी हुए राय बहादुर ऐसे ही मार्मिक हृदय के थे। राय बहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह संगीत की विभूति थे। वे संगीत और संगीत कारों के लिए ही पैदा हुए थे। अपनी सांगीतिक उपलब्धि के लिए वो कभी भी भुलाए नहीं जा सकते।

लक्ष्मीनारायण सिंह जी के पितामह रूद्रनारायण सिंह कोशी क्षेत्र के महान संत लक्ष्मी नाथ गोसाई के समकालीन थे वो स्वयं भजन बनाते और गाते थे, इसलिए लक्ष्मीनारायण सिंह जी का संस्कार अपने वंशो से ही मिला।

इनके गुरु पण्डित विश्वनाथ पाठक थे, जो भड़सर बलिया के थे। विश्वनाथ पाठक को अपने यहाँ रखकर उनसे विधिवत संगीत की शिक्षा ली युवावस्था में उन्हें भारत के माने हुए पखावज में उनको स्थान मिला। हारमोनियम वादन और गायन में भी उन्हें निपुणता थी। हारमोनियम इतना अच्छा बजाते थे कि सुनने वालो को स्वर लहरी में बहा देते थें। संगीतकारों को मार्गदर्शन और संरक्षण देना वे परम कर्तव्य समझते थे।

विसमिल्लाह खाँ अपने बचपन के दिनों में अपने मामा के साथ बहुत दिनों तक पंचगछिया में रहे। बाद में भी वो सहरसा कभी आये तो पूछे की पंचगछिया जाना चाहता हूँ और वहाँ के धरती को नमन करना चाहता हूँ।

देश के बहुत से रजवाड़ो जैसे बिहार के बेतिया, बनौली, गिद्धौर, दरभंगा और टेकारी रियासतें थी। जो संगीतकारों का पोषक और संरक्षण के लिए विख्यात थे। लेकिन बनैली स्टेट के कुमार श्यामानन्द सिंह (जो कुशल संगीताकार थे) के शब्दों में पंचगछिया एक छोटी जमीन्दारी थी लेकिन वहाँ सामंत बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह संगीत की ऐसी उत्कृष्ट सेवा की कि एक नौकर को (मॉगन खवास) उन्होनें उच्च कोटि का गायक बना दिया। पंडित शंकर राव पटवर्धन जी पंचगछिया और रायबहादुर के विषय में

*शोध छात्रा, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

कहते थे कि उनके जैसा संगीत पारखी और संगीतकारों का सम्मान करने वाला राजा बहुत कम मिला। पंचगछिया ड्योढ़ी में देश के बड़े बड़े कलाकार सब अपनी कला का शिरकत करने आते जैसे मशहूर बीनकार उस्ताद वजीर खाँ, उस्ताद तसहुक हुसैन खाँ, उस्ताद अल्ताफ हुसैन, मसहूर पखावज वादक बासुदेव उपाध्याय और बिरू मिश्र यहाँ आते थे मलका और सिंघेश्वरी देवी नियमित रूप से आती थी।

एक बार लक्ष्मीनारायण सिंह जी कलकत्ता पहुँचे वहाँ वाद्य क्षेत्र की प्रदर्शनी लगी हुई थी वो एक वाद्यों को उठाकर बजाने लगे, इतना अच्छा बजाये कि उस कम्पनी का मैनेजर उन्हें उस कम्पनी में नौकरी और अच्छा तनख्याह देने की पेशकश की इससे उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचा और उनको काफी गुस्सा आया और होटल आते ही उन्होनें दरबान को आदेश दिया कि उनका दस्तखत किया ब्लैंक चेक कंपनी के मैनेजर को दे और पूरी नुमाईश की चीज दुगुनी दाम देकर खरीद ले। जब मैनेजर को मालूम हुआ कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि पंचगछिया स्टेट के सांमत है तो उन्हें बहुत शर्मिन्दगी हुई। राय बहादुर लक्ष्मीनारायण जी के शिष्यों में सभी वर्गों और जाति के लोग थे। वो संगीत शिक्षा देने में जातिगत भावना नहीं रखते थे इसका उदाहरण मॉगनखवास है जिनकी विलक्षण प्रतिभा को परखकर उनको अद्धितीय गायक बनाये। मॉगन के कंठ स्वर के वो ऐसा दिवाना थे कि कहना मुश्किल। बाबू ब्रहमदेव नारायण सिंह के बहकावें में मॉगन अपने आश्रयदाता को छोड़कर दरभंगा चले गये। उन्हें बहुत कष्ट हुआ और उन्होनें फिर से रघु झा को तैयार किया। लेकिन मॉगन जैसी प्रतिभा को छू पाना असम्भव था। मॉगन के जाने के बाद वो टूटने लगे, मॉगन लौट कर तो आया लेकिन उनके दिल में फिर से जगह नहीं बना पाए और उन्होंने मॉगन को स्वीकार नही किया लेकिन मॉगन के लिए उनका दिलोदिमाग बेचैन रहने लगा। उनका जीना दूभर हो गया और 1939 ई. में रथयात्रा के दिन संगीत और संगीतकारों के लिए हरपर निछावर रहने वाले राय बहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह मात्र सन्तावन वर्ष में उनका स्वर्गवास हो गया। संगीत के सुरों का हँस उड़ गया। संगीत के अनूठे साधक को दिल्ली लखनऊ और बनारस में आयोजित संगीत सम्मेलनों में अध्यक्षता करने का सम्मान मिला। 1928 ई. को लखनउ संगीत सम्मेलन में राय बहादुर को निर्णायक मंण्डल से एक मात्र सदस्य के रूप में आमंत्रित किया गया और उन्हें संगीत मार्तण्ड की तथा संगीतर्षि की उपाधि से विभूषित किया गया।

इनके मरणोपरान्त पंचगछिया संगीत विहीन हो गया जहॉ खेतिहर मजदूर भी वहाँ सुर में पराती और भैरवी गाता था वहॉ रायबहादुर के गुजर जाने पर श्मशान की निरवता छा गयी। सरंक्षण के अभाव में संगीत का स्वरूप व्यवसायिक और बाजारू होता जा रहा है। इसकी गुणवता दिन प्रतिदिन घटता जा रहा जो भारतीय संगीत के लिए चिन्ता का विषय है। भारतीय संगीत के मर्मज्ञों और संरक्षकों में रायबहादुर सबसे आगे थे जिन्हें लोग कभी नहीं भूल सकता।

सन्दर्भ

1. मिथिला विभूति मॉगन, ले. डॉ. चन्डेश्वर झा
2. मिथिला की संगीत परम्परा, ले. डॉ. चन्डेश्वर झा
3. बिहार की संगीत परम्परा, ले. डॉ. गजेन्द्र ना. सिंह
4. ध्रुवपद शिरोमणि पं. राम चतुर मल्लिक, ले. डॉ. चन्डेश्वर झा
5. भारतीय ध्रुवपद गायन शैली में अमता घराना का योगदान (शोध ग्रन्थ), ले. वेद प्रकाश।
6. कोशी क्षेत्र के अनेक संगीतप्रेमी, संगीतकार एवं संगीत शिक्षण आदि से साक्षात्कार से प्राप्त।

Scanned with OKEN Scanner

Ph. : 220550 (O)
252616 (R)

MAHARAJ LAKSHMISHWAR SINGH MEMORIAL COLLEGE

DARBHANGA

(A Constituent Unit of L.N.M.U.)

Ref. No. 653/09

Date : 25/8/09



सेवा में,
विभागाध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा।

संगीत शोध पत्रिका के प्रकाशन हेतु
हार्दिक शुभकामनाएं

- स्नातक प्रतिष्ठा स्तर की पढ़ाई।
- मेधावी एवं निर्धन छात्रें के लिए विशेष सुविधा।
- छात्रें के लिए परामर्शी परिषद कार्यशील।
- कैंपस सेलेक्सन के द्वारा विभिन्न प्रतिष्ठानों में नियोजन का अवसर।
- वर्ग में छात्रें की उपस्थिति अनिवार्य।

जीवन-रूपी संगीत ही नादब्रह्म या वाग्देवी की वीणा है, जिसके सप्तक में विश्व के आनंद की सप्त धाराएं मूर्त रूप ग्रहण करती है। संगीत की सच्ची साधना वही है, जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस सूक्ष्म नाद का अनुभव करने के योग्य बन सके।

- डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल

Scanned with OKEN Scanner

पंडित जगन्नाथ का ध्रुवपद-जगत में योगदान

विशाल जैन

परिचय—जगन्नाथ नामक 'पंडितराज जगन्नाथ' को संस्कृत साहित्य-जगत में 'रस-गंगाधर' ग्रंथ के रचनाकार के रूप में समादर प्राप्त है। 'जगन्नाथ-कविराय' नामक जगन्नाथ को आचार्य बृहस्पति, अपने मतानुसार पृथक् व्यक्ति मानते हैं।[1] श्री प्रभुदयाल मीतल ने तर्कपूर्ण ढंग से दोनों जगन्नाथ को एक ही व्यक्ति माना है, उनके शब्दों में—"एक ही काल में, एक से नाम तथा रुचि के दो कलाकारों का होना असंगत जान पड़ता है। शाहजहाँ ने उसे ब्रजभाषा में ध्रुपदों की सुन्दर रचना करने तथा उनका शास्त्र सम्मत गायन करने के लिए 'कविराय' की उपाधि दी थी; और उसके संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पांडित्य की प्रशंसा में उसे 'पंडितराज' की पदवी प्रदान की थी।"[2] इसके श्री मीतल ने शाहजहाँ नाम का उल्लेख भी किया है। डॉ. शालिग्राम गुप्त ने अपने ग्रंथ 'मुगल-दरबार कवि संगीतज्ञ' में जगन्नाथ कविराय का परिचय देते हुए 'पंडितराज' एवं 'कविराय' जगन्नाथ को एक माना है।[3] यहाँ पर अभिप्राय यही है, कि जिन 'जगन्नाथ-कविराय' की ख्याति ध्रुवपदकार के रूप में हैं, उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो सके।

'रस-गंगाधर' ग्रंथ के प्रथम आनन के छंद 2 और 3 में अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं को तैलंग ब्राह्मण तथा पूर्वजों की मदुरा नगरी का बतलाया है पंडितराज कृत 'भामिनी-विलास' में प्रत्येक उल्लास की समाप्ति पर दिये शब्दों से ज्ञात होता है, कि उनका जन्म वेंगिनाड कुल में हुआ था, जिसे वेल्लनाडु या वेल्लनाटीय भी कहा जाता है। एक किवदंती के अनुसार जगन्नाथ गोंसाई विट्ठलनाथ जी के स्वजातीय थे और संभवतः किसी प्रकार रिश्तेदार भी।[4] पं. जगन्नाथ ने अपने पिता पेरुभट्ट से साहित्य की शिक्षा प्राप्त की। वाराणसी में वीरेश्वर पंडित 'शेष' का सानिध्य भी आपको मिला। कई विद्याओं और शास्त्रों के विद्वान पं. जी, उदयपुर नरेश जगत सिंह के पास चले गऐ। वहाँ उन्होंने 'जगदाभरण' की रचना की। उन्होंने आगरा दरबार तक जाने हेतु फारसी और अरबी का ज्ञान अनिवार्य जानकर उन भाषाओं को सीखकर उनके ग्रंथों का आलोड़न किया। कवि कृत 'आसफ-विलास' के अनुसार—रायमुकुंद माथुर एवं आसिफ खाँ के द्वारा आपका 1628 ई. के आसपास सम्राट शाहजहाँ के दरबार में प्रवेश हुआ।[5] सम्राट का दरबार आपके कारण समृद्ध हुआ।

पं. जगन्नाथ के आश्रयदाता सम्राट शाहजहाँ एवं उनका राजदरबार

'दारा शिकोह' जो कि सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र था, को संस्कृत-शिक्षा देने का उत्तरदायित्व पं. जगन्नाथ को सौपा गया। सम्राट शाहजहाँ का दरबार कवियों, संगीतज्ञों का समागम बना हुआ था। 'सौन्दर्य प्रेमी सम्राट शाहजहाँ को संगीत से विशेष प्रेम था, वह प्रतिदिन अंतःपुर में साढ़े आठ बजे से दस बजे तक गायिकाओं के संगीत का आनंद लेता था।[6] उसके दरबार में लाल खाँ थे, जो कि तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद थे और सम्राट ने उन्हें 'गुण समुन्दर' की उपाधि दी थी। खुशहाल खाँ लाल खाँ के पुत्र थे। बिस राम खाँ भी लाल खाँ के पुत्र थे। रंग खाँ कलावंत भी उच्च श्रेणी के गवैया थे। किशन खाँ कलावंत आदि भी उनके दरबार में थे।[7]

*शोध छात्र (S.R.F./U.G.C), गायन विभाग, संगीत मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

Scanned with OKEN Scanner

इनके अलावा चिंतामणि मिश्र, शिरोमणि मिश्र और सुन्दर मिश्र आदि कवि भी उस दरबार की शोभा थे। अतः जगन्नाथ कवि ने हिन्दी काव्य का समुचित अध्ययन कर ब्रज भाषा के सुन्दर पदों की रचना की। शाहजहाँ के दरबार में इनका बहुत सम्मान था और उन्हें एक बार चाँदी से तुलवाया गया था। फकीरुल्ला के अनुसार, 'जगन्नाथ ने राग नट में एक ध्रुवपद की रचना की और तानसेन के समक्ष उसे प्रस्तुत किया।' तानसेन ने कहा–'यदि यह दीर्घायु हुआ, तो ध्रुवपद रचना में मेरे बाद प्रसिद्धि प्राप्त करेगा' तानसेन की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और शाहजहाँ के द्वारा जगन्नाथ भलीभाँति सम्मानित हुए।[8]

सम्राट शाहजहाँ ने 1 फरवरी 1633 को दीवाने-खास में आयोजित संगीत सभा में (जो कि मुमताज की मृत्यु के बाद की पहली सभा थी) जगन्नाथ को 'कविराय' की उपाधि प्रदान की थी।[9] ऐसे ही किसी अवसर पर उन्हें 'पंडितराज' की उपाधि दी गई थी। शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार मुल्ला अबुल हमीद द्वारा रचित 'बादशाह नामा' के अनुसार सम्राट ने काश्मीर रवाना होते समय पं. जगन्नाथ को नए ध्रुवपदों की रचना करने को कहा। लौटने पर पं जगन्नाथ ने ध्रुवपद (जिनमें सम्राट की छाप थी) सुनाए, जिससे सम्राट ने आनंदित होकर उन्हें नकदी से तौला।[10]

पं. जगन्नाथ की कृतियाँ

1. **रस गंगाधर**–संस्कृत का प्रमुख काव्य-शास्त्र है। मम्मट तथा विश्वनाथ जैसे आचार्यों की श्रेणी का महत्वपूर्ण प्रौढ़ ग्रंथ है। इसके दो आनन (अध्याय) ही उपलब्ध है।
2. आसफ-विलास–आसफ खाँ के संबंध में आख्यायिका है।
3. भामिनी विलास
4. जगदाभरण
5. गंगा लहरी[11]
6. अमृत लहरी
7. करुणा लहरी
8. लक्ष्मी लहरी
9. प्राणाभरण
10. सुधा लहरी
11. मनोरमा कुचमर्दन–व्याकरण शास्त्र से संबंधित है।
12. चित्र मीमांसा खंडन–काव्यशास्त्र का ग्रंथ है।[12]
13. इसके अलावा ध्रुपद के सैकड़ों पदों की रचना की, जो 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' तथा वल्लभ संपद्राय की पोथियो में संकलित है।

पं. जगन्नाथ द्वारा ब्रजभाषा में ध्रुवपद रचना

पं. जगन्नाथ संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के साथ ही ब्रज भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। सम्राट शाहजहाँ स्वयं ध्रुपद-प्रेमी तथा साहित्य मर्मज्ञ थे, उन्होंने नायक बख्शू के 1000 पदों का संकलन 'सहसरस' के नाम से करवाया था। अतएव नई रचनाओं हेतु, वे अपने कवि संगीतज्ञों को प्रोत्साहित करते थे। पंडितराज जगन्नाथ शाहजहाँ को प्रसन्न करने के लिए नए-नए ध्रुपदों का गायन किया करते थे। ये ध्रुपद स्वाभाविक रूप से ब्रजभाषा में रचित होते थे। जिस प्रकार पंडितराज ने अपने 'रसगंगाधर' में काव्यलक्षणों के उदाहरण अन्य कवियों को न देकर स्वयंनिर्मित दिए हैं, उसी प्रकार उनके गाए हुए ध्रुपदों के गीत भी स्वयं उनके रचे हुए होते थे। 'अष्ट-भाषा-कविता क्षम' पंडितराज के लिए ब्रजभाषा में ध्रुपदों की रचना करना कोई कठिन बात नहीं थी।[13]

पंडित जगन्नाथ रचित ध्रुपदों के उदहारण एवं उनके वर्ण्य विषय

कृष्ण जन्म की बधाई विषयक एक ध्रुपद प्राप्त होता है, जो कि राग कान्हड़ा में निबद्ध है, तथा पद संग्रह की हस्तलिखित पोथी में संकलित हुआ है।

आजु बधावो ब्रजपुर घर-घर गावहु री मिलि मंगलचार।
चतुर बाजे गहिगड़ सो बजावहु, नाँचहु गति विस्तार।
चंदन अँगन लिपाइ, चौक पूरि मोती सुढार।
कलस थापि, गनेस पूजि, आरती करि कंचन थार।

Scanned with OKEN Scanner

साध्यौ लगन मुहूर्त नीकै, नीकै नछत्र और नीके बार।
'जगन्नाथ कविराय' के प्रभु, भाई प्रगटे है नंद कुमार ॥[14]

पंडित जी का रास लीला का एक पद प्राप्त होता है, जिसमें सुन्दर साहित्यिक अभिव्यंजना, माधुर्य और शब्द संयोजन के दर्शन होते हैं।

नवकिसोरी अंग संग, नव किसोर राजै।
अरस परस करत केलि, रीति रस तन मनै झेलि
वलय-किंकनि-नुपूरादि, मधुर-मधुर बाजै
विवि मुख इंदु, ईषद हास, प्रेम मगन गिरत वास,
जगमगात गौरस्याम दामिनि-घन लाजै
वचन रचन करत ख्याल, टूटत मनि पुहुप-माल
'जगन्नाथ' किए सनाथ निरखत दुख भाजैं। [15]

एक पद में कवि रघुवीर की अर्चना करता है, साथ ही वह 'साँवरे' को भी संबोधित करता है। पद मुल्तानी व तिताला में निबद्ध है।

दरस मोहि दीजे श्री रघुबीर।
दास जान के करुना कीजे धरी जात नहीं धीर।
वा दिन को कुछ सुरत करो, जब बढ़ी द्रोपदी चीर।
जगन्नाथ की बार सांवरे काहे भए बेपीर।[16]

एक पद में होरी का वर्णन है, राग ललित में निबद्ध है।

अहो हरि होरी में जब जो गए तुम भाज
गारी देहू भरु भराऊ मुख मांडोगी आज
हो अपनो मन भायो करिहो सुनि कुमार ब्रजराज
जगन्नाथ कविराय के प्रभु भाई सकल घोष सिरताज।[17]

दंपत्ति केलि का एक सुंदर रचना प्राप्त होती है।

एहो बैठे दंपति सुरति सुष की बाते करत
प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत।
छिनुक आंषि पुलि जात, पुनि मुसिक्यात अंचल
ओट दै जम्हांत,
अस्सात वहि रसिक रंग उपजावत।
बदन चिबुकगहि आपुतन सूधौ करि,
हरषि निरषि हरि हीये लगावत।
जगन्नाथ कविराई के प्रभु रिझवार रीझि,
नैंननि सो बैन प्रान प्यारे मुष गावत।

आचार्य बृहस्पति के शब्दों में "इस रचना में जो आर्जव है, वह राज्याश्रित ध्रुवपदकारों में प्रायः नहीं देखा जाता, अपितु इसमें अनन्य रसिक शिरोमणि स्वामी हरिदास जी की रचनाओं जैसी सुगंध सुरक्षित है। सुरति सुख की बाते करते हुए, प्यारी की पलकों का झपक-झपक जाना, कान में कूक देकर प्रियतम का उन्हें जगाना, क्षण-भर के लिए प्यारी की आँखों का खुल जाना, मुसकाना और अंचल की ओर देखकर जमुहाना नायिका के ऐसे अनुभाव है, जिन्होंने संयोग शृंगार का चित्र मूर्त कर दिया है। प्रिया के चिबुक को स्वयं हाथ से उठाकर अंगयष्टि को सीधा करते हुए उसका आश्लेष नायक के सुंदर अनुभाव है और प्यारी के नेत्रों पर रीझकर प्राणप्रिय का गा उठना केवल सहृदय-जन- संवेद्य रस की सृष्टि कर रहा है।[18] आचार्य बृहस्पति प्रभृति विद्वान ने इस पद और उसके विषय की सारगर्भित एवं साहित्य संगीतोचित व्याख्या की है, जिससे पंडित जगन्नाथ के अपार वैदुष्य का पता चलता है।

अंतिम रचना ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है जिसमें कई नायकों का नाम उल्लिखित है। प्रस्तुत पद को डागुर परंपरा में गाया गया है। राग हमीर और चौताला में निबद्ध है।

सर्वकला संपूरन मति अपार विस्तारमति नाद को नाइक बैजू, गोपाल। ता पाछै बक्सू वैहैसि वस कीनो, मैहैंचू मैहे मंडल में उदोत चहूँ चक्र भरो डिढ़ विद्यानितान, सरस धरु करन डिढ़ ताल। भगवंत सुरमरन, रामदास जसुपायौ तानसेनि, जगदगुरु कहायौ, धौंधू बानी रिसाल। सुरतिविलास, हरिदास डागुर जगन्नाथ कविराई तिनि के पग परसिवे कौ स्याम राम रंग लाल।[19]

उपरोक्त पद में नायक बैजू, गोपाल, बक्शू, भगवंत, रामदास, तानसेन, धौंधू सुरतिविलास, हरिदास डागुर आदि ध्रुवपदकारों का उल्लेख है, जिससे इसकी ऐतिहासिक महत्ता सिद्ध होती है।

इस प्रकार पंडित जगन्नाथ की रचनाओं के अवलोकन से उनके प्रति श्रद्धा का भाव उमड़ पड़ता है। निःसंदेह पंडित जगन्नाथ जैसे रचनाकारों के कारण ही ध्रुपद-साहित्य समृद्ध हुआ है। साथ ही ध्रुवपद शैली को शीर्षस्थ विधा बनाने में पंडित जगन्नाथ जैसे विलक्षण, विद्वानों एवं साहित्य संगीत मर्मज्ञों का योगदान रहा, जो अविस्मरणीय है।

निष्कर्ष—पंडित जगन्नाथ का नाम ध्रुपद गायकों

Scanned with OKEN Scanner

में अल्प परिचय की स्थिति में है। लेखक के मतानुसार ऐसे प्राचीन दिग्विजयी कलावंतों की रचनाओं के अनुशीलन एवं पुनरुद्धार की महती आवश्यकता है। क्योंकि इन रचनाकारों का साहित्य प्रौढ़ एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का है। ऐसी रचनाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, अधिक से अधिक गाया-बजाया जाना चाहिए, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से हमें ध्रुपद के गौरवमयी इतिहास के पृष्ठों को पलटने में सहायता मिलेगी।

संदर्भ-सूची

1. " 'रसगंगाधरकार' पंडितराज-जगन्नाथ 'दारा' के सखा थे। लवंगी के साथ उनके प्रेम की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। वे जगन्नाथ कविराय से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं।" पृ. 233—ध्रुवपद और उसका विकास—आचार्य बृहस्पति.
2. ब्रज की कलाओं का इतिहास—प्रभुदयाल मीतल, पृ. 459.
3. मुगल-दरबार कवि संगीतज्ञ—पृ. 58-66, शालिग्राम गुप्त.
4. वही. पृ. 58
5. वही, पृ. 58 से उद्धृत,
6. भारतीय संगीत का इतिहास—उमेश जोशी, पृ. 278-279.
7. ध्रुवपद और उसका विकास—आचार्य बृहस्पति, पृ. 124-125.
8. वही, पृ. 222.
9. मुगल दरबार—कवि संगीतज्ञ—पृ. 59.
10. वही, पृ. 59 से उद्धृत.
11. कृतियों का उल्लेख उत्तर मुगल दरबार—कवि संगीतज्ञ—शालिग्राम गुप्त ने पृ. 58-60 में किया है।
12. पंडितराज जगन्नाथ की ब्रज के संगीत एवं साहित्य को देन—संगीत मासिक अक्टूबर, 1982, प्रभुदयाल मीतल, पृ. 26 से उद्धृत.
13. वही, पृ. 28.
14. वही, पृ. 30.
15. वही, पृ. 31.
16. संगीत राग कल्पद्रुम, द्वितीय खंड, पृ. 543.
17. उत्तर मुगल दरबार कवि संगीतज्ञ, शालिग्राम गुप्त, पृ. 60.
18. ध्रुवपद और उसका विकास, आचार्य बृहस्पति, पृ. 300-301.
19. वही पृ. 384 एवं उपरोक्त पद उस्ताद जिया फरीदुदीन डागर ने लेखक को गुरु-शिष्य-परंपरा में सिखाया है।

Scanned with OKEN Scanner

आधुनिक भारतीय संगीत के सूत्रधार : पं. विष्णु नारायण भातखण्डे

- डा० अल्पना कुमारी

उन्नीसवीं सदी का मध्यकाल संगीत के इतिहास में महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इसी समय महाराष्ट्र के एक छोटे से गाँव बालुकेश्वर में जन्माष्टमी के दिन 10 अगस्त 1860 ई. को महान संगीत चिंतक पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी का जन्म हुआ था, जिन्होंने अपने भागीरथी प्रयासों से भारतीय संगीत की दशा और दिशा ही बदल दी।

कर्मकाण्डी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण धार्मिक और संगीत का आरंभिक संस्कार बाल गजानन को अपने पिता से प्राप्त हुआ था। आरंभिक दिनों में ही इन्होंने अध्ययन के साथ गायन, बाँसुरी, सितार, वीणा आदि की शिक्षा पायी। बम्बई के 'एलिफिन्सटन' एवं पूना के 'डेक्कन' कालेजों में भातखंडे जी की ऊँची शिक्षा हुई। कॉलेज के दिनों में इन्होंने सेठ बल्लभ दास से सितार की तालीम ली। इसके अतिरिक्त जयपुर के गुरु रावजी बुआ बेलनाथकर, मुहम्मद अली खाँ, ग्वालियर के पंडित एकनाथ, रामपुर के नबाब कल्वे अली खाँ आदि गुणियों से भातखंडे जी ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। 1885 ई. में वकालत करने लगे परंतु नियति की तो कुछ और ही योजना थी। वकालत में उनका मन नहीं रमा, रमता भी कैसे इनका तो जन्म ही भारतीय संगीत के उन्नयन के लिए हुआ था। एल.एल.बी. का इनका ज्ञान भारतीय समाज में फैली भ्रान्त धारणाओं के निराकरण में काम आया। भातखंडे जी के समय तक भारतीय संगीत का प्राचीन स्वरूप नहीं रह गया था। जो भी था, वह शुद्ध रूप से व्यवसायिक था, जिसमें शृंगारिकता का प्रभाव था। साथ ही कोई एक सर्वमान्य नियम का अभाव के कारण अपनी डफली अपना राग वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी।

घरानेदार संगीतज्ञों ने जहाँ अपनी साधना के द्वारा संगीत के कला पक्ष को चमकाकर बहुमुखी बनाया था, वहीं इसका शास्त्राधार लगभग समाप्त हो चुका था।

भातखंडे जी ने 1890 ई. से भारतीय संगीत शास्त्रों का गहन अनुशीलन आरम्भ किया। वह जानते थे कि इतने बदलावों के बाद अब ग्राम-मूर्च्छना पद्धति का चलन संभव नहीं है, फिर भी एक व्यवहारिक और वैज्ञानिक नियम की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत उपलब्ध संगीत संपदा को समेटा जा सके।

पंडित जी ने 1902 ई. से 1906 ई. तक कश्मीर से कन्याकुमारी तक का भ्रमण किया। कई वर्षों तक के अपनी यात्रा में असंख्य उस्तादों, पंडितों से मिल कर उनकी जानकारी संग्रहित की। उस काल के राजा, नबाब आदि भी संगीत के ज्ञाता थे, उन सबों से बहुत सारी जानकारी पंडित जी ने प्राप्त की। इन्होंने संगीत विद्वानों से अनुनय-विनय कर, कहीं शिष्य बनकर भी उपलब्ध रागों की बंदिशों को सीखा। पंडित जी की यह मान्यता थी कि संगीत सभी लोगों को सीखना चाहिए। तत्कालीन घरानेदार उस्तादों की संगीत शिक्षा अपने संबंधियों तक ही सीमित थी। बाहरी लोगों को इनसे ज्ञान प्राप्त करना बड़ा ही दुष्कर कार्य था। भातखंडे जी ने इस समस्या के निवारण हेतु एक स्वर-लेखन पद्धति का विकास किया जिसके द्वारा उन्होंने प्राप्त बंदिशों की स्वर-लिपि तैयार कर संग्रहित किया जो आगे चलकर "भातखंडे

Scanned with OKEN Scanner

क्रमिक पुस्तक मालिका" के नाम से छः भागों में प्रकाशित होकर अपने पूर्वजों का धरोहर वर्तमान समाज को प्राप्त हो सका।

इनके स्वर लेखन पद्धति की लोगों ने आलोचना की। जिन दिनों तत्कालीन ग्वालियर नरेश "जियाजी राव सिंधिया" बम्बई प्रवास में ही थे, भातखंडे जी ने आग्रह कर उन्हें बुलाया और अपने शिष्यों द्वारा ब्लैक-बोर्ड पर लिखी हुई स्वर-लिपि के आधार पर गाने को कहा। इनके शिष्यों द्वारा उसी तरह गाते हुए सुनकर महाराज प्रसन्न हुए और पंडित जी के प्रयासों की सराहना की साथ ही उन्हें ग्वालियर आकर संगीत विद्यालय खोलने का भी आमंत्रण दिया। भातखंडे जी ने उत्तर भारत में प्रचलित सभी रागों को वर्गवार विभाजित करने की दृष्टि से दक्षिण के पूर्व विद्वान पंडित व्यंकटमखी के बहत्तर मेल से दस मेल (थाट) को आधार मानकर समस्त रागों का वर्गीकरण किया, जिसे "भातखंडे थाट पद्धति" के नाम से जाना जाता है।

संगीत संबंधी मान्यताओं का सर्वमान्य नियम तलाशने के वास्ते भातखंडे जी ने "अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों" का 1916 ई. से 1925 ई. तक चार आयोजन कराया, जिसमें सभी विद्वानों को एक मंच पर मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ और इनके प्रयासों को मान्यता मिली।

भातखंडे जी ने भारतीय संगीत शास्त्रों तथा प्रचलित संगीत, राग, ताल, गायन शैली आदि का गहन अध्ययन कर "भातखंडे सगीत शास्त्र" चार भागों में प्रश्नोत्तर शैली में प्रकाशित कराया। इसके साथ "स्वर-मालिका", "अभिनव राग-मंजरी", "लक्ष्य-संगीतम्" आदि पुस्तक रागों की व्यवहारिक शिक्षा के साथ इसके शास्त्राधारित लक्षणों को ध्यान में रख कर लिखा। भातखंडे जी ने लखनऊ में "मेरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक" की स्थापना की वर्तमान में उसका नामकरण "भातखंडे संगीत विद्यापीठ" के नाम से हो गया है। इन संस्थान से अनेक शास्त्रज्ञ संगीतकार पैदा हुए। इसके अतिरिक्त भातखंडे जी ने ग्वालियर में "माधव संगीत विद्यालय" की स्थापना ग्वालियर राजा के सहयोग से किया।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत व्यवस्था को स्थापित करने में जो भी थोड़ी बहुत कठिनाई पंडित जी को हुई उसका सामना उन्होंने बड़े ही साहस और नैतिक बल से किया। उसका समर्थन उन्होंने केवल अपने तर्क से अथवा वकीलों वाली कानून की अदालती दलील से ही नहीं किया बल्कि अपने विचारों के समर्थन में उनके विवेक बल के साथ भारतीय संगीत की शास्त्राधारित ऐतिहासिक तथ्य भी थे। वे एक ऐसे संगीत-व्यवस्था की वकालत कर रहे थे, जो एक जीवंत और परिवर्तनशील नादाधारित मोक्षदायिनी कला थी।

पंडित भातखंडे जी के अथक प्रयास का परिणाम यह हुआ कि सामवेद से उत्पन्न जो भारतीय संगीत अपनी कलात्मक सौन्दर्य के साथ राजदरबारों, नवाबों और घरानेदार उस्तादों की बैठक तक ही सीमित थी, वह जीवनदायिनी संगीत अब विद्यालयी पद्धति से बड़े शहरों से लेकर कस्बों तक पहुँच गयी। आज माध्यमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक संगीत एक अनिवार्य विषय के रूप में देश के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जा रही है तथा दिन ब दिन इसके अनेक विषयों पर शोध-कार्य किये जा रहे हैं।

पं. भातखंडे जी की शिष्य परम्परा में निम्नलिखित आदि प्रमुख हुए हैं :—बादीलाल शर्मा, रवीन्द्र लाल राय, राजा भैया "पूँछवाले", ? श्री कृष्ण नारायण रातंजानकर, हेमेन्द्र लाल राय।

और इस तरह 19 अगस्त 1936 ई. को भारतीय संगीत उन्नायक पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी इस संसार से विदा हो गए।

सहायक ग्रंथ

(1) भातखंडे संगीत शास्त्र भाग-3, ले. पं. विष्णु नारायण भातखंडे
(2) संगीत चिन्तामणि—ले. आचार्य वृहस्पति
(3) खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार—ले. सुलोचना वृहस्पति
(4) हमारा आधुनिक संगीत—ले. डा. सुशील कुमार चौबे
(5) संगीत रचना रत्नाकर भाग-1, ले. राज किशोर प्रसाद सिन्हा
(6) राग-परिचय भाग दो—ले. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

Scanned with OKEN Scanner

संगीत के क्षेत्र में विद्वान द्वय पं. नारायण भातखंडे व पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के योगदान

शोभा कुमारी*

सृष्टि ही तो नादमय है
भावना ही भावमय है।
उत्तर दिशा में भातखंडे
पूर्व की जो अरूणिमा दी।
दक्षिण दिशा में पुलस्कर ने
अरूण की नव दिशा दी।
उक्त द्वै ने नाद की
परिकल्पना साकार दी,
संपूर्ण भारत विश्व की
जागृति बारंबार की।
अरूण सा वे मुकुल मुखरित
उद्घोषण साकार की
कह उठा मानव जगत का
द्वै हुए सब जीव का।

हमारे ऐसे वीर संगीत के दो उद्भव मनीषि जिन्होने संगीत को एक नई दिशा दी जिनका नाम एवं कृति अमित अक्षरों में है, पं. श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी तथा विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी है। जिनको संगीत प्रेमी कभी विस्मृत नहीं कर सकते।

उक्त रसज्ञ विद्वान पं. भातखंडे जी का जन्म 10 अगस्त 1860 ई. के दिन बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान में हुआ तथा संगीत की यात्रा में ही इनकी मृत्यु 19 सितम्बर 1936 को हुई। पं. विष्णु दिगम्बर पुलस्कर जी संगीत रवि का 1872 ई. कुरूंदवाड़ रियासत के बेलगांव में श्रावणी पूर्णिमा के दिन उदय हुआ तथा 21 अगस्त सन् 1931 को महाराष्ट्र के नीरज नगर में इस सूरज का अस्त देहावसान हो गया।

दोनों महान विभूतियों ने संगीतिज्ञ यात्रा बड़ी ही विकट परिस्थितियों में गुजरा किन्तु वीर सपूतों ने हिम्मत नहीं हारी व

'खम ठोक ठोता है जब नर,
पत्थर के जाते पांव उखड़
मानव जब जोर लगाता है
पत्थर पानी बन जाता है।'

के सिद्धान्तों पर चलनेवाले उन दोनो पथिकों ने संगीत के उन रास्तों पर चलना स्वीकार किया जिसने मंजिल की आशा तक नहीं दिख पड़ रही थी। किन्तु दोनो ने संगीत के क्षेत्र में अथक प्रयास कर अपना बहूमूल्य योगदान दिया।

भातखंडे जी द्वारा किये गये कार्य

सर्वप्रथम भातखंडे जी ने राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर 'थाट-राग पद्धति को मान्यता दी और धीरे-धीरे यह पद्धति सर्वत्र प्रचार में आ गई इन्होंने क्रमिक पुस्तक मालिका छः भागों में संग्रहित कर जनता के सामने रखा तथा क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए एक नवीन स्वरलिपि पद्धति की रचना की, जिसका प्रचार उत्तर भारत में बहुत अधिक था। इन्होने संगीत विषयक अनेक पुस्तकों का सृजन किया जिसमें प्रमुख निम्नलिखित है।

स्वर मालिका हिन्दुस्तान संगीत पद्धति, लक्षण

*शोध छात्रा, बी.आर.बी.वि.वि., मुजफ्फरपुर

Scanned with OKEN Scanner

गीत संगीत पुस्तक माला तीन भागों में विलावल, कल्याण एवं खमाज थाट हैं। अभिनव राग मंजरी, अभिनव ताल मंजरी नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका निकाली इसके अलावा इन्होने संगीत पद्धति मल्लिका नामक ग्रंथ लिखा इन्होने 1918 ई. में 'माधव संगीत महाविद्यालय की स्थापना तथा 1926 ई. में 'मौरिस कॉलेज ऑपफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक' की स्थापना की इन्होने 1904 से 1905 ई. में 'गायन उतेजन मंडली' की स्थापना की।

पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के किये गये कार्य

उन्होने जो संगीत क्षेत्र में कार्य किये है। वह इतने महान और विविध है कि इस प्रकार की कला विभूतिया सम्पूर्ण संसार के इतिहास में कदाचित नहीं मिलेगी। उन्होने अनेक पुस्तकों का सृजन किया। वह है संगीत बालबोध, भारतीय संगीत, लेखन पद्धति, संगीत तत्वदर्शक, संगीत अलंकार, राग-प्रवेश, नारदीय संगीत शिक्षा सटिक, टप्पा-गायन एवं संगीत से संबंधित लिखी अन्य पुस्तके जिनकी संख्या 40 के करीब है। इन्होने संगीत के पथ को प्रशस्त करने के लिए गीतों में श्रृंगाररस के अश्लील और गन्दे शब्दों को परिवर्तित कर भक्ति रस को स्थान प्रदान किया। सूर, मीरा, कबि, तुलसी आदि कि भक्तिरस से ओतप्रोत रचनाओं को रागदारी में बांध कर अपने पाठ्यक्रम में उन्हे समाविष्ट किया। फलतः स्कूल के रागों के स्वरों में मीरा, तुलसी, सूर और कबीर आदि के भजन, रेडियो पर घर-घर सुने जाते है।

1901 ई. में इन्होने लाहौर का 'गांधर्व महाविद्यालय' को स्थापित किया। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद में 'प्रयाग संगीत समिति' की स्थापना, बनारस, कानपुर, अहमदाबाद, नासिक, आदि स्थानों पर भी संस्थायें खोली।

राष्ट्रीय गीत 'जन-गण-मन' 'अधिनायक जय हे' के धुन को लोकप्रिय धुन में बाँधने में सफल हुए इसके अलावे इनके जीवन का मूलमंत्र धुन बनाना था जिसमें 'रघुपति राघव राजा राम' के आगे की पंक्तियों में 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम, सबको सम्मत दे भगवान' को संयुक्त किया।

इन्होने देश के संगीत जिज्ञासुओं (शिष्यों) को प्रशिक्षित किया जो समाज में संगीत के स्थान को बनाये रखने में सूक्ष्म रह सके। उनके शिष्यों में संगीत मार्तण्ड पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी पं. विनायक एवं पटवर्धन जी आदि का नाम प्रमुख है।

इन दोनों विभूतियों ने उस समय संगीत का दामन पकड़े रहा जिस समय ब्रिटिश शासक के शिंकजो में भारतवासी को जकड़ रखा था तथा औरंगजेब के शासनकाल के बाद शास्त्रीय संगीत अवशेष संगीत के रूप में बची थी, यत्र-तत्र बिखरे हुए संगीत कलाकारों से संपर्क स्थापित करना तथा उनके द्वारा स्वरांकित गीत रचनाओं को प्राप्त करना सहज कार्य नहीं था किन्तु दोनों विभूतियों ने अथक प्रयास से संगीत को एक नया आयाम और जीवनदान दिया।

संदर्भ

1. पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत। लेखिका : डा. प्रेमलता शर्मा, पृष्ठ सं.–272, 277
2. यू. यू. जी. सी./ नेट / तृतीय प्रश्न पत्र डा. निशा रावत संगीत पृष्ठ सं. 107

Scanned with OKEN Scanner

भक्तिकालीन गेय काव्य में संगीत

डा. अरविन्द कुमार*

मानव एक संवेदनशील एवं चिंतनशील प्राणी है। वाणी के माध्यम से वह अपने हृदयगत भावों और अनुभूतियों को अनेक रूपों में व्यक्त करता है। सृष्टि में सर्वत्र बिखरे प्रकृति के अनन्त नैसर्गिक सौन्दर्य पर मानव मन चिरकाल से रीझा हुआ है। जिसके सामीप्य से उसके मुख से सहज ही गान का स्वर फूट पड़ता है। मानव हृदय की भावनाओं का प्राबल्य जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब सहज ही गीतों का प्रादुर्भाव हो जाता है। अतः गेय-काव्य वह संवेदनात्मक रसात्मक काव्य है, जिसमें संगीतात्मकता या लयात्मकता सहज रूप से आती है। 1

गेय-काव्य का प्रमुख तत्त्व 'संगीत' है। गीत के शब्द संगीत के स्वर पाकर प्राणवान एवं उसमें निहित भावनाएँ खिल उठती हैं। बाल्यावस्था से मृत्युपर्यन्त मानव जीवन संगीत के बीच गुजरता है। मानव के अन्तस्तल में गीत वह संगीत है, जो भाषा के माध्यम से जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित कर उसकी आत्मा को शान्ति और आनंद प्रदान करता है। व्यक्त या अव्यक्त रूप से गीत में सांगीतिक तत्त्व अन्तर्निहित रहते हैं। संगीत के अभाव में गेय-काव्य का सौन्दर्य एवं मधुरता खटकने लगती है। प्रारंभ से ही गीत को संगीत का सहारा मिला है।

गेय काव्यों की परम्परा में संगीत

भारतीय वाङ्मय में गीतों के दो प्राचीन भेद मिलते हैं—वैदिक और लौकिक। शास्त्रीयता की दृष्टि से लौकिक गीतों के भी दो भेद हैं—मार्ग और देशी। मार्ग में शास्त्रीयता का आग्रह अधिक है और देशी में कम। साहित्य के गीत देशी (लोकगीतों) के ही विकसित और व्यवस्थित रूप हैं। गेय-काव्य प्राचीन काल से ही वैयक्तिक और सामूहिक रूप में प्रचलित रहे हैं। गीतों का प्रारंभिक स्थिति में सामूहिक रूप ही अधिक प्रचलित रहा था। आधुनिक युग में गीत सामूहिकता का घेरा तोड़कर व्यक्तिपरक बन गया है। सम्प्रति हमें गेय-काव्यों के दो भेद स्पष्ट दीखते हैं—लोकगीत ओर साहित्यिक गीत।

लोकगीत हमारे जीवन विकास के इतिहास हैं। गुफाओं में पनपते हुए आदि मानव में जब थोड़ी बुद्धि आई और उसके आधार पर उसकी भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिए उसने आलाप करना शुरू किया। यही आदि मानव का प्रथम लोकगीत था। लोकगीत में जीवन के सुख-दुख, मिलन-विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएं व्यक्त हुई है। सामाजिक स्थिति के क्षण-क्षण के भाव इसमें बंधे हैं तथा अनुभूतियों और भावों की गहराई है। इसका जन्म बुद्धि से न होकर हृदय से हुआ है। ये तर्क पर नहीं वरन् भावना पर आधारित हैं। इसमें भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और हृदय से निकली हुई लय के साथ होती है। जिस प्रकार हरे जंगलों में पंक्षी उन्मुक्त होकर गाते हैं, उसी प्रकार लोकगीत स्वाभाविक रीति से हृदय से फूटकर निकलते हैं। माता-पिता और चिर-परिचित भू-भाग से विवाहित कन्या का वियोग, पति या प्रियतम से पत्नी या प्रेयसी का वियोग, बटोही, पक्षी, बादल, पवन आदि द्वारा प्रिय या प्रेयसी के संदेश, प्रिय के परदेश से लौट आने पर फिर उसे कभी न छोड़ने की भावना, पुत्र के वियोग में माता की वेदना आदि विषय

*संगीत विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, (पटना विश्वविद्यालय), पटना

Scanned with OKEN Scanner

दुखात्मक लोकगीतों के विषय हैं। पुत्र जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि पर्व और उत्सव के समय गाए जाने वाले गीत जीवन की सुखात्मक अनुभूतियों के गीत हैं। इन सभी भावों की रचनाएं हमें साहित्यिक गीतों में भी मिल जाती है, किन्तु लोक गीतियाँ अपने सौरस्य में कुछ विशिष्ट बाँकपन लिये होती है। एक ग्राम गीत में विरहिणी आकाश में उमड़ते बादलों को देखकर कहती है—

सून सेजिया हमार, घरवा ना रे साजना।
एक तो रैन अंधिआरी, दूजे छाई घटा कारी
तीजे सावनिसुहान, घरवा ना रे साजना॥
मोरवा करत पुकार, पड़े बुदना फुहार
जिया अति घबराए घरवा ना रे साजना॥[2]

उपर्युक्त काव्य में जो व्यथित विरहिणी के भावों का चित्रण है, बड़े स्वाभाविक ढंग से उतार गया है।

भारतीय साहित्य में गीतों का प्रारम्भिक रूप वेदों में ही मिल जाता है। वेदकालीन आर्य प्रकृति के अधिक निकट थे। अस्तु, वेदों में मुक्त प्रकृति-प्रेम की अभिव्यक्ति गीतात्मक ही है। ऋग्वेद और अथर्ववेद के मंत्र संगीत की दृष्टि से उल्लेखनीय है, तथापि सामवेद में संगीत का जितना परिपाक हुआ है। वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस काव्य में उदात्तादि स्वरविधान, लयात्मकता, वाद्ययन्त्रोल्लेख तथा नृत्य-संकेतों से संगीत तत्त्वों की सफल अभिव्यक्ति हुई है।[3]

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण का निर्माण गेय काव्य के रूप में किया है। शब्द संगीत का आदिम रूप ही रामायण का अनुष्टप् छन्द है। जिसका गायन वीणा के साथ योग्य स्वर तथा शब्दावली में किया जाना विदित है।[4] वाल्मीकि रामायण में गीत, वाद्य, नृत्य, स्वर, श्रुति, मूर्च्छना, लय, ताल, मात्रा आदि संगीत तत्त्वों के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

कालिदास के 'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार' में तो संगीत की रसधारा निरंतर प्रवाहित है। इन दोनों गीतिकाव्यों में संगीतानुकूल कोमलकान्त पदावली, छन्दयोजना तथा लयात्मकता परिलक्षित होती है। इसमें वीणा, नगाड़े, मृदंग आदि वाद्ययंत्रों[5] तथा नृत्योल्लेख के साथ नाद, मूर्च्छना, ताल आदि संगीत तत्त्वों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।[6]

बौद्ध गेय काव्य 'थेर' और 'थेरी' गाथाओं में संगीतात्मकता के तत्त्व मिल जाते हैं। इन गाथाओं में सुख, हर्ष और उल्लास के भाव हैं, जो भिक्षु-भिक्षुणियों के अर्हत पद की प्राप्ति से अभिव्यक्त किया जाता है। जैन सम्प्रदाय में भगवान की पूजा की पद्धति में गेय पद हैं, जिनको संगीत के माध्यम से गाकर- बजाकर पूजा करते हैं। नाना राग-रागिनियों से पूजा को सजाया जाता है। इनके गेय पदों में आसावरी, माँड, सोरठ, विलावल, जयजयवंती, विहाग, कालिंगड़ा, भैरवी आदि राग-रागिनियों का उल्लेख है।[7]

महाकवि क्षेमेन्द्र के गीति-काव्य 'दशावतार-चरित' में भी संगीत के तत्त्वों का दर्शन होता है। जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' की संगीतात्मकता विशेषतया उल्लेखनीय है। इस गीतिकाव्य की अष्टपदियों के प्रारंभ में भैरवी, वसंत, गुणकली, मालव, गुर्जरी आदि रागों तथा एकताल, रूपक आदि तालों का संकेत किया गया है। इसमें प्रयुक्त कोमलकांत पदावली, ध्वनि-पक्ष का प्राबल्य, लयात्मकता और गेयता सर्वथा संगीतानुकूल है। इस गीति-काव्य में वेणु, मंजीरा आदि वाद्य यंत्रों तथा नृत्य का उल्लेख लय, स्वर, राग, ताल, नाद आदि संगीत-तत्त्वों का संकेत देते हैं। वर्तमान समय में भी 'गीतगोविन्द' के पदों का गायन तथा भाव नृत्य प्रचलित हैं।[8]

हिन्दी गीतिकाव्य के इतिहास में 'विद्यापति' की पदावली का एक विशेष गौरवपूर्ण स्थान है। इनके पदों में नाद, स्वर, लय, राग आदि संगीत के पारिभाषिक शब्द के साथ वाद्ययंत्रों में मुरली, मंजीरा, वीन, रबाब, मुरज, मृदंग, स्वरमंडल आदि का उल्लेख है। डमू-डमू, डिमिक-डिम, रुन-झुन आदि शब्दों में नाद कहीं सा रे ग म प ध नि सा से 'सप्तक स्वर' तथा कहीं 'रास नृत्य' वर्णन से ताल एवं विभिन्न लयकारियों का संकेत मिलता है। इस प्रकार विद्यापति पदावली में गायन, वादन और नृत्य के सम्यक् योजना दर्शनीय है। जैसे—

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया।
नटति कलावति माति श्याम
संग कर करताल प्रबन्धक धुनिया॥

Scanned with OKEN Scanner

डम डम डफफ डिमिक डिम
मादल रुनु-झुनु मंजिर बोल।
किंकिनि रनरनि बलआ कनकनि
निधुवन रास तुमुल उतरोल।
वीन रवाव मुरज स्वरमंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु विधि भाव।
घटिता घटिता धुनि मृदंग
गरजनि चंचल स्वरमंडल करू राव ॥[9]

भक्ति गेय काव्य में संगीत

भक्ति काव्य में स्रष्टा कवि, सन्त, साधक और भक्तों ने अपने इष्टदेव की आराधना में संगीत का आश्रय ग्रहण किया था। इसलिए इनके गेय-काव्य में संगीत तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। कबीर के 'शब्दों' में जहाँ गौरी, रामकली, आसावरी, केदार, टोडी आदि रागों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा तिताला (तीन ताल) जैसी ताल का उल्लेख मिलता है, वहाँ वेणु, कींगरी, रवाब, वीणा, शंख आदि वाद्ययंत्रों का वर्णन भी प्राप्त होता है।[10] निर्गुण सम्प्रदाय के कवि यथा रैदास, दादूदयाल, मलूकदास आदि के गीति काव्य में राग-रागिनियों का उल्लेख मिलता है। गुरु नानकदेव की रचनाओं में राग, नादादि संगीत तत्त्वों तथा शंखादि वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' सिख समुदाय का पवित्र ग्रन्थ है। इसमें नानकदेव, अमरदास, अर्जुन, तेगवहादुर आदि गुरुओं की पवित्र वाणियाँ संग्रहित है। इस पवित्र ग्रन्थ में निम्नलिखित रागों में सभी गुरुओं की पवित्र वाणियाँ संगृहित हैं—भैरव, तिलंग, रामकली, सोरठ, प्रभाती, आसा, तोड़ी, गुजरी, बिलावल, देवगांधरी, सारंग सूही, वडहंस, श्री, जैतश्री, गउडी, घनाश्री, मारु, मालीगौड़ा, बैराडी, कल्याण, विहागडा, केदार, गौड, कानड़ा, वसन्त, मलार आदि।[11]

कृष्ण भक्ति गीति काव्य में सूर आदि अष्ट-छापीय कवि, मीरा, हरिदास स्वामी आदि की रचनाओं में संगीत तत्त्वों के स्पष्ट दर्शन होते हैं। सूर का 'सूरसागर' तो संगीत का सागर है। इसके प्रत्येक पद में संगीत स्वतः ही समाविष्ट हो गया है। सूरसागर में निम्न राग-रागिनियों का प्रयोग मिलता है—आसावरी, सूही, सूहा, बिलावल, सारंग, कान्हड़ा, धनाश्री, मारु, रामकली, केदार, मलार, गौरी, नट, विहागरा, सोरठ, कल्याण, परज, देवगंधार, नटनारायण, तोड़ी, विहाग, गौडमल्हार, सुधरई, विभास, भूपाली, वसन्त, कामोद, ललित, खंभावती, मुलतानी, भैरव, श्री, देसकार, हमीर, मालकौंस आदि। इन्होंने ३६ राग और छब्बीस रागिनियों का उल्लेख किया है—

मुरली हरि को भावै री।
छहों राग छत्तीसौं रागिनी
इक-इक नीकैं गावै री ॥[12]

इनके पदों में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का सुन्दर समावेश है—

नंद-नंदन सुधराई, वाँसुरी वजाई
सरगम सुनीकैं साधि, सप्त सुरनि गाई ॥
अतीत अनागत संगीत, विच तान मिलाई।
सूर ताल डमरू नृत्य धयाईः पुनि मृदंग वजाई ॥
सकल कला गुन प्रवीन, नवल वाल भाई।
सूरदास प्रभु अरस परस, रीझि सव रिझाई ॥[13]

उपर्युक्त पद में स्वर, ताल, सरगम, गाना, तान आदि संगीत तत्त्व तथा डमरू, मृदंग, वाँसुरी, वाद्य एवं नृत्य का उल्लेख हुआ है।

अष्टछापीय कवियों के काव्य में रागों के संकेत में समय और ऋतु-सिद्धांत का पालन किया गया है। इनकी रचनाओं में ताल, लय आदि के अभिव्यंजन डफ, झांझ, मृदंग आदि वाद्ययंत्रों का वर्णन मिलता है। इनके आराध्यदेव कृष्ण गायन, वेणुवादन तथा नृत्य में और राधा ताल स्वर और नृत्य में निष्णात थी, जिनका विमर्श इन कृपा पात्र अष्टछापीय कवियों के काव्य में प्राप्त होता है।

नुपूर कंकन किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली ॥
मृदुल मुरज करताल तार झंकार मिली धुनी।
मधुर जंत्र की सार भंवर गुंजार रली पुनि।
तैसिः मृदु पद पटकनि चटकनि कर तारन को।
लटकन भटकनि झलकनि कल कुण्डल हारन की ॥[14]

उपर्युक्त पद की शब्दावली ध्वनि की दृष्टि से संगीतात्मक है। शब्दों में नाद-सौन्दर्य की छटा मनोहारिक है।

अष्टछाप के काव्य की रचना कीर्तन के लिए

हुई थी। इसलिए इनके पदों में भावों की अभिव्यक्ति और संगीत की झंकार का अपूर्व सामंजस्य है। भावों के सौन्दर्य में संगीत खिल उठता है और संगीत के सौन्दर्य में भाव। कीर्तन में काव्य, गायन, वादन तथा नृत्य का समावेश है। अतः ये संत इन सभी कलाओं के ज्ञाता थे। ये अपने पदों की रचना करते थे और स्वयं स्वरबद्ध कर उनका गायन भी करते थे।

मीरा के गीति-काव्य में रस है, भाव है और यह रस संगीत के सुरों से भरा हुआ है, क्योंकि स्वर ही रस का स्रष्टा है अन्यथा शब्द तो पंगु है। इनके पद तो सहज ही संगीत में गुम्फित हैं। इनके पदों के संगीत की स्वर-लहरी भावुक हृदयों को आत्मविभोर कर देती है। इनके पदों में विभिन्न राग-रागिनियों का सफल प्रयोग किया गया है, जिसमें लयात्मकता के निर्वाह के लिए शब्दों को तोड़ा-मोड़ा भी गया है। विद्वानों के पर्यवेक्षण के आधार पर मीरा काव्य में अधोलिखित राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है—तिलंग, ललित, हमीर, कान्हरा, गूजरी, कामोद, मुलतानी, मालकौंस, सोरठ, प्रभाती, मल्हार, रामकली, बागेश्री, खंभावती, तोड़ी, मारवा, दरबारी, परज, मारू, जौनपुरी, सोहनी, तिलककामोद, बिलावल, काफी, गौडमल्हार, सूरदासीमल्हार, रामदासी- मल्हार, खमाज आदि। इन राग-रागिनियों में कहरवा, दादरा, तीनताल, रूपक, धमार, चर्चरी, तेवरा, झपताल आदि विभिन्न तालों का भी प्रयोग हुआ है।[15]

इनके पदों में विषय के अनुरूप ही रागों का प्रयोग किया गया है। इनके पदों में कविता की लय और संगीत की लय, दोनों का सामंजस्य दिखाई देता है। निम्न पद में राग मल्हार की लयात्मकता देखिए—

झुक आई बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यो मेरी मनवा,
भनक सुनी हरि आवन को।
नान्हीं-नान्हीं बूंदन मेघ बरसे,
शीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
आनन्द मंगल गावन की।[16]

इनके पद में स्वर, राग नाद आदि संगीत के पारिभाषिक शब्द एवं वीणा, करताल, पखावज आदि वाद्य का वर्णन आता है।

फागुन के दिन चार रे,
होली खेल मना रे।
विनि करतार पखावज बाजे,
अनहद की झणकार रे॥
बिनिसुर, राग छत्तीसूं गावैं,
रोम-रोम रंगसार रे।
सील-सन्तोष की केसर घोली,
प्रेम-प्रीति पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अम्बर,
बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिए हैं,
लोक-लाज सब डार रे॥
होली खेली पिव घर आए,
सोई प्यारी प्रिय प्यार दे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल बलिहार रे॥[17]

पद में होली खेलने का वर्णन है। अतः इस पद को काफी राग में गाया जा सकता है। इनके पदों में नृत्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है—

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।
नाचि-नाचि पिव रसिक रिझाऊँ
प्रेमी जनकूँ जाँचूंगी।[18]

वृन्दावनवासी रसिक शिरोमणि स्वामी हरिदास जी एक रस-सिद्ध भक्त गायक थे। श्यामा-श्याम की अलौकिक निकुंज-लीला के वर्णन से युक्त अत्यंत मनोरम एवं रस-निर्झर एक सौ पद स्वामी हरिदास का अनुपम गेय काव्य है जो 'केलिमाल' में संगृहित है। केलिमाल में नट, गौरी, कान्हरा, केदार, कल्यान, सारंग, विभास, बिलावल, मलार, गौड और बसंत राग प्रयुक्त हुए हैं। तन्तुवाद्यों में किन्नरी और अघौटी (अर्द्धवीणा) के साथ ही रवाब जैसा अभारतीय वाद्य भी पदों में चर्चा का विषय बना है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग की चर्चा है। घन वाद्यों में ताल (झांझ या मंजीरा) है तो सुषिर वाद्यों में वंशी स्वामी जी के पदों में आए हैं। 'सुर देना', 'आलापना', 'लाग-डाट', 'उरपतिरप', 'चन्द्रागति', 'औघर ताल देना', 'ताण्डव', 'लास्य', 'अंगहार' जैसे संगीत के पारिभाषिक शब्द

Scanned with OKEN Scanner

भावों के सौन्दर्य में संगीत खिल उठता है और संगीत के सौन्दर्य में भाव। कीर्तन में काव्य, गायन, वादन तथा नृत्य का समावेश है। अतः ये संत इन सभी कलाओं के ज्ञाता थे। ये अपने पदों की रचना करते थे और स्वयं स्वरबद्ध कर उनका गायन भी करते थे।

मीरा के गीति-काव्य में रस है, भाव है और रस संगीत के सुरों से भरा हुआ है, क्योंकि स्व रस का स्रष्टा है अन्यथा शब्द तो पंगु है। इन तो सहज ही संगीत में गुम्फित हैं। इनके संगीत की स्वर-लहरी भावुक हृदयों को अ कर देती है। इनके पदों में विभिन्न राग का सफल प्रयोग किया गया है, जिसमें के निर्वाह के लिए शब्दों को तोड़ा-मोड़ विद्वानों के पर्यवेक्षण के आधार पर अधोलिखित राग-रागिनियों का प्रयोग ललित, हमीर, कान्हरा,

भी 'केलिमान' के धुपदों में आए हैं।[19]

सगुणोपासक तुलसीदास के गीत-काव्य में संगीत समाहित हैं। 'विनय पत्रिका', 'गीतावली' और 'श्रीकृष्ण गीतावली' के पद तो संगीत का भण्डार ही है। 'विनय पत्रिका' में नाद, स्वर आदि संगीत तत्त्वों, बिलावल, धनाश्री, रामकली, बसंत आदि रागों तथा वाद्ययंत्रों के उल्लेख संगीतात्मकता के द्योतक हैं। इसी प्रकार 'गीतावली' और 'श्रीकृष्ण गीतावली' में प्रयुक्त राग, वाद्ययंत्र, संगीत तत्त्व, नट-नटी के नृत्य, नानाछन्द तथा ललित पदावली की योजना संगीतात्मकता को दर्शाती है। 'रामलाल नहछू', 'जानकी मंगल' और 'पार्वतीमंगल' तो लोकसंगीत के अनुरूप ही गेय मुक्तक रचनाएँ हैं।[20]

संक्षेप में गेय-काव्य में संगीत-धरा वैदिक काल से आधुनिक काल तक निरंतर प्रवाहित है। भक्ति काल तो गेय-काव्य का स्वर्णयुग था। इस काल में संगीत-तत्त्वों की अनूठी छठा दर्शनीय है। भक्ति काल में शब्द का चयन लयानुकूल हुआ है। लय की रक्षा हेतु शब्दों को अपने अनुकूल बना लिया गया है। जैसे वीणा के लिए 'बीन', अश्रु के लिए 'आँसू' का प्रयोग इसी प्रकार का है। इनमें संगीतात्मक शब्दों और संकेतों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। री, अरी, रे, एरी आदि संगीतोपयोगी सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग भी इसमें संगीतात्मकता एवं लयात्मकता का प्रमाण है। इसमें अलंकारों की योजना में भी संगीत-तत्त्वों, वाद्य-यंत्रों एवं अन्य सांगीतिक शब्दों का सहयोग लिया गया है। अनुप्रास-योजना से नादात्मक ध्वनि की स्पष्ट झलक इसमें दृष्टिगत है। इस काव्य में भावों की अभिव्यक्ति स्वभाविक और हृदय से निकली हुई लय के साथ हुई है। इसमें पिंगलशास्त्र की दृष्टि में यति भंगदोष की स्थिति हो सकती है, परंतु लयात्मक प्रवाह में कोई कमी नहीं पाई जाती। अतः यह काव्य संगीतात्मकता के कारण ही सहज बोधगम्य एवं लोकप्रिय है।

संदर्भ

1. कुमार, अरविन्द, भारतीय सांगीतिक जगत को तुलसीदास का योगदान, पृ. 58
2. लोक गायक प्रभाकर तिवारी से प्राप्त
3. गोस्वामी, डॉ. कौशल नन्दन, छायावादी काव्य में संगीत-तत्त्व, पृ. 36
4. परांजपे, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 136
5. कालिदास, मेघदूत, पूर्वमेघ श्लोक 60 तथा उत्तरमेघ श्लोक 1, 26, कालिदास, ऋतुसंहार 211, 4
6. कालिदास, मेघदूत, पूर्वमेघ श्लोक 36 तथा उत्तरमेघ श्लोक 19, 26, कालिदास, ऋतुसंहार 216, 24 तथा 6/29, 34
7. संगीत, अगस्त, 1987, पृ. 34
8. कुमार, अरविन्द, भारतीय सांगीतिक जगत को तुलसीदास का योगदान, पृ. 65, 66
9. दास, डॉ. दीपाली, विद्यापति संगीत, पृ. 15
10. गोस्वामी, डॉ. कौशला नन्दन, छायावादी काव्य में संगीत तत्त्व, पृ. 42
11. संगीत जुलाई, 1985, पृ. 21, 22
12. सूरदास, सूरसागर खण्ड-1, दशम स्कंध, पद 1238
13. वही, खण्ड-1, पद 1151
14. प्रसाद, डॉ.आशालता, सूर काव्य और संगीत तत्त्व, पृ. 16
15. मीरा संगीत अंक, पृ. 16
16. वही, पृ. 17
17. वही, पृ. 142
18. वही, पृ. 140
19. यजुर्वेदी, सुलोचना, वृहस्पति, आचार्य, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृ. 116
20. गोस्वामी, डा.कौशल नन्दन, छायावादी काव्य में संगीत तत्त्व, पृ. 43

Scanned with OKEN Scanner

तुलसीदास के गीति काव्य में संगीत तत्व

डा. अश्विनी कुमार सिंह*

संगीत शब्द से भारतीय संगीत में गायन[1] वादन तथा नर्तन तीन कलाओं का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिलित रूप को ही संगीत कहते है। अथवा संगीत का बोध होता है।

गीतं वाद्य तथा नृत्यं त्रय संगीत मुच्यते।[2]
गीतं वाद्य नर्तनचं त्रय संगीत मुच्यते।[3]
गीतं वादित्र नृत्यानां त्रय संगीत मुच्यते।[4]

अंग्रेजी भाषा में संगीत शब्द का अनुवाद करने में म्यूजिक शब्द का व्यवहार होता है किन्तु युरोपिय देशों में म्यूजिक शब्द प्रायः कण्ठ संगति (Vocal Music) अथवा वाद्य संगीत (Instrumental music) के लिए ही व्यवहत होता है। नृत्य, लास्य, हाव, भाव तथा ताल (Gesticalation) का अर्थ म्यूजिक शब्द से नहीं निकलता।

संगीत में गाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तत्पश्चात वादन और नृत्य को गायन की प्रधानता होने के कारण तीनों को ही संगीत कहा गया है। जो इस प्रकार है–

गानस्याश्च प्रधानत्वालच्छंगीतमितीरितम्[5]

श्री भातखण्डे जी का कथन है संगीत समुदाय वाचक नाम है इस नाम से तीन कलाओ का बोध होता है। यह कलाये गीत, वाद्य और नृत्य है। इन तीन कलाओं में गीत का प्रधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।[6] किन्तु जिस प्रकार साहित्य सत्यं, शिवं, और सुंदरम् के सहयोग से निखर उठता है उसी प्रकार सगीत गायन वादन और नृत्य के द्वारा जब सपूर्ण सृष्टि में संगीत व्याप्त है तो साहित्य मे भी संगीत का होना अनिवार्य है। काव्य के समस्त अंगों में किसी न किसी रूप में संगीत का योग अवश्य रहता हैं। काव्य को सुंदर बनाने हेतु, उसके सुधर पाठ तथा रसास्वादन के लिए भी संगीत अपेक्षित है। यद्यपि काव्य और संगीत पृथक-पृथक भी सच्चे आनंद को प्रदान करने वाले है। काव्य और संगीत की स्वतंत्र सत्ता होते हुए भी दोनों का चोली दामन का साथ है।

तुलसीदास के गीति काव्य मे संगीत तत्व का विनियोग स्पष्ट रूप से हुआ है। सभी पदों के उपर रागों का नाम इंगित है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये काव्य संगीत के लिए ही लिखा या रचा गया है॥ इनके गीत काव्य में संगीत के स्थूल तत्वों का अत्यंत श्रेष्ठ आधार पर नियोजन किया है। इन्होंने अपने संगीतात्मक पदों की रचना राग रागिनियों के माध्यम से की है और स्वर ताल का सामंजस्य स्थापित रखने का भी पूर्ण ध्यान रखा है। अपने भावों को राग-रागिनि के बंधन में आबद्ध करते समय इन्होने भाव सृष्टि को राग के अनुरूप ही उपस्थित किया है इससे यह स्पष्ट है कि संगीत शास्त्र में इनकी पूर्ण और सूक्ष्म गति थी।

तुलसीदास ने शब्द प्रयोग की दृष्टि से अपने गीति काव्य में सुसंस्कृत एव कोमलकांत पदावली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस कारण इनके पदों में संगीत तत्वों का विशेष विकास उपलब्ध होता है जैसे–

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरणभव भय दारूणं।
नव कंज लोचन कंज मुखकर कंज पद कंजारूणम।[7]

*संगीत विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

Scanned with OKEN Scanner

इसी प्रकार इन्होने संबोधन, स्तुति और उदमोदन शैली के द्वारा अपने गीति काव्य को विशेष सौन्दर्य प्रदान किया है। यद्यपि यह सत्य है कि कुछ पदों में पिंगल शास्त्र की दृष्टि में यती भंग दोष की स्थिति रही है। परंतु गोस्वामी जी का उद्येश्य गीति काव्य को छंदोबद्ध रचना में उपस्थित करना न था बल्कि इसे सगीत की दृष्टि से प्रवाह पूर्ण रूप में स्थित करना चाहते थे। और इसी दशा मे इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। यही कारण है कि यति भंग दोष से युक्त पदों मे गायन के समय गति तत्व की या लयात्मकता की दृष्टि से कोई भी अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता।[8]

गोस्वामीजी के गीति काव्य में गीति एक प्रमुख तत्व है। इनके काव्य में भावानुकूल, घटनानुकूल परिस्थिति के अनुरूप ही गति देखने में आती है। कहीं भी गति में वृशृंखलता नहीं आयी है। भाव के अनुकूल गति इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है जिसके कारण समस्त काव्य में लयात्मकता का प्रवाह सतत दृष्टिगोचर होता है जैसे–

गाइये गणपति जग वंदन[9]

शब्द और वर्ण संगठन की योजना मे भी नादात्मक सौन्दर्य की सृष्टि हुई है यह नादात्मक सौन्दर्य काव्य में निहित संगीत को उभारने में सहायक है जैसे–

दीन-दयालु दिवाकर देवां।
करमुनि मनुज सुरासर सेवा ॥1॥[10]
हिम-तम-करि के हरि करमाली।
दहन दोष-दुख-दुरित-रूजाली ॥2॥
कोक-को कनद-लोक-प्रकासी।
तेज प्रताप रूप रस रासी ॥3॥

तुलसीदास के गीति काव्य में संगीत के पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। जो काव्य के सौन्दर्य को और निखारता है जैसे–

उघटहिं छन्द प्रबंध गीत-पद, राग-तान-बन्धान।[11]

सुनि किंनर गंधरब सराहत,
वियके हैं बिबुध-विमान ॥

इस पंक्ति मे उल्लिखित प्रबंध गीत, पद, राग, तान संगीत शास्त्र के पारिभाषिक शब्द है। इनके दस पद मे स्वाभाविक उपयोग जिस प्रकार विविधता को बताने के लिए किया गया है, वह संगीत के शास्त्रीय ज्ञान के बिना संभव नही हो सकता।

तुलसीदास के गीति काव्य मे बहुत से रागों का नाम भी आया है जैसे–

झूलही झुलावहिं ओसरिन्ह गावै सुहौ गौडमलार ॥[12]
मंजीर-नूपुर बलय-धुनि जनु काम-करतल-तार ॥

इस पंक्ति मे सुहा गौड़मल्हार राग तथा मंजीर, नुपूर और करताल वाद्य है। सुहा राग में इन्होंने बहुत से रागो को निबद्ध किया है, परंतु गौरमल्हार मे एक भी राग को इन्होंने निबद्ध नहीं किया है।

पिकबयनी मृगलोचनी सारद सम तुण्ड।
राम सुजस सब गावहिं सुसुर सुसारंग गुंड ॥
सारंग गुंड-मलार, सोरठ, सुहव सुधरनि बाजहीं।
बहुभांति तान-तरंग सुनि गंधरब किनर लाजहीं ॥[13]

इस पंक्ति में सारंग, गौड़, गौड़मल्हार, सौरठ, सूहा-सुधरई रागों का नाम आया है। 'तान' शब्द संगीत का पारिभाषिक शब्द है।

गाव गोपाल लाल नीकै राग नट है
मुरली तान तरंग मोहे कुरंग विहंग
जो हैं मुरति त्रिभंग निपट निकट है ॥[14]

इस पंक्ति मे राग नट का नाम आया है मुरली वाद्य, तान संगीत का पारिभाषिक शब्द तथा त्रिभंग नृत्य की मुद्रा है।

गान शब्द का भी बहुत जगह पर वर्णन आया है जैसे–

गावै बिबुध बिमल बर बानी
गावत नाचत, मो मन भावत,
सुख सों अवध अधिकानी।
देत-लेत-पहिरत-पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥
गान-निसान-कुलाहल-कौतुक देखत
दुनी सिहानी।[15]

हौ जंभात, अलसात, तात
तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाई-गाइ हलराइ बोलिहौं
सुख नींदरी सुहाई ॥[16]

Scanned with OKEN Scanner

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर
कौशल्या कल कीरति गावै ॥[17]

नभ-पुर परति निछावरि जहं जहं,
सुर सुद्धनि वरदान दए।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे
गावत-सुनत चरित नित ये ॥[18]

हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत
गवनी भवन तुलसीस-हियो हरिकै ॥[19]

तुलसीदास के गीति काव्य में अनेक वाद्य यंत्रों का नाम उल्लेख हुआ है जैसे–

बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावली,
नभ दुंदुभी बजाई।
कौसल्यादि मातु मन हरषित,
यह सुख बरनि न जाई ॥[20]

इस पद में दुंदुभी वाद्य आया है जो सुषिर वाद्य के श्रेणी का वाद्य है। इस वाद्य का जिक्र तुलसीदास के गीति काव्य मे बहुत जगह पर आया है।

व्योम, पवन, पावक, जल, थल,
दिसि दसहु सुमंगल-मूल।
सुर दुंदुभी बजावही, गावहि हरषिहिं, बरषहिं फूल ॥

घंटा-घंटी, पखाउज झांझ, वेणु डफ तार।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन झनकार ॥[21]

यहां पर दुंदुभी तथा बेनु (बांसुरी) सुषिर वाद्य, पखावज अनबद्ध वाद्य तथा झांझ नुपूर, मंजीरा कंकन धन वाद्य के श्रेणी के वाद्य है।

घर घर अवध बधावने मंगल साज-समाज

मंगल साज का अर्थ है मंगल वाद्य जो शुभ दिन पर बजाई जाती है।

झिल्ली झांझ, झरना डफ नव मृदंग निसान।
भेरि उपंग मृंग रव, ताल कीर, कलगान ॥[22]

झाझ डफ मृदंग तथा ताल शब्द आया है जो संगीत का पारिभाषिक शब्द है।

पनवानक निरझर अलि उपंग।
बोलत पारावत मानो डफ मृदंग।
गायक शुक कोकिल, झिल्लि ताल।
नाचत बहु भांति बरहि मराल ॥[23]

डफ, मृदंग अवनद्ध वाद्य तथा गायक, ताल नाचत, संगीत के पारिभाषिक शब्द है।

भोर जानकी-जीवन जागे।
सूत मागध, प्रवीन, बेनु बीना-धुनि
द्वारे गायक सरस राग रागे ॥[24]

वेनु सुषिर वाद्य तथा वीणा तत वाद्य है। राग शब्द भारतीय संगीत के पारिभाषिक शब्द है।

ताल मृदंग झांझ, डफ बाजहिं पवन-निसान।
सुधर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान ॥
बीना बेनु मधुर-धुन सुनि किंनर-गंधर्व।
निज-गुण गरूअ हरूअ
अति मानहिं मन तजि गर्व ॥[25]

मृदंग, झांझ, डफ, वीण बेनु, वाद्य किनर-गंधर्व संगीत के प्रवीण कलाकार है। उपर्युक्त के अलावा अन्य जगह भी वाद्यों का वर्णन आया है जैसे–

बाजहि मृदंग, डफ, ताल बेनु।
छिरकै सुगन्ध भरे मलय-रेनु ॥[26]

बांधि लकुट पट फेरि बोलाई,
सुनि कल बेनु धेनु धुकि धेया ॥[27]

गह गह गगन दुंदुभी बाजी ॥[28]

तुलसीदास के गीति काव्य में चारों प्रकार के वाद्यों का नाम आया है। दुन्दुभी वाद्य का सबसे अधिक प्रयोग पाया जाता हैं

तुलसीदास के गीति काव्य मे नृत्य का भी नामोल्लेख किया गया है भारतीय संगीत में नृत्य के दो रूप प्राप्त होते है।

1. ताण्डव नृत्य
2. लास्य नृत्य

विनय पत्रिका मे भैरव रूप शिव स्तुति में नृत्य का उल्लेख हुआ है, जो ताण्डव नृत्य है।

काल-अतिकाल कलिकाल-व्यालादि-खग, त्रिपुर-मर्दन, भीम-कम भारी।

एकल लोकान्त-कल्पान्त शूलाग कृत
दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी ॥[29]

Scanned with OKEN Scanner

जाकी मायावस विरंचि शिव नाचत पर न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-
जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥[30]

नाचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बंधान
निलज तरूण-तरूणी जनु खेलहि समय समान[31]

इस पद में नृत्य के साथ ही गाना, स्वर और राग इन तीनों का उल्लेख आया है।

इस प्रकार तुलसीदास के गीति काव्य में शब्द संयोग एवं वर्ण सांगीतिक शब्दावली वाद्य यंत्र नृत्योल्लेख आदि में संगीत तत्वों की सहज अभिव्यंजना दृष्टिगत है।

1. संस्कृत साहित्य में गायन तथा गान शब्द में सूक्ष्म भेद माना जाता है वहां गायन शब्द प्रशंसा के लिए तथा गान शब्द संगीत के अर्थ में प्रयोग होता है।
2. संगीत रत्नाकर शारंगदेव प्रथम भाग, प्रथम प्रकरण, पृ. 16, सं. 21
3. संगीत दर्पण–पृ. 5 छं. सं. 3
4. संगीत पारिजात पृ. 6, छं. सं. 20
5. संगीत पारिजात पृ. 6, छं. सं. 20
6. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे–संगीत शास्त्र–प्रथम भाग पृ. 2
7. विनय पत्रिका पद सं. 45
8. डॉ. अरविन्द कुमार–भारतीय सांगीतिक जगत को तुलसीदास का योगदान पृ. 142, 43
9. विनय पत्रिका पद सं. 1
10. विनय पत्रिका पद सं. 2
11. गीतावली बालकांड पद सं. 2
12. गीतावली बालकांड पद सं. 2
13. गीतावली उत्तरकांड पद सं. 19
14. श्रीकृष्ण गीतावली पद सं. 20
15. गीतावली बालकांड पद सं. 4
16. गीतावली पद सं. 19
17. गीतावली पद सं. 23
18. गीतावली पद सं. 45
19. गीतावली बालकांड पद 72
20. गीतावली बालकांड पद 1
21. गीतावली बालकांड पद 2
22. गीतावली अयोध्याकांड पद सं. 47
23. गीतावली अयोध्याकांड पद सं. 48
24. गीतावली उत्तरकांड पद सं. 20
25. गीतावली उत्तरकांड पद सं. 21
26. गीतावली उत्तरकांड पद सं. 22
27. श्रीकृष्ण गीतावली पद सं. 19
28. वहीं पद सं. 6
29. विनय पत्रिका पद सं0 11
30. वहीं पद सं. 98
31. गीतावली अयोध्याकांड पद सं. 47



Scanned with OKEN Scanner

तुलसीदास के पदों में संगीत

डॉ. पुनीता वर्मा*

मानव स्वभाव और उसकी मनोवृत्ति के अनायास स्फुरण में जिन वस्तुओं की कल्पना की जाती है, संगीत भी उनमें एक है। आदिकाल से ही मानव का मुख्य लक्ष्य जीवन को सुखी बनाना रहा है। कर्ण-सुख के लिए नाद और लय की उसने खोज की, कहा जा सकता है कि मानव अपने आप में जितना प्राचीन है, संगीत भी उतना ही प्राचीन है।

सर्वकलाओं में से संगीत कला उच्चतर मानी गई है पर आध्यात्मिक संगीत का दायरा, लोक तथा शास्त्रीय और व्यवहारिक संगीत से अधिक चौड़ा, गहरा और गम्भीर है। भाव-संगीत का आश्रय पाकर सजीव हो जाता है। कविता का चोला भावों को सौन्दर्य प्रदान करता है और फिर काव्य संगीत का आश्रय लेकर प्रभावोत्पादन की क्षमता में वृद्धि करता है। भक्तों एवं संतों के इतिहास में एक अद्‌भुत मान, अनुभव, सभ्यता आदि के दर्शन होते हैं। मनुष्य ने चर्तुपदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को संगीत के द्वारा सहज रूप में प्राप्त किया है। महात्मा तुलसीदास जी साधु थे। उनका जीवन साधुओं और संतो के मध्य बीता। साधुओं और संतों के जीवन का उनपर प्रभाव होना स्वाभाविक था।

तुलसीदास साकार ब्रह्म श्री राम के उपासक थे। वे राम के अनन्य और अनमेल भक्त थे, कवित्व भक्तिभाव और लोकनायकत्व का जैसा सामंजस्य उनके जीवन में पाया जाता है वैसा अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी कवित्वशक्ति अद्वितीय और अद्‌भुत थी। तुलसीदास ने रामायण की रचना की स्वान्तः सुखाय किन्तु वह हो गई बहुजन हिताय। गृहस्थ और वैरागी, ज्ञानी और भक्त, साधु और असाधु, पंडित और गँवार आचार्य और शिष्य, राजा और रंक, दाता और भिखारी सभी पढ़कर झूम उठते हैं और तरह-तरह से उपयोग में लाते हैं। महंथ अपने को पूजवाते हैं, फकीर उनकी चौपाइयों को गाकर भीख माँगते हैं। विद्वान उसका रसास्वादन करते हैं और गृहनारियाँ तुलसी चौरे पर रख उसकी पूजा करती हैं।

उन्होंने बार-बार वेदों की प्रशंसा की है तथा रामचरितमानस जैसी सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय और अद्‌भुत महागेय काव्य की रचना की। उनका सारा जीवन सारा काव्य उनकी समन्वय साधना का प्रतीक है। उनकी मंगलकामना के भीतर जगत की मंगल कामना छिपी है। उन्होंने सारे जगत को सीताराम के रूप में देखा और इष्ट मानकर उन्हें नमस्कार किया-

'सियाराम मय सबजग जानी।
करौं प्रनाम जोरि जुगपानी॥

गोस्वामीजी का लक्ष्य पाठक को धर्म में प्रवृत्त करना है। धर्म के आवरण में लिपटा हुआ वस्तुगत जन-जीवन की झलक है। जिनमें आशा-निराशा, संघर्ष-संकट, माधुर्य-कटुता, युद्ध-शान्ति, भक्ति-अभक्ति, ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-विलास, सन्तोष-असन्तोष, मिलन-वियोग आदि सभी जीवन के अंग स्वाभाविक रूप से यथावसर प्रगट हुए हैं और साथ ही साथ जीवन को बेहतर बनाने की उनकी प्रबल उत्कण्ठा आशा के साथ प्रतिबिम्बित हुई है। तुलसीदास के हृदय से जिन पदों की रचना हुई है वे सब आन्तरिक संगीत की छटा से शोभित हैं। इनकी लिखी गीतावली और विनय-पत्रिका के सभी पद संगीतज्ञों द्वारा गाये जाते हैं। तुलसीदास

*संगीत विभागाध्यक्ष, दमयन्ती देवी महिला कॉलेज, खाजपुरा, मौर्यपथ, पटना–800014

Scanned with OKEN Scanner

जी की प्रगति-रचनाओं में शास्त्रीय संगीत का निर्वाह सर्वत्र है। अपनी विभिन्न रचनाओं में आसावरी, जयश्री, विलावल, धनाश्री, नट, सारंग, मल्हार, कल्याण, सोरठ, कान्हड़ा, ललित, विभास, तोड़ी, रामकली, वसन्त, केदारा, मारू, भैरव, चंचरी, गौरी आदि अनेक शास्त्रीय रागों का प्रयोग उन्होंने किया है। उनके द्वारा लिखे भजन जो कई रागों पर आधारित हैं, आज भी जन-सामान्य के बीच काफी लोकप्रिय हैं। भक्तजन उसे गाकर या सुनकर चिर-आनन्द प्राप्त करते हैं। जैसे–

राग विभास

भोर भयो जागहु रघुनन्दन,
गत व्यलिक, भगतनि उर चन्दन ॥
ससि करहीन, छीन दुति तारे,
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ॥
विकसित कंज कुमुद विलसाने,
लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुज सखा सब बालेनिआए,
बदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
मन भावतो कलेऊ कीजे,
तुलसीदास कहँ जू ठनि दीजै ॥

राग सोरठ

मधुकर कहहु कहन जो पारो।
नाहिंन बलि अपराध रावरो,
सकुचि साधजनि मारो ॥
नहिं तुम ब्रज बसि नन्दलाल को
बाल विनोद निहारों।
नाहिन रास रसिक रस चाख्यो,
ताते डेल से डारो ॥
तुलसी जो न गबे प्रीतम संग
प्रान त्यागि तन जारो।
सो सुनिबों, देखिबों बहुत
अब कहाकरम सोचारो ॥

राग मल्हार

ब्रज पर धन घमण्ड कारे आये।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाये ॥
दमकति दुसह-दुसहुँ दिसि दामिनी
भयो गगन गम्भीर।
गरजत घोर वारि-धर धावत प्रेरित प्रबल समीर ॥
बार-बार पविपात उपलधन बरबत बूँद विसाल।
सीत-समीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल ॥

दरबारी कान्हड़ा

और नहीं कुछ काम के।
मैं भरोसे अपने राम के ॥
दोऊ अक्षर सब कुल तारे।
वारी जाऊँ उस नाम पे ॥
तुलसीदास प्रभु राम दयाधन।
और देव सब दाम के ॥

उस युग के साधु संतों ने जन जीवन से प्रेरणा ली और उसे सुखी बनाने एवं पतन से बचाने के लिए धर्म को ही अपना माध्यम बनाया। तुलसीदास एक महान संत, महान भक्त और महान कवि होने के साथ युगपुरुष थे।

Scanned with OKEN Scanner

मीराँ के पदों में रागात्मकता

रिशु रानी*

संत कवयित्री मीराबाई संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण है। वह संस्कृति है प्रेम की भक्ति की, समर्पण की और क्रान्ति की। मीरा भक्ति की वह भागीरथी है जो मरूधारा से महासागर तक प्रवाहित होती है। मीरा मंदिर की वह दीपशिखा है जिसने अपनी लौ से जग को ज्योर्तिमय किया है।

मीराँ मेड़ता के वीर शासक रण बाँकुरे राठौर राय दूदा के चतुर्थ पुत्र राव रत्न सिंह की पुत्री थीं। उनका जन्म सन् 1498 (सं. 1555) में कुड़की नामक ग्राम में हुआ था। चूंकि बचपन में ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया था, और पिता हमेशा युद्ध कार्य में लगे रहते थे, अतः वह अपने पितामह राव दूदा के यहाँ मेड़ता में रहने लगी। वहाँ मीरा ने बचपन में ही खेल-खेल में श्री कृष्ण की मूर्त्ति को सीने से लगा लिया और उन्हीं की होकर रह गईं। सं. 1573 में मेवाड़ के पराक्रमी महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ मीराँ का विवाह कर दिया गया, लेकिन उनका वैवाहिक जीवन बहुत ही संक्षिप्त रहा। सं. 1580 में कुँवर भोजराज की मृत्यु हो गई। इस प्रकार मीरा बीस वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई।

जीवन का लौकिक आधार छिन जाने पर अब स्वाभाविक ही उनका असीम स्नेह, अंनत प्रेम तथा अद्‌भुत प्रतिभा स्त्रोत गिरधर लाल की ओर उमड़ पड़ा। लौकिक प्रेम की इति होने पर मीरा ने स्वाभाविक रूप से पारलौकिक प्रेम का आश्रय ग्रहण किया। चितौड़ राजवंश की कुलवधु होने के कारण उनके रास्ते में अनेक रूकावटे भी आई। उन्हें मेवाड़ की राजशक्ति का घोर विरोध सहना पड़ा, परन्तु कष्टों की आँच में तपकर मीराँ कंचन सदृश्य दैदीप्यमान हो उठी। विषपान ने तो जैसे उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया और उनमें भक्ति के प्रति एक नवीन भाव संचरित हो उठा–

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दुसरों न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरों पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु, अपनों नहीं कोई।
छाड़ दई कुल की कान, क्या करेगा कोई।

यहीं से मीराँ में कृष्ण की भक्ति के प्रति अनन्यता की रागात्मक चेतना का संस्कार जगा और दूसरी ओर नारी-मुक्ति की कामना का तेज भी प्रोद्‌भासित हुआ। मीराँ संस्कारगत कृष्ण की अनन्य उपासिका ही नहीं वरन् नारी-मन पर अधिकार जमानेवाली सामाजिक वर्जनाओं से जूझने वाली साधिका भी थी। संभवतः पहली बार नारी के अन्तर्मन से सामाजिक विद्रूपता के प्रति आक्रोश "क्या करेगा कोई" की चुनौती का स्वर-सँधान मीराँ ने किया।

मीरा ने अपने काव्यों में गेयता का संविधान सम्यक रूपेण किया है। गायन का प्राण-तत्व राग है, मीरा के पदों में अनेकानेक राग रागनियों का प्रयोग मिलता है–

राग विहाग (ताल दीपचंदी)

श्याम मोरी बाँहड़ली जी गहो।
या भवसागर मँझधार में थे ही निभावण हो॥
म्हाँ में औगण घड़ा छै हो प्रभु जी थे ही सहो तो सहो।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी लाज बिरद की बहो।

*शोध छात्रा, पटना विश्वविद्यालय

Scanned with OKEN Scanner

राग दुर्गा (ताल-त्रिताल)

हो गए श्याम दूज के चंदा ॥
मधुबन जाई रहे मधु बनिया,
हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
अब तो नेह परो कछु मंदा ॥

मीरा के काव्यों में पावस ऋतु का बड़ा सुन्दर एवं मार्मिक वर्णन है। एक ओर जहाँ सावन, बादल, दामिनी के संयोग एवं बिरहणी की व्यथा और वियोग का वर्णन है तो दूसरी ओर उन काव्यों में अधिक मार्मिकता लाने के लिए उनका ऋतु-परक रागों में बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है—

राग रामदासी मल्हार (ताल-तिताला)

डारि गयों मनमोहन पासी।
आँवा की डाल कोयल एक बोलै
मेरो मरण अरू जगकेरी हाँसी ॥
बिरह की मारी मैं वन-वन डोलूँ
प्राण तजूँ करवत ल्यूँ कासी ॥
मीरा के प्रभु हरि अविनासी
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

राग गौड़ मल्हार (ताल-चर्चरी)

बादल देख डरी हो, स्याम। मैं बादल देख डरी ॥

काली-पीली घटा उमड़ी, बरस्यों एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी-पाणी हुई हुई मोम हरि।
जाका पिय परदेश बरस है मीजूँ बहार खरी ॥

मीरा की भक्ति में नारी-मुक्ति की कामना है। वह प्रेम की दीवानी हैं, ऐसी दीवानी, जिसके दर्द को महसूस करने वाले को खुद घायल होना होगा प्रेम की 'पीर' का परिशमन प्रीतम से ही संभव है। मीराँ का प्रेम भी इसी दीवानगी की हद तक पहुँचा हुआ ातीत होता है—

ग जोगिया (ताल-दीपचंदी)

हे री मैं तो दरद दिवानी मेरों दरद न जाणै कोय ॥
घायल की गति घायल जाणै जो कोई घायल होय।
जौहरि की गति जौहरी जाणै की जिन जोहेर होय ॥
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस बिध होय।
गगन मँडल पर सेज पिया की किस बिध मिलणा होय ॥
दरद की मारी बन-बन डोलूँ वैद मिल्या नहिं कोय ॥

बिरह-वेदन की असीम व्यथा के चित्रण के साथ मीरा के कई पदों में नारी-शक्ति का वह रूप प्रदर्शित होता है जिससे दमित नारी में शक्ति का नारी नवीन संधान होता है। भक्ति की शक्ति से नारी के भीतर एक ऐसा तेज उत्पन्न होता है जिससे 'लोक-लाज के मिथ्या ज्ञान के अंधकार के उत्पन्न प्रेम की अनन्यता का प्रकाश प्रोद्भाषित हो उठा—

राग जौनपुरी (ताल तिताला)

मैं गोविन्द गुण गाणा ॥
राजा रूठै नगरी राखै हरि रूठयाँ कहँ जाणा।
राणा भेज्या जहर पियाला इमरित करि पी जाणा ॥
डबिया में भेज्या ज भुंजगम सलिगराम कर जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवानी साँवलिया बर पाणा ॥

राग मालकौस (ताल तिताला)

श्री गिरधर आगे नाचूँगी
नाच-नाच पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जनकूँ जाचूँगी।
प्रेम प्रीतिका बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी ॥
लोक लाज कुल की मरजादा या में एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढूँगी मीरा हरि रँग राचूँगी ॥

मीराबाई के कई पद क्षुद्र प्रकृति के रागों जैसे माँड, झिंझोटी, पीलू, पहाड़ी, बरवा, इत्यादि में भी रचित है वहीं दूसरी ओर उनकी कई रचनाएँ प्रभावती, छाया तोड़ी, हँस नारायण, अगना, श्री रंजनी, नीलाम्बरी आदि कुछ कम प्रचलित रागों में भी है। अपनी रचनाओं को अनेकानेक रागों में बाँधने के साथ-साथ ही इन्होने इन काव्यों को विविध तालों में ताल बद्ध भी किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मीराँ द्वारा रचित प्रत्येक पद अपने में संगीत की निधि बटोरे हुए है। इनकी पदावलियों में राग-रागनियों का अपूर्व भंडार है। मीरा की कलम कालजयी है, उनके कारणों में अनुभूति की प्रखरता के साथ-साथ चित्रकला एवं

Scanned with OKEN Scanner

राग दुर्गा (ताल-त्रिताल)

हो गए श्याम दूज के चंदा ॥
मधुबन जाई रहे मधु बनिया,
हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
अब तो नेह परो कछु मंदा ॥

मीरा के काव्यों में पावस ऋतु का बड़ा सुन्दर एवं मार्मिक वर्णन है। एक ओर जहाँ सावन, बादल, दामिनी के संयोग एवं बिरहणी की व्यथा और वियोग का वर्णन है तो दूसरी ओर उन काव्यों में अधिक मार्मिकता लाने के लिए उनका ऋतु-परक रागों में बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है–

राग रामदासी मल्हार (ताल-तिताला)

डारि गयों मनमोहन पासी।
आँवा की डाल कोयल एक बोलै
मेरो मरण अरू जगकेरी हाँसी ॥
बिरह की मारी मैं वन-वन डोलूँ
प्राण तजूँ करवत ल्यूँ कासी ॥
मीरा के प्रभु हरि अविनासी
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

राग गौड़ मल्हार (ताल-चर्चरी)

बादल देख डरी हो, स्याम। मैं बादल देख डरी ॥
काली-पीली घटा उमड़ी, बरस्यों एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी-पाणी हुई हुई मोम हरि।
जाका पिय परदेश बरस है मीजूँ बहार खरी ॥

मीरा की भक्ति में नारी-मुक्ति की कामना है। वह प्रेम की दीवानी हैं, ऐसी दीवानी, जिसके दर्द को महसूस करने वाले को खुद घायल होना होगा प्रेम की 'पीर' का परिशमन प्रीतम से ही संभव है। मीराँ का प्रेम भी इसी दीवानगी की हद तक पहुँचा हुआ प्रतीत होता है–

राग जोगिया (ताल-दीपचंदी)

हे री मैं तो दरद दिवानी मेरों दरद न जाणै कोय ॥
घायल की गति घायल जाणै जो कोई घायल होय।
जौहरि की गति जौहरी जाणै की जिन जोहेर होय ॥
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय।
गगन मँडल पर सेज पिया की किस विध मिलणा होय ॥
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्लया नहिं कोय।

बिरह-वेदन की असीम व्यथा के चित्रण के साथ मीरा के कई पदों में नारी-शक्ति का वह रूप प्रदर्शित होता है जिससे दमित नारी में शक्ति का नारी नवीन संधान होता है। भक्ति की शक्ति से नारी के भीतर एक ऐसा तेज उत्पन्न होता है जिसमें 'लोक-लाज के मिथ्या ज्ञान के अंधकार के उत्पन्न प्रेम की अनन्यता का प्रकाश प्रोद्भाषित हो उठा–

राग जौनपुरी (ताल तिताला)

मैं गोविन्द गुण गाणा ॥
राजा रूठै नगरी राखै हरि रूठयाँ कहँ जाणा।
राणा भेज्या जहर पियाला इमरित करि पी जाणा ॥
डबिया में भेज्या ज भुंजगम सलिगराम कर जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवानी साँवलिया बर पाणा ॥

राग मालकौस (ताल तिताला)

श्री गिरधर आगे नाचूँगी
नाच-नाच पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जनकूँ जाचूँगी।
प्रेम प्रीतिका बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी ॥
लोक लाज कुल की मरजादा या में एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौटूँगी मीरा हरि रँग राचूँगी ॥

मीराबाई के कई पद क्षुद्र प्रकृति के रागों जैसे माँड, झिंझोटी, पीलू, पहाड़ी, बरवा, इत्यादि में भी रचित है वहीं दूसरी ओर उनकी कई रचनाएँ प्रभावती, छाया तोड़ी, हँस नारायण, अगना, श्री रंजनी, नीलाम्बरी आदि कुछ कम प्रचलित रागों में भी है। अपनी रचनाओं को अनेकानेक रागों में बाँधने के साथ-साथ ही इन्होने इन काव्यों को विविध तालों में ताल बद्ध भी किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मीराँ द्वारा रचित प्रत्येक पद अपने में संगीत की निधि बटोरे हुए है। इनकी पदावलियों में राग-रागनियों का अपूर्व भंडार है। मीरा की कलम कालजयी है, उनके कारणों में अनुभूति की प्रखरता के साथ-साथ चित्रकला एवं

Scanned with OKEN Scanner

संगीतकला का समावेश सहजता से होना भी है। कृष्ण-प्रेम में मतवाली मीरा महीयसी इसलिए भी है कि वह भक्ति-कानन की कलित-ललित गंधभरी ऐसी कली हैं, जो काल-वक्ष पर कभी म्लान होने वाली नहीं।

मीरा नृत्य, संगीत, शब्द भाव रस अलंकार आदि कला के अनेक क्षेत्रो में अनायास ही प्रवेश कर जाती है। वे कला मर्म और जीवन मर्म के विरल अनुभव क्षेत्रों में अनजाने ही प्रवेश कर जाती है। मीरा का काव्य संगीतमय है जो उसका आत्मा का संगीत है। मीराँ ने सूरदास और तानसेन की भांति नए रागों का निर्माण किया है। सदा असीम की ओर निहारने वाली मीरा के संकीर्त्तन की धुन में समस्त विश्व लयात्मक हो जाता है और प्राणो की झंकार, नुपुर की रूनझुन में परिवर्तित हो जाती है।

संदर्भ स्रोत

(1) सर्जना (पत्रिका, संस्कार भारती)
(2) भजन संग्रह (गीता प्रेस, गोरखपुर)

Scanned with OKEN Scanner

'मूल्य-शिक्षा में संगीत' 'एक विवेचनात्मक अध्ययन'

डॉ० (श्रीमती) रेनू वर्मा

"है धरा उदास, मौन है गगन,
बाग के सभी सुमन दे रहे चुभन,
कसकसाती हूक है, छटपटाता मन,
उठ रहा धुआँ, घुट रहा है दम।"

प्रख्यात कवयित्री डा. कुसुम चतुर्वेदी की ये पंक्तियॉ वर्तमान वातावरण में उतर चुकी गहरी अव्यवस्था के प्रति स्पष्ट संकेत ही नहीं करती, वरन एक प्रश्न भी उठाती हैं, इस वातावरण से मुक्ति का कोई मार्ग है? आज हर व्यक्ति के मुख पर, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित एक ही वाक्य है—जमाना बिगड़ गया है। इस बिगड़े हर जमाने के पीछे यदि कोई कारण है तो, वह है मूल्यों का विघटन एवं अवमूल्यन।

प्रश्न उठता है कि मूल्य क्या है—

"मूल्य व्यक्ति की इच्छा, आकांक्षा और रूचि के अनुरूप निर्देशित होने वाली धारणाऐं हैं, जिनका सम्बन्ध एक ओर तो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से और दूसरी ओर सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ा होता है।"

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में मूल्य निर्धारण की ही प्रक्रिया है सत्य और अहिंसा जैसे सर्वोच्च मानवीय मूल्यों के सफल प्रयोक्ता गॉधी जी के इस देश में मूल्यों की जैसी अवमानना हो रही है वह हम सभी के लिये चिन्ता का विषय है। मूल्य केन्द्र राजनीति के नाम पर जिस तरह मूल्यहीनता पनप रही है, मान्यताओं की रक्षा के नाम पर उन्हें जिस प्रकार ध्वस्त किया जा रहा है, सिद्धान्त के नाम पर स्वार्थपरता की जिस प्रकार पराकाष्ठा हो रही है, सामाजिक न्याय के नाम पर जिस प्रकार अन्याय का चतुर्दिक बोलबाला हो रहा है, भारतीय इतिहास को जिस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है, और दलगत, जातिगत तथा साम्प्रदायिकता विद्वेष को फैलाकर जिस प्रकार राष्ट्रीय एकता का पक्षधर बना जा रहा है उससे तो यही प्रतीत होता है कि भारतमाता स्वयं ही आत्मदाह कर लेगी।

वर्तमान युग में जीवन का अति आधुनिकीकरण के कारण व्यक्ति साधनों को जुटाने की कोशिशों में अपने वैकल्पिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक समस्याओं से घिरा पाता है। जिस कारण वह आतंकवाद भ्रष्टाचार, विभिन्न आन्दोलनों व अन्य अवांछनीय कार्यों में अपने को व्यस्त कर लेता है। यह गम्भीर समस्या आज मनुष्य के जीवन में दिन व दिन विकराल रूप में उपस्थित होकर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ललकार रही है।

हमारी शैक्षिक प्रणाली, छात्र-वर्ग के आत्मिक मूल्यों के अवसान में सहायक हो रही है। भारतीय संस्कृति के प्रेम, अहिंसा, सहनशीलता, धैर्य, अनुशासन, त्याग, सद्भाव जैसे शाश्वत मूल्यों का परित्याग कर छात्र समाज दिशा भ्रष्ट हो गया है फलतः कालेजों में पनपने वाले छोटे-छोटे अपराधों, चोरी, मारपीट, नकल की प्रवृत्ति, रैगिंग, अनुशासन- हीनता से लेकर गम्भीरतम् विकृतियों को जन्म दे रही है।

वर्तमान समाज इन विकलांग आस्थाओं का पर्याय बन चुका है और पारस्परिक वैमनस्य की वृद्धि में सहायक हो रहा है। इन स्थितियों से बचने के लिये संगीत, पूर्णरूप से सहायक हो सकता हे।

*वरिष्ठ प्रवक्ता, संगीत-सितार, श्रीमती बी.डी.गर्ल्स डिग्री कालेज, आगरा

Scanned with OKEN Scanner

मानसिक तथा शारीरिक व्यथा से अक्रान्त होकर जब मनुष्य अति व्यस्त हो जाता है तो मन की उद्विग्नता को शान्त कर पुनः सशक्त बनाने की क्षमता एकमात्र संगीत में ही है। संगीत व्यक्तियों की मनोरंजन आवश्यकताओं को ही पूर्ण नहीं करता वरन् व्यक्ति के मस्तिष्क में शान्ति, तेजोमय, ज्वलन्त तथा मानव हृदय व्यापिनी का कार्य करता है। मनोव्यथा जब असहाय और अपार हो जाती है जब उसे कहीं श्रेय नहीं मिलता, जब वह रूदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के चरणों में जा गिरती है। संगीत को मानसिक व्यथाओं को धोने का कुण्ड कहा जाये, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह बौद्धिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों का भी पोषक है। यह ज्ञान की सर्वोच्च शाखाओं में से एक है।

संगीत, शैशव-काल में सुखद स्पन्दन, बाल्य-काल में आनन्द एवं मस्ती, किशोर-काल में श्रृंगारिक प्रबलता, प्रौढ़-काल में मनोबल एवं शान्ति और वृद्ध-काल में आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करता है।

दार्शनिक प्लेटो के अनुसार–

"संगीत से व्यक्ति में धर्म की प्रवृत्ति आ जाती है। वह व्यक्ति कभी अन्याय नहीं कर सकता जो कि संगीत की मधुर स्वर लहरियों में बंधा होता है। संगीत चरित्र ढालता है।"

संगीत के सात स्वर स, रे, ग, म, प ध, नि की सात भिन्न-भिन्न स्वर लहरियों के अपने पृथक सात रंग, होते हैं। प्रत्येक स्वर तरंगें अपने विशिष्ट रंग के साथ मानव शरीर व मन को प्रभावित करती है। संगीत का प्रयोजन आत्मानुभूति है। तो आत्मा रूपि दर्पण पर चढ़ी काम, क्रोध, माया, मोह की धूल स्वयं ही हट जाती है। आज के युग में जब विज्ञान ने चिकित्सा जगत में कीर्तिमान स्थापित किये हैं ऐसे चुनौती भरे समय में संगीत चिकित्सा ने अपने प्रभावी परिणामों से चिकित्सा जंगत को नये सिरे से सोचने को मजबूर कर दिया है–

1. संगीत के अतिरिक्त कोई ऐसा विज्ञान नहीं है, जो मानव स्वभाव और व्यवहार को विकसित करे, मनुष्य को व्यवहार कुशल बनाए, साथ ही बुद्धि को भी विकसित करे।
2. संगीत मनुष्य के शारीरिक, मानसिक विकार के लिये लाभप्रद है।
3. संगीत शान्ति प्रदान करता है।
4. संगीत तनाव और निराशा पर पूर्ण रूप से कारगर है।
5. संगीत द्वारा बुद्धि का विकास होता है।

वास्तव में स्वरों के उच्चारण का ढंग, राग, गायन, वादन की गति तथा स्वरों की तीव्रता तथा तारता पर बहुत कुछ रोग चिकित्सा निर्भर करती है।

संगीत अच्छे संस्कारों का पोषक है। जन्म से लेकर मृत्यु तक 16 संस्कार, 12 महीनों के पर्व, त्यौहार, कोई ऐसा मौका नहीं होता जो संगीत की स्वर लहरियों से वंचित हो। सभी धर्मो के व्यक्ति आनन्द एक साथ मिल-जुलकर इसका आनन्द, उठाते है। इससे राष्ट्रीय एकता, की भावनाओं का विकास होता है।

वास्तविक साम्प्रदायिक एकता, पूर्ण रूप से संगीत में ही दिखाई देती है। संगीत सम्मेलनों में अक्सर देखने को मिलता है कि मंच पर हिन्दू-गायक, मुसलमान, सारंगी वादक, तथा सिख तबला वादक इत्यादि विभिन्न वर्ग के संगीतज्ञ स्वर और लय का एक साथ रसास्वादन करते हैं और उनके सामने बैठे सभी, वर्ग के श्रोता मुग्ध होकर एकता के सूत्र में बद्ध हो जाते हैं। आज भी संगीत, कार्यक्रमों में जब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के गायक इकट्ठे होकर एक दूसरे से मैत्रीपूर्ण भावना से मिलता है। और एक ही मंच पर बैठ कर सरस्वती की आराधना करते हें। यह संगीत का प्रभाव ही है जो हमें ऐसी दुनिया में ले जाता है जहां धर्म, कर्म, जाति, भाषा का कोई भेदभाव नहीं रहता और हम आत्मीय एकता के प्रतीक बन जाते हैं। संगीत द्वारा जनता के मन को भावात्मक एकता की ओर ले जाने का ढंग अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है 'वन्दे मातरम' तथा राष्ट्रगान एक स्वर में गाने से जनता के मन पर एकता का प्रभाव, गहराई से पड़ता है। भारतवर्ष की फौज के जवानों को राष्ट्रीय एकता के गीत, सिखाये जाते हैं जिससे भावात्मक एकता बनी रहे और वे भी एक होकर मातृभूति की रक्षा करें।

वर्तमान दशा में बाधक प्रमुख रूप से वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषी है। आज की शिक्षा का तकनीकी

Scanned with OKEN Scanner

व व्यवसायीकरण दोनों से मनुष्य मशीन बनकर रह गया है और मशीनों में भावनाएं, आत्मीयता, करूणा, दया, नहीं होती है। जिस कारण वह न चाहते हुये भी कोई अवांछनीय कार्यों में लिप्त हो रहा है। और नाम देता है, भ्रष्टाचारी, आतंकवादी, आदि। वह व्यवहारिक मूल्यों के प्रति कैसे सोच सकता है। आवश्यकता है आज की शिक्षा प्रणाली में सुधार की।

भारतीय समाज के अनुरूप, विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा शिक्षा में मूल्य शिक्षा के साथ-साथ संगीत शिक्षा को सम्मिलित करने की संस्तुति प्रदान की गई। आयोग (1964-66) द्वारा प्रस्तावित, शैक्षिक उद्देश्यों में शिक्षा के प्रमुख, कार्यों में भारतीय, समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का संवर्द्धन सम्मिलित है।

यही धारणा इससे पूर्ववर्ती आयोग राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित वि.वि. शिक्षा आयोग (1948-49) की भी रही।

1994-95 की एक रिपोर्ट के अनुसार वि.वि. अनुदान आयोग ने वर्तमान मूल्य विहीनता एवं मूल्य दुर्दशा की स्थिति को देखते हुये विश्वविद्यालय तथा उससे सम्बद्ध कालेजों में प्रेम और दया के पाठ्यक्रम पढ़ाने की संस्तुति की है।

1937 में महात्मा गांधी जी ने संगीत को बेसिक शिक्षा में संगीत को विषय के रूप में सम्मिलित किया।

गांधी जी कहते थे—"नैतिक अशुद्धि का रोग आज हमारे स्कूल कालेज आने वाले छात्रों में फैल गया है और गुप्त महामारी के समान उनका भयंकर ह्रास कर रहा है।"

इस प्रकार अव्यवस्था की ओर तेजी से बढ़ते समाज के लिये संगीत एवं मूल्यों पर आधारित शिक्षा आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य होनी चाहिये। संगीत शिक्षा ही वह सविचार प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन लाती है और उसका दृष्टिकोण विस्तृत करती है। अतः हमारे संगीत शिक्षा शास्त्रियों को ठोस संगीत, शैक्षिक योजना बनानी होगी, जो बच्चों का सर्वांगीण विकास करें। आज के बच्चे कल के नागरिक हैं और अच्छे नागरिक ही देश का भार सफलतापूर्वक वहन कर सकेंगे। सद्गुणों का संचार बाल्यकाल से ही होना चाहिये। संगीत द्वारा बच्चों का नैतिक और चारित्रिक उत्थान होगा और वे निश्चित ही बड़े होकर देश के प्रति अपने कर्तव्य को समझेंगे क्योंकि मनुष्य का चहुँमुखी विकास संगीत के बिना सम्भव नहीं है। क्योंकि इसका हृदय पक्ष से सम्बन्ध है। इसलिये नानक, हरिदास, कबीर, सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास आदि महान भक्तों ने संगीत का मनोरम स्वर लहरी में भक्ति भावनाओं को गूंथकर अपने को आत्मविभोर व हरिदर्शन किया था। आज भी हरिकीर्तन में जब व्यक्ति डूब जाता है जो आत्मिक शान्ति अनुभव करता, प्रभु के निकट पाता है भक्त। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशों में होता है। मनोवैज्ञानिक एच.सी. स्मिथ ने व्यक्तित्व सम्बन्धी ऐसे 25 लक्षणों को चुना जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के अन्तर्नादों, स्वभाव आदि से है वे लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. अन्तर्नाद सम्बन्धी लक्षण—(क) सक्रियता, (ख) संवेदन चेतना, (ग) कामुकता

2. स्वभाव सम्बन्धी लक्षण—(क) भावात्मक, (ख) आशावादिता, (ग) अभिव्यक्ति क्षमता

3. प्रत्यक्ष सम्बन्धी लक्षण—(क) चिन्तन, (ख) बहिर्मुखी, (ग़) नमनीयता

4. स्व-सम्बन्धी लक्षण—(क) स्व विस्तार, (ख) आत्मविश्वास, (ग) स्वसम्बन्धी अर्न्तदृष्टि

5. मूल्य सम्बन्धी लक्षण—(क) आर्थिक, (ख) धार्मिक, (ग) वैज्ञानिक, (घ) सौन्दर्यबोध, (ङ) उदार-मूल्य

6. समस्या समाधान सम्बन्धी लक्षण—(क) महत्वाकांक्षा, (ख) भावात्मक नियंत्रण, (ग) व्यवस्थापिका

7. मानवीय सम्बन्धों के लक्षण—(क) यथा-चारिता, (ख) प्रभाविता, (ग) सहृदया

व्यक्तित्व के निम्न लक्षण ही व्यक्ति की मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं और इन्हीं मनोभावों में जब संगीत का समायोजन हो जाता है, तो

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्तित्व में उत्कृष्टता आती है, जो सिर्फ संगीत से ही सम्पन्न हो सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और संगीत मानव, समाज की एक कलात्मक उपलब्धि है। मनुष्य जीवन के पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के संगीत से हर काल में सिद्ध किया। संगीत मनुष्य के जीवन के लिये अनिवार्य तत्व है। जब व्यक्ति ही उच्च कोटि का होगा तो समाज विरोधी सोच स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। उसके बाद समाज एक बेहतर समाज बनेगा। यह प्रक्रिया लम्बी तो है पर जब अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, चोरी, अनैतिकता, आतंकवादी आदि समस्याओं को पैदा होने में समय लगा है, तो उसके खत्म होने में भी समय लगेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत शिक्षण परिचय–सुशीला श्रीवास्तव एवं सरयू कालेकर
2. एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया–डॉ. आर.पी. मजुमदार।
3. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति–भातखण्डे।
4. संगीत विशारद–बंसत।
5. संगीत कौमुदी–संगीत कार्यालय हाथरस।
6. संगीत मकरन्द–राम कृष्णा।
7. संगीत ऑफ इण्डिया–अतिया बेगम।
8. थ्योरी ऑफ इण्डिया म्यूजिक–विष्णु स्वरूप।
9. अभिनव गीतान्जली–1, 2, 3, 4, रामाश्रया रामरंग।
10. राग परिचय भाग–1, 2, 3, 4 डा. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव।

Scanned with OKEN Scanner

प्रकृति के प्राणियों पर संगीतिक प्रभाव

राजेश कुमार गुप्ता



सूर्योदय से सूर्यास्त तक, चिड़ियों का चहकना, झरने का बहना, वर्षा ऋतु में काली घटा का छाना, मोर का नाचना, जंगल में पशु-पक्षियों का स्वतंत्र विचरण करना इत्यादि प्रकृति के विविध रूप माने गये हैं। इसी प्रकृति कोख से संगीत की उत्पत्ति मानी गयी है। संगीत की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। कई विद्वान पशु-पक्षियों से तो कई विद्वान धर्म से संगीत की उत्पत्ति मानते हैं। संगीत की उत्पत्ति कैसी भी मानी जाय परन्तु सभी मान्यताओं का संबंध प्रकृति से है। जिस प्रकार संगीत की जननी प्रकृति है, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी प्रकृति के पांच तत्व (अग्नि, हवा, पानी, आकाश एवं पृथ्वी) से बना है। गोस्वामी तुलसी के शब्दों में :

'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा,
पंच रचित यह अधम सरीरा।'

इनमें से जहाँ किसी एक की भी कमी हुई कि जीवन-लीला समाप्त हो जाएगी। यही पांच तत्व प्रकृति का आधार माना जाता है। जड़ और चैतन्य की सृष्टि का अस्तित्व इन्ही पर है। वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया है, भावुक व्यक्ति प्रकृति के कण-कण में संगीत के निहित होने का दावा करते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि प्राणी मात्र की उत्पत्ति संगीतमय वातावरण एवं संगीतमय तत्वों से परिपूर्ण होती है।[1]

प्रकृति का क्रियात्मक रूप पर्यावरण कहलाता है। प्रकृति का यह क्रियात्मक रूप एक निश्चित लय तथा एक निश्चित ताल में अनुनादित होती रहती है। यह लयबद्धता प्रकृति के साथ-साथ मानव जीवन को भी प्रभावित करती है।

पावस की लाजवंती संध्याओं को श्वेत-श्याम मेघ मालाओं से प्रस्फुटित नन्हीं-नन्हीं बूंदों का रिमझिम-रिमझिम राग सुनते ही कोयल कूक उठती है। पपीहे गा उठते है। मोर नाचने लगते है तथा मंजीरे बोल उठते है। हरी-भरी लहलहाते हरे-भरे खेतों को देखकर किसान आनंद विभोर हो जाते हैं और वे अनायास ही आलाप उठते है किसी भी परिचित मल्हार अंग के बोल। यही वह समय होता है जबकि प्रकृति के कण-कण में संगीत की सजीवता भासमान होती है। इसी समय प्रत्येक जीवधारी पर संगीत की मादकता का व्यापक प्रभाव पड़ता है। हरियाली तीजों का लोक प्रसिद्ध त्यौहार इसी ऋतु में सम्पन्न होता है। गांव-गांव और गली-गली में झूले की गीत, जिन्हें ग्रामीण भाषा में मल्हार भी बोलते है, गुंजित होते रहते है। इन दिनों गरीब की कुटिया से लेकर अमीरों के गगनचुम्बी महलों तक लगभग इसी प्रकार का वातावरण देखने को मिलता है।

सौन्दर्य प्रकृति की हर वस्तु में विद्यमान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक वस्तु ही सौन्दर्य का क्षेत्र है किन्तु ऐसा नहीं है निःसंदेह सौन्दर्य का आभास प्रकृति और शिल्प के विभिन्न उपादानों से है किन्तु सौन्दर्यशास्त्र अपने क्षेत्र का केन्द्र केवल ललित कलाओं तक ही सीमित रखता है।

मानव सदा ही सौन्दर्य का पुजारी रहा है। सौन्दर्य शास्त्रियों का कहना है कि प्रकृति के सौन्दर्य उसके विभिन्न रूपों एवं क्रियाकलापों का अध्ययन करना भौतिक विज्ञान का कार्य है और दूसरा सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र मानव अनुभूति से प्रेरित कला का मूल्यांकन करना।

*शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति. मां. भागलपुर वि.वि., भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

संगीत मधुर ध्वनियों या स्वरों का विशिष्ट नियमों के अनुसार लय में होने वाला प्रस्फुटन है। इसलिए इसका प्रभाव प्रकृति एवं मनुष्य पर समान रूप से पड़ता है। मनुष्य पर संगीत शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूप में प्रभाव डालता है। जिसका इतिहास में जगह-जगह पर उल्लेख किया है। आधुनिक प्रयोगों ने यह सिद्ध किया है कि प्रकृति भी संगीत के प्रभाव से अछूती नहीं है।

संगीत के सात मूल स्वर हैं जिन्हे क्रियात्मक संगीत सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है। प्रत्येक स्वर अपने प्रभाव एवं स्वभाव में भिन्नता रखते है। इन्हीं स्वरों से विभिन्न थाट निर्मित होते है एवं इन थाटों से रागों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न रागों से भिन्न-भिन्न रसों की सृष्टि होती है।

अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि राग प्राकृतिक तत्वों को भी प्रभावित करने की क्षमता रखता है। इसमें जड़ एवं चेतन दोनों प्रकार के पदार्थों को प्रभावित करने का सामर्थ्य होता है। शास्त्रों के अनुसार आदि रागों का प्रकृति पर निम्नांकित प्रभाव पड़ता है। भैरव राग के प्रभाव से कोल्हू स्वयं चलता था। दीपक राग का इतना प्रभाव होता था कि एक निश्चित क्षेत्र के दीपक प्रज्वलित हो जाते थे। मल्हार राग से वर्षा होने लगती थी।

सर जे.सी. बोस ने वनस्पतिशास्त्र संबंधी विशेष अनुसंधान द्वारा प्रमाणित कर दिया था कि वनस्पति में भी जीव है। पंडित ओमकारनाथ ठाकुर ने प्रयोगशाला में जाकर एकबार राग भैरवी गाई थी। गाने से पूर्व यंत्रों द्वारा पौधों और पत्तों की अवस्था देख ली गई थी और गायन के पश्चात् उनपर आई हुई नई चमक का दर्शन भी लोगों ने किया। मधुर स्वर सुनकर वृक्षों के प्रोटोप्लाज्मा के कोष में स्थित 'क्लोरोप्लास्ट' विचलित और गतिमान हो उठता है।[2]

प्रेमचन्द (मान सरोवर-कामनातरू) ने कहा है कि संगीत के आनंद में विस्मृति है, पर वह विस्मृति कितनी स्मृतिभय होती है, अतीत को जीवन और प्रकाश में रंजित करके प्रत्यक्ष करने की शक्ति संगीत के सिवा और कहाँ हैं?[3]

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि प्रकृति द्वारा संचालित संगीत को सुनकर मनुष्य ने संगीत के अनेकों रूप की कल्पना और रचना की जिससे जगत के समस्त जीव-जन्तु में सक्रियता एवं सृजनसीलता उदभूत हुई। भौतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का मार्ग प्रशस्त हुआ। प्रकृति प्रेरणास्रोत बनी फलस्वरूप मानव अपने जीवन को सौन्दर्यपूर्ण बनाने में सक्षम हुआ और सत्यम् शिवम् की अनुभूति हुई। संगीत का उपयोग करके मानव अपने जीवन को और अधिक सार्थक सफल बना सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीत निबन्धवाली-लक्ष्मी ना. गर्ग, हाथरस, पृ. 72, 74.
2. संगीत कला बिहार, पत्रिका-97 पृ. सं. 27
3. संगीत सूक्ति सुमन भाग-1, महावीर प्र. मुकेश : हाथरस, पृ. सं. 148
4. सौन्दर्य का तात्पर्य डॉ. रामकीर्ति शुक्ल, लखनऊ

Scanned with OKEN Scanner

संगीत चिकित्सा विधि का जीवन में महत्व

डा. संगीता श्रीवास्तव*

मानसिक रूप से अस्वस्थ रोगियों के इलाज हेतु नैदानिक मनोवैज्ञानिकों तथा मनोचिकित्सकों ने अनेक विधियां प्रयोग की है जैसे–सम्मोहन विधि, मनोविश्लेषण विधि, व्यवहार चिकित्सा विधि, समूह चिकित्सा विधि आदि। कुछ चिकित्सा विधियां ऐसी भी है जिन्हें मुख्य विधियों के साथ सहायक विधियों के रूप में प्रयोग करते है जैसे–कला चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, खेल चिकित्सा, नृत्य चिकित्सा आदि।

संगीत चिकित्सा विधि में गायन तथा वादन दोनों का ही प्रयोग होता है। संगीत चिकित्सा विधि को समूह में प्रयोग कर सकते है। अतः एक ही समय में कई रोगियों का इलाज हो जाता है जिससे समय व मेहनत दोनों बचते है।

संगीत व्यक्ति के अंदर दबे भावों को बाहर उभारता है। संगीत के असर से श्रोता भाव विभोर हो उठता है तथा अश्रू में डूब जाता है। संगीत के स्वर व्यक्ति के अचेतन मन को छू लेते है तथा अचेतन मन को उस स्तर तक प्रभावित कर जाते है जहां तक शब्द नहीं पहुंच सकते।

संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक अध्ययन तथा प्रयोग हो रहे है। अमेरिका में Music Research Foundation संस्था भी अनेक प्रयोग कर रही है तथा यह अध्ययन किया जा रहा है कि मानव का मस्तिष्क किस हद तक संगीत से प्रभावित होता है तथा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों में संगीत कहां तक उपयोगी हो रहा है।

इन दिनों संगीत चिकित्सा का कई क्षेत्रों में प्रयोग हो रहा है–संवेगात्मक व व्यवहारात्क समस्याओं को सुलझाने, विकलांगों की चिकित्सा, मानसिक रू से विक्षिप्त लोगों के उपचार, नशे करने वालों के उपचार तथा मनःस्नायुविकृति तथा मनोविकृति के उपचार आदि मे संगीत चिकित्सा विधि का सफल प्रयोग हो रहा है। बच्चों की समस्याओं को सुलझाने में भी संगीत लाभप्रद है :–थॉरेप तथा समुलर के अनुसार–

Music is some from should be included in the curriculum of children. It helps in establishing repport with young pupils. The performance on a musical instrument may serve to improve muscular co-ordination and lead to added poise and self confidence."

डेपहोस (Diephouse) ने यह पाया कि संगीत को सुनने के बाद बच्चों का डर कम हो जाता है तथा वे चिकित्सा में सहयोग देते है।

पोडोलस्की (Podolsky) ने संगीत की कई रचनायें बनायी तथा उनको विभिन्न प्रकार के रोगियों पर प्रयोग किया।

"Rythmic movements and musical compositions or musical expressions have been successfully used as a method of psychotherapy. Haverline and perll used groups of from 6 to 12 children, age 8 to 15, and claimed that it could be done with much younger children. The children took or made up a short text, invented a melody for it, found appropriate accompaniments

*रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, डी.जी. कॉलेज, कानपुर

Scanned with OKEN Scanner

on various instruments, often beginning with clapping of hands. They then looked for expressive movements to go with the composition. They all participated and look turns in various parts."

इलीनॉसड (Illinois) विश्वविद्यालय में Kalpan Max ने ऐसे बच्चों पर अध्ययन किया जिन्हें बोलने तथा सुनने से संबंधित असमान्यतायें थी। उन्होने पाया कि संगीत चिकित्सा की सहायता से उन बच्चे में आत्मविश्वास की भावना जगी।

जोजफ ने विकलांग बच्चों पर अध्ययन किया तथा लाभदायक फल प्राप्त हुए उसने पाया कि संगीत चिकित्सा विधि से उन विकलांग बच्चों की मांसपेशियों की कार्यप्रणाली में आश्चर्यजनक सुधार हुआ तथा उनके जोड़ों के कार्य आदि मे भी लाभ हुआ। संगीत का प्रभाव उनके समायोजन पर भी पड़ा।

वृक्षों पर भी संगीत के रूप में प्रयोग हुआ है।

"Therapentic use of music in the treatment of the aged has been made by Alex Shapiro. He found that assigment of rhythm instrument to each patient on the basis of his physical needs and performance helped to relieve some of there stiffness of arthritis, encouraged muscular movements and led to personal satisfaction. Ear training provided exercises to improve the parient's memory and concentration. Mental and physical sticulation could be provided by playing the electronic organ. He also made use of group song therapy which enabled the patients to analyze the lyrics of selected songs and indirectly to verbalize their anxieties and hostitis."

मानसिक रोगियों पर संगीत का एक चिकित्सा के रूप में इस्तेमाल हो रहा है। मिलर Miller ने मानसिक रूप से विक्षिप्त लोगों के उपचार में संगीत की कई रचनायें बनाई तथा निम्न सुधार पाये–

1. रोगी की बोली में काफी सुधार हुआ।
2. रोगी के अंदर जिम्मेदारी की भावना उभरी।
3. रोगी में समाज के बारे में जानने की उत्सुकता हुई।
4. उसका शब्दकोष ज्ञान बढ़ा आदि।

Wendelin वेन्डलिन ने संगीत शिक्षा के महत्व को बताया है। संगीत शिक्षा मानसिक रूप से अस्वस्थ लोगों के लिए बहुत लाभदायक होती है। उसने पाया कि संगीत चिकित्सा से रोगी का समाजीकरण अच्छा होता है।

जेन्कर तथा ग्लेट Zanker and Glatt ने संगीत का नशा लेने वालों पर तथा मनःस्नायु विकृति से ग्रस्त लोगों पर प्रभाव का अध्ययन किया तथा सकारात्मक प्रभाव देखा। मनोविदिलता Schizophrenia रोग से ग्रस्त रोगियों पर भी संगीत चिकित्सा अपनाई गई है तथा इन चिकित्सा से इन रोगियों को लाभ पहुंचा पाया।

संगीत चिकित्सा के अनेक लाभ है–

1. संगीत विधि द्वारा रोगी अपनी चिन्ताओं तथा विषमताओं को व्यक्त करता है।
2. वह अपने अंदर दबे हुए अर्न्तद्वन्दों को बाहर व्यक्त कर सकता है तथा वह किसी निष्कर्ष की दिशा में अग्रसर होता है।
3. वह संगीत द्वारा तनाव को कम करता है तथा वह अपने अंदर दबी हुई शक्ति को व्यक्त करता है।
4. संगीत चिकित्सा से रोगी अपने अंदर छुपी संगीत की प्रतिभा को बाहर व्यक्त कर सकता है तथा व्यावसायिक कार्यो के रूप में उसे इस्तेमाल कर सकता है।
5. संगीत वाद्यों के इस्तेमाल करने से वह अपनी मांसपेशियों को सुव्यवस्थित कर सकता है तथा अपने अंदर आत्मविश्वास पैदा कर सकता है।
6. ये उन रोगियों के लिए अधिक लाभप्रद है जो शब्दों द्वारा अपने अंदर छुपे भावों को व्यक्त नहीं कर सकते।
7. संगीत विधि रोगी को समूह में समायोजन करने में सहायक होती है।

इस विधि की कुछ सीमायें भी है–

"The main limitations of music

Scanned with OKEN Scanner

therapy are that it is not useful for those who are non-cooperative or detached from reality. It also becomes ineffective for those who lack in musical appreciation".

संगीत चिकित्सा विधि संवेगात्मक असंतुलन में काफी सहायक होती है। हरमेन ने इस संबंध मे अपने विचार लिखे है : संगीत द्वारा व्यक्तियों का ध्यान आसानी से आकर्षित किया जा सकता है। संगीत व्यक्ति के मूड को बदल सकता है तथा संगीत व्यक्ति के अंदर के तनावों को कम करता है। संगीत व्यक्ति के घृणा के भावों को कम करता है। मनोचिकित्सकों ने संगीत चिकित्सा विधि का सफल प्रयोग किया है तथा इस दिशा में अभी भी काफी काम हो रहा है।

चिकित्सा की अनेकानेक पद्धतियां है और उनके अपने आधार है। आयुर्वेद शरीर में वात, पित्त, कफ का असंतुलन मानता है। यूनानी में भावी, वादी, प्रकृति की अस्त व्यस्तता को रोगों का कारण मानता है। ऐलोपैथी में जीवाणु विषाणुओं के आक्रमण, जीवनी शक्ति के शिथिल होने तथा रासायनिक पदार्थो की न्यूनधिकता को निमित्त कारण बताया गया है। होम्योपैथी में उत्पन्न हुए विषों को लक्षणों के आधार पर विष उपचार में मानने का विधान है। बायोकैमिक में बारह प्रमुख लक्षणों की घट-बढ़ को निमित्त माना गया है और उन्हें औषधि के रूप में देकर क्षतिपूर्ति करने की परंपरा है। क्रोमोपैथी में सूर्य किरणों के सात रंगों में से किसी रंग की कमीबेशी को रंगीन कांचों द्वारा उन किरणों का शरीर में प्रवेश कराकर पूरा कराया जाता है। यूनानी तिब्बती प्रायः आयुर्वेद की तरह जड़ी बूटी, खनिज, उद्भिज उपचार पर अवलंबित है।

संगीत चिकित्सा से यह मान कर चला जाता है कि स्नायु संस्थान मे विद्युत प्रवाह की न्यूनता या शिथिलता उत्पन्न होने से कतिपय शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते है। अस्तु नाड़ी संस्थान को तरंगित, उत्तेजित करना संभव हो तो शिथिलता-जन्य विकृतियों से छुटकारा पाया जा सकता है और अस्त व्यस्तताओं को दूर किया जा सकता है नाड़ी संस्थान को उत्तेजित करने की क्षमता संगीत में है अतएव उसे मानसिक रोगों से छुटकारा पाने में काफी उठाया जा सकता है। विशेषतया मानसिक रोगों में। क्योंकि संगीत का मनःसंस्थान को शिथिल कर लहराने में अधिक जल्दी एवं अधिक आसानी से प्रभाव पड़ता है।

अब अस्पतालों में चिकित्सा का एक माध्यम संगीत मान लिया गया है। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जापान, फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली आदि देशों में अस्पतालों में एक विद्या के अनुरूप संगीत के विभिन्न स्तर के रिकार्ड बनाकर उपचार में सहायता ली जाती है। मानसिक अस्पतालों में तो इस प्रयोग को अब एक प्रकार से अनिवार्य ही माना जाने लगा है। सरकारी अस्पतालों के अतिरिक्त कितने ही चिकित्सकों ने अपनी उपचार पद्धति पूरी तरह संगीत चिकित्सा पर केन्द्रित की है। वे रोगियों को अमुक ध्वनि के संगीत, उतने समय सुनाये और उन ध्वनि तरंगों के शरीर में प्रवेश करके आवश्यक हेर-फेर करने का सिद्धांत लैसर किरणों की प्रक्रिया के समतुल्य बताकर समझते है। इसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार का लाभ रोगी को मिलता है और वे इस सहज सुलभ सस्ती और मनोरंजक पद्धति के सहारे अपेक्षाकृत अधिक जल्दी अच्छे होते है। अतएव उसका लोकप्रिय होना स्वाभाविक है। वह लोकप्रिय ही नहीं उत्साहपूर्वक गति से सफल भी हो रही है।

संगीत के संबंध में यदि आधुनिक यंत्रों द्वारा गंभीरता पूर्वक शोध की जाय तो उससे प्रस्तुत समय के अगणित शारीरिक मानसिक रूग्णता को दूर किया और आरोग्य के अभिवर्धन मे महत्वपूर्ण सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार के प्रयोग यूरोप एवं अमेरिका के वैज्ञानिक भी कर रहे है और उन्हें आशाजनक सफलता भी मिली है। मानसिक व्याधियों से ग्रस्त लोगों पर संगीत से आश्चर्यजनक लाभकारी प्रभाव होने का निष्कर्ष सामने आया है। सोवियत रूस के क्रीमिया स्वास्थ्य केन्द्र ने चिकित्सा में औषधि उपचार के साथ-साथ संगीत को भी एक उपाय माना है। इस संदर्भ में वहां देर से प्रयोग चल रहे हैं जिनमें उत्साहपूर्वक सफलता मिल रही है। अनिद्रा, उदासी, सनक जैसे मस्तिकीय रोगों में तो इस उपचार को

Scanned with OKEN Scanner

बड़ी सफलता मिली है। वहां के अस्पतालों में मूर्धन्य वैज्ञानिक प्रो. एस.वी. फैकफ ने संगीत के प्रभाव का अन्वेषण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि उस उपचार का प्रभाव नाड़ी संस्थान की विकृतियों पर और मनोविकारों पर बहुत ही संतोषजनक मात्रा में होता है। डा. वाल्टर एच0 वालेस के अनुसार जुकाम, परिलया, यकृतशोव, रक्तचाप जैसे रोगों की स्थिति में उपयोगी संगीत का अच्छा प्रभाव होता है। प0 जर्मनी के मनःरोग चिकित्सक डा. वाल्टर क्यूग का कथन है कि पागलपन–हिस्टीरिया, अनमयस्कता–मेलेन कोलिया जैसे मनोविकारों के निवारण में संगीत को सफल उपचार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इटली में एक "टोरेन्टेला" नामक नृत्य होता है, तब उनके मधुर वाद्य बजते है, उनसे अनेक पागलपन के रोगी अच्छे होते देखे गए है।

भारतवर्ष में शास्त्रीय संगीत की शक्ति और महत्ता के संबंध में इतिहास के पन्ने भरे पड़े है अब उस दिशा में नई खोजें की जाने की आवयकता है, पर सामान्य व्यक्तियों को कथा-कीर्तन, भजन, संगीत एवं छोटे छोटे वाद्य यंत्रों के वादन और गायन के द्वारा उसके स्वास्थ्य पर पड़नेवाले प्रभाव का लाभ अवश्य उठाना चाहिए। संगीत स्पन्दन शरीर पर बड़ा अनुकूल प्रभाव डालते है। चेतना को लय में बांधने वाले गायन में तन्मयता आवश्यक है पर उतनी तन्मयता न हो तो भी संगीत का मनुष्य के मस्तिष्क, हृदय और शरीर पर विलक्षण प्रभाव अवश्य पड़ता है। नास्तिक और रूखे स्वभाव के समझे जानेवाले व्यक्ति भी उसकी तरंग में बहते देखे जाते है। अमेरिका की प्रमुख कला पत्रिका 'दि अदर ईस्ट विलेज' ने भारतीय संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि मनुष्य की भीतरी सत्ता को राहत देने और तरंगित करने की भारतीय संगीत के ध्वनि प्रवाह में अपने ढंग की अनोखी क्षमता है। उसकी उपयोगिता और सम्मोहिनी शक्ति अपने आप में विलक्षण और अद्वितीय है जिस पर किसी भी देश के किसी भी व्यक्ति को विरोध नहीं। वस्तुतः मानव का संगीत के प्रति स्वाभाविक प्रेम ही इस बात का प्रमाण है कि वह कोई नैसर्गिक तत्व और प्रक्रिया है।

इस संदर्भ में अन्नामलाई विश्वविद्यिालय के मूर्धन्य वनस्पतिशास्त्री डा. टी0एन0 सिंह ने अपने सहयोगियों के साथ वनस्पति एवं प्राणियों पर उल्लेखनीय परीक्षण किये है। उन्होने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि संगीत की मधुर ध्वनि तरंगों द्वारा पेड़ पौधों की फसलों की उन्नति में आशाजनक सहायता मिल सकती है। संगीत एक प्रभावी शक्ति सिद्ध हो सकती है। जिस प्रकार प्रकृति और प्राणी जगत में प्रकाश और गर्मी का प्रभाव होता है। उससे उनके शरीर बढ़ते, पुष्ट और स्वस्थ्य होते है। उसी प्रकार ध्वनि में भी तापीय और प्रकाशीय उर्जा होती है और वह प्राणियों के विकास में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखती है जितना कि पोषक तत्व और जल। रोग निवारण में संगीत की विशिष्ट भूमिका होती है। जोधपुर मेडिकल कॉलेज के चिकित्सकों ने भी रोगियों पर संगीत चिकित्सा के प्रभाव का अध्ययन किया है। उनके अनुसार संगीत के मधुर स्वभाव के कारण रोगी अपनी चिंताएं तथा दुख भूल जाते हैं तथा जल्दी ठीक होते है।

बंगलौर में 'पवानी' नामक एक संस्था है जो संगीत का मनुष्य पर मनोवैज्ञानिक तथा जैववैज्ञानिक रूप से पड़नेवाले प्रभावों पर अनुसंधान कर रही है। अब तक जो निष्कर्ष सामने आये है उसके अनुसार संगीत की अभूतपूर्व आरोग्यकर क्षमता की पुष्टि हुई है। चयापचय, बायोरिदम एवं न्यूरोकेमिकल्स में संगीत प्रवाह महत्वपूर्ण परिवर्तन लाता है। जब मृदुध्वनियों के प्रभाव से मस्तिष्क शांतिमय स्थिति में पहुंचता है तो रक्त शर्करा का स्तर कम हो जाता है और त्वचा के तापमान मे उतार चढ़ाव आता है। इसी तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के राग अलग-अलग भावों को उत्पन्न करते है तथा उनसे प्रसारित होनेवाली उर्जा श्रोताओं के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करती है। इसका विस्मयकारी परिणाम रोगशमन के रूप में परिलक्षित होता है। चिकित्सा विज्ञानियों का कहना है कि संगीत द्वारा एक विशेष प्रकार की उर्जा उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य अपनी शक्ति पर आधारित हो जाता है। यही वह तथ्य है जो रोगी को स्वस्थ बनाता है।

Scanned with OKEN Scanner

लंदन के कुछ अनुभवी चिकित्सक गर्भस्थ शिशु के लिए संगीत की धुनें बजाकर यह पता लगाने की चेष्टा कर रहे है कि गर्भस्थ शिशु की श्रवण शक्ति का विकास किस प्रकार होता है और मधुर ध्वनियों से स्नायविक प्रणाली पर क्या प्रभाव होता है? देखा गया है कि यदि गर्भवती स्त्री को नियमित रूप से संगीत सुनने को मिले तो उससे न केवल प्रसव काल का कष्ट कम किया जा सकता है वरन् आनेवाली संतान को भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से दृढ़ और बलवान बनाया जा सकता है। मनःचिकित्सकों का कथन है कि गर्भवती महिलाओं को संगीत का अभ्यास अथवा रसास्वादन अवश्य करना चाहिये। जो गा बजा नही सकती उन्हें अच्छे भजन कीर्तन, भक्ति, करूणा, प्रेम, दया, साहस और सेवा के प्रेरक गीत सुनने के लिए कोई साधन अवश्य बनाना चाहिए।

पूर्व जर्मनी के गोटिंगन नगर के संगीत द्वारा चिकित्सा करने वाले 'जौहान्स शूमिलिन' नामक वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों और अनुसंधानों से यह सिद्ध किया है कि मनुष्यों की तरह ही बीमार पशुओं को भी संगीत उपचार से रोगमुक्त किया जा सकता है। उन्होने अनुभवों और परीक्षणों का विस्तृत विवरण प्रकाशित करते हुए यह बताया है कि किस प्रकार बिना औषधि के ही कितने कष्ट साध्य रोगों से ग्रस्त मनुष्यों ने ही नहीं पशुओं ने भी रूग्णता से छुटकारा पाया। दुधारू पशुओं को दुहते समय अमुक ध्वनि संगीत सुनाकर अधिक दूध प्राप्त करने में भी वैज्ञानिकों को सफलता मिली है।

स्वस्थ एवं प्रेरणाप्रद मधुर संगीत गायन एवं श्रवण के अनेकों लाभ है। शरीर के विजातिय द्रव्य और विषैले पदार्थो को निकाल बाहर करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गायन और वादन की श्रोताओं पर जो प्रतिक्रिया होती है उसके फलस्वरूप मानसिक विकृतियां, विक्षिप्तता, आलस्य, पीड़ा, मूर्च्छा, निंद्रा का अभाव, रक्तचाप, कान के दर्द, हृदय की धड़कन और श्वास रोग आदि में आराम मिलता है। कई बार कुछ रोग असाध्य हो जाते है और उन पर संगीत का असर धीरे-धीरे पड़ता है। धीरे-धीरे विकारों का शमन होता है पर यह निश्चित है कि नियमित रूप से गायन का अभ्यास करने अथवा सुमधुर भावप्रवण संगीत सुनने से इनसे छुटकारा अवश्य मिलता है।

संगीत चिकित्सा का प्रचलन अब क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। मनोविकारों के समाधान में उसके आधार पर भारी सफलता मिल रही है। शरीरगत रूग्णता पर नियंत्रण प्राप्त करने में भी निकट भविष्य में संगीत की स्वर लहरियां महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करने जा रही है। इन दिनों गीत वाद्य का उपयोग मनोरंजन और लोकरंजन तक सीमित होकर रह गया है। भविष्य में उसे एक कदम आगे बढ़कर मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का संतुलन बनाये रखने का उत्तरदायित्व वहन करना है। उससे आगे उसे संगीत के महासागर में से उल्लास और आनंद की मणिमुक्तक ढूंढ़कर बाहर लाने हैं, निश्चित ही संगीत की सृजनात्क शक्ति द्वारा वह कार्य सफलतापूर्वक संपन्न किया जा सकेगा।

Scanned with OKEN Scanner

लंदन के कुछ अनुभवी चिकित्सक गर्भस्थ शिशु के लिए संगीत की धुनें बजाकर यह पता लगाने की चेष्टा कर रहे है कि गर्भस्थ शिशु की श्रवण शक्ति का विकास किस प्रकार होता है और मधुर ध्वनियों से स्नायविक प्रणाली पर क्या प्रभाव होता है? देखा गया है कि यदि गर्भवती स्त्री को नियमित रूप से संगीत सुनने को मिले तो उससे न केवल प्रसव काल का कष्ट कम किया जा सकता है वरन् आनेवाली संतान को भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से दृढ़ और बलवान बनाया जा सकता है। मनःचिकित्सकों का कथन है कि गर्भवती महिलाओं को संगीत का अभ्यास अथवा रसास्वादन अवश्य करना चाहिये। जो गा बजा नही सकती उन्हें अच्छे भजन कीर्तन, भक्ति, करूणा, प्रेम, दया, साहस और सेवा के प्रेरक गीत सुनने के लिए कोई साधन अवश्य बनाना चाहिए।

पूर्व जर्मनी के गोटिंगन नगर के संगीत द्वारा चिकित्सा करने वाले 'जौहान्स शूमिलिन' नामक वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों और अनुसंधानों से यह सिद्ध किया है कि मनुष्यों की तरह ही बीमार पशुओं को भी संगीत उपचार से रोगमुक्त किया जा सकता है। उन्होने अनुभवों और परीक्षणों का विस्तृत विवरण प्रकाशित करते हुए यह बताया है कि किस प्रकार बिना औषधि के ही कितने कष्ट साध्य रोगों से ग्रस्त मनुष्यों ने ही नहीं पशुओं ने भी रूग्णता से छुटकारा पाया। दुधारू पशुओं को दुहते समय अमुक ध्वनि संगीत सुनाकर अधिक दूध प्राप्त करने में भी वैज्ञानिकों को सफलता मिली है।

स्वस्थ एवं प्रेरणाप्रद मधुर संगीत गायन एवं श्रवण के अनेकों लाभ है। शरीर के विजातिय द्रव्य और विषैले पदार्थो को निकाल बाहर करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गायन और वादन की श्रोताओं पर जो प्रतिक्रिया होती है उसके फलस्वरूप मानसिक विकृतियां, विक्षिप्तता, आलस्य, पीड़ा, मूर्च्छा, निंद्रा का अभाव, रक्तचाप, कान के दर्द, हृदय की धड़कन और श्वास रोग आदि में आराम मिलता है। कई बार कुछ रोग असाध्य हो जाते है और उन पर संगीत का असर धीरे-धीरे पड़ता है। धीरे-धीरे विकारों का शमन होता है पर यह निश्चित है कि नियमित रूप से गायन का अभ्यास करने अथवा सुमधुर भावप्रवण संगीत सुनने से इनसे छुटकारा अवश्य मिलता है।

संगीत चिकित्सा का प्रचलन अब क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। मनोविकारों के समाधान में उसके आधार पर भारी सफलता मिल रही है। शरीरगत रूग्णता पर नियंत्रण प्राप्त करने में भी निकट भविष्य में संगीत की स्वर लहरियां महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करने जा रही है। इन दिनों गीत वाद्य का उपयोग मनोरंजन और लोकरंजन तक सीमित होकर रह गया है। भविष्य में उसे एक कदम आगे बढ़कर मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का संतुलन बनाये रखने का उत्तरदायित्व वहन करना है। उससे आगे उसे संगीत के महासागर में से उल्लास और आनंद की मणिमुक्तक ढूंढ़कर बाहर लाने हैं, निश्चित ही संगीत की सृजनात्क शक्ति द्वारा वह कार्य सफलतापूर्वक संपन्न किया जा सकेगा।

Scanned with OKEN Scanner

संगीत-जीवन दायिनी शक्ति

उदयशंकर कुमार

संगीत का मनुष्य जीवन को सरस बनाने मे बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यदि संगीत का अस्तित्व मिट जाए तो दुनियां बड़ी ही नीरस, रूखी और कर्कश प्रतीत होने लगेगी। साधारण पशु की अपेक्षा मनुष्य को जो आनन्दमयी स्थितियां प्राप्त है उनमें संगीत, साहित्य और कला का बहुत बड़ा भाग है।

जड़ पदार्थो में गति उत्पन्न करने के लिए गर्मी का कार्य प्रधान है। अन्य तत्वों से भी गति संचार होता है परंतु प्रधानता अग्नि तत्व की ही है। इसी प्रकार चैतन्य तत्वों में जो हलचलें होती है उसके कारण यद्यपि अन्य भी है पर संगीत की उनमे प्रधानता है। प्राणियों के अंदर जो चैतन्य तत्व है वह संगीत के द्वारा गति प्राप्ति करता है, आगे बढ़ता है, विकसित होता है।

वैज्ञानिक खोजो से यह पता चला है कि शून्य सृष्टि की निराकार स्थिति जहां है वहां से एक प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है। यह शब्द ऐसा है जैसे कि थाली मे एक हल्की चोट मार दी जाए तो वह बहुत देर तक झनझनाती रहती है। ऐसी झंकृतियां पानी की लहरों की भांति बार-बार अदृश्य अंतराल से उठती है। उनकी झंकृतियों के आघातों से इलेक्ट्रोन परमाणु (विद्युत घटको) में गति उत्पन्न होती है और वे अपनी धुरी पर उसी प्रकार घूमने लगते हैं जैसे कि सृष्टि के बड़े-बड़े ग्रह, नक्षत्र पृथ्वी आदि अपनी अपनी धुरी पर बड़ी तीव्र गति से घूम रहे है। इलेक्ट्रोन परमाणुओं में गति उत्पन्न होने से दुनियां का सारा काम चलने लगता है।

भौतिक सृष्टि का सारा खेल संगीत की शक्तिशाली झंकृतियों के आधार पर चल रहा है। चैतन्य सृष्टि की साकारिता भी संगीत के आधार पर है। मस्तिष्क के विद्युत कोषों से प्रति सैकिण्ड करीब 30 या 31 विचार तरंगे निकलती है। सिनेमा के फिल्म में एक सैकिण्ड में करीब सोलह चित्र आंखों के आगे से निकल जाते हैं। आंखे उन चित्रों की पृथकता को इतनी तेजी से देखने मे असमर्थ रहती है इसलिए ऐसा भ्रम होने लगता है कि एक ही तस्वीर चल फिर रही है, वास्तव में होता है कि एक तस्वीर जरा सी हरकत करती दीखती है उतनी ही देर मे उसके सैकड़ों चित्र आंखों के आगे से निकल जाते है। इसी प्रकार मस्तिष्क में से भी प्रति सैकिण्ड करीब 30-31 एक प्रकार की तरंगे निकलती है। इनके सम्मिलन से जो एक बहुत बड़ा समूह बनता है उसे 'विचार' कहते है। मस्तिष्क के विद्युत कोपों का तरंगित होना भी एक सूक्ष्म संगीत के ऊपर निर्भर है। प्राण वायु सहस्रार कमल से जाकर टकराती है जिससे उसकी झंकृति से मिलता जुलता एक दूसरा शब्द उत्पन्न होता है। ऋषियों ने उसे "सोश्ष्हम्" ध्वनि कहा है। यही अजपा जाप है। ब्रह्माण्ड में स्थिर सहस्रदल कमल से जाकर प्राणवायु न टकरावे और यह 'सोश्ष्हम्' ध्वनि न हो तो मस्तिष्क की चेतना का स्नायविक विद्युत शक्ति का अंत हो जाएगा और क्षण भर के अंदर मनुष्य की मृत्यु हो जाएगी।

योगी लोग जानते है कि शरीर का सूक्ष्म ढांचा-सितार के ढांचे से बिल्कुल मिलता-जुलता है। भगवती सरस्वती के हाथ में वीणा का होना एक आध्यात्मिक अर्थ रखता है वह अर्थ यह है कि सद्विवेक का सरस्वती का प्रकाट्य सितार की आकृति

*शोध छात्र, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

के बने हुए सूक्ष्म शरीर द्वारा होता है। मेरूदण्ड में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के तार लगे हुए है। मूलाधार स्थिति कुण्डालिनी में यह तार बंधे हुए हैं। षट्चक्र इस सितार के वाद्य स्थान है। इनमे से विभिन्न प्रकार की झंकार हर घड़ी निकलती है॥ प्राण विद्या के सूक्ष्म दर्शी आचार्य बतलाते हैं कि गुदा और अंडकोष के बीच मूलाधार चक्र (Pelvic Plxus) में से "लं" की ध्वनि, पेडू के नीचे जननेन्द्रिय के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र (Hypognstric plexus) में से "बं" की ध्वनि, नाभि स्थान के मणिपूर चक्र (Epigastric Plexus) में से "रं" की ध्वनि हृदय में स्थित अनाहत चक्र (Cardiac Plexus) में से "षं" की ध्वनि, कंठ स्थान के विशुद्ध चक्र (Carotid Plexus) में से 'हं' की ध्वनि तथा भ्रूमध्य भाग के आज्ञाचक्र में से 'सं' की ध्वनि निकलती है। इस प्रकार यह छः झंकृतियां अनवरत रूप से प्रतिक्षण तरंगित होती रहती है। स्थूल जगत में स, रे, ग, म, प, ध, नि, के स्वर वाद्य यंत्रों पर बजते हैं। हमारे सूक्ष्म यंत्र का सितार अपने तारों से अपनी भाषा में दूसरी ध्वनियां निकालता है। यह ध्वनियां आपस में एक दूसरे से टकराती है, और मिलती है। इस संघर्षण और सम्मिलन से मनुष्य का अन्तर्जगत संगीतमय हो जाता है। इन तरंगों में असाधारण शक्ति भरी पड़ी है, इनके प्रवाह से शारीरिक और मानसिक जगत के सूक्ष्म घटक गतिशील होते है, तदनुसार विभिन्न प्रकार की योग्यता रूचि, इच्छा, चेष्टा, निष्ठा, भावना, कल्पना, उत्कंठा, श्रद्धा आदि का आविर्भाव होता है और फिर इन्हीं के आधार पर गुण, कर्म स्वभाव का शारीरिक, मानसिक, स्थूल ढांचा दृष्टिगोचर होने लगता है। यह आध्यात्मिक संगीत हमारा पथ प्रदर्शक है, हमें नीचे, ऊपर, आगे, पीछे, जहां चाहता है ले दौड़ता है।

अदृश्य जगत की सूक्ष्म कार्यप्रणाली पर जिधर भी हम दृष्टि डालते है उधर ही यह प्रतीत होता है कि एक दिव्य संगीत से ऐसी दिशाएं झंकृत हो रही है, हर तरफ स्वर की लहरी गूंज रही है॥ ऋषिकेश का पांचजन्य, शंकर की डमरू, भगवान कृष्ण की मधुर मुरली, सरस्वती की वीणा का सत्य, शिव और सुन्दर संगीत निनादित हो रहा है और उसकी स्वर लहरी पर विमुग्ध होकर विश्व की जड़ चैतन्य सत्ता का प्रत्येक परमाणु नृत्य कर रहा है।

निःसंदेह विश्व संगीतमय है। संगीत ही इसकी प्रगति, प्रेरणा और प्राणशक्ति है। यह तत्व इतना महत्वपूर्ण और शक्तिसम्पन्न है कि इसके उपयोग से हम जीवन और मृत्यु, अमृत और विष जैसे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य रसप्रिय है। रस की उसे सदा प्यास रहती है क्योंकि रस पीकर ही जीवन बनता और विकसित होता है। इन रसों में संगीत सबसे प्राचीन है। एक ऐसी क्रमबद्ध स्वर लहरी को संगीत कहते है जो शरीर के परमाणुओं मे मुग्धता और मादकता पूर्ण तरंगों का संचार करें। यह गायन और वाद्य दोनों प्रकार से होता है। जैसी ध्वनिजन्य मादकता अमुक बाजों को बजाने से उत्पन्न होती है वैसे ही गायन कला के साथ गाये हुए गीतों से भी होती है। कंठ में भी वाद्य यंत्र है। जैसे स, रे, ग, म, प, ध, नि, स्वर बाजे में होते है वैसे ही कंठ में भी है। बाजे की सहायता से और बिना बाजे के केवल कंठ स्वर से, या दोनों प्रकार से संगीत का रस उत्पन्न होता है। इस रस को कवि, नर्तक, गायक, वादक, विभिन्न रीतियों से उत्पन्न करते और मानव प्राणी की एक शाश्वत पिपासा को शांत करते हैं।

संगीत अन्तःकरण की एक स्फुरणा है जो स्वयमेव उत्पन्न होती है, उसे बहुत हद तक अपने आप सीख लिया जाता है। प्रकृति ने बहुत समझ-सोचकर संगीत उत्पन्न करने और उसमें रस लेने की क्षमता मनुष्य को प्रदान की है। इस क्षमता के द्वारा प्राणी की शारीरिक और मानसिक विकृतियां दूर होती है और उसका बाह्य एवं आभ्यन्तरिक उन्नति का मार्ग प्राप्त होता है।

हमारे तत्वदर्शी ऋषि, महर्षि, संगीत के लाभों से भली प्रकार परिचित थे। उन्होने सामवेद को गाया और जाना कि गान विद्या भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में निस्संदेह सरसता उत्पन्न करनेवाली है। वेद मंत्रों को घास काटने की तरह नहीं पढ़ा जाता वरन् एक-एक शब्द को सस्वर उच्चारण करने का नियम है मंत्रों के अर्थो में जैसी महानता है वैसी ही महत्ता उनके सस्वर उच्चारण में

Scanned with OKEN Scanner

है। इस उच्चारण से एक ऐसी स्वर लहरी का आविर्भाव होता है जो अनेक दृष्टियों से हमारे लिए लाभदायक है। इस स्वर की उपेक्षा करने से गलत रीति से उच्चारण करने पर अनिष्ट भी हो सकता है। कथा है कि त्वष्टा ऋषि से मंत्रोच्चार में एक स्वर की गलती हुई थी उसका फल बड़ा विपरीत हुआ। त्वष्टा इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा करना चाहते थे किन्तु स्वर संबंधी उच्चारण की गलती से इन्द्र जिसे मार डाले ऐसा वृत्र नाम महाअसुर पैदा हुआ। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि स्वर लहरियों की शक्तियां असाधारण है और उनके रहस्य को जानकर भारतीय ऋषि मंत्र शक्ति से बड़े-बड़े अर्थो का संपादन करते थे।

सामूहिक संगीत का महत्व और भी अधिक है। एक साथ मिलकर जब कई व्यक्ति साथ-साथ गाते हैं तो उन सब लोगों का स्वर प्रवाह एवं आंतरिक उल्लास, मिलकर एक ऐसी तरंग शृंखला उत्पन्न करता है जो उस वातावरण में मिलकर सबको उल्लसित कर देते है।

संगीत मनुष्य की आत्मा है। यदि उसे जीवन में आत्मसात कर लिया जाए तो वास्तव में मनुष्य का जीवन सुकून और सफलता से कट सकेगा।

संदर्भ

1. संगीत शास्त्र विज्ञान–डा. जतीन्द्र खन्ना
2. ध्वनि और संगीत–डा. लाल किशोर सिंह
3. Sound and Music – Sedly Tayior
4. स्वरमेल कला निधि–रामामात्य

Scanned with OKEN Scanner

योग क्रिया में संगीत का महत्व

सुरेन्द्र राम

संगीत अपनी मंत्रमुग्धता, मधुमय स्वर एवं सार्वदिशिक प्रभाव के कारण ललित कलाओ में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया है। सामान्यतः संसार ने इसको कला के रूप में ही पहचाना तथा स्वीकार किया है किन्तु भारत ने इसे कला के अतिरिक्त 'योग' के रूप में भी देखा है।

प्रागैतिहासिक प्राचीन भारत के दूरदर्शी तथा सिद्ध योगी, ऋषि तथा महर्षियों ने आत्मा के मोक्ष-मार्ग, साधन और समाधान इसकी परमात्मा में लीनता और मानवता के हेतु चिर शान्ति की प्राप्ति के लिए संसार तथा इसके आकर्षणों को त्याग कर अरण्य एकान्त में वास किया और गंभीर चिन्तन तथा कठोर तपस्याएं की। इन अरण्य एकान्त में आकर्षणों के मध्य दैवी शक्ति की सहायता से उन्होने प्रकृति को पढ़ा और सतत् तथा गंभीर मनन के पश्चात सुषुप्त गतिशील संगीत-शक्तियों की अनुभूति प्राप्त की और प्राणीमात्र को सुख तथा स्वास्थ्य की वृद्धि एवं विकास हेतु इसकी उपयोगिता को परखा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन दोनों विषयों की गहराई में जाने पर स्पष्ट होता है कि इन दोनों विषयों को 'श्वास' नामक सेतु ने जोड़ रखा है। श्वसन क्रिया को विशिष्ट दिशा में दीक्षित करना, यही योग एवं संगीत का प्रथम कर्तव्य है। ऐसा करने से हमारी पहली आवश्यकता उच्छ्वास अथवा स्वर की उपलब्धि निश्चित हो जाती है। यहीं पर आवाज शास्त्र से स पंर्क करना आवश्यक हो जाता है।

ध्वनि-शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि किसी तार को छेड़ने अथवा स्पर्श करने पर उससे षडज, पंचम एवं गांधार स्वर प्राप्त होते है। ये स्वर अनुरणन के कारण उत्पन्न होते है। मानव कंठ के स्वर-यंत्र में सूक्ष्म स्वरोत्पादक पट्टियां होती है, जिनका कंपन होकर स्वर उत्पन्न होता है। यह कंपन उच्छवास से संभव हो जाता है।

'योग' साधना है एवं संगीत भी साधना है। 'योग' साधना है, विचार तंत्र के क्रियान्वयन की पद्धति है। जिस सत्य को बुद्धि जानती हो, उसे ही हृदय में आस्था उत्पन्न कर योग साधना द्वारा आत्मगत किया जाता है। योग की समस्त परिभाषाओं में उसके इस व्यवहारिक पक्ष को सामान्य तत्व के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

संगीत एक यौगिक कला है जिसे उद्घाटित करने के लिए बाद में संस्कार, एवं गुण-धर्म (Voice-culture) पर मनन करना अनिवार्य है। नाद के गुण-धर्म का व्यक्तिकरण जिन अवयवों के माध्यम से सिद्ध है, उनका भी मनन आवश्यक है। कंठ, कर्ण, जठर, एवं स्नायु मंडल का वर्णन आयुर्वेद के अंतर्गत माने जाते है। किन्तु प्राचीन युग में योग-शास्त्र के अंतर्गत माने जाते थे। हमारे महर्षियों का मुख्य शिक्षणीय विषय ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही था। कारण, सभी विद्याओं का तत्वज्ञान ब्रह्मज्ञान से ही विकसित होता था। उन्होने शक्ति के विकास का आधार ब्रह्म को ही माना। आधार रूपी नारायण से यथाक्रम व्योम, मरूत, तेज, अप्, और क्षिति इन पंचतत्वों की उत्पत्ति हुई और इन पंचतत्वों पर शक्ति का खेल प्रारंभ हुआ।

भारतीय संगीत एक यौगिक कला है जिसे

*शोध छात्र, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

साधने के लिए जिन साधनों (माध्यम, अवयवों) ज्ञान की हमें आवश्यकता है उन्हें सुचारू रूप से किए बिना उस साध्य (संगीत) को पाना संभव नहीं। इस प्रकार साधन का हेतु साधना है और साधना का साध्य। साधन उपलब्धि के बाद वास्तव में साधना (उसकी गम्यता) गुरु कृपा पर अवलम्बित है और साध्य तो इन दोनों का मिश्रित परिणाम है। ज्यों-ज्यों योग के द्वारा चक्रों की शक्ति पर संयम प्राप्त किया जाता है। त्यों-त्यों शक्ति नीचे के केन्द्र से उठकर ऊपर के केन्द्र में चढ़ जाती है। यहां तक कि षट्चक्र भेद करने पर शिव और शक्ति का मेल हो जाता है।

योग और संगीत के लिए संयम की परम आवश्यकता होती है। पतंजलि के अनुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये पांच वहिरंग साधन है तथा शेष धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अंतरंग साधन जब किसी ध्येय में पूर्णतया किये जाते है, तब इनका सम्मिलित नाम 'संयम' हो जाता है।

नाभिचक्र, हृदय-कमल आदि शरीर के भीतरी देश है और आकाश या सूर्य चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी पदार्थ बाहर के देश हैं उनमें से किसी एक देश में चित की वृति को लगाने का नाम धारणा है।[1] ॥1॥

तत्त प्रत्ययैकतानता ध्यानम्[2] ॥2॥

अर्थात् जिस ध्येय वस्तु में चित को लगाया जाय उसी में चित का एकाग्र हो जाना अर्थात केवल ध्येय मात्र की एक ही तरह की वृति का प्रवाह चलाना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृति का न उठाना 'ध्यान' है।

तदंवार्थमात्रनिर्याम स्वरपशून्यमिव समाधिः[3]

अर्थात् ध्यान करते-करते जब चित ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो हाता है उसकी ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का ही नाम 'समाधि' हो जाता है। ॥3॥

त्रयमेकत्र संयमः[4] ॥4॥

किसी एक ध्येय पदार्थ में धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों के होने से 'संयम' कहलाता है।

संगीत एवं योग से हमे दो प्रकार से आत्मज्ञान होता है एक तो बुद्धि द्वारा विचार करने से और दूसरे योग द्वारा स्वानुभव करने से। संगीत को छोड़कर शेष सब कलाएं बुद्धि से संबंध रखनेवाली है। पर संगीत का संबंध सीधा अंतरानुभाव यानि Feeling से होता है। यह कारण है कि संगीत मनुष्येतर प्राणियों को भी प्रिय है, क्योंकि यद्यपि उनमें मनुष्य की भांति बुद्धि तो नहीं होती पर अंतरानुभव की शक्ति होती है। अन्तर्मुख होने में संगीत हमारा सबसे अधिक सहायक होता है, क्योंकि संगीत के राग में जो लोच एवं आरोहावरोह तथा सामंजस्य होता है वह हमें सहसा वहिर्जगत से खींचकर अन्तर्मुख कर देता है और इस प्रकार हम अपने ही आनन्दमय कोष में झलकने वाले आत्मस्वरूप को देखने में समर्थ होते है। क्योंकि यहां पर्दा अति सूक्ष्म है, पारदर्शक है। संगीत सुनते समय हम अपनी इच्छा या तृष्णा के दास नहीं प्रत्युत उसके आरोह अवरोह रूपी सुख-दुख के दृष्टा होते है। उस समय हमारे सामने कोई बाद्य वस्तु या शब्द नहीं रहता है बल्कि हमारा ही अन्तःकर्ण समुद्र की भांति हिलोर मारता हुआ दिखाई देता है।

संगीत के माध्यम से आत्मालय सीख जाती है, संगीत चरित्र बनाता है, उसमें धर्म की प्रवृति आ जाती है, वह कभी अन्याय कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह स्वर-लहरी में बंधा रहता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संगीत के द्वारा परमात्मा से संबंध स्थापित किया जा सकता है, बशर्ते इसका प्रयोजन आनुभूति हो। संगीत में असीम सामर्थ्य है। चित-वृतियों का निरोध करके उसको पवित्रतम बनाने की भी उसमें अपार क्षमता है। संगीत के द्वारा न केवल परमात्मा से संबंध स्थापित किया जा सकता है। वरन् स्वयं परमात्मस्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है। जब कला का प्रयोजन आत्मानुभूति होता है। तब आत्मारूपी दर्पण पर चढ़ी काम, क्रोध माया और लोभ की धूल हट जाती है तथा स्फटिक की भांति निर्मल-निर्विकार परमात स्वरूप के दर्शन होने लगते है। जिस कला का प्रयोजन

Scanned with OKEN Scanner

आत्मअनुभूति होता है, वह ओज प्रसाद और माधुर्य-गुण की प्रबल प्रचुरता से दिव्य हो उठता है।

संगीत की स्वर अथवा नाद साधना नाद ब्रह्म प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है और योग प्राणायाम से इसका सीधा संबंध है जो ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। भक्तियोग (मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग) पूर्णरूप से भजन-संगीत (कीर्तनादि) पर आधारित है। अतः संगीत एवं योग का आध्यात्मिकता से गहरा तथा अभेद संबंध है।

संदर्भ :

1. डा. सम्पूर्णानन्द–योगदर्शन, पृ. 155 (हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, उ. प्र0।
2. तथैव
3. तथैव
4. तथैव



Scanned with OKEN Scanner

संगीत का मनोविज्ञानिक प्रभाव : सैद्धान्तिक विमर्श

अंजु कुमारी*

संसार में मानव की सृष्टि सर्वोत्तम कृति है। जिसमें मानव जीवन के समस्त क्रियाकलाप संचरित होते है। मानव जीवन में संगीत एक सर्वोत्तम संजीवनी है। जिससें जीवन आह्लादित, उत्प्रेरित एवं चमत्कृत हो उठता है। इसके बिना जीवन में नैराश्य और निरसता की उत्पत्ति होती है और जीवन रोग-शोक संतप्त एवं स्वास्थ्य क्षीणता आने लगती है संगीत का संबंध मनोविज्ञान से गहरे रूप में अभिव्यक्त होता है। दोनों का स्वरूप एवं प्रकृति में अत्यधिक साम्य परिलक्षित होता है। वस्तुतः जहाँ संगीत और मनोविज्ञान का समन्वित रूप का अभ्युदय हो वहाँ जीवन अत्यधिक आह्लादित एवं सुखमय हो जाता है। मनोविज्ञान के द्वारा मानव की मनः स्थिति एवं मनोवृत्ति का आकलन कर अध्ययन तदनु रूप उसके समुचित उपाय करने में संगीत सहायक सिद्ध होता है।

संगीत एवं मनोविज्ञान के स्वरूप की संक्षिप्त विवेचना से स्पष्ट है कि ये दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग है। संगीत एवं मनोविज्ञान दोनों का ही उद्देश्य एक तनावग्रस्त मन को शांत कर उसे एक ऐसी दिशा में प्रभावित करना है जिससे वह एक स्वस्थ एवं प्रसन्नचित जीवन व्यतीत कर सके। संगीत को जहाँ एक माध्यम के रूप में माना सकता है, वहाँ मानव में मनोवैज्ञानिक जीवन को उसमें अंतिम लक्ष्य (End) के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। संगीत का संबंध विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के साथ देखे जा सकते है यथाः सीख, श्रवण, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, संवेग, अभिरुचि, ध्यान इत्यादि लेकिन विशेष रूप से संगीत की उपादेयता मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाओं के साथ अत्यधिक देखने को मिलता है। विशेष रूप से औद्योगिक मनोचिकित्सा सामाजिक तथा शिक्षा इत्यादि के क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।

प्राकृतिक तत्व संगीत आज सभाओं, संस्थाओं, सम्मेलनों में स्वच्छन्द विचरण कर रहा है। संगीत से चिकित्सा के क्षेत्र में संभावनाएँ एवं प्रमाणिकता तलाश की जा रही है। स्पष्ट है कि संगीत जैसी कला का सम्बन्ध शरीर और मन दोनों के साथ है। मानव अपनी कल्पना प्रक्रिया द्वारा संगीत में स्वरों का लगाव, तान प्रयोग, बन्दिश इत्यादि की प्रस्तुति करता है। कल्पना, चिन्तन ध्यान रूचि, सीखना आदि मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का संगीत का गहरा सम्बन्ध है। मन मानवीय-व्यवहार का मुख्य केन्द्र है और ये मानसिक प्रक्रियाएँ और संगीत एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मन की चेतना और अचेतन क्रियाओं का निरीक्षण करके उपरोक्त अनुभूति द्वारा मनुष्य की बाह्य क्रियाओं का अध्ययन करता है।

विभिन्न शास्त्रों एवं कलाओं का संबंध मनोविज्ञान से हो उन कलाओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोविज्ञान की सहायता से ही संगीत का रसास्वादन किया जा सकता है। संगीत का मनोविज्ञान के साथ संबंध प्रमाणित करने के लिए मानवीय व्यवहार के ज्ञानात्मक पहलु, क्रियात्मक पहलु, भावानात्मक पहलुओं को समझना आवश्यक है।

मानवीय व्यवहार इन तीनों का मिश्रण है। प्रत्येक मनुष्य के मन में कुछ न कुछ भाव अवश्य उत्पन्न

*विभागाध्यक्ष, वि.वि. संगीत विभाग, ति. माँ. भा. वि.वि., भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

होते है। ये भाव ज्ञानात्मक होते है और इन भावों को व्यक्त करने के लिए मनुष्य क्रियात्मक पहलु का सहारा लेता है। ये कला तभी सफल होती है जब मनुष्य अपने भावनात्मक पहलु को अच्छे क्रियात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का माध्यम संगीत है।

मनुष्य के मन स्थिति का ज्ञान उसके व्यवहार से किया जाता है। भावों को व्यक्त करने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। अतः कला मनुष्य के भावों को व्यक्त करने का आवश्यक साधन समझा जाता है। कला में जब व्यक्ति अपने भावों व विचारों को संगीत के माध्यम से व्यक्त करता है तब श्रोता व भावों की अभिव्यक्ति करने वाला व्यक्ति स्वयं की आनन्दित होता है।

संगीत श्रोता के लिए कल्याणकारी और सुन्दर है। संगीत में सौन्दर्य तत्वों की प्राप्ति सौन्दर्य शास्त्र से होती है और ये सौन्दर्य मन की अनुभूति है। इन सौन्दर्य का प्रभाव मन पर संगीत के द्वारा पड़ता है। संगीत से शक्ति आनन्द, सुख तथा संतोष की प्रेरणा मिलती है। संगीत से इन्द्रिजन्य, मानसिक, वौद्धिक व अध्यात्मिक इन चारों का आनन्द प्राप्त होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि संगीत के द्वारा आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, तो वह संगीत नहीं है। आनन्द से वंचित रहकर संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती। आनन्द विहीन संगीत की कल्पना असम्भव है। संगीत से हमेशा सुखकर भाव की निर्मिति होती है।

संगीत मन को केन्द्रित करती है। संगीत से एकसूत्रता आती है। अच्छे संगीतकार के लिए यह अवधान का केन्द्रिकरण आवश्यक है। संगीत में भावों की कल्पना से ही रस निष्पति होती है। संगीत के प्रस्तुतीकरण में मन का बहुत योगदान है। संगीत में अद्वितीय शक्ति है। जिससे सौन्दर्य निर्मित होता है। केवल स्वरों का माधुर्य कला नहीं है बल्कि उसकी अभिव्यक्ति सुन्दर होनी चाहिए जो मन के बगैर सम्भव नहीं है।

संगीत का संबंध मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं से है।

(1) **औद्योगिक मनोविज्ञान** :–मनोविज्ञान की यह शाखा उद्योग धंधों में मनुष्य के महत्व पर प्रकाश डालता है। उद्योग धंधों के सफल संचालन के लिए केवल यंत्रों का ही नहीं, बल्कि यंत्रों की संचालन के लिए नियंत्रित करने के लिए व्यक्तियों की योग्यताओं तथा मनोवृत्ति का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अतः मनोविज्ञान की ये शाखा उद्योग के मानवीय पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत करती है। अतः ये मनोविज्ञान का प्रधान विषय है।

उद्योग मनोविज्ञान की एक समस्या है। मनुष्य का शरीर अपनी क्षमता के आधार पर ही कार्य कर सकता है। क्षमता से अधिक कार्य करने पर उसमें थकावट आ जाती है। संगीत द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती है। जिससे थकान दूर किया जा सकता है। संगीत की मधुर ध्वनि कार्य-क्षमता को बढ़ाने में सहायक होती है। श्रम करते समय श्रमिकों को यदि संगीत सुनाया जाए तो थकान कम महसूस होगी और व्यक्ति स्वयं को हल्का महसूस करेगा। संगीत से उसे आनन्द मिलता है और वह परिश्रम को भूल जाता है। संगीत से उसमें नवीन स्फूर्ति का आभास होता है। श्रमिकों को इस तरह का संगीत सुनाया जाना चाहिए, जिससे उन्हें मानसिक शक्ति प्राप्त हो और रसानुभूति भी।

उद्योग के क्षेत्र में विज्ञापन का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी तरह के Product के विवरण के लिए प्रचार की आवश्यकता होती है। अतः किसी भी प्रकार के विज्ञापन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए संगीत का प्रयोग किया जाता है। कोई भी वस्तु का विज्ञापन समाचार पत्र या अन्य किसी माध्यम से इतनी जल्दी आकर्षित नहीं करता जितनी संगीत का ध्वनि।

अतः इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उद्योग के क्षेत्र में भी संगीत का महत्व है।

(2) **असमान्य मनोविज्ञान** : असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत असामान्य व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। मानसिक रोगों के अध्ययन से असामान्य मनोविज्ञान का विशेष संबंध रहा है। मानसिक रोगों के उपचार में संगीत भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। जब किसी मानसिक रोगी को संगीत सुनाया जाता है तो उसके मन में तरह-तरह की सहृदय कल्पनाएँ जीवित हो जाती है। वह कुछ विश्राम की अनुभूति करता है।

Scanned with OKEN Scanner

'अल्ट शुगर' के अनुसार संगीत में रोगी के संवेदनात्मक व बौद्धिक पहलुओं को उत्तेजित करने की शक्ति होती है।

भारतीय ऋषि मुनियों ने भी रोग निवारण में संगीत के महत्व को स्वीकार किया है। मनोवैज्ञानिकों ने ये स्वीकार किया है कि संगीत में अच्छी-अच्छी औषधियों के तुलना में रोग निरोधक गुण अधिक है। मनोविज्ञानिकों ने ये पता लगाया कि खास तरह के ध्वनि, लय तथा वाद्य रोग-निवारण में सहायक होते है। प्रयोग से ये सिद्ध हो गया है कि वायलिन की मधुर ध्वनि अति तीव्र सिर दर्द का 15 मिनट में दूर कर सकती है। प्रेममय मधुर गीतों को सुनने से आधी बिमारियाँ दूर हो जाती है।

(3) **सामाजिक मनोविज्ञान** :–सामाजिक मनोविज्ञान मनुष्य की व्यवहार प्रणाली तथा उस पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों के स्त्रोत का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

संगीत की उपासना से अनुशासन प्रियता, सहिष्णुता, दूसरों के प्रति सुसंवाद, सहभावों का निर्माण आदि गुण व्यक्ति में आ जाते है। जिनसे व्यक्ति समाज में सुसंवाद आ जाता है। अन्तर्विरोधी तत्वों को संयोजित कर सुसंवादी बनाने की प्रकृति संगीत से आती है। संगीत से जिस सुख की अनुभूति होती है। उससे भाषा, धर्म, जाति का बंधन नहीं रहता बल्कि उससे भावनात्मक एकता आती है। संगीत जागृति-निर्माण करता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व के लिए संबंध होना अत्यन्त आवश्यक है जो संगीत के द्वारा संभव है। संगीत के द्वारा समाज में एकता, बंधुत्व की भावना तथा प्रेम की भावना जागृत होती है। संगीत के द्वारा एक देश की भावनाएँ दूसरे देश तक पहुँचती है। इसी कारण बड़े-बड़े सांस्कृतिक तथा सांगीतिक उत्सव किए जाते हैं।

विभिन्न रीति-रिवाजों में संगीत का आयोजन होता है। अवसरनुकूल गीत गाए जाते हैं। संगीत सभी धर्मों को एक करने की कोशिश करता है।

इस प्रकार संगीत के विकास में समाज का प्रमुख योगदान है। समाज को संगठित रखने के लिए तथा उसमें एकता का भाव लाने के लिए संगीत अति आवश्यक है।

(4) **शिक्षा मनोविज्ञान** : शिक्षा को सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय शिक्षा मनोविज्ञान को है। मानसिक योग्यता की माप के आधार पर शिक्षा मनोविज्ञान यह दर्शाता है कि प्रत्येक बच्चा अपनी बुद्धि मानस वृति तथा अभिरूचि में एक-दूसरे से भिन्न होता है। अतः बच्चों की शिक्षा भी भिन्न भिन्न प्रकार की होनी चाहिए। सफल शिक्षक बनने के लिए भी मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। शिक्षा और मनोविज्ञान का निकट का संबंध है। ये दोनों एक दूसरे में निहित है। इनको अलग नहीं किया जा सकता।

अतएव यह कहा जा सकता है कि संगीत एवं मनोविज्ञान का मानव ही नहीं समस्त प्राणियों पर सम्यक रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिससे उसके जीवन के सुख एवं समृद्ध में वृद्धि होती है तथा व्याधियों की चिकित्सा प्रणाली में संगीत एंटीबाटिक का काम करता है और मनोविज्ञान टॉनिक का। संगीत में राग ताल लय का संयोजन है जिसमें मानवीय संवेदना, व चेतना सहिष्णुता व भावात्मक एकता को बल मिलता है। शारीरिक एवं मानसिक विकारों को दूर करने में सहायक होता है। मन में शांति व सद्भावना का संचार होता है। यही संगीत कला की विशिष्टता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीत और मनोविज्ञान–किरण तिवारी
2. भारतीय संगीत और मनोविज्ञान : वसुधा कुलकर्णी
3. संगीत की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि : डॉ. कविता चक्रवर्ती

Scanned with OKEN Scanner

संगीत-प्रकृति का अभिन्न अंग

बुद्धिनाथ दास*

संगीत को प्रकृत्ति का अंग ही नहीं अपितु संगीत को प्रकृत्ति ही कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी और न इसमें कोई आश्चर्य करने जैसी कोई बात ही होगी। इसके लिए यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि इसका उद्‌गम श्रोत और मूल क्या है? निःसंदेह इसका उद्‌गम श्रोत है ध्वनि, जिसके अनेक पर्यायवाची शब्द हैं यथा—ध्वनि, आवाज, स्वर, शब्द, नाद और श्रुति इत्यादि।

सृष्टि निर्माण अथवा इसकी उत्पत्ति के अनेक कारण और करणों की चर्चाएँ हैं—विकासवादी, प्राकृतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक आदि। परन्तु धर्मशास्त्रों में जो चर्चाएँ हैं उनमें सृष्टि की उत्पत्ति शब्द (ध्वनि) से मानी गई है। 'अनुराग सागर' नामक ग्रन्थ में संतकबीर एवं उनके प्रमुख शिष्य धर्मदास के बीच वार्त्तालाप का वर्णन है। धर्मदास द्वारा सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछे जाने पर संत कबीर ने जो कुछ कहा इन चौपाइयों में द्रष्टव्य है:—

प्रथम शब्द पुर्ष परगासा।
लोक द्वीप रचि कीन्हनिवासा॥
द्वितीय शब्द पुर्ष परगासा।
निकसे क्रुम्ह चरण गहि आशा॥

तृतीय शब्द पुर्ष जब किन्हेउ।
आज्ञा पुर्ष द्वीप तिन लहेउ॥
चौथा शब्द भये पुनि जबही।
विवेक नाम सुत उपजे तबही॥

पाँचवा शब्द पुर्ष उच्चारा।
कालनिरंजन भये औतारा॥
छठया शब्द पुर्ष मुख भाषा।
उपजे सहज नाम अविलाषा॥

सतया शब्द सुन भये संतोषा।
दिन्हों द्वीप पुर्ष परितोषा॥
अष्टम शब्द पुर्ष उच्चारा।
सुत सुभाव द्वीप बैठारा॥

नवम शब्द सुन आनन्द अपारा।
दशम शब्द क्षमा अनुसारा॥
एकादश शब्द नाम निःकामा।
द्वादश शब्द जलरी नामा॥

त्रयोदश शब्द अचिन्त सुत जानो।
चतुर्दश शब्द सुत प्रेम बखानो॥
पन्द्रहवाँ शब्द सुत दीन दयाला।
शोडस शब्द धैरज रिशाला॥

सत्रहवाँ शब्द सुत योग संतायन।
एक ही नाल शोडस सुत पायण॥
शब्द ही ते भये सुत ओंकारा।
शब्द ही से लोक दीप विस्तारा॥

परम सत्ता को पुर्ष की संज्ञा देते हुए उनसे सृष्टि के सारे आयामों की उत्पत्ति शब्दों द्वारा की गई, की चर्चा है। इस पर विस्तार का विषय मेरा नहीं है।

इससे सम्बन्धित दूसरा उदाहरण राग नन्द में गाया जाने वाला प्रसिद्ध बन्दिश (गीत) है जिसका आशय है कि श्री कृष्ण ने जब अपने मुरली से नाद प्रकाशित किया तो सारे सृष्टि की रचना हो गई जो इस प्रकार है:—

स्थाई :— *जब हरि मुरली नाद प्रकास्यो,*

व्याख्याता, संगीत विभाग, एस.के. महिला महाविद्यालय, बेगूसराय।

Scanned with OKEN Scanner

जंगम जड़ स्थावर चर किन्हो।
पाहन जलज विकास्यो॥
अन्तरा— *स्वर्ग पाताल दशो दिशि पूरण*
ध्वनि आच्छादित कीन्हों,
निशि हरि कल्प समान बढ़ाई
गोपिन को सुख दीन्हों॥

यह हुआ सृष्टि की उत्पत्ति जिसका मूल नाद है।

अब संगीत की उत्पत्ति पर विचार करें। संगीत की उत्पत्ति ध्वनि अर्थात् नाद से है, यह निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है। सृष्टि, जिसके पाँच अवयब-क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु है, के सम्पूर्ण स्वरूप को ही प्रकृत्ति कहते हैं, जिस पर ही जलचर, नभचर और थलचर सभी प्राणियों, यहाँ तक कि पेड़-पौधों का भी (अर्थात् सम्पूर्ण जीवन का) अस्तित्व निर्भर है। संगीत, जिसका मूल नाद है, उसकी भी उत्पत्ति वायु और अग्नि पर निर्भर है, जो प्रकृति के ही अवयव हैं। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में शास्त्रों में उल्लेख है कि

नकारं प्राणमामानं दकारमनसं विदुः।
जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽभिःधीयते॥

'नकार' प्राणवाचक (वायु) तथा दकार अग्नि-वाचक है। अतः जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है उसे 'नाद' कहते हैं। कविवर पं. लोचन ने अपने ग्रन्थ राग तरंगिणी के तृतीय तरंग में इसको परिभाषित करते हुए लिखा है

नाभेरूद्‌र्ध्वहृदिस्थानान्मारूतः प्राणसंज्ञकः।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्त्तितः॥
आकाशाऽग्नि-मरूज्जातो नाभेरूदर्ध्व समुच्चरन।
मुखेऽतिव्यक्त मायाति यः स नाद इतीरितः॥

नाभि के ऊपर हृदय से प्राण नामक वायु ब्रह्मरन्ध्र के अन्त में आवाज करता है वह आवाज या ध्वनि 'नाद' कहलाता है। आकाश, अग्नि और वायु से उत्पन्न होकर नाभि से ऊपर उच्चरणार्थ प्रस्थान कर मुँह में आ अत्यन्त स्पष्ट हो जाय वही नाद कहलाता है। आकाश, अग्नि और वायु जो प्रकृति के अवयव, अर्थात् तत्व कहलाते हैं उनसे ही संगीत के मूल श्रोत ध्वनि अर्थात् नाद की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार संगीत और प्रकृति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। फिर हम संगीत को प्रकृति से अलग कैसे देख सकते हैं।

जब संसार में अभिव्यक्ति का कोई साधन नहीं था तो ध्वनि ही सहायक हो कर सामने आया। आज भी जीव-जन्तु, पशु-पक्षी या मानव जन्म लेता है तो अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करने के लिए ध्वनि का ही आश्रय लेता है। नाना प्रकार की ध्वनियों द्वारा अपने संरक्षक को आकर्षित कर अपनी आवश्यकताओं की आपूर्त्ति करवा पाने में समर्थ हो पाता है। उदाहरणार्थ—नवजात शिशु अपने क्रन्दन अथवा हुँकार ध्वनि से अपनी माँ को अपनी ओर आकृष्ट करता है तब उसकी माँ उस मूक ध्वनि की भाषा को समझ कर अनुकूल आचरण करती है। तभी प्रसिद्ध कहावत है—"जब बच्चा रोता है तभी माँ दूध देती है।"

इसी प्रकार सृष्टि के प्रारंभिक दिनों में जब अभिव्यक्ति के कोई साधन नहीं थे, मनुष्यों ने इसी ध्वनि का ही अवलम्बन लिया। भिन्न-भिन्न ध्वनियों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करता रहा, जिस प्रकार पशु-पक्षी आज भी, जिनके पास कोई भाषा नहीं है, फिर भी भिन्न-2 प्रकार की ध्वनियों द्वारा ही अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। सुख, दुख, आनन्द, भय, प्रेम आदि भावनाओं एवं संवेदनाओं को इसी से व्यक्त करते हैं तथा सृष्टि के सारे कार्यों का सम्पादन कर रहे हैं उसी प्रकार भाषा विहीन आदि मानव ने सर्वप्रथम ध्वनि के माध्यम से ही अपनी भावनाओ और विचारों को अभिव्यक्त करना सीखा। कालान्तर में उन ध्वनियों की पहचान एवं स्मृति के लिए रेखा आकृत्तियाँ बनाई गई। धीरे-2 उन्हीं ध्वनियों वाली रेखा आकृत्तियों से वर्ण, वर्ण से लिपि, लिपि से भाषा और अन्त में उस भाषा से साहित्य का उद्‌भव और विकास होता गया। हम कह सकते हैं कि आज जिन भाषाओं एवं साहित्यों के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व जुड़ा हुआ है उसके मूल में ध्वनि ही है। उस भाषा या साहित्य का उद्‌गम श्रोत ध्वनि ही है। यह तो हुआ भाषा और उसके साहित्य के विकास की बात। अब आवें संगीत की ओर जिसका भी मूल

Scanned with OKEN Scanner

ध्वनि अथवा नाद ही है। यह सर्व विदित है कि बिना ध्वनि के संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संगीत में नियमित एवं स्थिर आन्दोलन वाली ध्वनि का उपयोग होता है तब वह नाद कहलाती है। संगीत की परिभाषा शारंगदेव ने "संगीत रत्नाकर" में दिया है कि

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं, त्रयं संगीत मुच्यते"।

अर्थात् गाना, बजाना और नृत्य तीनों का सम्मिलित रूप संगीत कहलाता है। गाते बजाते समय आव-भाव प्रदर्शन के लिए थोड़ा बहुत हाथ चलाना, मुखाकृति बनाना आदि नृत्य के व्यापक अर्थ में आते हैं। इस प्रकार संगीत की परिभाषा दी जा सकती है—"संगीत वह कला है जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम भावों को प्रकट करते हैं।"

मानव, जो इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ट उपलब्धि एवं प्रकृत्ति का सर्वोत्तम प्राणी है, अपनी सम्पूर्ण अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की अभिव्यंजना इन्हीं दोनों माध्यमों शब्द या स्वर अर्थात साहित्य एवं संगीत से ही करता है, जिस दोनों माध्यमों की उत्पत्ति का मूलआधार ध्वनि ही है। जिसका उद्गम श्रोत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ध्वनि ही है। परन्तु संगीत और साहित्य में दूरी इतनी कम है, दोनों के दुराव में इतनी संकीर्णता है कि एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते और न अलग करके उसे देख ही सकते है। यही कारण है कि प्रकृत्ति के सर्वश्रेष्ठ प्राणी-मानव का संगीत से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। संगीत का मानव जीवन से अंतरंग सम्बन्ध है : तभी जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों की प्रत्येक स्थितियों, अवस्थाओं में (जन्म से मृत्यु तक) वह अपने उद्गार, दुःख-सुख, भय-आनन्द, वेदना- प्रसन्नता, विरह-मिलन, आमोद-प्रमोद, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, उत्साह, भय आदि सभी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति, उसका इजहार गीत-संगीत द्वारा ही करता है। जन्म की खुशी पर सोहर एवं बधाई गीत, किसी के आगमन पर स्वागत तथा गमन पर विदाई गीत, मांगलिक अवसरों पर स्तुति, वंदना और देवी-देवता पूजन गीत, संस्कारो—यथा मुंडन, उपनयन, शादी-विवाह आदि अवसरों पर समसामयिक गीत तथा पर्व-त्योहार उत्सव आदि भी संगीतमय गीत-नादों द्वारा ही मनाया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर भजन-कीर्तन किया जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु के अवसर पर भी गीत संगीत द्वारा ही शव-यात्रा का समापन किया जाता है। प्रकृति की घटाओं, उसके बदलते मौसमों में अपने को निहारते हुए विरह या मिलन की संवेदनाओं का अनुभव कर, प्रकृति का वर्णन-गीत संगीत द्वारा करते हुए स्वयं मनुष्य प्रकृतिमय हो जाता है। यही है प्रकृति और संगीत का सम्बन्ध।

ऐसी मान्यता और किंवदन्ती है कि सृष्टि की उत्पत्ति काल में इसके विस्तार हेतु जब आदि मानव आया, जिसे आदम-हौवा, एडम-ईव और आदि शक्ति-निरंजन के नाम से जाना जाता है, तो उनके बीच कोई आकर्षण नहीं था। सृष्टि-विस्तार की कल्पना क्षीण होते देख पृथ्वी पर संगीत का संचार किया गया तथा इसके माध्यम से आकर्षण पैदा कर सृष्टि का विस्तार किया गया। यही कारण है कि आज भी संगीत का सम्बन्ध प्रकृति से उतना ही आकर्षक एवं सशक्त है। प्रकृति के कण-2 में संगीत विद्यमान है—चाहे पक्षियों के कलरव में हो, कोयल की कूक में हो, आग की लपटों से निकलती धू-धू में हो, तीव्र गति से बहते वयार की साँय-साँय मे हो या प्रवाहित जल के कल-कल निनाद में हो। सम्पूर्ण प्रकृति संगीतमय है, संगीत से प्रभावित है। इतिहास के पन्ने बयाँ करते हैं कि संगीत के प्रभाव से हिरण खिंचेचले आते थे, पत्थर पिघल जाते थे, बादल बरस जाते थे और संगीत से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाया करती थी। क्योंकि संगीत का प्रकृत्ति से अविच्छिन्न सम्बन्ध है और प्रकृति का अभिन्न अंग है संगीत।

Scanned with OKEN Scanner

प्राणियों पर संगीत का प्रभाव

रिमता सिन्हा*

साहित्य कला विहीनः।
साक्षात नर पशु पुच्छ विहीनः॥

संगीत है शांति स्वर की, हर सुर में बसे भगवान।
रागी को जो सुर सुनाए राग मधुर, रोगी को मिले आराम॥

संगीत अनुभूत सत्य से साक्षात्कार की अनवरत ललक है। आगत से बतियाने की एक निष्ठावान चेष्टा है। सच्चा संगीत धर्म का भूषण, ज्ञान का कोष एवं धैर्य का अवतार है। संगीत से बढ़कर न कोई देवता है, न कोई पूजा और न इबादत। संगीत रेगिस्तान के प्यासे होठों पे उतरती हुई हिमस्पर्शी तरंग है। अंधकार में टहलती हुई चिनगारी, नींद के पहले का सपना और जागरण के बाद का उल्लास है।

कहते है कि–

"Open a music school, Close a jail".

संगीत का इतना व्यापक प्रभाव प्राणियों पर है कि जिसका शब्दों में वर्णन करना मुश्किल है।

ये पंक्तियाँ–

संगीत सुकून है, चैन है संगीत।
संगीत शांति है, मस्ती भी है संगीत॥

आज के व्यस्तम तेज रफ्तार वाले जीवन में मनुष्य संगीत के द्वारा तनाव से निजात पा सकता है और यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत के द्वारा मानव से लेकर पशु-पक्षी एवं अन्य वन्य प्राणियों के शारीरिक और मानसिक रोग से छुटकारा दिलाने में संगीत कारगर सिद्ध हुआ है।

संगीत द्वारा पेड़-पौधों को रोग ग्रस्त होने से बचाया जा सकता है। चारूकेषी राग से धान का उत्पादन बढ़ता है। बहेलिया के बीन बजाने पर पश्व, हिरण निर्भय होकर उनके निकट चले आते है।

1. 'मेघ राग' के गायन से बरसात होने लगती है।
2. 'मालकौंस राग' के गायन से पत्थर पिघल जाते है।
3. 'हिंडोल राग' के गायन से झुला स्वतः हिलने लगता है।
4. 'सारंग राग' को सुनकर पशु-पक्षी मुग्ध हो जाते हैं।
5. 'तोड़ी राग' से आकर्षित होकर हिरण चले आते हैं।
6. 'रामकली राग' को सुनकर कोयल कुहकने लगते हैं।
7. 'बसंत राग' के गायन से पुष्प विकसित हो जाते हैं।
8. 'श्री राग' के गायन से शुष्क वृक्ष हरा-भरा हो जाता है।

संगीत आदिकाल से ही औषधि के रूप में प्रयोग होता चला आ रहा है। शास्त्रीय संगीत के आधार पर बहुत से राग हैं जिसके गायन-वादन से शारीरिक एवं मानसिक रोग दूर होते हैं। जैसे–बैजू बावरा ने 'पूरिया राग' गाकर राजा मानसिंह को 'अनिद्रा' से मुक्त किया।

* शोधछात्रा, संगीत विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

रोग	अनुकूल राग
पागलपन	बिहाग, वागेश्वरी
सिरदर्द	सोहनी, तोड़ी, भैरवी
रक्तभार	पूर्वी, तोड़ी
क्षय रोग	मुल्तानी, रामकली
हिस्ट्रिया	दरबारी, पुरिया, खमाज

संगीत तो साधना है, अराधना है, जिससे अंतर्ज्योति जगमगाती है। हम संगीत के सहारे देवत्व की ओर बढ़ते हैं। सुना करते थे कि प्रार्थना में वो असर होता था जिससे भगवान साक्षात् प्रकट हो जाते थे। मीरा ने भजन गाकर कृष्ण की भक्ति पा ली। सूरदास ने अपने अन्तरात्मा से उपजे गीत से जीवन धन्य कर लिया। संगीत का असर इतना है कि पत्थर भी पानी पर तैरने लगते है, हिरण दौड़कर आ जाते हैं। 'वेणु नाद' सुनकर सर्प अपनी कुटिलता छोड़कर झूमने लगता है।

अर्थात् इन सभी उदाहरणों को देखते हुए हम कह सकते है कि संगीत का प्रयोग करके पेड़-पौधे, जीवों एवं अन्य प्राणियों को और अधिक स्वस्थ, सबल एवं सार्थक बना सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

संगीत से मानव समाज का उपचार

डॉ. सरोज द्विवेदी

मानव समाज के उपचार से अभिप्राय है मानव-सक्रियता के सभी क्षेत्रों में कर्त्ता स्वरूप मानव और उनके प्रयोग-उपयोग की वस्तुओं तथा स्थितियों का भी उपचार। जभी हम कहते हैं—मानव समाज, -तभी हमारा तात्पर्य केवल मानव परिवारों के सदस्यों तक ही सीमित नहीं रह जाता बल्कि मानवीय जीवन की सामाजिक और सामाजिक उपयोग की प्राकृतिक, वानस्पतिक, सांस्कृतिक, सभ्यात्मक और रचनात्मक शक्तियों और सम्पत्तियों की गतिशील परिधियों को भी समेट लेता है। इसी व्यापक निहितार्थ को ध्यान में रखकर संगीत से मानव समाज के उपचार की अर्थवक्त, संभावना समस्या और अपेक्षा पर विचार करना योग्य है। स्पष्टतया मुझे कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं हो पायी, जो इस विशिष्ट विषय पर विचार के उद्देश्य से रची गई हो। फिर भी कुछ आकांक्षा-जन्य और कला-स्वभाव परक सामग्री से इस विषय पर सीमित प्रकाश डालना असम्भव नहीं है।

पहले शारीरिक पक्ष को ही लें, तो कंठ-संवर्द्धन की प्रक्रिया में आवाज को और फिर सुर-साधन के सोपानों पर सम्बद्ध अवयवों को भी श्वास-क्रिया और ध्वनि संरचना के जिन उपक्रमों से जिन पद्धतियों और प्रणालियों से तथा अनुपात-भेद की जिन रचनात्मक प्रविधियों से निरन्तर गुजरना पड़ता है, उनकी कोशीय, पेशीय, ग्रंथीय और कंठ गलपटीय ध्वनिबद्ध शिराओं पर भी सतत सदासदे प्रभाव पड़ते ही रहते हैं। विभिन्न भूलों के फलस्वरूप सम्बद्ध अवयवों में यदि खराबी या रोगग्रस्तता आ जा सकती है, तो योगासन प्रयोग की तरह स्वर-साधना के अनेक प्रयोगों से उन अवयवों की विकृतिमूलक रोगग्रस्तता में कमी भी आ सकती है और उससे मुक्ति भी मिल सकती है। कोई आधुनिक चिकित्साशास्त्र तो नहीं, किन्तु आपके और उसका पूर्ववर्त्ती स्रोत अथर्ववेद एवं रसायनविद्या से जुड़े तन्त्र शास्त्रों में अनेक उपचार विधियाँ ऐसी निर्दिष्ट हैं, जिनमें कंठ ध्वनि या गायनाभ्यास का विशेष उपयोग मान्य है। पं. श्रीधर शास्त्री के "सदुपचार-सत्संग" ग्रन्थ में, जो 17वीं शताब्दी की कृति है, इस विषय का भी प्रतिपादन है। टीकाकार और आंग्ल अनुवादक डॉ. कामदेव घोष के शब्द है:—हीलिंग बाई म्यूजिक ओरिजिनेट्स फ्रॉम ऐज लांग बैक ऐज "अथर्वन" एण्ड "आयुर्वेद" एण्ड "तन्त्राज" "ह्वेर म्यूजिक, मचमोर बायोलॉजिकली वर्किंग इनसाइड एण्ड आउट साईड देन मिस्टिक एण्ड रिच्युएलिस्टिक पेटिंग गोज-हैण्ड-इन-हैण्ड वीद थैरेपीज"।[1]

उक्त सम्भावनाओं से परिपुष्ट परम्परानुसार यदि कला मात्र का सामाजिकों के मनोवैदिक शुद्धिकरण, बुद्धिकरण, और सन्तुलितकरण में उपयोग सहज ढ़ंग से होता है। या संगीत की समस्वरता या सुर-संगति या "हारमनी" तो उदिग्न मानव के मन मस्तिष्क पर शान्तिकारक प्रभाव डालेगी ही। सम्भवतः इसीलिए प्राकृतिक शक्तियों से मनोदैहिक सम्बन्ध की अनुकूलता बनाए रखने के हेतु उनके प्रतीक वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ गाने ऋत्विक, यजमान और पुरजन जब "भूयिष्ठाक्ते नम उक्तिं विधेम" गाते हुए अग्नि को भूमिष्ठ करते थे तब सामूहिक मनोवैज्ञानिक तौर पर शारीरिक मानसिक ऊर्जा की स्रोत स्वरूपा जठराग्नि को अनुकूल रखने इच्छा

*व्याख्याता विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, श्याम नंदन सहाय महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

Scanned with OKEN Scanner

शक्ति का उत्तेजन करते थे। यही इच्छा शक्ति सामूहिक मनोवस्था की शक्ति होकर बृहत्तर और बृहत्तम हो जाती थी। फलतः स्तुतियों के गायन से अग्निमांध आदि रोग दूर होते थे, यह आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने भी स्वीकार किया है।[2] उनके तर्कानुसार मान्य है कि वैदिक सूक्तों में पठ्यता का प्रवर्त्तन था किन्तु गेयता की अनिवार्यता वैदिक स्तवनों की थी, जो साम-पद्धति बद्ध थे और रोगादि प्रसंगो में उनका गायन विशेष फल-प्रद था। इस प्रथित सुक्ष्म प्रयोग को धीरे-धीरे रूढ़ तन्त्र-मन्त्र के मत प्रचलन-काल तक अर्थात् "अथर्ववेद" के रचना-काल तक पहुँचने में सैकड़ों वर्ष या हजार वर्ष से अधिक लगे। उस काल में भी ध्यान-मंत्र हो या बीज मंत्र उनका सांगीतिक उच्चारण या अनुष्ठानपरक गायन विशेषोद्देश्यों की सिद्धि के लिए या शारीरिक मानसिक रोगों तथा बाधाओं से निवारणार्थ आदेशित किया गया, जिसमें सस्वर आवाहन आवश्यक था। फलस्वरूप गायन उसका अंग था। मृत्यु-शय्या पर पड़े रोगी को भी अथर्ववेद की मृत्यु सूक्त के सस्वर गायन से मृत्यु निवारण या कष्ट-हीन मृत्यु के द्वारा भवसागर तारण की प्रार्थनासफल भी होती थी। "सामोद्गता" गाने लगते थे-

"यः प्राणदः प्राणदवान्चभव
यस्मै लोकाः धृतवन्तः क्षरन्ति।
ज्योतिष्यतीः प्रदिशो यस्यसर्वा
ते नोदने नाति तराणिमृत्युम्" ॥[3]

अनन्तर उपनिषद् रचना और स्मृति रचना के कालों तक तांत्रिक उपचार की एक परम्परा बन चली थी, मन्त्र गायन विशेष रूप से सोद्देश्य अनुष्ठानों तक सीमित हो चला था, अतएव ध्यान, प्रार्थना, रक्षा-स्तुति, मंगल पाठ, शांति-पाठ, आशीर्पाठ आदि के सस्वर गायन का विधान कल्याणकारी और रोग मुक्ति कारक अनुष्ठान के विहित स्वरूप का अवयव था। इस निष्कर्ष से सहमति डॉ. भगवत शरण उपाध्याय को भी थी।[4]

उक्त सम्मिलित परम्परा पद्धति का मध्ययुग में रूपान्तर जब विविध उपास्यों की भक्ति महिमा सिद्ध करते उपांग-उपचार-प्रयोगादि में हुआ तब यही नहीं कि त्रिदेवों और पंचदेवों की भक्ति के गीत पन्द्रहवीं सदी के पूर्व से ही गाये जाने लगे और अवतारों के स्तुति और लीला के गीत भक्ति आंदोलनों में सतत् गाये गए, बल्कि निर्गुण निराकार के उपासकों और अवतार-विरोधी कबीरपंथियों ने भी अपने-अपने मंत्रों की महिमा के गायन निरन्तर किये। विस्मयकारी तथ्य यह है कि उपास्यकीय-महिमा का ही यह व्यावहारिक पक्ष हो गया कि कष्ट निवारण, ग्रह-दशा से बाण और "सर्वाबाधा प्रशमन" के लिए तन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूँक, टोटका झटका, प्रेत, बाधा-निवारण आदि के हेतु अन्ततः 'भगता' कहे जाते देवी उपासक समुदायों के लोक सांस्कृतिक गीत-संगीत का वैसा प्रवर्तन हुआ कि अभी तक वह ग्राम-जीवन में प्रचलित है। प्रत्येक जनपद में देवी-गुहार के गीत जो विशेष सांगीतिक पहचान रखते हैं उस जनपद के सांस्कृतिक लोक तत्त्व में विशिष्ट माने जाते हैं, और उपाचारोपासना की अपेक्षाकृत नयी अवधारणा को प्रमाणित करते हैं। वैसे शिव-भक्तों के द्वारा 'नचारी' विष्णुभक्तों के द्वारा स्तुति, भजन राम भक्तों के द्वारा "रामचरितमानस" का सस्वर आनुष्ठानिक पाठ और विनय-पदों का गायन तथा कृष्ण भक्तों के द्वारा गीत "गोविन्दम्" और "सूरसागर" एवं विद्यापति के पद तथा मीराबाई के भजन गाने करने की परम्परा गुहार-जुहार-पुकार की आर्तमनोदशाओं के निवेदन एवं शरणागति-प्रार्थना से कष्ट-मुक्ति के द्वार खट-खटाने तक पहुँच गई तो कभी द्वार खुल जाते होंगे, यह भी असम्भव नहीं। आज भी कबीरपंथी मठों और जमातों में सांझा, सबद, साखी, रमइनी आदि कबीरी रचनाओं के गायन की विशेष सूर-ताल पद्धति से जुड़ा कबीरपंथी संगीत सुना जा सकता है। जिसका उपयोग उन जमातों में उपचार-प्रयोग के लिए भी किया जाता है। डॉ. शुकदेव सिंह जो "कबीरेलॉजी" के प्रकाण्ड विद्वान हैं इस मत से सहमत हैं।[5] यद्यपि मनः शान्ति के निमित्त संगीत का जाने-अनजाने प्रावधान राजमहलों से कुटियों तक होता रहा है और धार्मिक अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, राज्यानुशासन, शिक्षा-क्षेम, व्यवसाय, सांस्कृतिक जगत, मनोरंजन, विलासिता, षड्यन्त्र एवं चिकित्सा में भी संगीत विविध रूपों में प्रत्यक्ष या परोक्ष भूमिका में रहा है, फिर भी उपचार-कार्य के लिए संगीत का उपयोग एक विशेष मिश्रित ज्ञानधारा "म्यूजिकल थेरेपी", के नाम से इस सदी के उत्तरार्द्ध में अर्थात्

छठे दशक में आरंभ हुई। डॉ. विजय लक्ष्मी जैन भी इससे सहमति में हैं। "आजकल संगीत की उपयोगिता मानसिक चिकित्सा में भी बढ़ रही है। "म्युजिक थेरेपी" द्वारा इलाज किया जाता है।[6] वैसे इस थेरेपी के उद्भव से भी पहले आधुनिक संगीताचार्य, भारतीय महान गायक पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व इटली के फासिस्ट महानेता मुसोलिनी के द्वारा सामन्त्रित होकर रोम जाकर उसके अनिद्रा रोग से दीर्घकाल से पीड़ित मस्तिष्क का संगीत के द्वारा उपचार किया था। पं. ओंकारनाथ ठाकुर के द्वारा विहाग राग का शास्त्रीय गायन सुनते-सुनते उसे मानसिक शान्ति मिली और नींद आ गई थी। इसका विशेष विवरण पं. पद्मनारायण आचार्य ने अपने संस्मरण-निबंध में दिया है।[7] मनोरंजन के सूक्ष्म किन्तु सशक्त साधन के रूप में संगीत का मनुष्य के उपचार में विशेष महत्त्व माना जाता है।

आधुनिक पशु-चिकित्सा में भी नये शोधकर्त्ता विशेष तरह की लय-धुनों का प्रयोग कारगर मानते हैं। वनस्पति वैज्ञानिकों ने भी बार-बार प्रयोग कर सिद्ध किया है कि विशेष पौधों, फसलों और फूलों की बढ़त में कमी और अनेक न्युनताओं की विशिष्ट लय-धुनों से दूरकर प्रोत्साहित किया जाता है और उनकी स्वास्थ्य विकास-शक्ति को उभारा जा सकता है। अतः संगीत की मानवोपचार और मानव समाज के प्राकृतिक और जैविक संसाधनों के उपचार की संभावना के नये क्षितिज खुलते जा रहे हैं। यह संगीत के वैज्ञानिक उपयोग की नयी यात्रा का संसूचक है। जबकि भौतिक विज्ञान और संगीत के अन्तः सम्बन्धों की खोज भी जारी है।

ज्ञातव्य है कि कर्नाटक संगीत में "मनोधर्म" की परिकल्पना प्रमाणित करती है कि त्यागराज जैसे सर्वोच्च संगीतकारों की साधना के फलस्वरूप जैसे एक ही रागानुशासन के भीतर गायकों की विशिष्ट मनोधर्मिता विशेष मौलिकता प्रकट करती है वैसे ही श्रोताओं में भी विशिष्ट मनोधर्मिता की पृष्ठभूमि रहती है। अतः कोई रोगग्रस्त श्रोता अपनी मनोधर्मिता के ही अनुकूल जब संगीत के राग-विन्यास का प्रभाव ग्रहण कर प्राणवक्ता का सम्वर्धन अनुभव करता है तब वह स्वास्थ्य-लाभ की प्रक्रिया का सूत्र पकड़ लेता है मनोधर्म की संगीत के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या श्री जी. एन. बाला सुब्रहमण्यम् ने की है।[8] इस आधार पर अधिक स्पष्टता से समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि रागों के स्वभाव प्रभाव का मनोवैज्ञानिक उत्स जैसा है वैसा बार-बार और व्यापक तौर पर संयोजित-प्रायोजित प्रयोग किया जाए तो मनोवैज्ञानिक तौर पर बीमार रोगियों की स्थिति भी सुधारी जा सकती है। इस संभावना का स्रोत श्री गोविन्द एस तेम्बे की मर्मज्ञतापूर्ण स्थापना से पुष्ट होती है–"प्रभावान्वित के सम्बन्ध से रोगों को दो मूल श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। उत्तेजनात्मक (एविजलरोटिव) और अवसादात्मक (डिप्रेसिव), चार संवेदनाएँ जो रत्यात्मक (एरोटिव) वीरभावात्मक (हीरोइक), हास्यप्रद (कॉमिक) और सौन्दर्यात्मक (बीटीफिक) है। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत गिनी जा सकती है, जबकि शेष पाँच नामतः कारुणिक (पेथेटिक), रौद्र (टेर्रिबल), भयानक, (फ्यूरियस), वीभत्स (रिपलसिव) और अद्भुत (अमेजिंग) दूसरी श्रेणी में गण्य है। संगीत कला अन्य कलाओं की तरह सामाजिक-जीवन या प्राकृतिक सत्ता की घटनाओं और परिस्थितियों पर आधारित नहीं है। इसलिए इसका मात्र कार्य है, संवेदनाओं का उत्तेजन और प्रभावीकरण, बहुत सूक्ष्मरीति से है। अतएव हमारे रागों में इच्छित रूप हास्य, क्रोध, भय, जुगुप्सा और आश्चर्य की संवेदनाओं के लिए उत्तेजकता का स्थान नहीं है। वस्तुतः उत्तेजक संवेदनाएँ विसंवादी स्वर-पुरुषों से उत्पन्न की जा सकती है। जो कानों को अप्रिय आवाज से भर दें। उन्हीं कारणों से हमारे राग रूपायित करते हैं केवल चार संवेदनाओं को नामतः करुणा, वियोग, संयोग और विरोचित यह रूपायन भी सूक्ष्म और ललित सुरूचि के साथ होता है। यह कभी कोई अतिवादी स्वरूप नहीं होता कि नग्नविलास, दुर्दम वीरत्व, चिल्लाती पुकार या कब्रगाह की चुप्पी को प्रस्तुत करें।"[9]

इन विचारों से यही निष्कर्ष आता है कि मनोचिकित्सक यदि कब्रगाह की सी चुप्पी या चीख-पुकार, तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति अथवा उल्लंग कामुकता से पीड़ित किसी रोगी के लिए संगीतोपचार करना चाहे तो उसे विसंवादी संगीत (डिसकॉर्डेंट म्युजिक) का सहारा लेना होगा। जिसकी समुत्तेजकता पश्चिमी संगीत में मानी जाती है। उसे यदि विरोचित महत्त्वाकांक्षा की उत्प्रेरणा वियोग-संयोग जनित प्रतिमिश्र और गहराई में पैठे निराशात्मक करुणा-भाव

Scanned with OKEN Scanner

की मनोग्रंथियों से ग्रस्त रोगी की चिकित्सा करनी है, तो वह भारतीय संगीत के चतुःश्रेणीक रागों से काम ले सकता है। इससे यही सिद्ध होता है कि पश्चिमी संगीत यदि समुत्तेजक है तो भारतीय संगीत शमनकारी है, यह भी उपचार-प्रसंग में ध्यातव्य बिन्दु माना जाएगा।

प्राचीन श्रुतानश्रुतियों में या किंवदन्तियों में अथवा दन्तकथाओं में जो संगीतकारों, संगीतप्रभावों और रागजनित परिघटनाओं के प्रसंग सुने जाते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में भी संगीत के प्राकृतिक एवं मानवीय प्रभाव दोनों क्षेत्र की परिकल्पना व्यंजित हैं। यह तो कलाओं का मिथिकिकरण। " (मिथिफ्रिकेशन ऑफ आट्स) के प्रसिद्ध लेखक श्री ई. मिखाइलोविच भी स्वीकार करते हैं।[10] भारत में शास्त्रीय सांगीतिक अवधारणाओं से संलग्न फलाफल-सन्दर्भ भी है। जिनके अनुसार रागाविष्ट होकर हरिण, हंस आदि पशु-पक्षियों का आकृष्ट हो जाना मत हाथी और वनेले शूकर का सम्मित और विकृष्ट होकर लौट जाना, प्रदीपों के जल उठने से आग लग जाने तक की संभावना और फिर शून्य में मेघों की घटा घिरने और वर्षा हो जाने तक की संभावना यदि रागादेश या राग-फलाफल के अन्तर्गत निहित है, वे द्वन्द्वात्मक प्रभावों के वाहक तत्व यदि भारतीय संगीत की विरासत में मौजूद होंगे तो और भी आशा बढ़ेगी कि आकर्षण, विकर्षन, स्तम्भन, प्रज्वलन, जलीय स्रवन से सम्बन्धित उपचार के लिए संगीत प्रयोग पर शोधार्थी कार्य कर सकते हैं।

अन्ततः विचारणीय है कि मानवीय मनो-विकृतियों और उद्वेगों के संदर्भ में संगीतोपचार की अपेक्षणीयता को किस दृष्टि से ग्रहण या अस्वीकार किया जाए?

श्री एस. एन. रत्नज्ञानकर के शब्दों में 'क्या अट्टहास, उल्लास की अभिव्यक्ति, विलाप और चित्कार तथा दुःख-दर्द की कराहें संगीत है? वेशक, संगीत के जीवाणु उनमें हैं। किन्तु वे संगीत हो नही पाये हैं। "संगीत का समुचित प्रभाव मस्तिष्क का केन्द्रीकरण प्रतीत होता है—आत्मा के साथ एक प्रकार की पवित्र संसक्ति में उस सीमा तक संगीत सस्ते स्तर का कहा जाएगा। जिसके भीतर वह निश्चय पूर्वक संभव कार्य करें कि खास पृष्ठाधार पर परिस्थितियों के विशेष प्रकार पर प्रयोग लगाया जाए और प्रकट सारे विशेष संदेश, जिसके माध्यम हों शब्द, स्वरविवर्तन, वाद्योचित सहयोग, व्याप्त परिदृश्य इत्यादि। बावजूद संगीत स्वर इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने स्वतः जबावदेह हो, यह मान्य नही है। यदि ऐसा, तो इसे ही संगीत में सगुणोपासना का होना कहेंगे।"[11]

अतएव इस संगीतोपचार के प्रसंग में यही मान्य है कि संगीत-प्रभाव तो मानसिक केन्द्रीकरण का माध्यम है, जिसे आत्मा के साथ पवित्र संसक्ति कहा जाएगा और इस दृष्टि से यह राजयोग की प्रक्रिया के समान स्तर को प्राप्त करता है। यह पुनः ध्यातव्य है कि योगोपचार की परम्परा में राजयोग के अन्तर्गत भी संगीत-सत्र की स्वीकृति है और इसीलिए संभावनाएँ भविष्य में आशापूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ सूची–

1. डॉ. कामदेव घोष, "सदुपचार सत्संग ऑफ श्रीधर" पृ. 19 भारतीय ग्रन्थ पीठ, जयपुर, 1949
2. आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, "आर्यसमाजः औचित्य और दक्षित्व" निबंध "विश्वामित्र" दीपावली अंक (कलकत्ता, 1952) पृ. 54
3. राजेन्द्र प्रसाद सिंह दिग्वधू (जीवन आमन्त्रण में उद्धृत) पृ. 24
4. डॉ. भगवत शरण उपाध्याय समाज साप्ताहिक 15 जून, 1954
5. डॉ. शुकदेव सिंह का निबंध, "कबीरपंथी संगीत" विश्वभारती पत्रिका अक्टूबर, 1973
6. डॉ. विजय लक्ष्मी जैन, "संगीतदर्शन" पृ. 127
7. पं. पद्म नारायण आचार्य स्व. ठाकुर जी संसार सा. दीपांक-33
8. जी. एन. बालसुब्रह्मण्यम "कर्नाटक म्यूजिक" (ऐस्पेक्टस ऑफ इंडियन म्यूजिक), पृ. 7
9. गोविन्द एस. तेम्बे, "रागा एण्ड रसा", (ऐस्पेक्टस ऑफ इंडियन म्यूजिक), पृ. 23-24
10. ई. मिखाइलोविच मिथिफिकेशन ऑफ आर्ट्स, पृ.103 (प्रोग्रेस पेपर बैंक, 1981, मास्को)
11. एस. एन. रत्नज्ञानकर, पृ. 58

Scanned with OKEN Scanner

संगीत एवं उसके उपचारात्मक मूल्य

डा. किरण सिंह*

विभिन्न शोध से यह प्रमाणित है कि संगीत की स्वर लहरियाँ वातावरण में सम्मोहक, उल्लास का सृजन करती है। इसे तनाव से मुक्ति का एक प्रभावक माध्यम माना गया है।

अनुसंधान कर्त्ताओं ने मस्तिष्क पर संगीत के प्रभाव को देखने का प्रयास किया और पाया कि संगीत मानसिक तनाव को शान्त करने में अहम् भूमिका निभाती है।

नई दिल्ली स्थित 'शक्ति विकास प्रकल्प' के संस्थापक सह अध्यक्ष ई. कुमार ने संगीत चिकित्सा पर गहन शोध कर दावा किया है कि वे संगीत द्वारा अभी तक सैकड़ों रोगियों को ठीक कर चुके हैं। श्री कुमार का कहना है कि संगीत प्रकंपनों से जटिलतम रोगों को ठीक किया जा सकता है और पागलपन की सीमा तक जा चुके रोगियों को भी स्वस्थ्य किया जा सकता है। उनके अनुसार तनाव ही रोगों का मूल कारण है। तनाव से 'बायोरिदम' में असंतुलन आ जाता है। संगीत द्वारा खासकर शास्त्रीय एवं संकीर्त्तन आदि से बायोरिदम स्थापित हो जाती है और रोगों से राहत मिलती है।

नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ मेन्टल हेल्थ एण्ड न्यूरोसाइंसेज(निमहंस), बैंगलोर की डॉ. वी.एन. मंजुला ने स्नायुविकृति एवं मनोविकृति के रोगियों के उपचार में संगीत की चिकित्सकीय उपयोगिता को भिन्न-भिन्न रूप में दर्शाया है। मंजुला के अनुसार अवसाद के रोगियों के उपचार में स्वयं रोगी के स्वर में संगीत का अभ्यास अधिक उपयोगी होता है, जब कि चिन्ता से ग्रसित रोगियों के उपचार में तारयुक्त वाद्ययंत्र के सहारे प्रस्तुत मधुर संगीत। इसी तरह, उन्माद के रोगियों के उपचार के लिए तीव्र संगीत को प्राथमिकता दिया गया है। मंजुला के अनुसार किसी भी प्रकार के मनोरोगी के उपचार हेतु सभी संगीत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु इसके लिए यह अपेक्षित है कि व्यक्ति संगीत के साथ तादात्म स्थापित करे।

परन्तु न्यूयार्क के सिनाय होस्पिटल में डा. जॉन डायमंड का मानना है कि आधुनिक रॉक संगीत से दिल की धड़कने तेज होती है, जो रागों को न्योता दे सकता है।

डॉ. हरि शर्मा, कॉफमैन ऐलन एवं स्टेफेन ने भी शोध द्वारा सावित किया है कि रॉक संगीत हृदय की ही नही वरन कैंसर जैसे असाध्य एवं पीड़ा दायक रोगों को भड़काने वाला है। उन्हों ने सामवेद की ऋचाओं एवं ब्लैक एण्ड ब्लैक संगीत के द्वारा शरीर पर तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि ब्लैक संगीत में जहाँ स्तन, आँत फेफड़े व त्वचा की कैंसर कोशिकाओं में 25 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई वहीं सामगान द्वारा इसमें 25 प्रतिशत की कमी आयी। प्रस्तुत शोध से माना जा सकता है कि आधुनिक पॉप संगीत चिकित्सकीय दृष्टिकोण से लाभदायक नहीं है। शास्त्रीय अथवा मधुर संगीत ही मानसिक एवं शारीरिक रोगियों के लिए लाभप्रद है।

भारतीय रागों एवं उनके चिकित्सकीय प्रभाव पर चेन्नई स्थित 'राग रिसर्च सेंटर' भी कई संगीत चिकित्सकों एवं मनःचिकित्सकों के साथ अध्ययन में जुटा हुआ है। इस शोध के अन्तर्गत आनंद भैरवी को हाइपर टेंशन में, राग शंकर भरनम् को मानसिक रोगों में, राग भैरवी को कुपित, होने से संभावित

* विभागाध्यक्ष संगीत विभाग, मदन-अहल्या महिला महाविद्यालय, नवगछिया, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

रोगों में मल्हार एवं जयजयवन्ती को मानसिक चंचलता एवं क्रोध की स्थिति, में आसावरी को रक्त चाप में, राग भैरवी को स्वांस सम्बन्धी रोगों में, राग पंचम को उदर संम्बन्धी रोगों में, राग निलाबंरी को अनिद्रा जैसे रोग में उपयोगी पाया गया है। शरीर के क्रिया कलाप सामान्य एवं सहज ढंग से कार्य करें इसके लिए राग तोड़ी को उपयुक्त बताया गया है। इन प्रयोगों के लिए संगीत चिकित्सकों को राग, रोग व रोगी की मन स्थिति का सही ज्ञान होना अतिआवश्यक है।

न्यूरोलॉजी के विशेषज्ञों के अनुसार मस्तिष्क का बाँया हेमीस्फियर भाषा सम्बन्धी क्रियाओं के लिए तथा दाँया संवेदना, भावना आदि को संचालित करता है। बाँयें हेमीस्फियर का 'ब्रोकाएरिया' क्षतिग्रस्त हो जाने से बोलने की क्षमता समाप्त हो जाती है। इसी क्षेत्र का यदि वरनिक एरिया ठीक हो तो बोलने की सामर्थ्य वापस आ सकती है।

मनोचिकित्सक चुध का मानना है कि बोकल एवं इंस्ट्रूमेंटल दोनो ही मधुर संगीत से मस्तिष्क के कुछ रसायनों का उत्सर्जन होता है जो अवसाद या मन की निषेधात्मक अवस्था को निरस्त करने में शोध अध्ययन के अनुसार संगीत स्त्रोत से उत्पन्न होने वाली तरंगे वाह्य स्तर पर शुरू होते-होते क्रमशः शरीर के गहनतम में प्रवेश कर जाती है और शरीर के विविध अंग अवयवों में एक विशेष तरह का स्पंदन स्थापित करती है विशेष रूप से मस्तिष्क के दायें गोलाई में, इसी आधार पर मंदबुद्धिता-डिमेंशिया आदि में संगीत की उपयोगिता समझी जा सकती है।

अन्त में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समस्त मनोचिकित्सकों ने माना है कि म्यूजिक थैरेपी के द्वारा किये गये उपचार से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

प्रस्तुत लेख में संगीत एवं उसके उपचारात्मक मूल्य के संदर्भ में उपलब्ध साहित्य की समीक्षा के आधार पर विभिन्न मनोरोगों के उपचार के संदर्भ में इसके महत्त्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। यह लेख, ऐसी आशा है, इस क्षेत्र में काम करने वाले शोधकर्त्ताओं के लिए पथ निर्देशक के रूप में सिद्ध होगा।

Scanned with OKEN Scanner

आदिवासी लोकसंगीत एवं उपचार

डा. रेखा कुमारी* एवं डा. पुष्पम नारायण**

लोक संगीत की दुनिया में, आदिवासी संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में इतने आदिवासी समुदाय होते हुए भी उनके संगीत और नृत्य के बारे में अभी तक कोई खास कार्य नहीं हुआ। उड़ीसा में ही 62 आदिवासी समुदाय है। इनमें आपसी सामंजस्य होते हुए भी प्रत्येक की अपनी संगीत और नृत्य की परंपरा है। आदिवासी समुदाय का संगीत और मौखिक कविता एक व अभिन्न है। परंपरा में एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी इस संगीत को मुंह से मुंह, कंठ से कंठ तक देती जाती है। कोई कहीं उसे लिपिबद्ध नहीं करता। जो संगीत है, वही है कविता। फिर संगीत मे सदा नृत्य मिला रहता है। एक नृत्य इनमें विरल हैं अधिकांश नृत्य समूह या सामुदायिक है। तीसरे संगीत धर्माधारिन विभिन्न पूजापाठ एवं घटनाओं से जुड़ा है, अर्थात् इन आनुष्ठानिक सामाजिक क्रियाओं के साथ ही संगीत जुड़ा है। देवी-देवताओं की पूजा, विवाह, जन्म-मृत्यु आदि सामाजिक अवसरों के उपलक्ष्य में संगीत की रचना होती है। बीज-बुआई से लेकर फसल काटने तक खेती संबंधी हर बात पर आदिवासियों में देवी-देवता की पूजा के निमित विशेष गीत और नृत्य तय रहते है। इसमें जरा भी इधर-उधर नहीं होता। उनके साथ साधारण मन को खुश करेनवाले गीत (जैसे संथाली "लागाण") भी रहते है। कुल मिलाकर यहां गीत, नृत्य और रिचुअल तथा वर्ण संबंधी विचार मिले जुले होते है। पता नहीं कब किसी ने गीत की एक कड़ी लगा दी-बच्चे के जन्म के समय, गांव के बूढ़े द्वारा नाम देते समय प्रेम या विवाह या मृत्यु के समय, या खेती के विभिन्न अवसर पर और वह गीत युगों से चलता आया। कुछ अर्थ इधर-उधर हुआ मगर मूल अर्थ, पंक्ति या छंद वैसा ही चलता आया। अतः गीत का रचयिता समाज है, समुदाय है। किसी आदिवासी समुदाय ने कभी खुद न नाम कमाया और न यश खोजा। बस गीत के आनंद में डूब जाते है, सुर में सुर मिलाते हैं-वन पाखियों की तरह साथ मिलकर काकलि पैदा करने की तरह। कोणार्क या खजुराहो के स्थापित कहीं अपना नाम नहीं लिख गए। वैसे ही आदिवासी गीतकार एक महान सामूहिक परंपरा के अंग होते है, उसमें व्यक्तिगत प्रयासों को अलग से महत्व नहीं देते। छोटे-छोटे पहाड़, थोड़े बहुत जंगल, कहीं घोर तो कहीं झुरमुटे तो कहीं 'झाड़ियां' उनके बीच है छोटे-छोटे गांव और बस्तियां।

सभी आदिवासी टोन-टोटके, मंत्र-तंत्र एवं भूत-प्रेत जैसे अंध-विश्वासों में विश्वास रखते है। देवी-देवताओं के ये पक्के उपासक होते हैं इनकी प्रगाढ़ आस्था इनके अपने देवी-देवताओं में होती है। इनकी मान्यता है कि इन्द्र खूब पानी बरसाते है, अन्नपूर्णा देवी उनकी कोठी धन-धान्य से भर देती है। खेरमाई सरहदी रक्षा करती है। ठाकुरदेव (बड़ा देव) कुल की रक्षा करते हैं, सुख-शांति देते हैं। महामाया उनकी हर मुसीबत में सहायक है। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन के लिए कोई न कोई संबल आवश्यक है। और यह संबल आदिवासियों को ऐसे ही विश्वासों, आस्थाओं एवं मान्यताओं से जीवन के हर क्षेत्र में प्राप्त होता है। इस संबल को प्राप्त करने के लिए आदिवासी जटिल तांत्रिक अनुष्ठानों का आयोजन करते हैं। इन

* शिक्षिका,
** विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

अनुष्ठानों के लिए अनेकानेक मंत्र-तंत्रों का प्रयोग करते है। उनका विश्वास है कि मंत्र-तंत्र से किसी अज्ञात शक्ति को वशीभूत कर कष्टों का निवारण एवं इच्छानुसार कार्य किया जा सकता है। कतिपय अंचलों में निवास करने वाले आदिवासीजन, सर्पदंश का उपचार लोक संगीत के माध्यम से करते है।

लोक संगीत आदिवासी समाज में विभिन्न आस्थाओं, मान्यताओं परंपराओं, लोक विश्वासों एवं रीति-रिवाजों आदि का सर्वमान्य आधार है। लोकजीवन में इसकी जड़े इतनी मजबूत है कि उन्हें अलग कर सकना असंभव न हीं तो कठिन अवश्य है। अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कारिक अवसरों पर मंगल कामना के साथ इसका आयोजन किया जाता है। जनम से लेकर मरण तक आदिवासी समुदाय तरह-तरह के सुख और दुःखों का अनुभव लोक संगीत के माध्यम से करता है। आज के वैज्ञानिक परिवेश में बुद्धि-जीवी भले ही इन अनुष्ठानों को उपहास की परिधि में रखे, किन्तु यह सत्य है कि उनकी अमिट छाप आदिवासी लोकजीवन एवं संस्कृति पर आज भी स्पष्ट रूप से विद्यमान है। मनुष्य प्रारंभ से ही आशावादी एवं आस्थावान रहा है। इसलिए वह अपने और अपने प्रियजनों की उन्नति, सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा दीर्घायु के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। ग्रामीण अंचलों में लोक संगीत के माध्यम से सर्प काटे हुए व्यक्ति का जहर उतारना अनहोनी घटना है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में लोक स ंगीत के साथ मंत्रों का अनूठा संगम है। वाचिक परंपरा के द्वारा यह अनुष्ठानिक क्रिया पुरातन काल से आदिवासी जनों में एक विद्या के रूप में व्याप्त है। जीवनदायिनी यह विद्या के सिद्ध पुरुष होते है, जिन्हें गुरु के नाम से जाना जाता है। ये गुरु अपने पूर्वजों से इस विद्या में सिद्ध होते है। यह अत्यंत कठिन एवं जान ोखिम युक्त साधना है। मंत्र सिद्धि में कभी-कभी ड़े अनर्थ भी हो जाते हैं, मंत्र के जरा से अशुद्ध ाप से कभी-कभी जाप करने वाले की मृत्यु हो ाती है। इसलिए मंत्रशास्त्र (अथर्ववेद) में यह स्पष्ट र्देश है, किसी भी दशा में किसी नौसीखिए को ों की सिद्धी बिना गुरु की आज्ञा से मंत्रोच्चारण ं करना चाहिए।

गांवों में इस विद्या को सिखाने के लिए कोई नियमित या विशेष कक्षाएं नहीं लगाई जाती है। अपने दैनिक कार्यकलापों के साथ समयानुसार गुरु से सबक लेकर स्वाध्ययन के द्वारा यह विद्या सीखी जाती है। इस विद्या के नियम अत्यंत कठिन होते हैं, कड़ा अनुशासन होता है, जिनका पालन करना प्रत्येक शिष्य का परम उत्तरदायी होता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियम यह होता है कि दीक्षाकाल या दीक्षोपरान्त कभी भी इस विद्या के मंत्र एवं लोकगीतों का उच्चारण या गायन केवल उसी समय किया जाए, जब उनकी आवश्यकता हो, अन्यथा कभी नहीं। इसके लिए गुरु का कठोर आदेश शिष्यों के लिए होता है। इस विद्या या अनुष्ठान द्वारा उप-चारित व्यक्ति से किसी भी रूप में कुछ भी लेना वर्जित होता है। परोपकार की सुन्दर मिसाल है।

सर्पदंश को आदिवासी जन अपने किसी इष्ट की नाराजगी का प्रतीक मानते है। उनका मानना है कि कोई भूल या अपराध हो गया है, जिससे इष्ट देव ने सर्प के रूप में आकर सताया है। इसी परिप्रेक्ष्य में सर्पदंश के उपरांत जब पटा बैठाया जाता है तो समस्त आराध्य क्रियाएं संपन्न करने के उपरान्त बरूआ के शरीर में लोकसंगीत के द्वारा सर्प की भावात्मक छाया के आरोहण के लिए आह्वान किया जाता है। यह आह्वान प्रत्येक सर्प के नाम से किया जाता है जैसे—करिया, डोमकरिया, हरडण्डिया, जदरा, घुन्सी, घुन्सी गड़ावन, कोयली, गट्टउ, दूधिया, असढ़िया, डोड़िया आदि। भावात्मक छाया को भाव कहा जाता है। अर्थात जिस सर्प के नाम का भाव आता है, उससे फिर इष्ट का नाम पूछा जाता है। एवं नाम ज्ञात होने पर इष्ट से गलती, भूल या अपराध गुरु पूछता है। इष्ट गलती, भूल या अपराध बताता है साथ ही इसके प्रायश्चित एवं समाधान की विधि भी बताता है।

इस संपूर्ण घटना के साक्षी एवं प्रत्यक्षदर्शी होते हैं गांव के नर-नारी, बाल-वृद्ध, युवक-युवतियां जो पीड़ित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति एवं मंगल कामना के लिए उस स्थल पर उपस्थित रहते है। गांव के निवास करनेवाले प्रत्येक सम्प्रदाय, जाति वर्ग के लोग पीड़ित व्यक्ति की हरसंभव सहायता के लिए सक्रिय दिखाई पड़ते है आपस के मतभेद भी इस अवसर पर गौण हो जाते हैं। यही हमारे गांव की

Scanned with OKEN Scanner

और गांवों में व्याप्त एकता की पारंपरिक विशेषता है, राष्ट्रीय एकता की अनुपम मिसाल है।

सर्प का विष उतारना

आज के वैज्ञानिक युग में बुद्धिजीवियों के लिए भले ही यह अंधविश्वास कहा जाये, किन्तु ग्रामों में आज भी यदि किसी व्यक्ति को अनायास सर्प काट लेता है तो उसके जहर को मंत्रों के द्वारा लोक संगीत के माध्यम से उतारा जाता है। आदिवासी ग्रामों में यह विशेष रूप से सशक्त मान्यता के रूप में व्याप्त है। विष उतारने की इस संपूर्ण क्रिया को पाट बिठाना कहते है। गांवों में इस क्रिया को जानने वाले या विशेषज्ञ होते हैं, जिनका यह नैतिक दायित्व होता है कि घटना को सुनकर जो जिस दशा में रहता है, उसी दशा में वह घटनास्थल की ओर बिना विलंब अपने समस्त कार्यो को, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, तिलान्जलि दे देता है। इतना ठोस दायित्व उन्हें इस मामले की शिक्षा-दीक्षा के दौरान ही सौंप दिया जाता है। अर्थात् गुरु जब अपने शिष्यों को इस विषय की शिक्षा देता है तो प्रारंभ में ही यह शर्त मनवा ली जाती है कि दीक्षित होने के बाद जब कभी भी ऐसी घटना कानों में सुनाई दे तो अपने समस्त कार्यो को छोड़कर सर्वप्रथम यह कार्य करना पड़ेगा। कितनी ठोस शिक्षा है, हमारे लोक जीवन से संबंधित इन ग्रामीणों की?

सर्प दंश से पीड़ित व्यक्ति अगर गांव के बाहर दूर है और वह किसी भी हालत में घर नहीं लाया जा सकता, ऐसी परिस्थिति में वहीं पटा बिठाया जाता है। अगर घर लाना आवश्यकत होता है तो पीड़ित व्यक्ति को घटनास्थल में ही ऐंटीकोर नामक वृक्ष की जड़ को खिलाकर या खम्हेर वृक्ष की छाल का रस पिलाकर विष का असर कुछ कम करके घर लाया जाता है, किन्तु उसमें भी यह शर्त होती है कि कोई नदी अथवा नाल एवं घर का दरवाजा नकाया न जावे। यह संपूर्ण प्रक्रिया पूर्ण होने पर पटा बैठाने की कार्यवाही प्रारंभ होती है। इस कार्यवाही को प्रारंभ करने के लिए मंत्र सिखाने वाले गुरु की उपस्थिति अनिवार्य होती है, किन्तु यदि किसी कारणवश गुरु वहां नहीं आ सकता तो उसका रास्ता भी नहीं देखा जा सकता तथा उसकी अनुपस्थिति स्वरूप एक क्रिया की जाती है जिसे बाचा बांधना कहते है। इस प्रक्रिया में पीड़ित व्यक्ति के सिर के चंद बाल गुरु के नाम से बांध दिये जाते है, जिसकी अवधि आवश्यकतानुसार 3-4 दिनों की होती है इसे करार कहते है। अर्थात् 3-4 दिनों के अंदर गुरु को उस मरीज के पास, अच्छा होने के बाद भी अनिवार्य रूप से आना पड़ता है तथा अपनी कार्यवाही पूर्ण कर उन बंधे हुए बालों को खोलना पड़ता है। यदि पटा बैठाने की अवधि में ही गुरु आ जाता है तो बाचा उसी समय खोल दिया जाता है।

बाचा बांधने का मंत्र निम्नानुसार होता है।

कौन बांधे गुरु का चेला-मैं बांधो, मोर बांधे अम्जम, हाथी का दांत, मई का बोल, मोर बांधे पांच दिन रह जावे।

यदि गुरु वहां पर मौजूद रहता है तो इस मंत्र की आवश्यकता नहीं होती है।

बाचा बांधने के पश्चात् या गुरु की मौजूदगी में पटा बिठाया जाता है। पटा बिठाने मे निम्नलिखित सामग्री का होना अत्यावश्यक है।

(1) लकड़ी का पाट (2) आटा (3) ताम्बे के दो पैसे (4) जलता हुआ मिट्टी का दिया (5) छीर घास की काड़ियां (6) नारियल (7) दूध (8) होम के लिए घी (9) रार (10) कण्डे की आग (11) गाय का गोबर (12) लोटे में शुद्ध जल।

पटा बैठाने की विधि

जिस स्थान पर पटा बैठाया जाता है वहां धरती को गोबर से लीप कर आटे से सुन्दर चौक पूरा जाता है। चौक के उपर पटे को रखा जाता है, पटे के उपर नाग देवता का प्रतीक आटे से बनाया जाता है, ताम्बे के पैसे उस पटे पर रख दिये जाते है तथा होम-धूप लगाया जाता है। इसके बाद गुरु या गुरु की अनुपस्थिति में वरिष्ठ शिष्य पटे के चारों ओर या 8-10 शिष्य पटे के चारों ओर दो टोलियों में विभाजित होकर बैठ जाते है। सर्प दंश पीड़ित व्यक्ति को पटे के पास बैठाया जाता है। एक दो आदमी उसे संभाले रहते है।

इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाता है कि पीड़ित व्यक्ति सोने न पाये। उपस्थित सभी चेलों में

Scanned with OKEN Scanner

से 2-4 ऐसे शिष्य होते हैं, जिन पर सर्प की भावात्मक छाया आती है इन्हें बरूआ कहते है। इनमें से एक बरूआ को पैर से लेकर सिर तक विष चढ़ाया जाता है। विष चढ़ाते समय एक गीत सुन्दर तर्ज में गाया जाता है। सर्वप्रथम नाग देवता के निवास आदि का परिचय कराया जाता है और वंदना भी की जाती है, तत्पश्चात् नागदेवता का आह्वान किया जाता है। आह्वान गीत के माध्यम से होता है।

गीत

तरिना को नानी, नाना रे नानी हो, तरिना को नाना रे ना आ, कौन के नाती, कौन के पती, कौन के नार कहाय। राजा बासुक के नाती रे पंती, विष नागन के नार॥ कहां तो नागिन तेरे अरन जरमन कहां है तोरे रहवास। श्री पताल में मोरे अरमन जरमन, समुन्दर है रहवास। रतन खुदनियां में मोरे अरगुन चरगुन बमीठा में है रहवास समुन्दर समुन्दर वा नागिन रेगैं, बमिठन करो न मिलान बमिठन बमिठन वा नागिन रेगैं, चौक्कन करो मिलान।

इस गीत के माध्यम से अदृश्य तरीके से नागदेवता को चौक पूरे गये स्थान तक आह्वान कर लाया गया। अब जब नाग देवता आ गए तो उनकी सभा में साक्ष्य स्वरूप अन्य देवी-देवता जैसे-खेरमई, शीतलामाई, ठाकुर देव एवं हरदौल आदि ग्राम्य देवी-देवताओं का भी आह्वान किया गया और गीत के माध्यम से उन्हें भी बुलाया गया।

गीत

तरना तो नाना ननना रे नाना, तरना तो नाना नाना रे केला गायों केला बजायों, केखर नामें सारो रे रामे गायों रामें बजायो, रामें के नाम सारों रे छिन भर आइजा रे आ-आ तै ठाकुर देवता छिन भर

धरती गायों धरती बजायों, धरती के नामें सारों रे छिन भर आइजा ओ, तैं धरती रे माता छिन भर

खैरो गायों खेरो बजायों खेरे के नोमे सारों रे छिन भर आइजा रे तैं खेरों के देवता छिन भर हरदौल गायों हरदौल बजायों, हरदौल के नामें सारों रे छिन भर आइजा रे तै हरदौल देवता छिन भर शीतला गायों शीतला बजायों, शीतला के नामें सारों रे छिन भर आइजा ओ तैं शीतला माता छिन भर

इस प्रकार सभी ग्राम्य देवताओं को आमंत्रित कर बुला लिया गया, ताकि जो भी बात नागदेवता से हो, उसके साक्ष्य स्वरूप में सभी देवतागण रहें, अर्थात् एक अन्य दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि न्यायालय की परंपरा को यहां भी कायम किया गया है, ताकि जो भी बात नाग देवता और बरूआ मंडल से हो वह सभी देवताओं को भी मालूम रहे।

इस समय छीर काड़ी, गुरु और एक प्रमुख शिष्य के हाथ में रहती है। अब नागदेवता और अन्य ग्राम्य देवता मौजूद है। सर्प के काटने के कारण का पता लगाने के लिए एक बरूआ पर विष चढ़ाया जायगा। विष चढ़ाने का कार्य लोक संगीत के माध्यम से होगा।

विष चढ़ौनी गीत

तरिना को नानी मैं नाना रे नानी,
मै जात के नाम न जानो,
हन्सा बीर बेगि नाग के विष चढ़ाओ॥
चौंक के विष मैं पाटा चढ़ाओ॥
पाटा के विष ला मैं दिया
चढ़ाओ मैं जात के नाम

दिया के विष ला मै जोत चढ़ाओं।
जोत के विष ला मैं धरती चढ़ाओ॥
मैं जात के नाम

धरती के विष ला मैं छिंगरी चढ़ाओं।
छिंगरी के विष ला मैं तरूवा चढ़ाओं॥
मैं जात के नाम

तरूवा के विष ला मैं घुटना चढ़ाओ।
घुटना के विष ला मैं पिण्डरी चढ़ाओं॥
मैं जात के नाम

इस प्रकार क्रमशः आयोजित किये गए पटा से लेकर इन्द्रासन याने ब्रहाण्ड तक विष चढ़ाया गया है, उसने अब नाग देवता का स्वरूप धारण कर लिया, ऐसी स्थिति में यह मान्यता भी है कि यदि धोखे से यह बरूआ भी किसी जीवधारी को काट ले तो उसे भी वैसा ही जहर चढ़ जायेगा। जैसे सांप काटने पर चढ़ता है अर्थात् इस बरूआ का व्यवहार

Scanned with OKEN Scanner

अब बिल्कुल सांप जैसा हो जाता है, वह सांप जैसा ही सरकने लगता है, कभी-कभी दीवालों पर से होकर वह घरों में छप्पर पर भी चढ़ जाता है, ऐसी हरकत परिलक्षित होने पर उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, जब उसकी साध पूरी हो जाती है तो वह फिर पटा स्थल पर आ जाता है। यह हमारे लोक जीवन की एक अनूठी अनुष्ठानिक घटना होती है, जो अतीत के अनेक झंझावातों का सामना करके भी आज उसी परिवेश में विद्यमान है। कितनी बड़ी आस्था हमारे ग्रामीणों की है, जो इस खतरनाक मोड़ को आत्मविश्वास के साथ उबारकर सामान्य जीवन परिणित करते हुए भारी सफलता प्राप्त करते हैं। अनहोनी बात को छोड़कर, यह निश्चित है कि एक हमारा शल्य चिकित्सक असफलता की ओर अग्रसर हो सकता है, किन्तु हमारे ग्रामीणों की सुलता पक्की होती है।

जैसे ही विष बरूआ के ब्रहाण्ड तक पहुंचता है, वैसे ही वह बेहोश हो जाता है। इस बेहोशी को नेट मारना कहा जाता है। जब बरूआ को नेट मारता है तो वह लकड़ी के समान हो जाता है अर्थात् हाथ पैर और पूरा शरीर अकड़ जाता है। इस बेहोशी को दूर करने के लिए हांकनी मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, हांकनी मंत्र उन सभी शिष्यों को सैकड़ों की तादात में याद रहते है जो वहां उपस्थित है। ये हांकनी मंत्र अत्यंत कठिन साधना के साथ जगा कर याद किये जाते है। बेहोशी दूर करने के लिए जब किसी शिष्य को मंत्र पढ़ना होता है तो उसके लिए यह जरूरी होता है कि वह मंत्र एक ही श्वास में पढ़े। चाहे वह मंत्र कितना ही बड़ा क्यों न हो। क्योंकि कभी-कभी यह होता है कि अगर मंत्र पढ़ने वाले की सांस टूट गई तो उसे भी नेट मार जाता है। ऐसी दशा में अन्य शिष्य मंत्र पढ़ते है। शिष्यों के द्वारा मंत्र पढ़ने पर यदि बेहोशी दूर नहीं होती अर्थात् वह मंत्र जो पढ़ा गया है लागू नहीं हो पा रह है, तो फिर गुरु मंत्र पढ़ता है और बेहोशी दूर करता है। कभी-कभी गलत मंत्र पढ़नेवाले शिष्य को नागदेवता स्वरूप बरूआ द्वारा मार भी पड़ जाती है।

वैसे तो हांकनी मंत्र हजारों की तादात में होते है, किन्तु एक बानगी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

हांकनी मंत्र

कुंदुर कुंदुर कांदा खोदे, ढूठी भर धरै, सूत भूत के खंदमंद मचगै, बोंडी भूत लिलकोरी देथै, पहुंची हो नौरा गुरु के हांक परी जाग चेत सम्हार॥

विष चढ़ाने का कार्य संपन्न होने के पश्चात् यह पता लगाया जाता है कि किस प्रकार के सर्प ने व्यक्ति को डंसा है। यह कार्य भी लोक गीत के द्वारा किया जाता है तथा गीत में ही प्रत्येक सर्प का नाम लिया जाता है।

गीत

तरना तो नाना नना रे नाना, तरना तो नाना नना रे ना बेला बेला बेला, महलोइन कैसा बेला, बेला बेला संलगे रे, वा करिया नागिन बेला बेला संलगे रे बेला बेला संलगे रे डोम करिया ओ नागिन बेला बेला संलगे रे बेला बेला संलगे रे हरडंडिया ओ नागिन बेला बेला संलगे रे

इस तरह तब तक सर्पों का नाम लिया जाता है जब तक काटे हुए सर्प का पता नहीं लग जाता है। काटे हुए सही सर्प का नाम आते ही बरूआ को फिर नेट मारता है और बेहोश हो जाता है और तब पता लग जाता है कि अमुक सर्प ने काटा है।

सर्प का पता लग जाने के बाद यह ज्ञात किया जाता है कि किस ग्राम अथवा कुल देवता के छल से नाग ने सताया है, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि बिना किसी देवता की प्रेरणा से नाग देवता किसी को नहीं सताते। इसके लिए भी गीत गाया जाता है जो इस प्रकार है-

गीत

तरिना को नारि नाना, तरिना को ना।
तरिना को नारि नाना, तरना को ना॥
छोटे मोटे तेंदू के बिरवा लंबे लंबे डार।
कौन देव हिलोवे भैया तेंदुवा के डार॥
मरा देव हिलावै भैया तेंदुवा के डार।
ठाकुर देव हिलावै भैया तेंदुवा के डार॥
दसाही भाई हिलावै भैया तेंदुवा के डार।
खेर देव हिलावै भैया तेंदुवा के डार॥

Scanned with OKEN Scanner

बारासिन हिलावै भैया तेंदुवा के डार।
खूंटा देव हिलावै भैया तेंदुवा के डार॥

इस तरह ग्राम के अथवा कुल के और भी देवी-देवताओं के नाम लेकर पता लगाया जाता है। यहां पर भी वहीं परंपरा लागू होती है उसका नाम आते ही बरूआ को फिर नेट मारता है, जिसे हांकनी मंत्र से ठीक किया जाता है। सर्प और देवता का पता चल जाने के बाद बरूआ से जवाब-सवाल किया जाता है। सर्प के काटने के कारणों का पता लगाया जाता है। जवाब सवाल के दौरान यह पता लग जाता है कि किसी गलती के कारण सर्प ने काटा है या किसी कुल देवता की पूजा अर्चना में विलंब या भूल जाने के कारण संबंधित देवता की प्रेरणा से नाग देव ने काटा है या पीड़ित व्यक्ति ने स्वयं नाग देव को जान बूझकर या भूल से सताया है, इस कारण नाग देवता ने काटा है। इस क्रिया का अवलोकन उपस्थित जन समुदाय प्रत्यक्ष रूप से करता है। जहर बराबर हरे रंग का होता है जो दूध के साथ मिलकर उसे भी अपने गुण के अनुसार विकृत कर देता है तथा अंत में जिस कारण से नाग देवता ने काटा होता है, उसकी पूर्ति करने का वचन दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि पूर्ण आरजू मिन्नत के उपरान्त जो देवी-देवता और नागदेव जहां से आये होते है, उन्हें सादर अपने-अपने स्थान के लिए विदा किया जाता है।

यह सब होने के बाद जिस बरूआ को ब्रहाण्ड तक विष चढ़ाया गया है, उसका विष उसी रीति से गीत के द्वारा पाताल लोक तक उतारा जाता है। विष चढ़ौनी गीत के ठीक विपरीत विष उतरौनी गीत होता है।

विष उतरौनी गीत

तरिना को नानी मैं नाना रे नानी,
मैं जात के नाम न जानौं हन्सा
वीर बेगि नाग के विष उतार॥
इन्द्रासन के विष मैं चुंदिया उतारौ।
चुंदिया के विष मैं खोपड़ी उतारौं॥ मैं जात के
खोपड़ी के विष मैं आंखी उतारौं।
आंखी के विष मैं जिभिया उतारौं॥ मैं जात के
जिभिया के विष मैं ओंठ उतारौं।
ओठ के विष मैं कंठ उतारौं॥ मैं जात के
कंठ के विष मैं छाती उतारौ।
छाती के विष मैं पेट उतारौं॥ मैं जात के

गीत की अंतिम पंक्ति के साथ कुछ क्षणों के पश्चात् जैसे विष पाताल पहुंचता है, बरूआ तुरंत अपने चैतन्य अवस्था को प्राप्त होता है और उठकर सभी उपस्थित जनमानस को नमन करता है। वह व्यक्ति ऐसा महसूस करता है कि बहुत भारी बोझ उसके शरीर से उतरा है। सर्प दंश से पीड़ित व्यक्ति का जहर भी उतर जाता है तथा वह भी भला चंगा होकर उठ खड़ा होता है और हंसते हुए प्रायः सभी उपस्थित लोगों के चरण स्पर्श करता है और प्रणाम करता है। एक राहत की श्वांस लेता है।

यह आयोजन समाप्त होने के पश्चात् गुरु एवं शिष्य मंडल पूजा की सामग्री लेकर नाग देवता के निवास स्थान, जिसे बमोठी कहते हैं, पर पहुंचते हैं। वहां दूध चढ़ाते हैं। नारियल फोड़ते हैं, होम-धूप देते हैं।

घर आकर तुरंत अथवा दो-चार दिन के बाद अपनी हैसियत के मुताबिक वह व्यक्ति जिसे सर्प काटता है। वह नई जिंदगी पाने की खुशी में गांव वालों को एक छोटा भोज देता है। इसके बाद अपने देवी-देवताओं को संतुष्ट करके तथा अपने अपराध के प्रायश्चित में गुनिया से सलाह मशविरा कर आगे का कार्य संपन्न करता है। इस संपूर्ण कार्य के लिए गुरु एवं शिष्य मंडल किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक लेना पाप मानते है।

Scanned with OKEN Scanner

बुन्देलखण्ड की लोक विधायें

डॉ. रामशंकर

बुन्देलखण्ड, भारतवर्ष का हृदय है। विश्व भूखण्ड का एक 'ऐश्वर्यवान' क्षेत्र है। प्रकृति के वरदान से उसकी झोली भरी पूरी रही है। हरे भरे पर्वत, फलदार जंगल, पानीदार नदियां, ताल तलैया, पोखर तथा सरोवर, बुन्देलखण्ड की शान, ज्ञान तथा अभिमान रहे हैं।

सैल सुहावन कानन चारू, करि केहरि मृग विहग विहारू
नदी पुनीत पुरान बखानी, अतिप्रिया निज तप बल आनी

का प्रमाण रामचरित मानस में स्थापित हैं। लोकनायक राम को कोटि-2 जनों के मन मानस तक पहुंचाने का श्रेय संत तुलसी को प्राप्त है। मां हुलसी के ऐसे 'तुलसी' बुंदेलखण्ड की धरती में जन्में अमर जनकवि जगनिक लोककवि ईसुरी की रचनायें आज भी गांव-गांव में गायी जाती है। शास्त्रीय संगीत के गायक एवं वादकों की बुन्देलखण्ड खान रहा है। सुनाम धन्य मृदंगाचार्य.कुदऊ सिंह, ठा. महादेव सिंह, पं. शम्भू महाराज, सुकदेव प्रसाद, पं. श्याम सुन्दर झण्डीलाल महाराज, छत्रपति सिंह, गायिका असगरीबाई, गायक पं. रामगोपाल मिश्र, आचार्य भगवानदीन आदि ऐसे असंख्य नाम हैं जिनके कारण बुन्देलखण्ड 'ऐश्वर्यवान' रहा है।

पौराणिक कथाओं में विन्ध्य-क्षेत्र अगस्त, अंगिरा, विश्वामित्र आदि ऋषियों की तपोभूमि रहा है। बुन्देलखण्ड तपोभूमि ही नहीं, वीर भूमि, कवि भूमि और प्राकृतिक छटा से सुसज्जित सौजन्य भूमि भी रहा है। आदि से अब तक संस्कृत–हिन्दी साहित्य बुंदेलखण्ड की महिमा गान से भरा पड़ा है।

जन्म और निवास व्यास जी का कालपी के पास
रच गये जहां धर्म ग्रंथ ज्ञान भारतण्ड
भूषण, औ मतिराम केशव का क्रीडा धाम
तुलसी बिहारी आदि कवि प्रकटे प्रचंड
लक्ष्मीबाई नाना आल्हा ऊदल का वीर बाना
छत्ता का जमाना है विभूति जिसकी अखण्ड
परम पुनीत जम्बू द्वीप में भरत-खण्ड
पुण्ड खण्ड उसका है अपना बुन्देलखण्ड ॥

बेनी माधव उरई

बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक समृद्धि का प्रारम्भ से ही एक अनोखा संसार और रहा है, वह जगत है यहां की लोकविधाओं का। बुन्देलखण्ड लोकविधाओं की दृष्टि से सदा सिरमौर रहा है।

बुन्देली लोकविधाओं का संक्षिप्त परिचय

बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकगीतों की एक लम्बी समृद्धशाली परम्परा है। हर जिले की अपनी विशेषता है। जन्म से मृत्यु तक का राग, लोकमय में समाया हुआ है। कुछ का अति संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है-

(1) **सैरा**–सैरा साहित्य बुन्देलखण्ड में साहित्य की निधि है। आज भी ललितपुर तथा झांसी जिलों में इसके गायक कुछ-कुछ गांवों में शेष हैं। सावन के महीने में महिलायें तथा पुरुष नृत्य करते हैं। नृत्य के समय डंडा तथा मोर पंख भी साथ रहता है। ढोलक, मजीरा, रमतूला का प्रयोग करते हुये सैरा गीत एवं नृत्य सबके मनोरंजन का केन्द्र बनता है। 20 से 25 पुरुष गोलाकार खड़े होकर डांडी ताल

* विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, जगतगुरु रामभद्राचार्य वि.विश्वविद्यालय, चित्रकूट धाम (उ.प्र0)

Scanned with OKEN Scanner

मिलाते नृत्य करते हैं। बीच में ढोलक, चटकोरा, टिमकी, ढपला, बांसुरी के साथ वादक मण्डली खड़ी रहती है। नर्तक इनकी लय पर डांडी परिचालन करते आगे-पीछे डांडी मिलाते दांयें पैर को गोलाई के बीच में फेंकते झुकते हैं और तत्काल बांये पैर को हल्के वजन से सीधे होते हुये नृत्य करते हैं। कुछ संकलित उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. सैरा तो सैरो रे
अरे सैरो तो सैरो अरे सब कोई कहे सैरो भले नै होय
उड़ला जो चूके रे बैया लगे जो पीड़ा सही नै जाय।

इसमें प्रश्न-उत्तर होते हैं। सैरा गाते-गाते अंत में नृत्य की लय बढ़ाकर 'पाई' गाते हैं।

2. *बही जाउं मोरे राजा हिलोरों में*
मरी जाउं मोरे राजा मरोरें में।

पाई के अंतर्गत भजन भी गाते हैं जिनकी धुने पाई की ही तरह होती हैं।

3. *तनक तलईया जल भरे गौरा अनाराई केश।*
अपनी फींचे रंग चुनरी, भोले बाबा की पच रंग फाग।
पाठे पर हरना हिरैं, बेलाकली उतरायें
ज्ञानी या होवे छान के पिये मूरख डरें पछतायं॥

4. *कैसे के जाउं पार, नदी नदिया आड़ी।*

स्वर्गीय श्री गंगाधर व्यास ने सैर को एक नया मुकाम दिया है। उन्होने पहले दोहा, एक छंद और फिर सैर को प्रस्तुत किया है-

दोहाः
ऊधौ उन घनश्याम ने हम सो तजो सनेह
सौत साल रई कूबरी भई दूबरी देह।

छन्दः
बृजराज बृज तज के गये, मथुरा में ठकुराई करी।
सोरह सहस तज गोपिका, चेरी सों असनाई करी।
लिख-लिख पठाउत जोग हमखों हिये निठुराई करी।
घनश्याम खों विलमाय कें कुबिजा ने मनमानी करी।

दोहाः
कुबिजा के रंग में रंगे, जबसों श्याम सुजान।
तब सों राधे कुवंरि की, लगी देह दुबरान।

सैरः
घनश्याम गये तज के का हम खौं दोसन।
जो चूक परी होती सो कउते मोसन।
चुरिया गयी वरन लौं भये ढीलें जोसन।
जा देह भई दुबरी कुबरी के सोसन।
बिन दरस-सुधा, प्यास नई बुजतई ओसन।
मिलबौ नई नगीच, फेर पर गऔ कोसन।
अंतस की बात सांसी, कई ऊधौ तोसन।
जा देह भई दुबरी कुबरी के सोसन।

टिप्पे

बुन्देलखण्ड में तीर्थ यात्रा के समय जिन गीतों को ग्रामीण गाते हैं उन्हें टिप्पा या टिप्पे कहते हैं। कहीं-कहीं इन्हें बाबा के गीत बम्बुलिया तथा रमटेरा भी कहते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

चलन–चलन सब कोउ कहै,
चलबौ हंसी न खेल।
चलबौ सांची ओई कौ,
जी कौ भैरों बुलावे टेर।
चलन चलौ॥
चलत हां तौरी बइयां गहौं,
भैरों लाला बचालियां लाज।
माई–गौरा तोइ सों लगी,
माई–गौरा सों लागौ ध्यान।
चलत हौं, हौं॥

फाग

बुन्देलखण्ड में जनकवि "ईसुरी" रचित बसंत गीतों को "फाग" कहते हैं। समूह गायन है। होली के आस-पास गांव-गांव फाग गाये जाते हैं। ईसुरी का जन्म सम्वत् 1881 के लगभग मऊरानीपुर झांसी के निकट मैढ़की ग्राम में हुआ था। पिता का नाम भगवती प्रसाद और माता का नाम गंगाबाई था। ईसुरी की माता का स्वर्गवास बाल्यावस्था में हो गया था। पालन-पोषण इनके मामा जानकीप्रसाद के यहां हुआ था। मामा लुहर ग्राम, हरपालपुर में निवास करते थे। पढ़ने में इनका मन नहीं लगा और ग्रामीण मित्रों के साथ अथाई पर बैठकर फागें गाया करते थे। मामा ने ईसुरी को खेती के काम में लगा दिया। ये खेत पर बैठ खेत की रखवाली और मित्रों को

Scanned with OKEN Scanner

एकत्र कर फागें रचकर सुनाते तथा होरा खिलाते रहते थे। अन्य कवियों ने भी समय-समय पर अपने स्तर पर फागों की रचना की है। फागों के कई प्रकार हैं यथा चौकड़िया एवं छंददार। जनकवि ईसुरी को जब यह आभास हुआ कि अब उनका शरीर नहीं रहेगा तब उन्होनें अपनी आराध्य राधिका के प्रति जो फाग रचा वह इस प्रकार है-

विधना करी देह ना मेरी
रजउ के घर की देरी।
आवत जात चरन की धूरा,
लगती तन हर बेरी।
लागो आन कान के ऐंगर
बजन लगी बजनेरी।
उठन चहत अब हाट ईसुरी
बाट बहुत दिन हेरी।

ईसुरी की फाग लुहर ग्राम में इतने प्रसिद्ध हुये कि उनके सुनने के लिये दूर-दूर से ग्राम्य-जन आने लगे। ईसुरी की ख्याति गांव गांव में फैल चुकी थी। ईसुरी को सामाजिक, राजनैतिक और गृह-कलह से उत्पन्न समस्याओं के सुलझाने के लिये भी इस जनपद में बुलाया जाता था। इसका प्रमाण उनके अनेक फागों में मिलता है।

भौरा जात पराये बागै,
तनक लाज नई लागै।
घर की कली कौन कम फूली,
काय न लेत परागै।
कैसें जाय लगाउत हुइये,
और आंग सों आंगै।
जूंठी जाठी पातर ईसुरी
भावै कूकर कागै।

आल्हा

वीर छंद का वीर-गीत काव्य है। लोककवि जगनिक की अमर कृति है। खेत, खलिहान, गांव-घर, चौपाल, मंच तक इसकी गहरी पहुंच है। बुन्देलखण्ड की सर्वाधिक लोकप्रिय लोकविधा है। इस विधा की अतिशयोक्ति ने लोगों को खूब लुभाया है।

बारह बरस लौ कूकर जिये,
और तेरह लौ जिये सियार।
बीस बरस लौ छत्री जिये,
आगे जिये तौ धिक्कार।

खटिया पर कैं जो मर जैहें,
नाम डूब पुरखन का जाय।

बाढ़त आबै नदी बेतवा, डूबत आवे कछार।
पैरत आवै आंधू चौड़िया मौं
में दाबै नगन तरवार।

असी कोस लौ बारादरी है
जेहिमा जेजम बिछी कालीन।
मसा कचेहरी मा भुनके ना,
गरमा गरम लगो दरबार।
दस कदम से करी बंदगी,
माहिल पिरथी को करै जुहार।

गोटें

हेहय वंश में राजा अजयपाल हुये। ये शिव के भक्त थे इन्होनें कुछ स्वरचित मंत्र लिखे कालांतर में समाधान न होने के कारण ग्रामीण लोग आग झाड़ने, सर्प विष उतारने, जानवरों के रोग मिटाने आदि में इन मंत्रों का अज्ञानतावश उपयोग करने लग गये। राजा अजयपाल के भक्त बुन्देलखण्ड में कारसदेव एवं हीरामन हुये। इन्होनें भी मंत्रों की इस परम्परा को आगे बढ़ाया तथा इनकी स्मृति में कालांतर में जो गीत रचे गये उन्हें गोटें(यस) कहा गया। आज भी ललितपुर झांसी तथा महोबा के कुछ हिस्सों में कारसदेव हीरामन की गोटे गायी जाती हैं। इस गायन में डमरू जैसा एक बाजा बजता है जिसे ढाक कहते हैं।

कै भये कनैया, कै कारस भये,
जिननै गइयन की राखी लाज।
धन–धन झांझ की गैयां,
धन–धन कारस महाराज।
हमारो सबई हमाऔ काज।
चांवल सी बयें दूद की नदियां,
बाजै दुहिनिया कछार।
दूदन–पूतन गोरी–धन फलवै,
हार पहारन करै सिंगार।
कारस तेरी होवै जै-जै कार।

कजरी

यह लोक संगीत की एक बहुप्रचलित और प्रसिद्ध विधा है। ग्रीष्मकाल की तपती दोपहर के बाद जब काले-काले मेघ आकाश में घिर घमुड़ आते हैं तथा वर्षा की झड़ी लगा देते हैं, उस समय गांवों में जो गीत फूट पड़ते हैं उन्हें "कजरी" कहते हैं। वर्षा ऋतु में महिलाओं द्वारा कजरी गाना तथा नाचना अब इतिहास बनता जा रहा है।

बिरहा

पशु पालकों की अति प्राचीन लोक विधा है। आज भी यह कहीं-कहीं जिंदा है। विरहा में विरह जुदाई तथा वीरता प्रधान गीतों का गायन है, साथ-साथ सरस श्रृंगार भी छिपा हुआ है।

चौमासा

वर्षा ऋतु के चार महीनों अषाढ़, सावन, भादौं, क्वांर में गाये जाने वाले लोकगीत हैं। इन गीतों में ज्यादातर पत्नी की वियोग व्यथा है। उसे घर का अकेलापन खलता है, इसलिये जब वह गीत रूप में अपने भाव व्यक्त करती है, उन गीतों को चौमासा कहा जाता है।

ढोलामारू

मरवान तथा ढोला की बचपन में शादी हो जाती है। दोनों अबोध थे। युवा होने पर परस्पर भेंट होती है, दोनों एक दूसरे से अनजान है। उस मिलन अवसर पर होने वाला गीत संवाद लोकविधा में "ढोलामारू" कहलाता है। रात बिताने, समय काटने का अच्छा रोचक माध्यम था। अब सब समाप्त है।

बन्ना

दूल्हे को बन्ना कहा जाता है। "बन्ना" गीत, दूल्हे की पोशाक पर आधारित है। दूल्हा जब कपड़ा पहनता है उस समय महिलायें जो गीत गाती हैं उन्हें बन्ना गीत कहते हैं। यथा-

न्ना के कपड़ा न पहनाव नजरिया लग जइहैं री।
जरिया लाग जइहैं री, झरइया झार जइहैं री।

दि

सुहाग

महिला के शादीशुदा होने का संकेत है। सुहाग का अर्थ बड़ों से अपनी खुशहाली हेतु 'आशीर्वाद' मांगना। विवाह में चढ़ाव के समय जब लड़की की मांग में सिंदूर भरा जाता है उस समय सुहाग गीत गाये जाते हैं।

गारी

पारंपरिक विवाह अवसर पर छेड़छाड़ के गीत। यह बहुत ही सुकोमल विधा है। इसमें हंसी, मजाक तथा मार्मिक हरदौल गाथा भी छिपी हुयी है।

विदाई

दुल्हन की विदाई जब होती है, उस समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें विदाई गीत कहते हैं। यह गीत दर्द भरे होते हैं। वातावरण को बहुत ही गंभीर बना देते हैं। हर कोई गीत सुनकर रो पड़ता है।

होरी

होरी के समय गाये जाते हैं। इन्हें दहकिन्दो, दहकवा भी कहते हैं। होली जलते ही इनका गायन प्रारम्भ हो जाता है। कहीं-2 भद्दे गीत भी गाते हैं।

फगुआ

होली के मौके पर फाग विधा का ही दूसरा रूप फगुआ कहलाता है। फगुआ फाल्गुन मास में ही ज्यादातर गाया जाता है।

निर्गुण

कबीर से प्रभावित गीत निर्गुण गीत कहलाते हैं। निर्गुण गीत कबीर विद्या में गाये जाते हैं। कहीं कहीं इन्हें निर्गुण भजन भी कहते हैं

सोहर

बच्चे के जन्म के समय पर गाये जाने वाले गीतों को सोहर कहते हैं।

धोबिया

समुदाय विशेष का गायन है। इसमें नृत्य तथा गायन दोनो होता है।

Scanned with OKEN Scanner

देवीगीत

बारहमासा

हर मास का वर्णन है। बसंत ऋतु के महीनों का वर्णन करते हुये जब ये गीत गाये जाते हैं उस समय श्रोता रोमान्चित हो उठते हैं। बहुत पुरानी लोक विधा हैं, समाप्ति की ओर जा रही है।

दादरा

प्रायः प्रेम गीतों का वर्णन है। सभी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में गाया जाता है।

कर्मा

आदिवासियों का प्रमुख कर्म गीत हैं दिन भर के थके हारे आदिवासी जब रात्रि में इकट्ठा होते हैं उस समय इस गीत को गाकर सामूहिक नृत्य कर अपनी थकान को उतारते हैं।

शैला

यह भी एक आदिवासियों का परम्परागत लोकगीत है। चित्रकूट में शैला को कोलहाई विधा में गीत गाते हैं। शैला भी एक सरस शैली है जिसमें गीत भी है और नृत्य भी है।

महुआ बीनई जाई, मूड़े मा धरि के टोकनिया।
महुआ बीनई जाय, रस चुई-चुई के जांय,
महुआ मदन रस टपकई।
यारेन केर फाटे करेजवा, महुआ बीनइ जाय,
बारह हजारी के लहंगा, साढ़े नौ सई के बुलाक
पहिरइ बाली रसीली, जान मारइ हमार।

बुन्देलखण्ड में नवरात्रि के अवसर पर गांव-गांव में नौ दिन तक देवी के गीत के गायन का प्रचलन है। देवी की स्थापना की जाती है जवारे बोये जाते हैं, एक व्यक्ति पंडा पुजारी बनता है। नौ दिन व्रत रहकर देवी दुर्गा की आराधना करता है। उन दिनों में गांव के देवी भक्त मिलकर देवी का गायन करते है तथा अष्टमी, नवमीं को जुलूस का स्वरूप लेकर लोहे की सांग को शरीर में जगह-जगह डालकर नृत्य का प्रदर्शन करते हैं इन्हें जवारा भी कहते हैं। पूरे बुन्देलखण्ड में आज भी यह महोत्सव बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है। उदाहरण स्वरूप एक गीत यहां प्रस्तुत है-

इतनी देर कहां बेलमी रे माता
कहना लगाये इतनी देर मा। आदि

फूलौं जार पहार करौंदी वन
फूलौ हो मांय.....।
मैया विनती करौ में दुनौ कर जोरी।
मोरे माथ का सेंदुरा अमर कीजै
मैया दूजी अरज मोरी सून लीजै
मोरे हाथ की चूड़ी अमर कीजै।
मैया तीसरी अरज मोरी सुन लीजै,
मोरे पैर के बिछुआ अमर कीजै।
मैया चौथी अरज मोरी सुन लीजै,
मोरे गोदी का लाल अमर कीजै।

बुन्देलखण्ड की सभी लोक विधाओं का वर्णन यहां संभव नहीं है। अस्तु न चाहते हुये भी इसे यहां ही विराम देना पड़ रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

मिथिलांचल की संगीत परम्पराओं में भट्ट

डा. वेद प्रकाश

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संगीत ग्रंथों में संगीतजीवी जातियों के अंतर्गत 'भट्ट' नाम का उल्लेख बहुतायत मिलता है, कहीं इस जाति को भ्राट तो कहीं भट्ट, कहीं भाँट, राय, कवि आदि नामों से संबोधित किया गया है।

तैत्तिरीय अरण्यक में स्नान, भ्राट, अनूधारि, बमभारि, हस्त, सुहस्त, कृशानु विश्वावसु, मूर्धन्वान, सूर्यवर्चा, और कृति नाम के ग्यारह गान्धर्वों की चर्चा है।

संस्कृत वांगमय के अनुसार वे जातियाँ अथवा संगीत जिवायें जिनका अनुवांशिक कार्य संगीत था, वे गान्धर्व की श्रेणी में आते थे। संगीत को यहाँ व्यापक अर्थ में देखा गया है, गायन, वादन, काव्य, नृत्य, नाट्य अभिनय आदि के द्वारा समाज की सेवा करना ही इनका मुख्य कार्य था। रामायण एवं महाभारत आदि महाकाव्यों में गान्धर्वों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। उस काल से ही राज दरबारों में गान्धर्वों का स्थान आवश्यक माना जाता था। डा. चन्डेश्वर झा ने लिखा है—मध्यकाल तक राज दरबारों में सात प्रकार के विशेषज्ञों की उपस्थिति अनिवार्य थी, यथा—

विद्वांसः कवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः।
इतिहास पुराणज्ञाः सभा सप्तांगयुक्ता॥

विद्वान, कवि, भाट, गायक, विदूषक, इतिहासज्ञ, पूराणज्ञ इस सप्त समुच्य को सप्तांग कहा गया था, जो उस काल के दरबारों की शोभा थी।

भाट का स्थान यहाँ भी महत्वपूर्ण है, ग्रन्थों में उल्लेखित विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों में "भट्ट" का ही अस्तित्व परिवर्तनों के साथ कायम रहा। आचार्य बृहस्पति के अनुसार भट्ट जाति ने "पदमाकर" और "ग्वाल" जैसे महाकवि जहाँ उत्पन्न किये हैं, वहीं अच्छे संगीतकार और कलाकारों को भी इस जाति ने जन्म दिया है। भट्ट चुन्नीलाल अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवी सदी के आरम्भ में उन प्रमुख गुणियों में थे, जिनकी सहायता लेकर जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह (राज्य काल 1779-1804) ने अपने महान संगीत ग्रंथ "राधा गोविन्द संगीतसार" की रचना की थी। चुन्नीलाल भट्ट दक्षिण के संत गायक त्यागराज के समवर्ती थे। उस समय मुगल सम्राट शाह आलम (राज्य काल 1759-1806) का युग था। चुन्नीलाल भट्ट के कुछ वंशज आजीविका के लिए अनेक स्थानों पर चले गये, जिसमें मोतीलाल जी भट्ट दरभंगा चले आये। भट्ट संगीतजीवियों का मूल स्थान राजस्थान था, यहीं से ये लोग जीविकोपार्जन की दृष्टि से अपनी कला-कौशल के बदौलत विभिन्न जगहों पर फैले।

मिथिला के राजदरबारों में भी भट्टों का स्थान आवश्यक माना जाता था। मिथिला के अंतिम कर्णाटवंशी राजा हरिसिंह देव (राज्य काल–) के दरबारी मैथिल विद्वान, संगीतज्ञाता, ज्योतिरीश्वर ठाकुर (14वीं सदी) ने अपने प्रबंध "वर्णरत्नाकर" के छठ्म कल्लोल को "भट्ट अध्याय" के रूप में संदर्भित किया है, जिसमें इन्होंने "विद्यावंत" शब्द का उल्लेख किया है। वर्णरत्नाकर के सम्पादक डा. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार "विद्यावंत" उच्च कोटि के संगीत सिद्ध भट्ट होते थे। ज्योतिरीश्वर ने भट्ट को अनेक भाषाओं के ज्ञाता, अठारहों कोष से व्युत्पन्न अनेक

* स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि., कामेश्वर नगर, दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

अलंकारविज्ञ छन्द ग्रन्थों के कुशल कवि, सातो गुण से सम्पन्न होना बताया है।

अपनी प्रतिउत्पन्नमति के लिऐ विख्यात रहे हैं, मिथिला के भट्ट।

दरबारों के भट्ट को आश्रयदाता की भृकुटी के आधार पर उनकी मानसिक स्थिति का ज्ञान हर समय रहता था। इसके अनुकूल ही ये अपनी बात रखते थे।

खड़ौड़ेवंशीय दरभंगा महाराज लक्ष्मेश्वर सिंह ने "भट्ट" संगीतज्ञ कवियों को 12 सौ बीघा जमीन दान दिया था, जो वर्तमान मधुबनी जिलान्तर्गत "भट्टोत्तर" के नाम से आज भी जाना जाता है। सांगी ब्रह्मपुर नामक यह गाँव भट्ट जातियों की ही है। मिथिला में भट्ट लोग महाराज के नाम से भी जाने जाते हैं। "सांगी" ग्राम में एक से बढ़कर एक कवि, संगीतज्ञ, नाटककार आदि हो चुके हैं। दरभंगा के अंतिम राजा सर कामेश्वर सिंह के समय इनके दरबार में कई कुशल भट्ट थे। डा. गजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है–मुन्शीलाल भट्ट जो फतेहपुर सिकरी के वासिन्दे थे, आले दर्जे के ध्रुपद, टप्पा और ख्याल गायक थे, 18 वर्षों तक दरभंगा राज में मुलाजिम रहे। यहीं 1894 में भोलानाथ भट्ट का जन्म हुआ था, इन्होंने अपने पिता से संगीत की बारीकी सिखने के साथ कई विद्वानों से तालिम पाई थी तथा परिश्रम के बल पर चोटी के गायक बने। इस युग के वाग्येकार मिथिला के रत्न इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के पूर्व अध्यक्ष डा. रामाश्रय झा "रामरंग" भोलानाथ भट्ट के ही शिष्य थे। गढ़बनैली के बाबू कुमार श्यामानन्द सिंह ने भी भोलानाथ भट्ट से हीं संगीत की शिक्षा पाई थी। आचार्य बृहस्पति ने जिन्हें मोतीलाल भट्ट कहा है, गजेन्द्र नारायण सिंह उन्हें मुंशीलाल भट्ट कहते हैं। सांगी के भट्ट संगीतकारों में उन दिनों बालो महाराज, हरगोविन्द महाराज, मास्टर उम्मेद शर्मा, सरहज महाराज आदि में महत्वपूर्ण थे– हरगोविन्द महाराज तथा बालो महाराज। ये दोनों भाई अभिनय भी किया करते थे। इन दोनों भाईयों की आवाज अत्यंत बुलंद और सुरीली थी, बिना ध्वनि प्रसार के ही इनका गायन दूर तक बैठे श्रोता भी आराम से सुन सकते थे। इनका अपना थियेटर था, महाराज कामेश्वर सिंह की पत्नी राजलक्ष्मी के लिए अनेक अवसरों पर इनके थियेटर के प्रदर्शन राज नाटकघर (वर्तमान स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल0 ना0 मि0 वि., दरभंगा) में हुआ करता था। बृद्धावस्था में भी बालो महाराज की आवाज सुरीली और बुलंद थी, इनके बड़े भाई हरगोविन्द महाराज इनसे अधिक प्रभावशाली थे, इनके देहान्त के बाद बालो महाराज अकेले गाते थे। ये सभी प्रकार के गीत गाते थे, परंतु मिथिलांचल के संगीत को गाने का इनका अपना निराला ही अंदाज था। बालो महाराज को सुनना अपने आप में एक सुखद अनुभव था। बेनीपट्टी के चैतन्य स्थान में "राधा-अष्टमी" अवसर पर 1980 के आस पास बालो महाराज के विलक्षण संगीत को सुनने का अवसर लेखक को मिला है। मिथिलांचल की उस समृद्ध संगीत परम्परा का दर्शन अब दुर्लभ है।

सांगी में एक से एक कवि हुए, हैं जो मिथिलांचल और यहाँ से बाहर भी अपनी काव्य कुशलता के बल पर अनेक दरबारों और डेयोढ़ी में सम्मानित रहे। सांगी के उम्मेद कवि नेपाल के राजदरबार में राजकवि थे। इनके पुत्र स्वयम्बर कवि नेपाल के हीं कोईलारी बरसाईन दरबार में सभाकवि थे। सांगी के ही पं. उमाकान्त कवि गिद्धोर महाराज के दरबारकवि के पद पर थे, यही के फकीर महाराज सिंहवार दरबार के केदानाथ चौधरी के यहाँ सभाकवि थे, सहदेव कवि नवहट्टा डेउढ़ी में कवि थे। राजा महाराजाओं के युग की समाप्ति के बाद भट्टों के वंशज अपनी अनुवांशिक पेशे से कटने लगे, दूसरे कार्यों में लग गये और सम्मानित सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगे। परंतु कुछ छिट-पुट लोग अब भी बच गये हैं जो अभी भी शादी ब्याह के अवसर पर पहुँचकर "आशुकवि" के रूप में सदंर्भिक तुकबंदी और फकरा आदि पढ़कर गृहस्वामी की प्रशंसा करके अर्थोपार्जन कर उदर पूर्त्ति करते हैं, माँग कर ही इनका कार्य चलता है।

मिथिलांचल के विभिन्न जिलों में वर्तमान समय में भाटों की उपस्थिति निम्नलिखित है–दरभंगा जिला के लगमा, कठरा, दसौत, मधुबनी जिला में सांगी, पिडारूछ, अजनौली, समस्तीपुर–मोरबा, ताजपुर, झखड़ा, मुजफ्फरपुर–भरथुआ, सहरसा– आलमनगर, नोहट्टा, मधेपुर–पुरैनी, भट्टी दुर्गापुर, बेगूसराय–

Scanned with OKEN Scanner

लत्तीपुर।

दरभंगा दसौत के केदार महाराज वीर एवं शृगार रस की कविता पढ़ने में बेजोड़ थे। समस्तीपुर मोरबा की रूकमिनी देवी मिथिला की लोक संगीत की सिद्ध गायिका थी, आकाशवाणी दरभंगा से इनके नियमित कार्यक्रम होते थे।

इस समय सांगी गाँव के कई ऐसे युवा हैं, जो ढ़िया गाते हैं उनकी आवाज में जो स्वाभाविक ौर प्राकृतिक आकर्षण है, उसे प्राप्त करने के लिऐ ामान्य छात्र को सालो कठिन रियाज करना पड़ेगा। र्की और खटकों का ऐसा प्रयोग लोगों को बरबस पनी ओर खीच लेता है।

मिथिलांचल में बिखरी भाटों की उपस्थिति तथा ागविज्ञ चरित्र इनके उन्नत अतीत की याद दिलाते

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वाल्मिकी रामायण
2. महाभारत
3. तैत्तिरीय अरण्यक
4. अथर्ववेद भाष्य
5. वर्णरत्नाकर-ले. ज्योतिरीश्वर ठाकुर
6. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकर–ले. आचार्य बृहस्पति
7. ध्रुपद और उसका विकास–ले. आचार्य बृहस्पति
8. बिहार की संगीत परम्परा–ले. डा. गजेन्द्र नारायण सिंह
9. मिथिलाक संगीत परम्परा–ले. डा. चन्डेश्वर झा

मौखिक स्रोत

1. श्री युगल किशोर महाराज–सांगी, मधुबनी
2. गौतम सिंह, तबला वादक–सहरसा
3. श्री नारायण सिंह, गायक–सहरसा

Scanned with OKEN Scanner

लोक संस्कृति के आयाम : संगीत, साहित्य और कला

पुष्पवाणी*
डा. पुष्पम नारायण**

भारतीय संदर्भ में लोक संस्कृति के अंग लोक कथाओं, लोकगीतों और लोक भाषाओं के मूल सूत्र वैदिक साहित्य से जुड़े है। पंचतंत्रों की लोक कथा के पुरातन नमूने के रूप में सहज ही उद्धृत किया जा सकता है। किन्तु आधुनिक काल में लोक-संस्कृति या फोकलोर का अध्ययन, जो अभी भी अपने शैशवकाल में है, सन् 1846 में डब्ल्यू. जे. थामस द्वारा "फोकलोर" शब्द प्रयुक्त किये जाने के पूर्व तक (जिसे सामान्यतः पापुलर एंटीक्वीटीज के नाम से पुकारा जाता था) वस्तुतः भारतविद्या या इंडोलाजी की एक शाखा के रूप में क्रियाशील था। अंग्रेजी भाषा के "फोकलोर" शब्द की उत्पति जर्मन भाषा के शब्द "वोकलेहरे" (जिसका अर्थ है, जन प्रथायें) से हुई है। मानव वैज्ञानिकों ने सामान्यतः "फोकलोर" की अर्थ परिधि में मिथक, पुराण, लोक-कथा, लोक-गीत, कहावत, पहेली, लोकनृत्य, लोकसंगीत और कलात्मक अभिव्यक्ति के ऐसे विभिन्न स्वरूपों और प्रकारों को जिसका माध्यम वाणी, मुद्रा और वस्तु हो, को समाहित माना है।

उपरोक्त अर्थ में लोक-संस्कृति के भारतीय अध्ययन की प्रमाणिक शुरूआत सन् 1774 में "रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बेंगाल" के साथ हुई। अपनी स्थापना के प्रारंभिक वर्षो में इस सोसायटी ने लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं पर आधारित कई प्रवर्तक प्रबंधों तथा ग्रंथों का प्रकाशन किया। इस दिशा में दूसरी पहल "इंडियन एंटीक्वैरी" ने की। इसने न केवल लोक-संस्कृति के अध्ययन की प्रवृति को आगे बढ़ाया बल्कि इसके अध्ययन के लिए व्यापक और व्यवस्थित आधार भी प्रदान किया। इससे प्रेरित होकर अनेक स्थापित विद्वानों ने लोक-गीतों और लोक कथाओं का प्रामाणिक संग्रह किया। इंडोलॉजी, एंथ्रापोलॉजी, सोशियोजलाजी, तथा अन्य समवर्ती विषयों की अनेक शोध पत्रिकाओं के अनेक अंकों में लोक-संस्कृति की सामग्रियों के यथोचित सम्मान के साथ प्रकाशन के पीछे, एशियाटिक सोसायटी और एंटीक्वैरी की प्रेरणा ही प्रमुख रही है।

समाज के गूढ़ तत्वों को अपनी मेधा के अनुकूल सहज, सरल, स्वरूप देकर कथाओं, कहानियों, किंवदन्तियों, मिथ आदि के रूप में मौखिक अभिव्यक्ति के माध्यम से और उन्हें अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं के संदर्भ में प्रथाओं, आचरणों के रूप में व्यवहार में लाकर लोक-संस्कृति की पैठ लोक में रह रहे अभिजनों से लेकर सामान्यजन तक हो जाती है। इस प्रकार लोक संस्कृति बौद्धिक कसरत, दार्शनिक मीमांसा, अतिमानवीय आदर्शो से हट कर जन-जन का विचार और व्यवहार बन जाती है। साक्षात् भोगते हुए, उसमें जीते हुए लोक का प्रत्येक जन पारस्परिक नियंत्रण के माध्यम से लोक-संस्कृति को संरक्षित रखता है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी उसका सफलता पूर्वक संचार करता है। यही वे तत्व है जिनके कारण हमारी सांस्कृतिक धरोहर अनेकानेक विदेशी संघातों के बावजूद भी अक्षुण्ण है।

उपरोक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि

* शोध छात्रा,ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा
** विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

लोक संस्कृति जड़ है। स्थान व समय के अनुकूल इसमें कतिपय परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होना आवश्यक है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अपने एक आलेख में ठीक ही कहा है कि किसी अंचल या धरती के टुकड़े की लोक-संस्कृति तत्कालीन लोक, लोक मानस और परिस्थिति पर निर्भर होती है। युग की बदली हुई परिस्थितियों से अन्तर्क्रिया करत हुए जब लोक मानस और लोक बदलता है, तब लोक-संस्कृति का परिवर्तन सहज स्वाभाविक है। इस संदर्भ में मेरा यह भी मंतव्य है कि देश और काल में परिवर्तन के साथ लोकसंस्कृति में या तो कतिपय नवीन तत्व जुड़ जाते हैं या कतिपय घट जाते है। ऐसी घट-बढ़ का प्रभाव सीमित होता है। सीमित मात्रा में यह संस्कृति के किसी अंग या उपांग को प्रभावित करता है। ऐसे संशोधनों या परिवर्द्धनों के बावजूद लोक की संस्कृति का मूल स्वरूप विनष्ट नहीं होने पाता है।

संगीत के तीन प्रारूप हमारे समक्ष उपस्थित होते है। प्रथम लोक-संगीत, द्वितीय शास्त्रीय संगीत एवं तृतीय, सुगम संगीत। लोक संगीत मूल है। शास्त्रीय संगीत का विकास लोक संगीत से ही हुआ है। शास्त्रीय कंठ संगीत में प्रयुक्त कवित्त लोक से ही आया है। लोक संगीत को जब अभिजन के द्वारा व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया तब इस प्रकार विकसित विद्या की तुलना में लोक संगीत को अपरिमार्जित कहा गया। इसके साथ ही लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत में भेद किया जाने लगा। लोक संगीत सहज है। यह मौलिक है। मन और मस्तिष्क की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक संगीत अमर्यादित है। यह जन्म से मृत्यु तक, रज कण से संपूर्ण धरा तक, दीपक से सूर्य तक, गागर से सागर तक सभी पक्षों को अपने में समेटे हुए है। संभवतः इतना विस्तार शास्त्रीय संगीत में नहीं है। इसीलिए शास्त्रीय संगीत की बंदिशें सीमित है। जबकि लोक संगीत के विषय अपरिमित। लोक संगीत किसी प्रकार की वर्जिश, सचेष्ट प्रयास की मांग नहीं करता है। घर के कामकाज से फुर्सत पाकर मिल बैठकर लोकगीत गाने वाली महिलाओं का वृन्द हो, अथवा जन्मोत्सव या विवाह के गीत गाने वाली सहागनें हों या पनिहारिन या घट्टी पीसने वाली सास-बहू, इन्हें लोकगीत गाने के लिए किसी नियमित अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। जबकि शास्त्रीय संगीत के लिए नियमित, दीर्घ और व्यवस्थित अभ्यास की आवश्यकता है। लोक संगीत स्वानुभूत अनुकरणपरक है जबकि शास्त्रीय संगीत में गुरु-शिष्य परंपरा का अपना महत्व है। लोक संगीत की पैठ जन-जन तक है। जबकि शास्त्रीय संगीत की पैठ विशेषजन तक है। है। इसलिए लोकसंगीत ही समाज का यथार्थ संगीत है। तब सुगम संगीत क्या है? सुगम संगीत एक सेतु है—लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत के बीच। यह इतना सहज नहीं है जितना कि लोक संगीत। यह शास्त्रीय संगीत से जीवन अवश्य पाता है परंतु शास्त्रीय संगीत की मर्यादाओं में बंदी नहीं है। शास्त्रीय संगीत में प्रयोग की, नवीनता की गुंजाइश कम है। सुगम संगीत प्रयोगधर्मी है। प्रयोग की गुंजाइश तो लोक संगीत में भी है पर लीक से हटकर नहीं। बन्ना बन्नी के गीत ही लीजिये। इसके फ्रेमवर्क से बाहर न जाते हुए गायिका इसे विस्तार देती जाती है। पर इस विस्तार से बन्ना-बन्नी के मूल गीतों की आत्मा नष्ट नहीं होने पाती है—थीम, लय वही रहती है।

प्रकृति लोक संगीत की जननी हैं प्रकृति के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए ही मानव ने कंठ और वाद्य संगीत का विकास किया। यदि मैं यह कहूं कि मुख और ताली, वाद्य संगीत का विकास किया। यदि मैं यह कहूं कि मुख और ताली, वाद्य संगीत के पुरोधा है तो आप अचम्भित न होइये। कोयल की कूक की नकल मानव ने पहले मुख से की और फिर बांस के खोल को बांसुरी के रूप में विकसित कर उसका प्रयोग किया। इसी प्रकार आल्हादित कन की तरन्नुम पहले ताली से व्यक्त हुई, फिर चट्टान या लकड़ी को ठोक कर फिर लकड़ी के खोल को विकसित कर विविध ताल वाद्यों के माध्यम से। इसलिए पहले मानव ने स्वयं की क्षमताओं का प्राकृतिक ध्वनियों के साथ तालमेल किया और फिर जब उसे अपनी शारीरिक क्षमताओं की सीमा ज्ञात हुई तो विविध वाद्ययंत्रों को विकसित कर उसने इस कमी को पूरा किया।

एक बार जब विकास का क्रम चल पड़ा तो फिर तो परिवर्तनों ओर परिवर्द्धनों के माध्यम से एक ही वाद्य के अनेक प्रारूप अस्तित्व में आए। इसी प्रक्रिया में ताल वाद्य, तार वाद्य और वायु-श्वांस वाद्य के अनेक प्रंकार शनैः शनैः विकसित होते चले

Scanned with OKEN Scanner

गए। विकास की प्रक्रिया आज भी जारी है। विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक्स ने तो इस क्षेत्र में भी गजब ही कर दिया है। एक सिन्थेसाइजर से चाहे जो बजा लीजिए। ऐसे प्रयोग लोक वाद्यों में नहीं हुए है। पीतल पिछली शताब्दी में भी ढोल, मांदल और बांसुरी बजाते थे और आज भी बजा रहे है। इसलिए इनसे निकलनेवाला संगीत आज भी अपने मूलरूप में बना हुआ है जबकि नवीन वाद्यों की सहायता से नागरजनों ने न केवल गैर शास्त्रीय बल्कि सुगम संगीत में भी अनेक परिवर्तन किये है। मैं तो कहूंगी कि विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक्स शास्त्रीय संगीत के वाद्यों पर भी हमला करने के लिए तैयार है।

नृत्य की प्रेरणा मानव को संभवतः मयूर के नृत्य, भृंगों की कुलांचों, चिड़ियों कें फुदकने आदि से मिली। लोकनृत्यों में नृत्य भंगिमाएं तथा स्वरूपों में उतनी विविधता नहीं है जितनी कि शास्त्रीय नृत्यों में। पदचालन, हस्तसंचलन आदि विविध लोकनृत्यों में कमोबेश एक समान होता है। अंतर होता है नृत्य में सम्मिलित होनेवालो की संख्या, श्रृंगार, गति ताल और संरचना (फॉर्मेशन) का। नृत्य में समरूपता उत्पन्न करने, पारस्परिक तालमेल और नृत्य को गति प्रदान करने के उद्देश्य से नृत्यों के साथ वाद्यों की संगत का रिवाज पड़ा। गीत, नर को दिशा, आकार और पहिचान प्रदान करते है।

लोकनाट्यों ने सामाजिक विसंगतियों की ओर लोक का ध्यान आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इसे हास्य का पुट देकर जहां लोकरंजन का प्रयास किया गया, वहीं समुदाय संगठित करने और कला जगत से समग्र लोक को जोड़ने का प्रयास भी हुआ है। परंपराओं की अनुरक्षा तथा संस्कृति हस्तांतरण में भी लोकनाट्यों का योगदान रहा है। सत्य तो यह है कि लोकनाट्यों ने सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना को लोक में उत्पन्न कर उसे दृढ़ता प्रदान करने का कार्य किया है।

कला के विकास में मानव की शारीरिक क्षमताओं ने उसकी अत्यधिक सहायता की है। कला रूपायन के लिए न केवल कल्पनाशील मेधावी मस्तिष्क की आवश्यकता होती है बल्कि रूपायन के लिए तीक्ष्ण और केन्द्रित की जा सकने वाली दृष्टि, लचीली हथेली, स्वतंत्र उंगलियां और अंगूठे का भी अपना महत्व है। कल्पना कीजिए कि यदि मानव की दृष्टि धुंधली होती, स्पष्ट और स्वच्छ विम्ब बनाने की उसमें क्षमता न होती, दृष्टि को केन्द्रित कर सकना संभव न होता तब क्या रूपायन संभव होता। इसी प्रकार हथेली में लचीलापन न होकर पशुओं के खुर के समान जड़ता होती, उंगलियां खुली हुई और अनेक पोरों में विभक्त न होतीं तथा अंगूठा न होता तब कल्पना के अनुरूप अवलोकित दृश्य को अथवा पोट्रेट को केनवास पर उतारना अथवा मूर्ति को गढ़ना या मृदपात्रों को बनाना संभव न होता। इसलिए मानव की कलात्मक प्रतिभा के विकास में इन शारीरिक विशेषताओं ने अपरिमित योगदान दिया है। कला मानव की बौद्धिक प्रतिभा और शारीरिक क्षमताओं का सुन्दर समन्वय है।

मानव का संपूर्ण विकास प्रकृति के साथ उनकी अन्तर्क्रियाओं के माध्यम से हुआ है। संगीत ही नहीं बल्कि चित्रांकन और मूर्तिशिल्प की प्रेरणा भी उसे प्रकृति से ही मिली है। जिस प्रकार पशुओं के कोलाहल और पक्षियों के कलरव तथा प्रकृति में उत्पन्न ध्वनियों से उसे गीत संगीत की प्रेरणा मिली है उसी प्रकार प्राकृतिक छटा ने उसे मुदित किया, उसकी स्मृति में बस गई एवं उसे अनुकरण करने के लिए अनुप्रेरित किया। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि चित्रांकन का संबंध हमारे मनोभावों तथा मूल प्रवृतियों के साथ गहरा है।

लोक कला लोक से जुड़ी है। लोक सीमित है। प्रकृति से उसका सीधा संपर्क है। इसलिए लोक कलाकार जो भी कुछ चित्रित करता है वह उसका अपना मौलिक नहीं है, निजी नहीं है। उसकी विषयवस्तु सबकी जानी पहचानी है। महत्वपूर्ण यह है कि सामान्य जन उसे महसूस करते हैं और कलाकार, जोकि स्वयं भी सामान्य रूप का ही एक हिस्सा है, उसे अहसास को रंग और तूलिका के सहारे आकार, मूर्तता प्रदान करता है। इस प्रकार इस चित्रांकन में परिश्रम कलाकार का है परंतु प्रेरणा सामान्यजन की है। अतः लोककला व्यक्तिपरक नहीं है। यह सार्वजनिक है।

Scanned with OKEN Scanner

मैथिली लोकगाथा में संगीत-साहूचर्य

डा. शिव प्रसाद यादव*

भारतीय वाङ्मय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वेद। वेदों में महत्वपूर्ण है सामवेद। सामवेद में महत्वपूर्ण है संगीत। संगीत का शब्दिक अर्थ है गेयात्मक गीत। वैसा गीत जिसमें सस्वर गायन का अभिनन्दन हो जिसमें वादन का स्पंदन हो, स्वर लहरी का संयोजन हो। राग का आलाप हो और रस निष्पत्ति का मार्ग प्रशस्त हो।

संगीत का विशिष्टार्थ है 'सम्यककृत संगीत' अर्थात लोक कल्याण। कल्याण के अधिष्ठाता है 'शिव'। जिनमें सत्यम एवं सुन्दरम का भाव पक्ष अन्तर्निहित है। वहीं उद्गम स्थल है लोक-कल्याण का जहाँ से सरल सरिता की अविरल धारा प्रवाहित होती है। एकबार सांगीतिक त्रिवेणी में स्नान कर लेने के बाद जीवन के समस्त पाप धूल जाते है देह रोग मुक्त हो जाती है और शरीर कमल की भाँति खिल उठता है मन मस्तिक में आनन्द का संचार होने लगता है इतना ही नहीं जीवन से निराशा रूपी अंधकार के बादल सदा सदा के लिए छँट जाते है जनकल्याण की भावना से ओतप्रोत होने के कारण सभी शास्त्रों में संगीत शास्त्र का स्थान अतिव्यापक और विलक्षण है। राग-ताल- लयाश्रित होने के फलस्वरूप संगीत सर्वाधिक आनन्ददायक होता है और प्राणियों को आकर्षित एवं प्रभावित करने में सामर्थ्यवान होता है।

संगीत समाज का दर्पण होता है। सामाजिक संस्कारों एवं व्यवहारों का चित्रण व अवलोकन गीत-संगीत में चमत्कृत हो उठता है। वस्तुतः इसमें सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक अध्यात्मिक व तो वैज्ञानिक प्रतिविम्ब अवलोकित होता है।

मेरा प्रतिपाद्य है मैथिली लोक गाथा में संगीत-साहूचर्य। लोकगाथाओं का संगीत से गहरा सम्बन्ध होता है क्योंकि उसके माध्यम से गाथाओं की प्रस्तुति में सरलता सहजता एवं सरसता आ जाती है। आम दर्शकों तथा श्रोताओं के लिए सुबोध गम्य होता है। फलतः उनमें रसानुभूति होने लगती है और वे झूमने व नाचने लगते है गाथा में गेयात्मकता विधमान रहने के कारण ही सृष्टिकाल के आदि काल से पीढ़ी दर-पीढ़ी लोककंठ में व्याप्त है। समाज में लोकगाथा लोकगीतों का गायन-वादन ओ वाचन परम्परा चली आ रही है। हाँ, परन्तु कई कारणों से इक्कीसवी सदी सशंकित करती है। वैश्वीकरण एवं भूमंडलीकरण के प्रभाव की अभिवृद्धि होने से उक्त परम्परा खंडित व विस्मृति के कगार पर आ गई है क्योंकि नई पीढ़ियों में लोकगीत व लोकगाथा गाथा गायन श्रवण के प्रति आकर्षण नहीं दृष्टिगत होता। अभिरुचि नहीं दिखाई पड़ती। फलतः सामाजिक आर्थिक विषमता की खाई को भरने में इंसान व्यस्त त्रस्त एवं पस्त है। युवा पीढ़ी इसकी महिमा व गरिमा से अपरिचित होते जा रही है। प्रिंट मीडिया के रहते संरक्षण वा सवर्द्धन प्रयोजनीय है।

मिथिलांचल का लोककला एवं साहित्य संस्कृति अत्यन्त समृद्ध एवं सशक्त है। लोक साहित्य के विविध विधाओं में लोकगाथा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन लोकगाथाओं का अपना स्वरूप व सम्मोहन है। मिथिलांचल में शताधिक गाथाएँ विविध अंचल में अपनी विशिष्टाओं को विखेरत होते हुए जन जन का कंठाहार बनी हुई है। मैथिली लोकगाथाओं में लोरिक, सलहेस, दीनाभद्री, नैका बंजारा,

*अध्यक्ष, मैथिली विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, ति.मा.भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

Scanned with OKEN Scanner

राय-रणपाल दुलरा-दयाल ज्यातिबेणा आदि प्रमुख लोक-गाथाएँ उल्लेखनीय है।

छठी–सातवी शताब्दी में जन्मी लोरिक गाथा में मिथिला का सौरभ है। इसमें मिथिलांचल की आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति का अत्यन्त रोचक वर्णन चित्ताकर्षण चित्रण मिलता है। इस महागाथा का अपना विशेष राग भास है। जिसमें राग-ताल एवं लय का सुगन्धित साबुन लगाकर मानव कृत्य-कृत्य हो जाता है। सात खण्ड जन्म खण्ड, सती मानरिखण्ड, चैनन खण्ड, रणखण्ड, सावर खण्ड, बाजलि खण्ड और सम्भौती राजा खण्ड में विभक्त है लोरिक अपनी प्रेयसी चनैन के संग सुपौल जिला के हरदीगढ़ आये। आततायी हरबा बरेबा के संग युद्ध होता है यह घटना क्रम मैथिली लोकगाथा में वर्णित है जिसमें रमणीयता, सृजनात्मकता अर्थ गौरव पद लालित्य, श्रुतिमाधुर्य एवं चमत्कारपूर्ण है। इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है रस परिपाक–वीररस एवं श्रृंगार रस की प्रधानता है। लोरिकगाथा को कई संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। यथा लोरिकायन लोरिक नाचादि। इसकी अपनी विशिष्ट गायन शैली जो अहीर जाति में मुख्यतः लोकप्रिय है आमीरगण इसे समवेत स्वर में गाते नहीं अधाते। वह सामवेद गायन संगीत से अधिक राग गुहार होता है जिसमें स्वर-साधना की भिन्नता के साथ लोरिकायन का लय प्रधान गायन राग और लय के प्रवाह में इतना मनोहारी होता है की सजग संगीतज्ञ भी इस अनाहत ध्वनि प्रवाह की सराहना किये बिना नहीं रह सकता।"

लोरिकगाथा के पोर पोर से निःसृत संगीत का स्वर श्रोताओं के मन-मस्तिस्क को झंकृत करने में पुर्णतः समर्थ है यथा–

बड़ बड़ सुलरि जग में देखलहुँ
तो तँ रूपक चांन गे
अपन तिरिया आगु समटा
हमरा लगाई मलान गे

जिसमें इतना ही नहीं लोरिकगाथा नृत्य सागर है जिसमें पाचँ प्रकार के नृत्यों का झंकार ध्वनित होते है जिनमें कोबर नृत्य, मालिन नृत्य, रणयोगिनी नृत्य, असिखण्डा नृत्य एवं वशीकरण नृत्य। इन नृत्यों मे लोक ताल एवं लय का प्रयोग से गाथा जनमानस की हृदय स्थली बन गई है। इसी तरह मैथिली प्रसिद्ध सलहेस लोकगाथा लोक संगीत तत्वों से ओतप्रोत होती है प्रस्तुति नाच के रूप मे ग्रामीण परिवेश में होती है इसकी अपनी गायन शैली व भास है जिसके गायन व नृत्य काल में दर्शक झूम उठते हैं। रात रात भर जन समूह की आखों में निन्द नहीं आती है हंस की तरह नृत्य का रसास्वादन करने में इंसान बेसुध हो जाते हैं।

दुलरा दयाल पूर्णतः नृत्याधृत लोक गाथा है जिसमें सात प्रकार के नृत्यों का प्रदर्शन होता है।

Scanned with OKEN Scanner

महाकवि विद्यापति का सौंदर्य प्रेम

कुमारी मेनिका*

मृदु, सरस और सुन्दर पदों के कवि मैथिल कोकिल विद्यापति के जन्म तिथि का कोई प्रमाणिक आधार नहीं मिलता है। डा. विमान बिहारी मजूमदार ने विद्यापति के काल–निर्धारण पर अत्यंत ही वारीकी से काम किया है और सम्यक परिशीलन कर उनका जन्म सन् 1350 से 1360 के बीच बिहार प्रान्त के दरभंगा जिले के कमतौल स्थित विस्फी नामक ग्राम में होना निर्धारित किया है। इनके पिता गणपति ठाकुर काश्यप गोत्र के मैथिली ब्राहमण थे और मिथिला के राजा गणेश्वर सिंह के दरबार में मंत्री पद पर विराजमान थे। बचपन में विधापति अपने पिता के साथ राज दरबार में आया जाया करते थे इनके पिता संस्कृत के प्रकण्ड़ पंडित थे। बचपन से ही विधापति को कविताये लिखने का शौक था। ये बचपन में ही कविताये लिखते और अपने पिता को सुनाते थे।

महाराज गणेश्वर सिंह की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र सिंहासन पर आसीन हुए। कुछ ही दिनों के बाद एक युद्ध में वीर सिंह मारे गये। उनके बाद उनके छोटे भाई कीर्ति सिंह महाराज बने। इन्होनें विद्यापति को अपना राज्य पंड़ित बनाया। विद्यापति ने अपने प्रसिद्ध काव्य कीर्ति लता में कीर्ति सिंह का गुणगान किया।

कीर्ति सिंह के मरणोपरान्त उनके चाचा मिथिला के शासक हुए। उन्होंने भी विद्यापति को राजकवि के पद पर आसीन किया। इनके समय में विद्यापति ने "भूपरिक्रमा" नामक ग्रंथ संस्कृत में लिखा तत्वपश्चात 1412 ई. में देवसिंह की मृत्यु हो गई। 'इनकी मृत्यु के बाद इनका बड़ा बेटा शिवसिंह (1410-1414) मिथिला की गद्दी पर बैठा।

शिवसिंह तथा उनकी पत्नी लखिमा देवी दोनों ही काव्य और संगीत के बहुत प्रेमी थे। चार वर्ष विद्यापति के जीवनकाल का स्वर्णिम अवसर था। शिवसिंह ने चार साल तक ही राज्य किया। इसी बीच विद्यापति ने श्रृंगार रस से ओत-प्रोत सैकड़ों पदावलियों की रचना की।

विद्यापति की रचनाओं को अधिकांश विद्धान उनकी भक्ति भावना के प्रतीक के रूप में स्वीकार करते है। विद्यापति राज्यश्रयी होते हुए भी जन-कवि थे। दरबारों में उन्होंने जीवन का रस ग्रहण किया। दरबार में रहते हुए भी विद्यापति ने अपने स्वाभिमान को कभी नहीं बेचा। कीर्तिसिंह को बार-बार याद करके विद्यापति अपने मन के गौरब को जाग्रत किया करते है।

"मान बिहूना भोअना सत्तुक देअेले राज
सरन पइट्ढे जोअना तीनू कायर काज।"

विद्यापति अनेकानेक राजाओं, नबाबो के आश्रय में रहे मगर स्वाभिमान के साथ रहें। विद्यापति की सारी रचनाये लोक भाषा में ही रचित है। लोकवाणी को स्वीकार करने का सबसे बडा कारण यही था कि वह सर्वसाधारण तक अपनी भावना को पहुँचाना चाहते थे। इनकी भाषा में उनके जीवन की गाथा है। विद्यापति की पदावली हिन्दी भाषा जनता के लिए गौरव ग्रंथ है।

विद्यापति की जिन रचनाओं को अधिकांश विद्धान उनके भक्ति भावना के प्रतीक रूप में स्वीकृत करते है, उनमें अधिकांश रचनाऐ जन-जीवन के

* शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति. मा. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर-7

Scanned with OKEN Scanner

मार्मिक चित्र को अंकित करती है। टूटी मड़ैया में रहने वाली जीर्ण शीर्ण वस्त्रों में युक्त दुर्बल पीत आभा से युक्त "पार्वत" और मांग मांग कर पेट भरने वाला उसका पति 'शिव' ये सब "पार्वती परमेश्वरी" की कल्पना से अधिक भारतीय कृषक जीवन की पीड़ा के प्रतीक गौरी और महादेव है।"

विद्यापति शिव भक्त थे। इनकी अधिकतर रचनाये शिव और गौरी के है। विद्यापति का एक प्रचलित पद है "करवन हरब दुःख मोर हे भोलानाथ यह बडा ही करुण मर्मस्पर्शी पद है। दुःख में जन्म लेकर दुःख पूर्ण यातनाओं के बीच जीवन को समाप्त करने वाला भारतीय कृषक कातर स्वर में पूछता है–मेरे दुखो का अन्त कब होगा। विद्यापति राजश्रित होकर भी जनाश्रित रहें। जनता की वाणी की अवहेलना नहीं कर सकें।

अपने समय में प्रचलित सभी देवी-देवाताओं की वन्दना निर्विकार भाव से की है। डा. शिव प्रसाद सिंह अपनी पुस्तक "विद्यापति" में लिखा है–"मैंने विद्यापति की धार्मिक मान्यता के विषय पर विचार किया। उनमें मनुष्य के उपर उठे हुए मानसिक धरातल का चित्रण होता है"। विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन बड़ी ही खूबसूरत ढंग से किया है। विद्यापति ने गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव के अनुकरण पर राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं को अपने काव्य का विषय बनाया।

विद्धानों का एक दल विद्यापति को शाक्त मानता है। पं. शिव नन्दन ठाकुर, श्री नगेन्दनाथ गुप्त और पंडित रामचन्द शुक्ल ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है–विद्यापति शैव थे। परन्तु शुक्ल जी के इन तर्को को भी स्वीकारने में हिचक होती है क्योकि विद्यापति के अनेक ऐसे पद उपलब्ध हैं। जिनमें उन्होने शिव विष्णु आदि देवो की एक निष्ठ स्तुति की है। साथ ही गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिव अर्थात पंच देवों की उपासना निहित रूप से की।

विद्वानों के तर्क वितर्क तथा विद्यापति के पदों के अध्ययन के पश्चात निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विद्यापति केवल भक्त थे। विद्यापति के सभी कविताओं में तो नहीं किन्तु अधिकांश में इसी धर्म की छाया है–"यानि मानव-धर्म की राधा और कृष्ण किसी एक जाति या देश के नहीं है और न तो प्रेम किसी स्थूल सीमा में आबद्ध हो सकता है।" विद्यापति के सम्मुख सम्प्रदाय या धर्म का कोई विशेष महत्व नहीं था। धर्म मात्र–मानव-कल्याण, मानव उत्कर्ष का एक साधन था। अतः यह कहने में कोई अत्युक्ति नही कि विद्यापति–धर्म निरपेक्ष न थे।

विद्यापति सौंदर्य तथा प्रेम के कवि हैं। उनकी आँख निरन्तर सौंदर्य की खोज में भटकती रहती थी। जहाँ कहीं और जिस रूप में उन्हें वह मिलता था उनकी आँख उसे भेद करके हृदय में आत्मसात् कर लेता था। वे सौंदर्य को पूजते थे। सौंदर्य-सम्बंधी उनका सारा दृष्टिकोण इस एक अपरूप सुन्दरता में सिमटकर समाहित हो गया है। वह दिव्य दृष्टि विद्यापति को प्राप्त थी। उनकी दृष्टि सौंदर्य को परखने में समर्थ ही नही निपुण थी। विद्यापति के काव्य में नायिका के सौंदर्य पर मुग्ध होकर कामदेव शिव के समान उसके पयोधरों का पूजन करने लगते है। विद्यापति की नायिका अपूर्व सौंदर्य की राशि है। उनका सौंदर्य आँखों को चकाचौंध कर देता है। उसकी ज्योति रूप ऐसी लगती है मानो अचानक आकाश में बिजली चमकी हो।

"जब गोधूली वेसली बली
धन मंदिर बाहर भेली
नव जलधर बीजुरि-रेहा
दर्द पसारिय गेली।"

विद्यापति सौदर्य के शाश्वत गुणों के उपासक थे। उनकी सौंदर्य विपाशा सिर्फ नायिका की शारीरिक सुन्दरता तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने अलौकिक सौंदर्य को भी देखा था और उससे प्रभावित हुए थे। प्रकृति के विभिन्न रूपो को उन्होंने सौंदर्य दर्शन के रूप में देखा और उन्होंने प्रकृति और सौन्दर्य के अद्भुत और अलौकिक भावनाओं का उजागर किया।

सौन्दर्य विधापति के मन में सत्ता उल्लास नहीं बल्कि गम्भीर पीड़ा का भी संचार करता है। विधापति ने सैकड़ों प्रकार के रूप देखे। रानियों-राज कुमारियों के ग्राम बालाओं के सवस्नाता नारियों के, किन्तु इस सौंदर्य नैसर्गिक पीड़ा को जन्म देती है जो कवि के मन को व्याकुल कर देती है।

Scanned with OKEN Scanner

इनका सौंदर्य केवल शारीरिक नहीं मानसिक और सूक्ष्म भी है। प्रेयसी का प्रेम हृदय की कोमलता का चित्र लौकिक होकर भी अलौकिक और दिव्योन्मुख है।

महाकवि तुलसी दास ने भी सीता के सौन्दर्य-वर्णन के क्रम में उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा करते हुए कहा था-

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई।
छवि गृह दीप शिखा जनु बरई॥

"छवि गृह में दीपशिखा का जलना" ही मानो सूक्ष्म सौंदर्य-वर्णन का संकेत है। विधापति के सौंदर्य-वर्णन की यह एक खास विशेषता है कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम होता जाता है।

विधापति की आँखें अभूतपूर्व सौंदर्य पारखी हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन उनकी आँखों में झिलमिल उठते है। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। वह भाव-विभोर हो उठता है। यह वीप्ता-मोह की पुनरावृत्ति नहीं बल्कि आकुल-व्याकुल प्राण की सरस मधुर पुकार है।

विधापति का सौंदर्य वर्णन केवल अपूर्व अलौकिक और अपरूप ही नहीं अपितु सहज स्वाभाविक प्राकृतिक और सरल-सरस भी है। इस सौंदर्य का सबसे बड़ा गुण उनकी सहजता है। इस सौंदर्य में कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं है। यह वह मर्मस्पशी सौंदर्य है जो हृदय को तुरंत ही छू लेता है।

सहजहि आनन सुन्दर रे, भौंह सुरेखसि आँखि।
पंकज मधु पिवि मधुकर रे
उड़ए पसारल पसारल पाँखि॥

विधापति मानव-प्रकृति के सौन्दर्याकन में तो निपुण थे ही मानवेतर प्रकृति के सौंदर्य का भी चित्रण उन्होंने बड़ी ही कुशलता के साथ किया है। उनका वसंत-वर्णन, वसंत का मानवीकरण, मधुमय-वसंत के माधुर्य की मधुमय कल्पना, बड़े ही मनोरम और जीवन्त है।

विधापति पूर्णतः प्रेमिक कवि थे। प्रेम और सौंदर्य का अत्यंत ही घनिष्ठ संबंध है। सौन्दर्योपालक कवि विना प्रेमी रह नहीं सकता। प्रेम मनुष्य की वैयक्तिक सम्पति है। किन्तु यह प्रेम जब कविता या कला के माध्यम से जुड़ता है तो वह सार्वभौमिक हो जाता है। प्रेम विधापति के काव्य की सबसे बड़ी प्रेरणा है। प्रेम की इस प्रेरणा की शैली को कविता की प्राण-धारा कहते हैं। उन्होंने लिखा है—"कविता कोई तर्क नहीं है कि इच्छा की और प्रक्रिया शुरू हो गई। कविता के सृजन के समय कवि मस्तिष्क बुझे हुए कोयले की तरह रहता है। हवा का एक झोंका अनजाने प्रभाव को जगा जाता है। वह शक्ति हृदय के भीतर से उठती है और कविता में परिवर्तित हो जाती है। प्रेम की महान कविताओं को पढ़ने वाले सहत्रों पाठकों को क्या पता की इस साधारण सी अनजान प्रेरणा ने कवि के मन को इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए प्रेरित किया था। विधापति के विषय में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहा जाता है राजा शिवसिंह की सुन्दरी पत्नी रानी लखिमा से विधापति का प्रेम था। सहजिया सम्प्रदाय के वैष्णव भक्त विधापति को अपने सात श्रेष्ठ रसिक भक्तों में एक मानते है। इनका कथन है कि विधापति का रानी लखिमा से गुप्त प्रेम था। बंगाली नरहरिदास ने अपने एक

पद में लिखा है कि लखिमा राधा की प्रतिमा है जब वह आँखों के सामने होती है तब कविता शत धाराओं से फूट पड़ती है।

लखिमा रूपिनि राधा इष्ट वस्तु जाव
जवे देखि कविता स्फुरथ शत धार।

लखिमा रूप गुण से युक्त उच्चकोटि की कवयित्री तथा काव्य-मर्मज्ञा भी थी। कुछ संस्कृत के श्लोक लखिमा ठकुरानी के विरह गीत नाम से प्रसिद्ध है।

विधापति की प्रेम संबंधी भावना काफी उदात्त थी। ये प्रेम को शरीर की नहीं वरन मन की वस्तु मानते थे। इनके अनुसार शरीर से अलग होकर भी प्रेमी प्रणों से एक रहते है और उनका प्रेम अटल और अमर रहता है।

सजनक प्रेम हेम सम तूल
दहइत कनक दिगुन होय मूल
टूटइत नहि टुट प्रेम अद्भुत
जइसन बढ़ए मृनाल के सूत।

Scanned with OKEN Scanner

इनका सौंदर्य प्रेम अत्यंत ही अलौकिक था। अपने समय में व्याप्त वेमेल-विवाह की समस्या पर उन्होंने तीखा व्यंग्य किया है मगर बड़ी ही सतर्कता के साथ। युवती के पिता जो इस वेमेल विवाह के जिम्मेवार हैं को मूर्ख नहीं कहते उनका उपहास नहीं कहते पर बड़ी ही कुशलता तथा वैज्ञानिकता के साथ इस पर प्रहार करते हैं।

अतः प्रेम और सौंदर्य ही विधापति की जीवन-निधि है। उनका जीवन-दर्शन और उनकी चिरन्तनता का भी मापदण्ड है सौंदर्य और प्रेम।

संदर्भ-ग्रन्थ

(1) महाकवि विद्यापति, पं. शिवनंदन ठाकुर
(2) विद्यापति; डॉ. शिव प्रसाद सिंह
(3) स. कृष्णनन्दन पीयूष, महाकवि विद्यापति; स्थापना और विवेचन।
(4) विद्यापति विभा, डॉ. वीरेन्द्र कुमार बडसूवाता
(5) विद्यापति, डॉ. नागेन्द्र नाथ गुप्त
(6) महाकवि विद्यापित, विद्यापति की सौन्दर्य भावना, प्रो. विद्या नारायण ठाकुर (सं.) कृष्णनंदन पीयूष, 1968
(7) कीर्तिलता, बंगला संस्करण

Scanned with OKEN Scanner

मैथिली लोकसंगीत में संगीत तत्व

डॉ. लालति कुमारी*

लोक संगीत दो शब्दों से मिलकर बना है—'लोक' तथा 'संगीत'। लोक का अर्थ है जनसाधारण तथा संगीत का अर्थ है गायन, वादन एवं नृत्य का मिश्रण। अतः लोक-संगीत का सामान्य अर्थ हुआ ऐसा संगीत जो, जन-साधारण द्वारा गाया जाए। लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत का आधार माना गया है, अर्थात् शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक-संगीत से ही हुआ है। ऐसा माना जाता है कि लोक-संगीत को समझकर जब विद्वानों ने इसे नियमबद्ध किया तो यह शास्त्रीय संगीत बना।

लोक-संगीत जनसाधारण की आंतरिक भावनाओं का प्रतीक है। यह देश की संस्कृति का एक जीता-जागता उदाहरण है। किसी भी देश की सांस्कृतिक उन्नति का पता, उस देश के लोक-संगीत को देखकर चलता है। लोक-संगीत को सहज संगीत भी कहा जाता है। इसे सीखने के लिए किसी बंधन की आवश्यकता नहीं होती है। प्राचीन काल से ही मानव अपने मन के भावों को गाकर या बजाकर या नाचकर अभिव्यक्त करता आ रहा है। अपने सुख-दुख तथा जीवन की अनेक घटनाओं को मानव ने संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अतः हृदय के भावों को (उसी रूप में) व्यक्त करने के लिए जब संगीत का सहारा लिया जाता है, तो वह संगीत लोक-संगीत कहलाता है।[1]

प्रत्येक क्षेत्र का लोक-गीत अलग-अलग होता है। हर क्षेत्र के लोक-संगीत का मूलभूत सिद्धांत एक ही है—वह है भावों की अभिव्यक्ति, आनन्द-प्राप्ति आदि। अलग-अलग क्षेत्रों के लोक संगीत में अगर अन्तर है, तो वह यह है कि, किसी लोक-संगीत में एक तरह के वाद्य प्रयुक्त होते हैं तो कहीं दूसरे तरह के, क्योंकि हर क्षेत्र की अपनी-अपनी बोली है। अतः लोक संगीत के अन्तर्गत लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-नाट्य सभी आ जाते हैं। ये सभी मिलकर लोक-संगीत का निर्माण करते है। जैसे भाषा के माध्यम से जिन सूक्ष्म भावों को प्रकट नहीं किया जा सकता, उन्हें संगीत की स्वर लहरियों के माध्यम से प्रकट किया जाता है। नृत्य से अपने भावों को प्रकट करते हैं।[2]

यहाँ पर मुझे लोक-संगीत में मौजूद संगीत-तत्व पर विचार करना है। लोक संगीत का सांगीतिक समीक्षा करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि, लोक-संगीत का प्रमुख तत्व स्वर, भाषा, लय तथा ताल है। इन्हीं के मिश्रण से लोक-संगीत बनता है। अपने भावों को प्रकट करने के लिए इन्हीं का अलग-अलग रूप में सहारा लिया जाता हैं। उदाहरण के लिए उल्लास खुशी आदि के समय चंचल तालें प्रयुक्त की जाती है। शोक, दारूण, विषाद आदि के समय में लय कम तथा तालें गंभीर प्रकृति की हो जाती है। गीतों की भाषा परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। अलग-अलग समय के गीत भी अलग-अलग होते हैं। जैसे विवाह के गीत, जन्म के गीत, उत्सवों के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित गीत आदि।[3]

लोक संगीत की विशेषताएँ

(1) लोक-संगीत मानव की सभ्यता तथा संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं।

* व्याख्याता, संगीत विभाग, म.म.ठा. मिथिला महाविद्यालय, दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

(2) लोक-संगीत का कोई एक जनक नहीं होता है, अर्थात यह पता नहीं चलता है कि अमुक शैली का जन्मदाता कौन है।
(3) लोक-संगीत मानव जीवन की उसके सुख-दुख की कहानी को बताता है।
(4) यह देश की संस्कृति का रक्षक है।
(5) लोक-संगीत किसी नियम से बद्ध नहीं होता।
(6) लोक-संगीत में धुनें तीन या चार स्वरों में ही साधारणतया बनी होती है।
(7) यह सरल भाषा में होता है।
(8) लोक-संगीत में भाव के अनुसार ताल तथा लय का निर्धारण किया जाता है।
(9) लोक-संगीत किसी प्रसंग को सामने रखकर आगे बढ़ता है।
(10) लोक-संगीत में एक ही धुन में कई गीत गाए जाते हैं। अर्थात् धुन तो एक ही रहती है पर कविता (गीत) बदलता रहता है।
(11) लोक-संगीत में अनेक वाद्यों का प्रयोग होता है, जो क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग होते हैं।
(12) लोक-संगीत साधारण जन के सबसे निकट होते हैं।
(13) लोक-संगीत के माध्यम से मानव अपने भावों को अधिक पूर्णता से व्यक्त कर सकता है।
(14) लोक-संगीत में लालित्य कम पर सौन्दर्य अधिक है।
(15) लोक-संगीत में सभी रसों की निष्पति होती है।

लोकगीतों के वर्गीकरण को समष्टि के रूप में वर्गीकृत करने के लिए यह आवश्यक आधार माना गया है, कि वहाँ की सामाजिक गतिविधि, जलवायु, भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक परंपराओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव रहता है। उसके जनजीवन के राग द्वेषों को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने में लोकगीतों का सक्रिय सहयोग युग-युगों से प्राप्त होता आ रहा है। समष्टि के रूप में यह माना जा सकता है कि जीवन के मुख्य आदर्श पाँच है। (1) धार्मिक (2) सामाजिक (3) पारिवारिक (4) राजनैतिक और (5) रहन-सहन

प्रत्येक क्षेत्र-विशेष की सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़े हुए लोकगीतों का वर्गीकरण उपर्युक्त आधार पर ही किया जा सकता है। इस आलोक में मैथिली लोकगीतों को मिथिला के धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक और रहन-सहन के आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए डा. तेजनारायण लाल[4] ने पाँच भागों में वर्गीकृत किया है–

(1) धार्मिक आदर्श और मैथिली लोकगीत (2) सामाजिक आदर्श और मैथिली लोकगीत (3) पारिवारिक आदर्श और मैथिली लोकगीत (4) राजनैतिक आदर्श और मैथिली लोकगीत (5) रहन-सहन का आदर्श और मैथिली लोकगीत।

यद्यपि तेजनारायण लाल द्वारा मैथिली लोकगीतों का वर्गीकरण जितना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता है, उससे कहीं अधिक समीचीन विद्यानाथ झा 'विदित'[5] का वर्गीकरण प्रतीत होता है।

उन्होंने कहा है कि, मैथिली लोकगीतों की संख्या में इतना प्राचुर्य है कि वर्गीकरण करने में स्वाभाविक उलझन उत्पन्न हो जाती है। फिर भी उन्होंने लोकगीतों के धुन के आधार पर विभिन्न गीतों को निम्नांकित रूप से रखने की चेष्टा की है, यथा–(1) विद्युत (2) मान (3) चौमासा (4) बारहमासा (5) बटगमनी (6) सोहर (7) समदाउन (8) ग्वालरी (9) रास (10) लगनी (11) चैतावर (12) योग (13) उचिती (14) मिनती (15) बसन्त (16) झूला (17) फागु गीत आदि।

मानव जीवन विभिन्न भाषाओं से गुजरता हुआ चरम विन्दु पर पहुँचता है। जहाँ उसका अंत होता है। सामाजिक जीवन में इस जीवन की सांस्कृतिक संस्कार, धार्मिक संस्कार, पेशा, विभिन्न ऋतुओं से होकर लोक-जीवन की लोक-गाथा, कथा, नाट्य, नृत्य सामाजिक एवं आर्थिक आदि विभिन्न परिस्थिति जन्य सामाजिक प्रक्रिया का परिक्रमा करनी पड़ती है। अस्तु उपर्युक्त आलोक में लोक-गीतों का अध्ययन करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः अध्ययन में सुविधा हेतु लोकगीतों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

Scanned with OKEN Scanner

(1) जीवन एवं उनके विभिन्न संस्कारों के आधार पर
(2) धार्मिक संस्कारों के आधार पर
(3) पेशों के आधार पर
(4) ऋतुओं के आधार पर
(5) लोक-गाथा के आधार पर
(6) लोक-कथा के आधार पर
(7) लोक-नाट्य के आधार पर
(8) नृत्य एवं नाच के आधार पर
(9) सामाजिक, आर्थिक आधार पर
(10) विभिन्न उत्सवों के आधार पर

जीवन एवं उसके विभिन्न संस्कारों के आधार पर–

भारतीय लोकजीवन धर्मावलम्बित है। जन्म पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक यहाँ का जन-जीवन विभिन्न संस्कारों में प्रतिबद्ध है। हमारे धर्म-शास्त्रों में विभिन्न संस्कारों का विधान है। जिनमें गर्भाधान, जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह तथा अंत्येष्ठि प्रमुख हैं। बिहार के लोकगीतों में प्राग-जन्म संस्कारों का प्रचलन अब पूर्णतया लुप्त हो चुका है। शेष पाँच संस्कारों का मुख्य रूप से वर्तमान युग में भी प्रचलन है। इन संस्कारों के आधार पर बिहार के लोकगीतों यथा मैथिली, भोजपुरी, मगही एवं संथाली लोकगीतों को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। परन्तु, यहाँ मुझे सिर्फ मैथिली लोकगीतों की चर्चा करनी है। इसलिए मैथिली लोकगीतों में जीवन एवं उनके विभिनन संस्कारों के आधार पर गाये जाने वाले गीतों को पाँच मुख्य भागों में बाँटा जा रहा है।

जीवन एवं उनके विभिन्न संस्कारों के आधार पर

(1) पुत्र जन्म के अवसर पर
(2) मुण्डन के अवसर पर
(3) यज्ञोपवीत के अवसर पर
(4) विवाह के अवसर पर
(5) मृत्यु एवं उसके पश्चात्

पुत्र जन्म के अवसर पर

पुत्र जन्म के अवसर पर गीत गाने की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। कतिपय प्राचीन ग्रंथों में इनका उल्लेख है। अथर्ववेद के एक सम्पूर्ण सूक्त में सरल एवं सुरक्षित प्रसव के लिए प्रार्थनाएँ एवं उपचार वर्णित हैं।[6]

आदि कवि वाल्मीकि ने राम-जन्म के समय गन्धर्वो द्वारा गाने का वर्णन किया है।

जुगः कलंचगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो मेदुः पुष्पवृष्टिश्च श्वात्पततः॥

इसी प्रकार कालीदास ने अज के शुभ जन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं द्वारा नृत्य करने एवं मंगल-वाद्य बजाने का उल्लेख किया है।[7]

सखश्रवा मंगल तूर्यामिस्तानाः
प्रमोद नृत्यैः सहतारयोषिताम्।
न केवलं सधनिभागधीपतेः
पपिष्यजभयन्त दितौ क सामन्दि॥

गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम के जन्म पर मंगल गान गाने का उल्लेख किया है।[8]

गाबहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

पुत्र जन्म के अवसर पर गाने जाने वाले विभिन्न गीतों को निम्न प्रकार से श्रेणीबद्ध किया जा रहा है।

(1) सोहर गीत
(2) खेलौना गीत
(3) छठी के गीत
(4) पमरिया गीत
(5) लोरी गीत

मिथिला में जन्म-संस्कार के शुभ अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें "सोहर" कहते हैं। "सोहर" को संस्कृत की "सूतिका" का अप्रभंश रूप कहा गया है।[9] इसे मंगल गीत भी कहते हैं। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में सोहर शब्द की उत्पत्ति "शोभन" से ज्ञात होती है। सोहर के गीत सोहिलो के नाम से भी प्रसिद्ध है।[10]

वैसे सोहर-गीतों के भी अनेक प्रकार हैं–

(क) जनसाधारण के सोहर

(1) पुत्र के जन्म के पूर्व के सोहर
(2) पुत्र के जन्म के बाद के सोहर

(ख) धार्मिक सोहर

(1) पुत्र जन्म से पूर्व के सोहर–इस तरह के सोहर में गर्भाधान के पूर्व कोख की कामना

करने, सुरक्षित एवं सरल प्रसव की गुहार का वर्णन तथा कहीं-कही जन्म लेने वाले शिशु के रूप, चाल-चलन आदि के बारे में शुभकामना का वर्णन किया जाता है–

एते दिन छल वन झाँझर, आब बन हरियर रे।
ललना सीता दाइ रहलि गरभ से सभ मन हरषित रे॥
के मोरा मरूअन काटत खिरहर बुनत रे।
ललना रे के मोरा जायत अयोध्या राम जनायत रे॥[11]

(2) **पुत्र जन्म के बाद के सोहर**–पुत्र के पश्चात् के सोहरों में चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण तथा मंगलमय राजगृह की चर्चा रहती है–

आजु सुदिन एहि देश रमेश जनम लेल रे, ललना।
सुर नर मुनि तहाँ जाय लखि मन मुदित भेल रे।
बहुविधि-बाजत बाज राजगृह सोभित रे ललना
त्रिभुवन सुन्दर बालक सब जग रे॥[12]

(ख) धार्मिक सोहर–मिथिला में धार्मिक सोहर का प्रचलन प्रचुर मात्रा में है। यहाँ स्त्रियाँ रामनवमी एवं कृणाष्टमी में व्रत रखती हैं। इन अवसरों पर यहाँ की ललनाएँ राम एवं कृष्ण के जन्म से सम्बन्धित सोहर गाती हैं, इन सोहरों में देवी देवताओं का वर्णन रहता है।

जन्म लेल भगवान अवध भेल आनन्द रे
ललना रे चलल सकल सुर देव दरस परमानन्द रे॥
द्वार ठाढ़ चतुरानन वेद वखानथि रे
ललना रे सेस सहस्त्र मुख शारदा स्तुति गावथि रे॥
नारद वेनु बजाबथि विनय कर रिझावथि रे
ललना रे शंकर ध्यान लगावथि सेहो डमरु बजाबथि रे॥[13]

जहाँ इस सोहर में भगवान रामचन्द्र के जन्म के समय का वर्णन है, वहीं नीचे के सोहर में भगवान कृष्ण के जन्म से किस प्रकार गोकुल आनन्दित होता है, का चित्रण है–

गोकुला आज सोहावन बाजु वधावन हे
ललना नन्द महरि घर पुत्र की परम आनन्द भेल रे॥[14]

सोहर में शृँगार, हास्य और करुण रस भरे रहते हैं। पुत्र जन्म के अतिरिक्त यह मुण्डन उपनयन के अवसर पर भी गाया जाता है।

करुण रस की झलक हमें मिथिला में बाँझ (जिसे सन्तान नहीं हुआ हो ऐसी स्त्री) के द्वारा अपनी करुण दशा का बखान करते मिलती है।

सासु मोरा निशिदिन मारई ननद गड़ियावै रे।
ललना रे गोतिनी कएल तरमेल वझिनियाँ गरछाओल रे॥[15]

सोहर गाने की प्रथा प्रायः पुत्र-जन्म के अवसर पर ही है। कन्या-जन्म के अवसर पर सोहर नहीं गाये जाते हैं, कारण कन्या के विवाह में दहेज एवं अन्य खर्चा से घर वालों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। स्वभावतः यही कारण है कि मिथिला में कन्या-जन्म के अवसर पर सोहर नहीं गाया जाता है। इसकी झलक सोहर के निम्न पंक्तियों में देखने को मिलती है। जहाँ एक कन्या के जन्म लेने का वर्णन है–

चैत वैशाख के पुरैनि दह पुरैनि दह लहर मारु रे।
ललना ताहि चढ़ि बेटी जनम लेल पियबा विपच्छ भेल रे॥
फाटल पहिरि सोरी साँठव, कथी चौरा भोजन रे।
ललना कड़री के चेरा डाँड़ सेदब पियबा विपच्छ भेल रे॥[16]

साधारणतया मिथिला में सोहर की रचना मिथिला की स्त्रियाँ ही करती हैं, परन्तु भनिता में उन सोहरों के अन्त में, विद्यापति, सूरदास एवं तुलसी दास के नाम जुड़े रहते हैं। कुछ सोहर छन्द में निबद्ध होते हैं, जिसे छन्द परक सोहर कहते हैं।

इस तरह मैथिली लोकगीतों की संख्या अनगिनत है। मिथिला में आज तक जितने लोकगीत उपलब्ध हैं सभी के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। जैसा कि उपरलिखित सोहर के विभिन्न प्रकार को देखने से स्पष्ट हो जाता है। लोकगीत के इतने प्रकारों में से सभी का अलग-अलग वर्णन करना तो काफी विस्तृत काम है। इस लिए अपने कार्य क्षेत्र की सीमा को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव लोकगीतों में विद्यमान संगीत तत्व को देखा जा सकता है।

लोक गीतों में प्रयुक्त स्वर ताल एवं रस

स्वर–लोकगीतों में अधिकतर सात शुद्ध स्वरों और दो विकृत कोमल गंधार और कोमल निषाद स्वरों का प्रयोग मिलता है, अर्थात् उनमें मुख्यतः

Scanned with OKEN Scanner

विलावल, खमाज और काफी ठाठों के स्वर लगते हैं।

अधिकांश लोकगीत शुद्ध स्वरों में हैं। जैसे विलावल थाट में कुछ में कोमल निषाद और कुछ में दोनों निषादों के प्रयोग किए जाते हैं। कुछ लोकगीतों में कोमल गांधार लगता है जैसे काफी थाट में तथा कभी-कभी यह गान्धार कोमल और तीव्र के बीच का लगता है। जो गान्धार की एक श्रुति है। [17] किसी एक लोकगीत की स्वर-परिधि बहुत संक्षिप्त होती है, अर्थात् अधिकांश लोकगीतों में तीन-चार अथवा पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं।[18]

ताल—उत्तर भारत में लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले अवनध एवं घन-वाद्यों में से ढ़ोलक, खंजरी, झाँझ और करताल उल्लेखनीय हैं। इनमें भी ढ़ोलक सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ढ़ोलक के बाज में कहीं-कहीं अद्‌भुत विकास मिलता है। उसके पृथक बोल होते हैं और कुछ ढ़ोलक बादक भी ऐसे मिलते हैं, जो तबले के बाज के सदृश ही ढ़ोलक पर भी विस्तार और चमत्कार दिखाते हैं। किन्तु लोकगीतों में ढ़ोलक पर केवल लय व सरल ताल दिखाना ही पर्याप्त होता है, यद्यपि यह कार्य भी अत्यन्त प्रभावशाली और रोचक ढ़ंग से सम्पादित होता है। लोकगीतों में अधिकतर कहरवा, दादरा, खेमटा और दीपचन्दी तालों का प्रयोग मिलता है। शास्त्रीय संगीतज्ञ भी जानते हैं कि इन तालों के विभागों और ताली, खाली आदि से जो "लय" की चाल निर्मित होती है, वह कितनी सरल सुग्राहय और आकर्षक होती है। मनुष्य मात्र के हृदय में जो प्रधान भाव रहते हैं उनकी अभिव्यक्ति के लिए यह ताल लगभग पर्याप्त है। हर्ष, उल्लास, स्फूर्ति, उत्साह और वीरता आदि भावों के लिए "कहरवा" बहुत उपयुक्त है और "दादरा" भी सहायता पहुँचाती है। 'दादरा' अथवा खेमटा का उपयोग शृंगार व करुण आदि भावों की अभिव्यक्ति में उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह नियम अटल नहीं है, इन तालों का प्रतिकूल रसों में भी प्रयोग मिलता है, किन्तु उपर्युक्त निर्णय अधिकांश प्रयोगों के आधार पर किया गया है। अधिक विलम्बित लय का प्रयोग लोक-गीतों में नहीं होता, इसी से 'दीपचन्दी' ताल भी मध्य व द्रुत लय में भी प्रयुक्त होता है। [19]

स्वरलिपि—अपना विचार और भाव व्यक्त करने के लिए जिस प्रकार भाषा की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार रागबद्ध गीत अथवा धुन को स्थायी रूप देने के लिए स्वरलिपि की अत्यन्त आवश्यकता है।[20]

स्वरलिपि पद्धति का निर्माण सर्वप्रथम श्री भातखण्डे जी एवं विष्णु दिगंबरजी ने किया। श्री भातखण्डेजी ने पुराने घरानेदार उस्तादों के गायनों की स्वरलिपियाँ तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया था। उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण करके उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियाँ तैयार कीं। उस समय कुछ ऐसे भी उस्ताद थे जो अपने गाने की स्वरलिपि किसी प्रकार दूसरे व्यक्ति को बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। पहले केवल गुरु मुख से निकली हुई चीजें और सुरों को प्रमाण मानने का प्रचलन था। श्री भातखण्डेजी ने बड़ी युक्ति एवं कौशल से परदे के पीछे छिप-छिपकर उनका गायन सुना और स्वरलिपियाँ तैयार की तथा बहुत सी स्वरलिपियाँ ग्रामोफोन रिकार्डों द्वारा भी तैयार कीं। इस प्रकार कई हजार गीतों की स्वरलिपियाँ तैयार करके उन्हें "क्रमिक पुस्तक मालिका" नाम से छः भागों में प्रकाशित कराकर संगीत विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसी प्रकार पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने भी कई पुस्तकें तैयार कीं। पलुस्कर जी को स्वरलिपि-पद्धति, जो प्रारंभ में उनके द्वारा चालू की गई थी, अब उसमें कुछ परिवर्तन हो गए हैं। यही कारण है कि विष्णुदिगंबर जी की प्रारंभिक मूल पुस्तकों में तथा आज उनके विद्यालयों में चलने वाली 'राग विज्ञान' आदि पुस्तकों के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है। तथापि वर्तमान स्वरलिपि प्रणाली उनकी प्राचीन प्रणाली से अधिक सुविधाजनक है।

प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धति का विकास न होने के कारण, तीव्र, कोमल स्वरों के चिन्ह न होने के कारण लय, ताल, मात्रा मींड आदि के अभाव में स्वर लिपियों से संगीत विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे।

यद्यपि इन स्वरलिपि-पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएँ लिपिबद्ध करना संभव नहीं हो सका है, उदाहरणार्थ—भारतीय संगीत की विशेषताएँ

Scanned with OKEN Scanner

गमक, गिटकिरी, राग-सौन्दर्य, अलंकार, श्रुति-प्रयोग, स्वर-माधुर्य आदि बारीकियाँ स्वर-लिपि द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। फिर भी वर्तमान स्वरलिपि-पद्धतियों से संगीत विद्यार्थियों को जो सहायता मिली है और मिल रही है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

लोकगीतों की रक्षा के लिए उनका संग्रह एवं स्वरलिपि का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक सभ्यता के प्रचार के साथ लोकगीतों के गवैयों का दिन-प्रतिदिन अभाव होता जा रहा है। आजकल घर की बूढ़ी दादियों के कोमल कंठ में ही ये लोकगीत सुरक्षित हैं। आधुनिक लड़कियाँ इन्हें गाना पसंद नहीं करतीं। शिक्षित लड़के भारतीय सभ्यता के प्रतीक इन गीतों को हेय दृष्टि से देखते हैं। अहीरों के लड़के, विरहा जिनका जातीय गान है, भी अपने बपौती गानों को गाने में लज्जित होते हैं। कभी समय था जब गाँवों में लोकगीतो के गाने वाले की कमी नहीं थी, परन्तु अबतक तो इसके गाने वाले केवल बूढ़े स्त्री-पुरुष ही मिलेंगे, जिनकी संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य हैं। अतः इन गवैयों से इन गीतों को गवाकर यदि इनकी स्वर लिपि न बना ली गई तो कुछ दिनों के बाद गाने की विधि को जानना एक विषम समस्या बन जाएगी। उचित तो यह है कि इन गीतों को गवाकर इनके रिकार्ड तैयार कर ली जाएँ। परन्तु, इन कार्यों के लिए अधिक पैसे की जरूरत होती है, जो किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा संभव नहीं है। इसे तो कोई बड़ी संस्था या सरकार ही सम्पन्न करा सकती है।

स्वरलिपि में प्रयोग किये गए चिन्हों की परिभाषा

जिन स्वरों के उपर नीचे कोई चिन्ह नहीं होता उन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं, जैसे—सा रे ग म

.प = मन्द्र पंचम, प = मध्य पंचम, पं = तार पंचम्

मे = तीव्र मध्यम, म = शुद्ध मध्य, <u>नि</u> <u>ध</u> <u>ग</u> <u>रे</u> = कोमल स्वर

<u>धप</u> <u>निधप</u> = एक मात्रा के स्वर

म^{ग} = म को गंधार का कण, <u>ग</u> ऽ^{म} ऽ^{ग} आन्दोलन

सांप षड्ज से मध्यम तक मीड़

..... = स्वरों के आगे ऐसे जितने चिन्ह होते हैं, उस स्वर को उतनी ही मात्रा तक लम्बा खींचना है, जैसे .....म.....

ऽ = गीत के शब्दों के आगे ऐसे अवग्रह चिन्ह होते हैं तो वहाँ पिछले अक्षर का आखिरी स्वर (आकार-उकार) उतनी ही मात्रा लम्बा खींचकर उच्चारण किया जाता है।

ग = यह चिन्ह गायन में ताल को सम दिखाता है। सम को पहली ताली मानकर शेष तालियाँ उसी आधार से चलती है।

0 = यह चिन्ह ताल के खाली स्थान को बताता है।

(प) = ध प म प = चार स्वर एक मात्रा काल में गाये जाते हैं।

स्वर के उपर इस प्रकार के चिन्ह को मींड़ कहते हैं

जैसे—म प ध नि

अर्थात् यहाँ पर मध्यम से निषाद तक मोड़ ली जाएगी।

कुछ प्रमुख मैथिली लोकगीतों की स्वरलिपि एवं उसमें निहित संगीत तत्व का विश्लेषण-

भगवती गीत

सींह पर एक कमल राजित, ताहि उपर भगवती
उदित दिनकर लाल छवि अति, रूप सुन्दर

धावती
दाँत खट-खट जीह लह-लह मुण्डमाल विराजती
शंख गहि-गहि, चक्र गहि-गहि
खर्ग गहि रक्ष पालती माँ।

स्थायी

ग	–	रे	सा	सा	<u>सानि</u>	सा	<u>सानि</u>	रे	सा	नि़	–	ध	ध
सीं	ऽ	ह	प	र	एऽ	क	कऽ	म	ल	रा	ऽ	जि	त
0			1		2		0			1		2	

<u>सानि</u>	रे	रे	<u>रेग</u>	<u>गरे</u>	म	म	ग	ग	रे	सा	–	-	–
ताऽ	ऽ	हि	ऊऽ	ऽऽ	प	र	भ	ग	व	ती	ऽ	ऽ	ऽ
0			1		2	0		1		2			

Scanned with OKEN Scanner

ग	रे	सा	सा	सा	सा	सा	सानि	रे	सा	नि	नि	ध़	ध़
उ	दि	त	दि	न	क	र	लाऽ	ऽ	ल	छ	वि	अ	ति
0			1		2		0			1		2	

सानि	रे	रे	रेग	गरे	प	म	ग	ग	रे	सा	–	–	–
रूऽ	ऽ	प	सुऽ	ऽऽ	न्द	र	धा	ऽ	व	ती	ऽ	ऽ	ऽ
0			1		2		0		1		2		

अन्तरा

प	प	प	प	प	प	प	धप	ध	म	ग	ग	रे	रे
दाँ	ऽ	त	ख	ट	ख	ट	जीऽ	ऽ	ह	ल	ह	ल	ऽ
0			1		2		0			1		2	

रे	रे	रे	रेग	गरे	म	म	ग	ग	रे	सा	सा	सा	सा
मु	ऽ	ण्ड	माऽ	ऽऽ	ल	वि	रा	ज	ती	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
0			1		2		0			1		2	

प	प	प	म	प	प	प	प	धप	ध	म	ग	ग	रे	रे
शं	ऽ	ख	ग	हि			ग	हि	चऽ	ऽ	क्र	ग	हि	ग	हि
0			1				2		0		1			2	

रे	रे	रे	रेग	गरे	म	म	ग	ग	रे	सा	सा	सा	सा[21]
ख	ऽ	र्ग	गऽ	हिऽ	र	क्ष	पा	ऽ	ल	ती	ऽ	माँ	ऽ
0			1		2		0			1		2	

इस गीत में भगवती का वर्णन बहुत अच्छे ढ़ँग से किया गया है। इस गीत में स्थायी एवं अन्तरा एक जैसा नहीं है। गीत के लय पर विचार करने से पता चलता है कि यह गीत विलावल राग से समता प्राप्त किया हुआ है। विलावल राग में सभी स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं तथा सातों स्वर लगते हैं। इसका गायन-काल दिन का प्रथम प्रहर है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। थाट पद्धति के अनुसार विलावल एक थाट भी है।

इस भगवती गीत को विलावल में रखा जा सकता है। इस गीत का निर्माण सात स्वर से हुआ है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगे हैं तथा ताल रूपक में निबद्ध है। इस ताल में सात मात्राएँ और तीन विभाग होते हैं। पहली मात्रा पर सम अथवा खाली चौथे और छठी मात्रा पर क्रमशः पहली दूसरी ताली पड़ती है। यह एक ऐसा ताल है जिसमें पहली मात्रा पर खाली होता है और वही पर सम दिखाया जाता है।

अन्तरा के चलन में 'माँझ खमाज' राग की छाया आती है, किन्तु उसका आभास बहुत थोड़ा होता है। माँझ खमाज में कोमल नि का प्रयोग अवरोह में होता है, जो कि स्वर लिपि में नहीं आया है तथा ऐसा जान पड़ता है कि माँझ खमाज की छाया का आभास किया भी जा सकता है और नहीं भी, जिसका कारण अति अल्प आभास है। माँझ खमाज रात्रि में गाया जाता है। भगवती गीत में उनकी कुछ छाया एवं एक विशेष भाव भी है, क्योंकि यह गीत रात्रि में भी गाया जाता है।[21]

महेशवाणी

आगे माइ, जोगिया मोर जगत सुखदायक,
दुख ककरहु नहिं देल।
दुख ककरहु नहिं देल महादेव,
दुख ककरहु नहिं देल॥
एहि जोगिया के भाँग भुलओलक,
धथुर खोआए धन लेल
आगे माइ, कार्तिक, गनपति दुइ जन बालक,
जग भरि के नहिं जान
तनिका अभरन किछुओ न थिकइन,
रति एक मोन नहिं कान॥
आगे माइ, सोना रूपा अनका सुत
अभरन अपना रूद्रक माल
अपना सुत लए किछुओ न जुरइनि,
अनका लए जंजाल॥
आगे माइ छनमे हेरथि, कोठि धन
बकसथि ताहि देबानहि थोर।
भनहि विद्यापति सुनू हे मनाइनि,
थिकाह दिगम्बर मोर॥[22]

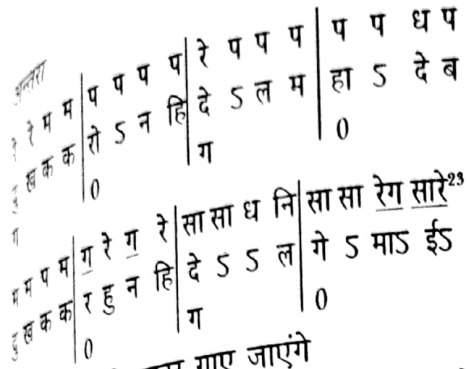
महेशवाणी—कहरवा ताल

स्थायी

ध	नि	सा	सा	रेग	सारे	रे	म	ग	रे	सा	सा	गु	रे	सा	सा
आऽ	गे	ऽ		माऽ	रऽ	जो	गि	या	ऽ	मो	ऽ	र	ज	ग	त
ग				0				ग				0			

ध	नि	सा	सा	रेग	सारे	रे	म	गु	रे	सा	गु	रे	सा	सा	सा
सु	ख	दा	ऽ	यऽ	कऽ	दु	ख	क	क	रो	ऽ	न	हिं	दे	ऽल
ग				0				ग				0			

Scanned with OKEN Scanner



शेष अन्तरा इसी प्रकार गाए जाएंगे

इस गीत में शिव के सम्बन्ध में कहीं गई बातें हैं। महेशवानी में तत्वतः महेश की वाणी नहीं होती, अपितु शिव के समादर में कुछ वचन होते हैं। महेशवानी अकसर गौरी की माता मेनका को सम्बोधित की जाती है। महेशवानियों में शिव के जीवन स्वरूप तथा उनके समस्त गतिविधियों के चित्र चित्रित रहते हैं। प्रस्तुत स्वरलिपि में सातों स्वरों का प्रयोग हुआ है जो नगण्य है। कोमल–ग, नि रहने के कारण इसे हम काफी राग के अन्तर्गत कह सकते हैं। राग काफी में कोमल गंधार, निषाद और शेष स्वर शुद्ध प्रयोग किये जाते हैं। उक्त राग का गायन–समय मध्य रात्रि है।

उक्त गीत को आठ मात्रा कहरवा ताल में निवद्ध किया गया है।

वटगमनी गीत

कुंज-भवन सएँ निकसलि रे, रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बसु माधब हे, जनि करु बटमारी॥
छाड़ कान्ह मोर आँचर रे, फाटत नव सारी।
अपजस होएत जगतभरि हे, जनि करिअ उघारी॥
संगक सखि अगुआइलि रे, हम एकसरि नारी।
दामिनि आए तुलाएलि हे, एक राति अँधारी।
भनहि विद्यापति गाओल हे, तोहे परम गमारी॥[24]

वटगमनी गीत–ताल कहरवा

स्थायी

नि	सा	ध	नि	सा	सा	सा	सा	ग	ग	ग	म	रे	सा	नि	रे
कुँ	ऽ	ज	भं	व	न	सें	ऽ	नि	क	स	लि	र	ऽ	रों	ऽ
ग				0				ग				0			

ग	ग	रे	रे	सा	सा	सा	सा	नि	सा	ध	नि	सा	सा	सा	सा
क	लगि		रि	धा	ऽ	रि	ऽ	ए	कहि		नं	ग	र	ब	सु
ग				0				ग				0			

ग	ग	ग	म	रे	सा	नि	रे	ग	ग	रे	रे	सा	सा	सा	सा
मा	ऽ	ध	व	हे	ऽ	ज	नि	क	रु	ब	ट	मा	ऽ	फा	ऽ
ग				0				ग				0			

अन्तरा

प	प	रे	म	प	प	प	प	ध	प	म	म	ग	रे	नि	रे
छा	ऽ	ड़	का	ऽ	न्ह	मो	र	ऑ	ऽ	च	र	रे	ऽ	फा	ऽ
ग				0				ग				0			

ग	ग	रे	रे	सा	सा	सा	सा	नि	सा	ध	नि	सा	सा	सा	सा
ट	त	न	व	सा	ऽ	री	ऽ	अ	प	ज	स	हो	ऽ	ए	त
ग				0				ग				0			

ग	ग	ग	म	रे	सा	नि	रे	ग	ग	रे	रे	सा	सा	सा	सा
ज	ग	त	भ	रि	हे	ज	नि	क	रि	अ	उ	धा	ऽ	री	ऽ
ग				0				ग				0			

सभी अन्तरा इसी प्रकार गाये जाएंगे।

बटगमनी का अर्थ है पथ पर चलना। इसका गायन चलते-चलते होता है। स्त्री समाज किसी विशेष अवसर पर एक रास्ते में चलते हुए इसका गायन करती हैं। जैसे–विवाह के अवसर पर आम एवं महुआ पूजन के क्रम में, यज्ञोपवीत के दिन से पहले पड़ने वाले मंगल के दिन, जिसे माटि-मंगल कहा जाता है, युवतियाँ अपने-अपने सिर पर थाली लेकर लाल-पीले वस्त्र से ढ़ँककर नजदीक के तालाब तक जाने एवं आने के क्रम में इस गीत को गाती हैं। मुंडन एवं जनेउ संस्कार समाप्त होने के बाद मंदिर पूजा करने वरुआ को महिलाएँ ले जाती हैं, इस क्रम में भी इस गीत को गाया जाता है। डॉ. चन्द्रनाथ मिश्र ने इस बटगमनी की स्वरलिपि निम्न प्रकार से तैयार की है।

इस प्रकार मिथिला में लोक संगीतों की संख्या अनगिनत है। जिनमें संगीत तत्त्व कूट-कूट कर भरा हुआ है।

संदर्भ

1. संगीत मैनुअल : डा. मृत्युंजय शर्मा, पृ. 290

Scanned with OKEN Scanner

2. तत्रैव
3. डा. तेजनारायण लाल, मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ.—64-65
4. अथर्ववेद, 1-11
5. रामायण बालकाण्ड, 18-17
6. रघुवंश 3-19
7. रामचरित मानस बालकाण्ड
8. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डा. तेजनारायण लाल, पृ. 101
9. भोजपुरी ग्राम्य, गीत भाग-1, डा. कृष्णदेव उपाध्याय
10. मैथिली लोकगीत : डॉ. अणिमा सिंह, पृ. 201
11. मैथिली लोकगीत : डॉ. अणिमा सिंह, पृ. 282
12. मैथिली लोकगीत : डॉ. अणिमा सिंह, पृ. 213
13. मैथिली लोकगीत : डॉ. अणिमा सिंह, पृ. 213
14. मैथिली भक्ति काव्य का संगीत शास्त्रीय अध्ययन, (शोध प्रवन्ध) डा. लालति कुमारी, ल0ना0मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (2008)।
15. लोक कंठ से
16. तत्रैव
17. भोजपुरी लोक साहित्य, पृ. 376, डा. कृष्णदेव उपाध्याय का अध्यापन
18. लोक संगीत अंक, 1966, पृ. 46, लोकगीतों का संगीत पक्ष, महेशनारायण सक्सेना
19. मिथिलाक लोकगीतक संगीत शास्त्रीय अध्ययन, डा. चण्डेश्वर झा, पृ. 292-294
20. तत्रैव
21. संगीत तत्व के परिप्रेक्ष्य में विद्यापति पदावली
22. विद्यापति की पदावली पृ.-135
23. पी.एच.डी. शोध प्रबंध—डॉ चन्द्रनाथ मिश्र
24. मैथिली भक्ति काव्य का संगीत शास्त्रीय अध्ययन, (शोध प्रवन्ध) डा. लालति कुमारी, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (2008)।

Scanned with OKEN Scanner

महाराष्ट्र के स्त्रियों का खेल नृत्य

संतोष दत्तात्रेय परचूरे* एवं डा. पुष्पम नारायंण**

लोकनृत्य शास्त्रीय राग-रागनियों की ऋजुता और क्लिष्टता से दूर समाज के प्रति समर्पित होता है। यह व्यक्तिगत एवं निजता के दंभ से बचता हुआ अपनी सहजता, सरलता और निश्छलता के साथ अपने हर्ष में सबको सम्मिलित करता है। यह प्रकृति के वात्सल्यपूर्ण अंचल में अपने साथ सबको बुला लेता है।

प्राचीनकाल से स्त्री पुरुषों का हर क्षेत्र में साथ देती है किन्तु अपनी स्त्रियोचित मर्यादाओं व क्रियाकलापों पर पुरुष की छाया नहीं पड़ने देना चाहती। लोकनृत्य के संदर्भ में महाराष्ट्र में स्त्रियों का अपना एकछत्र राज्य है। यहां स्त्रियों के बीच खेल नृत्य अत्यंत लोकप्रिय है। अतः महाराष्ट्र में प्रचलित स्त्रियों के खेलनृत्य की चर्चा कर रहा हूं।

महाराष्ट्र में स्त्रियों के खेल नृत्यों की सबसे बड़ी विशेषता है कि घूँघट मुक्त प्रान्त होते हुए भी इनके नृत्यों में वादक के रूप में भी पुरुषों का प्रवेश कभी नहीं रहा। छोटे-छोटे लड़के अवश्य दर्शक रूप में रहते है। ये नृत्य खेल, नृत्यों में ताली, चुटकी, पदन्यास, शारीरिक करतबों की लोच-लचक के साथ गीतों की लयात्मकता पर अनोखी संरचना होती है।

महाराष्ट्र में ये खेल नृत्य श्रावण में नागपंचमी पर, भाद्रपद में गौरी गणपति स्थापना और हरितालिका के जागरण में तथा आश्विन में नवरात्रि और शरद पूर्णिमा पर किये जाते है। ये अवसर सभी जाति वर्ग की स्त्रियों के नृत्य खेल के हैं पर सावन के चार मंगलवारों को केवल ब्राह्मणों में नवविवाहिताएं मंगलागौर की (पार्वती) पूजा करती है। उस समय रात्रि जागरण में ये खेल नृत्य भी उन्हीं में होते है। यह लक्ष्मी की स्थापना पर 'घागर फुकणे' (गगरी फूंकना) नृत्य केवल चितपावन ब्राह्मणों में किया जाता है। थोंडला नृत्य भी कुमारियां करती है।

आज भी मंगलागौर के रात्रि जागरण में किये जाते ये खेल नृत्य महाराष्ट्र के सभी वर्गो के कोकणस्थ, देशस्थ इत्यादि ब्राह्मणों में अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते है। ये उनकी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर रहे है। इन महिला नृत्य खेलों का प्रचलन युग की सामाजिक आवश्यकता थी। लड़कियों के विवाह छोटी उम्र में होते थे। ससुराल के बंदिशों भरे जीवन में जिसे अपने गीतों में वे जेलखाना तुरंगवास भी कहती है। नागपंचमी, नवरात्रि विशेषतः मंगलागौर की पूजा और रात्रि जागरण में ही नव वधुओं को समवयस्क सखी सहेलियों के साथ नाते रिश्ते के आत्मीयों की ममता तले नाचने खेलने का आनंद मिलता था।

आज तो रात्रि जागरण और नृत्य खेलों का समय व्यस्तताओं भरे जीवन के चलते कम हो गया है पर सात आठ वर्ष पहले तक ये खेल नृत्य मंगलागौर की पूजा और भोजन इत्यादि समाप्त होने के बाद दिन के तीसरे पहर से शुरू होकर सुबह चार-पांच बजे तक चलते थे। थकान और ऊब गाते-नाचते पास भी नहीं फटकती थी। उखाणों (द्विपदी रचना) की चुहुल भरी रचना में पति का नाम गूंथना जरा सी भी थकी मुर्झाई नव वधू में नव चैतन्य फूंकने का, नया जोश-उत्साह भरने का अचूक

*शोध छात्र, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा
**विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

नुस्खा था और आज भी है।

ये खेल नृत्य पारंपरिक है, पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते ये सभी पीढ़ियों में सामीप्य और संवाद बनाये रखने के अनूठे उपक्रम थे। आज भी कुछ अंशों में है। उपर्युक्त अवसरों के कोकण मराठवाड़ा, विदर्भ, खानदेश उत्तर और मध्य महाराष्ट्र में, कर्नाटक और मुम्बई की तटवर्ती महानगरीय संस्कृति में स्थानभेद से थोड़ा बहुत अंतर लिये महाराष्ट्र के स्त्रियों के खेल नृत्य यहां प्रस्तुत है।

फुगड़ी

फुगड़ी महाराष्ट्र का ऐसा विशिष्ट नृत्य है जो नृत्य नाट्य शोभा यात्राओं की झांकियों में किसी भी अवसर पर बीच-बीच में कहीं भी देखा जा सकता है। यह स्त्रियों का ही नहीं, स्त्री-पुरुष-आबाल-वृद्ध सभी का प्रिय नृत्य है।

फुगड़ी, स्त्री नृत्यों का तो सिरमौर है। किसी भी नृत्य उत्सव के आयोजन में सबसे पहले फुगड़ी नाची जाती है। फुगड़ी की लोकप्रियता का विशेष कारण है कि फुगड़ी उखाणों (द्विपदीय काव्य रचना) के साथ नाची जाती है। चुप्प फुगड़ी के विषय में यहां परंपरा से कहा जाता है :–

मराठी–लाही बाई लाही मक्याची लाही
मुक्यांना फुगड़ी शोभत नाहीं
हिन्दी– फूले सखी फूले मक्का के फूल
चुप्प फुगड़ी शोभा नहीं देती

फुगड़ी नाचतें समय कहे जाते उखाणे पारम्परिक भी होते है और नाचते-नाचते तुरंत रचे हुए भी। उखाणों में स्त्री हृदय की भावनाएं नई-नई कल्पनाओं के साथ काव्यात्मक अभिव्यक्ति पाती है। आकांक्षाएं अंगड़ाई लेती है। फुगड़ी नृत्य कला, संगीत, नृत्य प्रेमी महाराष्ट्रीय मन के उचंग और बरंग है। फुगड़ी नाचने के साथ मुख से निकली ध्वनि जिसमें 'पिंगा' कहा जाता है, हर्ष भरी किलकारी ही है।

सम्पूर्ण महाराष्ट्र में फुगड़ी नाचने के अनेक रूप-बंध है। प्रमुख रूप में फुगड़ी एक दूसरे का हाथ पकड़कर गोल-गोल घूमकर नाची जाती है। हाथों के पकड़ने के तरीके और पदन्यास अंग संचालन से फुगड़ी के कई प्रकार बनते है।

दो हाथ की फुगड़ी

यह फुगड़ी नृत्य का सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रचलित रूप है। यह नृत्य करते हुए महिलाएं एक दूसरे के सामने खड़ी होकर अपने दांये-बांये हाथ क्रास करे पकड़ती है। अपना पूरा शरीर आगे-पीछे करके एक दूसरे को खींचकर गोल-गोल घूमती है। इस नृत्य में उनका दाहिना पैर जमीन पर पटका जाता है, बांया पैर एक दूसरे के पास रहकर एक ही जगह घूमता रहता है। इस नृत्य में बांया पैर मध्यबिन्दू है, इसलिए एक ही जगह घिसटता घूमता रहता है और दांये पैर को तेजी देने में, गति पाने में सहायक होता है। फुगड़ी नृत्य में नाचनेवालियों की संख्य आठ तक हो सकती है।

फुगड़ी नाचते समय कहे जाते उखाणे (द्विपदीय रचनाएं) अधिकतर उसी समय रचकर गाई जाती है।

एक हाथ की फुगड़ी

जैसा कि नाम से स्पष्ट है। यह नृत्य स्त्रियां एक दूसरे के हाथ पकड़कर करती है। इसमे बांया पैर साथ लाकर पूरा शरीर पीछे कर नाचा जाता है, इस नृत्य में हाथों की पकड़ मजबूत होना चाहिए। यह नृत्य करते निम्न गीत गाती है–

मराठी–एका हाताची फुगड़ा फुगड़ी
मामा घेतोया लुगड़ी लुगड़ी
मामा माझा गौरा गौरा
मामी माझी काली काली
हिन्दी– एक हाथ की फुगड़ी फुगड़ी
मामा ला रहा साड़ी साड़ी
मामा मेरा गोरा गोरा
मामी मेरी काली काली

भुजा फुगड़ी

यह नृत्य करते समय स्त्रियां एक दूसरे के सामने खड़ी होती है और एक दूसरे की दांयी-बांई भुजा पकड़ती है। बांया पैर एक साथ लाकर दांया पैर जमीन पर पटकती हुई वृत्ताकार घूमती है।

बैठी फुगड़ी

यह फुगड़ी नाचते समय समान जोड़ी की लड़कियां/स्त्रियां लहंगा या साड़ी का कछोटा मारकर

Scanned with OKEN Scanner

...फिर एक बार दांयां पैर एक बार ...पीछे सरकाते हुए उछल-उछलकर ...घूमते हुए यह नृत्य किया जाता है।

अकेली फुगड़ी

यह एकल फुगड़ी नृत्य है। इसमें उखाणे और ...कहे जाते हैं, गाये नहीं जाते। यह नृत्य करते ...नाचनेवाली अपने ही दोनों हाथ घुटनों के नीचे ...आगे लेकर दोनों हाथ जोड़कर कभी उछलकर ...और कभी बांयी ओर उचक-उचककर गोलाकार ...है। यह फुगड़ी का नृत्य रूप कठिन होता है।

चक्की फुगड़ी

चक्की फुगड़ी नृत्य करते समय दोनों में एक ...छोटी और छरहरी छांटी जाती है। यह नृत्य भी ...फुगड़ी नृत्यों की तरह दांये बांये हाथ एक ...में गूंथकर ही किया जाता है लेकिन जो छोटी ...वो अपना दांया पांव बांये पैर पर रखती है उसे ...पांव पर ही फुगड़ी नाचनी होती है। जो बड़ी है ...छोटी को खींचते हुए सारा भार संभालते हुए ...होता है। यह नृत्य चार स्त्रियां एक साथ कर ...है।

चक्की फुगड़ी के दूसरे प्रकार में दो स्त्रियां आमने-सामने बैठती है, अपने दोनों पैर एक दूसरे के पास लाती है, हाथों को भी जोड़कर अपनी ओर खींचती गोलाकार घूमती है। यह फुगड़ी चक्की जैसी दिखती है।

पटा फुगड़ी

यह नृत्य एकल नृत्य है। पुराने जमाने मे बैठने के पट्टे दीवार से टिकाकर रखे जाते थे। यह नृत्य दोनां हाथों से चुटकियां बजाते हुए अपना दांया–बांया पैर पट्टे पर पटक कर गोल घूम कर लिया जाता है। चुटकियों की आवाज के साथ पट्टे पर पांव पटकने से पैंजन बिछुए और अनवटों की आवाज के साथ तालमेल बिठाकर किया जाता है, पदन्यास बड़ी मधुर लय में फैलता है।

नाखून फुगड़ी 'नखुल्या'

इस नृत्य में बराबर की दो स्त्रियां/लड़कियां अपने हाथों के पंजे एक दूसरे के हाथों के पंजों में अटकाकर पकड़ लेती है, फिर अपनी ...हुए आगे-पीछे झुकते हुए नाचती है। इस ... सारा जोर हाथ की उंगलियों पर रहता है।

झिम्मा खेल नृत्य

जिस तरह महाराष्ट्र में फुगड़ी लोकप्रिय नृत्य है, उसी तरह झिम्मा भी। यह समूह नृत्य भी है और युगल नृत्य भी। यह नृत्य वे महिलाएं भी कर सकती है जो अधिक ताकतवर नहीं है। क्योंकि इसमें अंग संचालन में अधिक शक्ति नहीं लगानी पड़ती। नृत्य में भाग लेने स्त्रियां आमने-सामने जोड़ियों में गोलाकार खड़ी होती है। तब एक दूसरे को ताली मारकर नाचा जाता है। जब जोड़ियाँ अधिक हों तो एक बार दांये बाजू एक बार बाँये बाजू घूमकर तालियां देना होती है। झिम्मा नृत्य के भी फुगड़ी की तरह नाचने के कई-कई प्रकार है।

सादा झिम्मा

जब दो स्त्रियां एक दूसरे को ताली मारकर साथ-साथ नाचती है तो यह सादा झिम्मा कहा जाता है। सादा झिम्मा नाचने के बहुत से पारंपरिक गीत है।

मराठी– झिम पोरी झिम, कपालीचं भिंग
भिंग गेले फुटून, पोरी गेंल्या उठून
आंबा पिकतो, रस गलतो
कोकण का राजा बाई झिम्मा खेलतो
अंबयाची ढाली, (डहाली) टप टप गले
कोकण चा राजा बाई झिम्मा खेले

हिन्दी– झिम्मा (नृत्य का नाम) सखी झिम्मा,
माथे कांच की बिन्दी
कांच की बिन्दी फूट गई सखी चली गई
आम पकता रस चूता, कोकण का राजा सखी झिम्मा खेलता
अम्बा की डाली टप टप टपके कोकण का राजा सखी झिम्मा खेले

लाडू झिम्मा

लाडू (लड्डू) झिम्मा नृत्य एक बार ताली देकर फिर अपने ही चारों ओर घूमकर घूमते समय एक,

Scanned with OKEN Scanner

दो, तीन, तीन ऐसा बोलते हुए और उसी तरह से तालियां मारते हुए नाचा जाता है। इसके साथ ही इस तरह नाचते बोलते हुए उछलकर छलांग लगा एक दूसरे के आगे जाना व उसी तरह पीछे आना होता है। झिम्मा नाचने का यह प्रकार 'लाडू झिम्मा' कहा जाता है।

कंधों का झिम्मा

झिम्मा के इस नृत्य में स्त्रियां आमने-सामने खड़ी होती है। स्वयं के हाथ पर ताली मारकर उछलती है और हाथ का पंजा कंधे पर रखती है, फिर एक दूसरे को तालियां देती है।

कभी-कभी इसी नृत्य में अपने चारों ओर चकरी सी तीव्रगति से घूमती हुई इधर भी और उधर भी उछलकर ताली देने का प्रयास साधते हैं, यह नृत्य तब मनोहरी होता है।

मंडलाकार झिम्मा (फेरा चा झिम्मा)

यह झिम्मा का समूह नृत्य है। ए.जी. आगरकर के मतानुसार यह टिपरी नृत्य के सदृश्य ही है। अंतर इतना है कि इसमें पदन्यास टिपरी (डंडा) की जगह एक बार अपने हाथों की ताली बजाकर, दूसरी बार जोड़ी की महिला के साथ ताली बजाने की ताल पर किया जाता है।

इस नृत्य में एक-एक जोड़ी एक बार दायें बाजू, एक बार बांये बाजू में तालियां देती हुई गोलाकार घूमती है। चकरी के इस झिम्मा में ताली देते हुए कमर काफी झुकाकर दांयी-बांयी अंगों को झोंका देकर तालियां दी जाती है। शुरू में यह नृत्य मंद मति से प्रारंभ होता है फिर क्रय से लय गति बढ़ाते हुए मुंह से पिंगा-पिंगा की आवाज करते हुए समाप्त होता है।

रूँ-रूँ या हूं हूं की आवाज करना या पिंगा पिंगा पोरी पिंगा या फिर सिर्फ पिंगा पिंगा पिंगा कहना है। यह नृत्य का ऐसा अंग है जो कोई भी नृत्य करते समय बीच में आता है। पिंगा नृत्य भी है।

टेढ़ा झिम्मा या चार चनी का झिम्मा

इस नृत्य प्रकार में जब दो जोड़ियों की चार स्त्रियां आमने-सामने खड़ी होकर नाचती हैं तो वे कभी इधर कभी उधर टेढ़े-तिरछे आते-जाते यह नृत्य करती है। इसे टेढ़ा झिम्मा कहते है। इसमें एक और भी तरीका अंग संचालन का रहता है। झिम्मा नृत्य में सामान्य रूप से नाचते हुए सामने वाली स्त्री को सीधे खड़े रहकर या कभी थोड़ा झुककर ताली दी जाती है। इस प्रकार में नाचने वाली अपने सामने वाली स्त्री के हाथों के ऊपर से या नीचे से अपने हाथ ऊपर नीचे करते हुए ताली देती हुई यह नृत्य करती है।

इसमें दो जोड़ियां अपने सामने खड़ी जोड़ियों के पैरों को दोनों हाथों से जकड़ते हुए बिना चूके ताली मारकर नृत्य करती है।

महाराष्ट्र में संख्या और प्रकारों की दृष्टि से झिम्मा नृत्य दो, चार, छह, आठ, दस जितनी चाहिए उतनी नाचने वालियों के साथ अनेक रूपाकारों में बहुत तरीकों से नाचा जाता है।

मुर्गा नृत्य

इस नृत्य खेल में बांये पैर पर दांया पैर डाला जाता है। फिर उस पैर के घुटने पर दोनों हाथों की उंगलियां एक दूसरे में फंसाकर दोनों हाथ रखे जाते है और उछल-उछलकर जैसे मुर्गा उछलता है यह नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में अपने आसपास घूमना होता है। बीच बीच में पिंगा डाला जाता है।

नाच ग घुमा-सूप नृत्य

'नाच ग घुमा' समूह नृत्य है। 'घुमा' का अर्थ डा. सरोजिनी बाबर ने नाचने वाली या सूप घुमाने वाली किया है और श्री आगरकर ने ' डिजैक्टेड फिलिंग गर्ल'। इस नृत्य में 20-25 स्त्रियां गोलाकार खड़ी होकर लाडू झिम्मा नाचती है। इस मंडल के बीच में एक या दो स्त्रियां सूप नचाती हुई नाचती है। इस नृत्य में सूप नचानेवाली स्त्रियों के हाथों की अंगूठियां सूप पर खन-खन बजती है और मंडलाकार नाचनेवाली स्त्रियों के और सूप वालियों के पैरों के जोड़वी मासूलया—(बिछुओं के दो प्रकार) उसी लय में झिन-झिनाते है। तालियों की ताल मिल अनोखा समा बांधती है। यह नृत्य सूप नचानेवाली और शेष नाचने वाली स्त्रियों के बीच प्रश्नोत्तरी संवादगी पर चलता है।

Scanned with OKEN Scanner

कुरसी या मिरची नृत्य

यह नृत्य भी समूह नृत्य है और इसे मंगलागौरी के जागरण में सिर्फ ब्राह्मण स्त्रियां ही नाचती है। इस नृत्य का रूप ऐसा है कि दस-बीस स्त्रियां गोल बनाकर बीच में किसी एक स्त्री को घेर लेती है और लाडू झिम्मा नाचते हुए उससे प्रश्न करती है–

मराठी - खुर्ची का मिर्ची? जाशील कशी?
सासू मारीते बरं करीते
हिन्दी - कुर्सी या मिर्ची? जायेगी कैसे?
सास मारती अच्छा करती

इस नृत्य गीत में नाचते-नाचते घर के सभी लोगों जिठानी, ननद इत्यादि की शिकायत की जाती है। घेरे में कैद, स्त्री नाचते-नाचते घेरा तोड़कर बाहर आने का प्रयत्न करती है। यह पूरा नृत्य झुक-झुककर एक दूसरे के निकट आते-आते किया जाता है और घेरे की स्त्री के बाहर निकल आने पर समाप्त हो जाता है। लेकिन बहुत समय तक कोई उसे बाहर आने ही नहीं देता। जब वह कोशिश करती है और निकलने की कोशिश नाकाम रहती है तो सबकी हंसी फूट पड़ती है। इससे यह नृत्य अत्यंत रंगीन बन जाता है।

इस नृत्य के लिए एक बड़ी और एक छोटी लड़की आवश्यक है। बड़ी लड़की अपने सामने छोटी लड़की को खड़ा करती है और उसके कंधों के नीचे से हाथ डालकर अपने पंजे फंसाती है। छोटी लड़की अपने पैरों से बड़ी लड़की के पैरों को घेरती है। अपने दोनों हाथ लंबे कर हथेलियां फैलाकर आगे झुकती है। इसके बाद 'मोर मोर पानी कितना?' पूछते हुए नृत्य किया जाता है। रंग-बिरंगे वस्त्रों में सुसज्जित लड़कियों का यह नृत्य अत्यंत लुभावना लगता है। किन्तु इस नृत्य मं संतुलन बहुत रखना पड़ता है। छोटी लड़की छरहरी हो तो यह कार्य सहज बन जाता है।

सौत-सौत का झगड़ा नृत्य

यह नृत्य सिर्फ मंगलागौरी के जागरण मे ही किया जाता है। इसे करते समय दो स्त्रियां सौत बनी एक दूसरे के सामने खड़ी होती है। कमर झुकाकर एक दूसरे की ओर क्रोध से देखती है। खोखली तालियां बजाते हुए एक दूसरे के ऊपर चढ़-चढ़कर आती है।

रई नृत्य

रई नृत्य युगल नृत्य है। यह दो लड़कियाँ/स्त्रियां करती है। दो स्त्रीं में से एक रई बनी दीवार के पास अपने दोनों हाथ सिर के ऊपर गुंथे हुए लिये खड़ी रहती है। वह धीरे-धीरे एक बार दाईं ओर दूसरी बार बांई ओर जिस तरह मथानी में रई नाचती है वैसे नाचती रहती है। दूसरी उसके सामने खड़ी होकर रई से लिपटी रस्सियां खींचने की मुद्रा में अपने दोनों हाथ बारी-बारी से आगे-पीछे लेकर झुककर नाचती है। इस वक्त दोनों के ओठों पर 'पिंगा-पिंगा' ही होता है। यह उच्चारण मथानी में रई घूमने की ध्वनि के सदृश्य लगता है। कुशलता प्राप्त नाचनेवालियों का यह नृत्य दर्शनीय होता है।

गोफ नृत्य

मंगलागौर और शरद पूर्णिमा के नृत्य खेलों में गोफ अत्यंत सुन्दर और प्रमुखता प्राप्त नृत्य है। मंगलागौर में तो यह नृत्य अवश्य ही नाचा जाता है। 'गोफ महाराष्ट्र के अत्यंत कलात्मक और लय तालबद्ध पदन्यास का नृत्य है। यह नृत्य गौरी गणपति के समय पुरुष वर्ग भी करता है। गोफ रंगीन डोरियों, रिबन, दुप्पटों या साड़ियों से नर्तकों द्वारा नाचतें हुए बुनी गई चोटी जैसी रचना को कहते है। इसी पर नृत्य का नाम पड़ा है।

इस नृत्य में तरह-तरह के रंगों की डोरियों साड़ी या दुपट्टे एक गोले में एक साथ ऊंचाई पर बंधे लटके होते है। आठ दस स्त्रियॉ नाचने के लिए जोड़ी से गोलाकार खड़ी होती है। प्रत्येक नाचनेवाली अपने बॉयें हाथ में एक डोरी लेती है तब वे टिपरी नृत्य नाचते हुए गोफ बुनती और उसी प्रकार उसे खोलती है। गोफ का नाचते हुए बुना जाना और खोलना अत्यंत दर्शनीय और उत्सुकता पूर्ण होता है। किन्तु एक भी पदन्यास गलत होने पर बिगड़ जाता है, गोफ खुलता ही नहीं।

Scanned with OKEN Scanner

गोफ नृत्य या गोफ नाम से नृत्य गुजरात में भी होता है। दक्षिण भारत में गोफ का नाम 'पिनाल कोलाट्टय' है।

बेलन नृत्य

यह नृत्य भी मंगलागौर का विशेष नृत्य है। मंगलागौर के रात्रि जागरण में चार लड़कियां/स्त्रियां हाथों में बेलन लेकर यह नृत्य करती है। झिम्मा की तरह यह नृत्य भी वृत्ताकार है। पहले नाचनेवाली दो दो की जोड़ी बनाकर नाचते-नाचते आगे-पीछे जाकर एक दूसरे के बेलन पर बेलन मारती हुए नाचती है। आगे-पीछे झुकते हुए नृत्य का यह पदन्यास मुग्ध करनेवाला होता है।

दूसरे क्रम में वे स्त्रियां नाचते-नाचते अपने बाजू की जोडियों में अदला-बदली करते हुए नाचती है। इसके लिए उन्हें एक बार बांयी तरफ दूसरी बार दांई तरफ मुड़ना होता है।

सुपारी नृत्य

यह नृत्य खेल करते समय दो लड़कियां/स्त्रियां पीठ से पीठ लगाकर खड़ी होती है। बाद में वे दोनों अपने-अपने बांयें हाथ दूसरी के दांये हाथ मे देती हुए एक-दूसरे के हाथों की उंगलियों में उंगलियां गूंथती हैं फिर हाथ न छोड़ते हुए अपने चारों ओर लगातार घूमती हुई नृत्य करती है। इसमें हाथ खूब कसकर पकड़ना पड़ता है।

यह नृत्य दो या अधिक स्त्रियां करती है। नृत्य करने से पूर्व साड़ी या घागरे की लांग लगाकर खड़ी होती है फिर इस तरह नाचती है कि नाचते समय बांये पैर की ऐड़ी दांये पैर के घुटने तक और दांये पैर की ऐड़ी बायें पैर के घुटने तक पहुंचे। फिर दोनों हाथ एक दूसरे की कुहनी तक जुड़ाकर उड़ते पंखों के समान क्षिप्र गति से हिलाये जाते है। यह खेल नृत्य अत्यंत मनोहारी व दर्शनीय होता है।

काच किरडा

यह नृत्य भी सिर्फ मंगलागौर की रात्रि को ही किया जाता है। किन्तु यह एक कठिन नृत्य है। अतः इसमें भी अधिक स्त्रियां भाग नहीं लेती। यह नृत्य करने में दोनों हाथ कमर पर रखकर खड़े होते है। फिर दोनों पैरों के अंगूठे एक दूसरे मे जकड़ कर नाचते है। कोई-कोई नाचनेवाली सिर्फ पैरों की एड़ियां घुमाकर यह नृत्य करती है और ऊपर उछलती है। यह अंग संचालन अत्यंत कठिन है क्योंकि उछलते समय दोनों पैर एकदम बांई तरफ एवं दांई तरफ मोड़ते हुए कमर बिलकुल स्थिर रखकर यह नृत्य किया जाता है।

भुरूका पिंगा-नृत्य

'मोहिनी पिंगा या भुरूका पिंगा' महाराष्ट्र का एक विशेष नृत्य है। मराठी में भुरूक का अर्थ जादू डालना या लुभाना है। भुरूक से नृत्य का नाम 'भुरूका पिंगा' पड़ा है। मराठी में 'यों पिंग घालणे' का अर्थ पीछे-पीछे रहना है किन्तु यहां यह एक नृत्य का नाम है। पिंगा एक ऐसा नृत्य है जो कोई भी नाच नाचते हुए बीच-बीच में आता है। पिंगा नृत्य करते समय दोनों हाथ कमर पर रखकर धड़ को कमर से खूब नीचे तक झुकाकर अपने ही चारों ओर घुमाया जाता है। आमतौर पर बाल खुले होते है। मुंह से हूं हूं या रूं रूं की आवाज आती है। कभी-कभी 'पिंगा ग पिंगा पोरी पिंगा या सिर्फ पिंगा, पिंगा' कहा जाता है।

गागर नृत्य

यह नृत्य विशेषतः कोकणस्थ ब्राह्मणों में होता है। आगरकर के मतानुसार चितपावन ब्राह्मण स्त्रियां निपुण होती है। यह नृत्य भाद्रपद में महालक्ष्मी की स्थापना पूजा पर और नवरात्रि में अष्टमी के दिन देवी के सामने किया जाता हैं इस नृत्य में हाथों में छोटी सी गागर होती है उसे ऊपर उछालते झेलते नाचा जाता है। एक तरफ गागर उछालते पकड़ते स्त्री की उंगली की अंगूठियां गागर पर खनकती है दूसरी ओर नाचते समय किये जाते पदन्यास में उसके पैर के आभूषणों की झनकार की लय भी अत्यंत मधुर होती है। नृत्य करते हुए गगरी में मुख से लगातार फूं-फूं फूंक मारी जाती है उससे गगरी में अत्यंत मीठी आवाज गूंजती है। देवी के सम्मुख यह नृत्य नौ गजी साड़ी पहन और महाराष्ट्र के परंपरित आभूषणों से सिर से पैर तक सुसज्जित होकर किया

Scanned with OKEN Scanner

जाता है। गागर नृत्य करते हुए जब नाचनेवाली एक दूसरे के सम्मुख घुटनों से झुककर नाचती है तो देवी पूजा को आनेवाले मंत्रमुग्ध रह जाते है।

सी ऽऽ मीऽऽ गोऽऽ मी नृत्य

यह भी मंगलागौर के समय किया जानेवाला नृत्य है। यह नृत्य करने में दो स्त्रियां एक दूसरे के सामने खड़े होकर अपनी साड़ी के पल्लू के दोनों किनारे दोनां हाथों से पकड़कर सिर पर छाते या तान एक दूसरे के हाथ पकड़ती है। सिर पर साड़ी से उनके चेहरे नहीं दिखाई पड़ते। इन नृत्य में एक बार उछलकर फिर उसी जगह पर आकर एक बार बांयी तरफ दूसरी बार दांयी तरफ झुका जाता है। इस तरह नाचते-नाचते गाया जानेवाला छोटा सा गीत है–

मराठी - सो ऽऽ मीऽऽ गोऽऽ मी
छानी छक्‌ली मुकूली
सोमी बाई चा नाडा
सासू बाई माहेरी धाडा

हिन्दी - सोऽऽ मीऽऽ गोऽऽ मीऽऽ (नाम है ये)
सयानी प्यारी कली
सोमी बाई क फीता भेजो सासूजी मायके

मां मैं आऊं क्या?

यह एक युगल नृत्य है, दो स्त्रियों/लड़कियों के बीच खेला नाचा जाता है। इसमें दो स्त्रियां एक के पीछे एक खड़ी होती है, इनमें एक मां होती है दूसरा उसका बच्चा। मां हाथ में सूप लिए उछलती हुई और सूप को भी उछालती हुए बच्चे के अपने पीछे न आने की मना करती आगे चलती है। बच्चा बनी स्त्री/लड़की जिद करके उसके पीछे-पीछे नाचती चलती है। इस तरह दोनों वृत्ताकार नाचते घूमते है।

तोरई नृत्य

इस नृत्य में दो दो स्त्रियां जोड़ी बनाकर आमने-सामने खड़ी होती है अपने दोनों हाथ आगे फैलाती है फिर दोनों अपने हाथो को आगे-पीछे करती हुई उछल कर नाचती है। हाथ आगे-पीछे करने में एक बात का ख्याल रखा जाता है कि नाच में आमने-सामने की स्त्रियों का एक हाथ दोनों हाथों के बीच में जाये ताकि प्रक्रिया स्पष्ट हो सके।

चुटकियों का फेर नृत्य और फेरा नृत्य

इस नृत्य के लिए चार छह अथवा आठ नाचनेवाली अपनी इच्छानुसार गुट बनाती है। बाद में एक-दूसरे के सामने खड़े रहकर अदल-बदल कर दायें-बायें होते हुए दोनों हाथों की अंगूठे और बीच की उंगली से चुटकियां बजाते हुए गोलाकार घूमते हुए नाचती है। चुटकियों की ताल पर पदन्यास इस नृत्य की अपनी विशेषता है।

मंगलागौर, शरद पूर्णिमा और अन्य किसी उत्सव त्यौहार पर जब काफी सगी संबंधी परिचित स्त्रियां एकत्र होती है, तब फेरा नृत्य करती है। यह समूह नृत्य है इस नृत्य में एक दूसरे के बांये-दांये हाथ एक दूसरे में गूंथकर नाचते हुए वृत्ताकार घूमा जाता है। इस बड़े वर्तुल के मध्य भाग में छोटी लड़कियों का छोटा मंडल होता है। इस नृत्य में पहले दो स्त्रियां गीत की एक पंक्ति कहती है उसे पीछे से शेष स्त्रियां दुहराती है। इस तरह गीत की प्रत्येक पंक्ति दो-दो बार कही/गायी जाती है। यह नृत्य करते हुए प्रत्येक नाचनेवाली अपना दांया हाथ बिल्कुल नीचे पैरों तक ले जाती है व फिर से ऊपर उठते हुए आगे का कदम उठाती है। सभी की यह क्रिया एक साथ होने से यह नृत्य बड़ा मनोहारी होता है।

आज महाराष्ट्र की अनेक नृत्य संस्थाएं इन परंपरित नृत्यों में नए-नए प्रयोग कर इन्हें नागरिक मंचों पर ही नहीं विदेशों में भी ले जाकर धूम मचा रही है।

मुंबई पुणे का जागरूक कला प्रेमी स्त्री वर्ग इन परंपरित नृत्यों में रूचि ले दूरदर्शन और सार्वजनिक गणपति उत्सव में ही नहीं मंगलागौर और हरतालिका के रात्रि जागरणों में भी व्यावसायिक नृत्य दलों का गठन कर इन्हें परंपरा के साथ आधुनिक रूचिबोध से प्रस्तुत कर रहा है। कई नृत्य दलों में तो प्रस्तुत किये जाते नृत्यों की संख्या 70-80 तक पहुंच जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

राजस्थान लोकनाट्य ख्यालः एक ऐतिहासिक विवेचन

कु. सोनिया करौला* एवं डॉ. सुधा सहगल**

राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत कम है और वहाँ के आमजन को अपनी जीविका निर्वाह के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में मनोरंजन का कार्य सरगड़ा, नट, निरासी भाट व भाण्ड नामक पेशेवर जनजातियों के लोग करते हैं। ये लोग स्वांग, लोकनाट्य को जमाने तथा उनके मुताबिक ढाल कर लोगों का मनोरंजन करने में निपुण होते हैं। ऐसे कार्य, ये लोक-नाट्य के प्रचलित रूप (भाण्ड़ों) के माध्यम से करते हैं, इनके वार्तालाप पूरी तरह से व्यंग्य विनोद प्रधान होते हैं और लोगों को हॅसा-हॅसाकर लोट-पोट करने की कला इनमें भरपूर होती है।

राजस्थान का पूर्वी अंचल विशेष रूप से शेखावटी का इलाका ख्याल की परम्परागत लोक नाट्य शैली के लिए विख्यात है। ख्याल राजस्थान के लोक नाट्य की सबसे लोकप्रिय विद्या है। इसको जनता के सामने पेश करने वाली जातियों अथवा नाट्य मण्डलियों के लिए कमाई का प्रचुर साधन है और इस अंचल में प्रकृति भी नाट्यकर्मियों के प्रति इतनी क्रूर नहीं है जितनी अन्य इलाको में जैसे– जैसलमेर, बाड़मेर के रेगिस्तानी इलाकों में है। कठपुतली, भाट, कामड, कच्छी घोड़ी, नर्तक व भोपे आदि नाट्यों के विविध रूपों को नियमित रूप सें आम जनता के समक्ष प्रस्तुत कर अपनी जीविका आसानी से चला रहे हैं। अलवर, भरतपुर क्षेत्र के लोक नाट्यों में राजस्थान, हरियाणा, और उत्तरप्रदेश की लोक संस्कृतियों का मिला जुला रूप भी देखने को मिलता है।

राजस्थान के सीमावर्ती इलाके, जैसे–धौलपुर, सवाईमाधोपुर, डीग, उत्तर-प्रदेश से जुड़े होने के कारण वहाँ की संस्कृति से अछूते नहीं रह सकते। रास-लीलाएँ, रामलीला, रसिया, ख्याल और नौटंकी आदि लोक नाट्यों पर स्पष्टतः ब्रजभूमि की संस्कृति का प्रभाव साफ झलकता है। ऐसा लगता है जैसे यहाँ राजस्थान व ब्रज क्षेत्रों की लोक संस्कृतियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

राजस्थान में लोक नाट्य के निम्नांकित रूप विद्यमान हैं ये लोक नाट्य इन क्षेत्रों के लोगों के मनोरंजन की आवश्यकता से पैदा हुई है और इन्होंने यहाँ के जनजीवन के लोकाचार में अपना स्थान बना लिया है।

राजस्थान में ये लोकनाट्य अपनी पतनावस्था और सोचनीय अवस्था में हैं, किन्तु फिर भी ये अपनी शैलियों और रूपों में तथा प्रकारों की दृष्टि से राजस्थान की सम्पन्ता ही सिद्ध करते हैं।

हिन्दुस्तान में कई राज्यों से तो लोकनाट्य लुप्तप्राय ही हैं, क्योंकि वहां अंग्रेजी शासन था। राजस्थान राज्य में निम्न रूपों में लोकनाट्यों के प्रकार और शैलियां उपलब्ध होती हैं–

ख्याल

18वीं शती के प्रारम्भ से ही राजस्थान में लोकनाट्यों के नियमित रूप से सम्पन्न होने के प्रमाण मिलते हैं। इन्हें ख्याल कहा जाता था। ख्यालों की विषय-वस्तु पौराणिक, या किसी पुराख्यान से जुड़ी होती है, इनमें ऐतिहासिक तत्व भी होते हैं तथा

*शोध छात्रा, संगीत दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा
**रीडर, संगीत गायन, दयालबाग़ ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा 282005

Scanned with OKEN Scanner

उस जमाने के लोकप्रिय वीराख्यान आदि होते है। भौगोलिक अन्तर के कारण इन ख्यालों ने भी परिस्थिति के अनुसार अलग-2 रूप ग्रहण कर लिये। इन ख्यालों में खास है, कुचामनी ख्याल, शेखावटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, अली बख्शी ख्याल, तुर्रा कलंगी ख्याल, किशनगढ़ ख्याल, नोटंकी ख्याल, मांची ख्याल तथा हाथरसी ख्याल। ये सभी ख्याल अपनी बोलियों में ही भिन्न नहीं बल्कि इनमें शैलीगत भिन्नता है। जहाँ कुछ ख्यालों में संगीत की प्रधानता है दूसरों में नाटक, नृत्य, और गीतों की प्रधानता है। लोकगीतों एवं शास्त्रीय संगीत का भेद ख्याल को गाने वाले विशेष नाट्यकार पर ही आधारित होता है। अगर लोक नाट्यकार शास्त्रीय संगीत का जानकार है तो वह ख्याल संगीत प्रधान होगा। यदि खिलाड़ी अभिनेता, नृत्य का जानकार हुआ तो ख्याल नृत्य प्रधानहोगा। इन ख्यालों में से कुछेक की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

कुचामनी ख्याल

लच्छीराम नामक विख्यात लोक नाट्यकार के द्वारा इस लोकनाट्य का निर्माण हुआ। इस शैली की

विशेषताएँ निम्नलिखत हैं–

- इसका रूप ओपेरा जैसे है।
- गीत (लोकगीतों) की प्रधानता है।
- लय के अनुसार ही नृत्य के कदमों की ताल बंधी है।
- खुले मंच (ओपन एयर) में इसे सम्पन्न किया जाता है।

इसकी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं–

- सरल भाषा
- सीधी बोधगम्य लोकप्रिय धुनों का प्रयोग
- अभिनय की कुछ सूक्ष्म भावाभिव्यक्यिाँ
- सामाजिक व्यंग्य पर आधारित कथावस्तु का चुनाव।

लच्छीराम खुद एक अच्छे नर्तक और प्रसिद्ध लेखक थे। उन्होंने 10 ख्यालों की रचना की, जिनमें चाँद नीलगिरी, राव रिड़मल तथा मीरा मंगल मुख्य है। अपनी पास उनकी खुद की नृत्य-मण्डली थी, जो वह पेशेवर नत्य के लिए भी उपयोग में लेते थे। ख्याल सांयकाल से शुरू होकर सुबह तक चलता है और उसे देखने के लिए सैकड़ों की तादात में लोग दूर-दराज इलाके से आते है। यद्यपि लच्छीराम को गुजरे 60 साल हो गए है पर उनके ख्याल राजस्थान के सभी क्षेत्रों में आज भी दिखाये जाते हैं। स्त्री चरित्र का अभिनय पुरुष पात्र ही करते है। ख्याल में संगत के लिए ढोलवादक, शहनाई वादक, ढोलम व सारंगीवादक मुख्य रूप से सहयोगी होते हैं। गाने बहुत ऊँचे स्वर में गााये जाते है और इन्हें प्रायः नर्तक ही गाते हैं। इन नर्तकों की गाते समय सांस टूट जाने की पूर्ति मंच पर बैठे दुसरे सहगायक करते हैं। इन दिनों ख्याल शैली के प्रमुख प्रवर्तक उगमराज खिलाड़ी हैं।

शेखावटी ख्याल

नानुराम इस शैली के मुख्य 'खिलाड़ी' रहे हैं। उनका स्वर्गवास 60 साल पहले हुआ, फिर भी वे अपने पीछे स्वरचित ख्यालों की एक धरोहर छोड़ गये हैं। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं–

(1) हीर राँझा, (2) हरिचन्द, (3) भर्तृहरि, (4) जयदेव कलाली, (5) ढोला मरवण और, (6) आल्हादेव।

नानुराम चिड़ावा के निवासी थे, और मुसलमान थे। किन्तु सभी जाति के लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे। अपनी कला के लिए वे आज भी सभी सम्प्रदायों में याद किये जाते हैं। उनके योग्यतम शिष्यों में दूलिया राणा का नाम लिया जाता है जो उपरोक्त सभी ख्याल अपने भतीजे के साथ खेला करते थे।

इस लोकनाट्य शैली की विशेषताएँ इस प्रकार है–

- अच्छा पद संचालन पूर्व सम्प्रेषित हो सके उस शैली, भाषा और मुद्रा में गीत गायन,
- वाद्यवृन्द की उचित संगत, जिसमें प्रायः हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, नक्कारा तथा ढोलक का प्रयोग होता है।

दुलियाराणा की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सोहनलाल तथा पोते बन्सी-बनारसी आज तक भी साल में आठ महीनों तक इन ख्यालों का अखाड़ा लगाते हैं। दूलिया राणा, जिन्हें गुजरे अधिक समय

Scanned with OKEN Scanner

नहीं हुआ, स्त्री चरित्रों की भूमिका बड़ी कुशलता से निभाते थे और इस क्रम को इन्होने 80 वर्ष की आयु तक जारी रखा। वह जितने अच्छे गायक थे उतने ही अच्छे नर्तक भी थे।

शेखावाटी के पूरे इलाके में दूलिया के ख्याल बहुत लोकप्रिय है। उनके ख्यालों के गीतमय संवाद उन्हे साहित्यिक तथा रंगमंच के बहुत अनुकूल बनाते है। इस इलाके के हजारों लाखों लोग इन्हें मुफ्त में देखते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। दूलिया राणा के परिवार के लोग इन ख्यालों में होने वाले खर्च का निजी तौर पर वहन करते हैं और खिलाड़ियों को स्वय पारिश्रमिक भी देते हैं। इन ख्यालों में खिलाड़ी प्रायः मिरासी, ढोली, और सरगड़ाओं में से होते हैं। परन्तु जो अन्य जाति के लोग इसमें शामिल होना चाहें तो उनके लिए कोई पाबन्दी नहीं है।

जयपुरी ख्याल

देखा जाये तो सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती-जुलती है, परन्तु जयपुरी ख्याल की कुछ अपनी विशेषता है, जो इस प्रकार है–

- स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियाँ ही निभाती हैं।
- जयपुरी ख्याल में नये प्रयोगों की महती संभावनाएँ हैं।
- यह शैली रूढ़ नहीं है, मुक्त है तथा लचीली है।
- इसमें अखबारों, कविता, संगीत, नृत्य तथा गान व अभिनय का सुन्दर समावेश है। गुणीजन खाना के कलाकार जयपुरी ख्यालों में हिस्सा लिया करते थे। इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल निम्नांकित हैं– (1) जोगी-जोगन, (2) कान-गूजरी, (3) मियाँ-बीबू, पठान, रसीली तम्बोलन। सन् 1981 में 'ख्याला भारमली' के कथ्य पर नयी शैली में एक नाटक लिखा गया। इसके लेखक राजस्थान के प्रयोगवादी नाटककार हमीदुल्ला है। यह नाट्क का राजस्थान के अलावा हैदराबाद, बंगलौर, मद्रास, बम्बई, दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों पर खेला गया। इसके बहुरंगी लोक वातावरण के कारण इसे सभी स्थलों पर पसन्द किया गया तथा कुछ भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ।

तुर्रा कलंगी ख्याल, मेवाड के शाह अली और तुकनगीर नाम के दो संत पीरों ने 400 वर्ष पहले इसकी रचना की और इसे यह नाम दिया। 'तुर्रा' को महादेव 'शिव' और 'कलंगी'को 'पार्वती' का प्रतीक माना जाता हैं तुकनगीर 'तुर्रा' के पक्षकार थे जबकि तथा शाह अली 'कंलगी' के। इन दोनों खिलाड़ियो ने 'तुर्रा-कलंगी' के माध्यम से 'शिव-शक्ति' के विचारों को लोक जीवन तक पहुँचाया। इनके प्रचार का मुख्य माध्यम काव्यमय रचनाएँ थीं, जिन्हे लोक समाज में 'दंगल' के नाम से जाना जाता हैं। ये 'दंगल' जब भी आयोजित होते है तो दोनो पक्षों के खिलाड़ी को बुलाया जाता है और फिर इनमें पहर-दर-पहर काव्यात्मक संवाद होते है। इन काव्यात्मक संवादों के नित नए-नए रूप ग्रहण करने से शिव शक्ति दर्शन का लोक जगत में उच्च स्तरीय काव्यात्मक संवाद प्रचलन में आया है।

स्वांग

लोकनाट्य रूपों में एक परम्परा 'स्वांग' की भी है। शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ है, किसी विशेष, ऐतिहासिक पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में विख्यात चरित्र या देवी देवता की नकल में मेकअप करना व वेश-भूषा पहनना है। कुछ जनजाति के लोग तो स्वॉग करने का पेशा अपनाए हुए हैं। यह एक ऐसी विधा है जिसे एक ही चरित्र सम्पन्न करते हैं परन्तु आधुनिक प्रसार-प्रचार के माध्यमों के विकसित हो जाने से, यह तमाशे का लोकनाट्य रूप शहर से दूर गॉवों की ही धरोहर रह गया है और इसे केवल शादी ब्याह तथा त्यौहारों के अवसर पर ही दिखलाया जाता है।

लीला

लीला में कथाऐं प्रयोग या पुराख्यानों से ली जाती है। इन्हें 'रासधारी' की श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। इन लीलाओं में, धर्म और लोकाचार की प्रधानता होती है। आज के जमाने में इस लोकनाट्य को करने वाले दल मण्डल बहुत सीमित संख्या में

Scanned with OKEN Scanner

रह गये हैं, जो बचे-हुये दल या मण्डलियाँ हैं, वे राम-लीला या कृष्ण रासलीलाएँ ही करते हैं।

नौटंकी

भरतपुर धौलपुर में, नत्थाराम की मण्डली द्वारा नौटंकी का खेल दिखाया जाता है। इसके अलावा अन्य 'आखाड़े' भी हैं, जो करौली, धौलपुर, अलवर, गंगापुर, भरतपुर तथा सवाईमाधोपुर जिले में नौटंकी का खेल दिखाते हैं ये अखाड़े अपनी-अपनी कंपनियों के निजी नाम से जाने जाते है। नौटंकी के नाटकों में 'रूप' बसन्त नकाब पोश, सत्य हरिश्चन्द, राजा भर्तृहरी आदि मुख्य हैं। ये नौटंकी गाँवों में बहुत ही लोकप्रिय है। शादी, सामाजिक समारोह, मेला तथा लोकोत्सवों के मौके पर प्रायः नौटकी का खेल करवाया जाता है।

भवाई

गुजरात की सीमा से सटे हुऐ राजस्थान के क्षेत्रों में 'भवाई' नामक नृत्य नाटिका बहुत लोकप्रिय है। इस शैली पर आधारित तथा एक नाटक 'जस्मा ओडन' है जिसे भारत से बाहर लंदन, जर्मनी में खेला गया। जिसे शान्ता गाँधी ने लिखा। इसके उल्लेखनीय पक्ष निम्निलिखित हैं–

(1) सगाजी एवं 'संगीजी' के रूप में भोपा-भोपी, कुछ अन्य विनोदी विदूषक चरित्रों के साथ इस नाट्य को सम्पन्न करते हैं। इसका संचालन सूत्रधार करता है।

(2) इसकी कथा आम आदमी के संघर्ष से सम्बन्धित है। यह उच्च और निम्न वर्ग-संघर्श को बताता है।

उपरोक्त लोकनाट्य रूपों के अलावा, राजस्थान में कतिपय रंगमंचीय लोकनाट्य तत्वों का भोपाओं तथा तत्सम्बन्धी जनजातियों के कुछ व्यक्ति विशेषों मे प्रदर्शन, कुटुम्ब परम्परा के रूप में भी देखने कोमलता है। इनमें कुछ, रासधारी हैं, कुछ बहुरूपिये तथा भाण्ड हैं।

लावणी

लावणी की तीन रंगतें रहती हैं–

(1) ज्यानकी–यह रतवा और धनासरी की गायकी में गाई जाती है।

(2) लंगड़ी– काफी, मांड में गाई जाती है।

(3) भैरवी (खड़ी)–इसमें सवेरे के राग रहते हैं जैसे–आसावरी, भैरवी, रामकली, टोड़ी

चौबोला

संभवतः यह पूर्व से आया है। चौबोला में चार पंक्तियां या गायकी होती है इसलिए इसका नाम चौबोला पड़ा। शेखावाटी में चौबोला की तीन रंगत (गायकी) हैं–

1 जोगिया रंगत
2 खड़ी रंगत
3 देश सोरठ रंगत

इसमें सर्वप्रथम मंच पर साधारण से तख्ते डाल दिये जाते हैं। कहीं-2 सुविधा पर गैस की लालटेन जला दी जाती है। विवाह के अवसर पर और सर्दी के प्रारम्भ में ये ख्याल गांव और कस्बें में होते हैं। ये एक दिन खेल करते हैं और दूसरे दिन आराम। ये लोग कलकत्ता, बम्बई तक खेल करने जाते हैं शेखावाटी में भैंरू राणा और दूला के दो दल हैं। यहाँ अधिकतम पेशेवर लोग ही ख्याल करते हैं।

फलौदी

फलौदी में खास रम्मतें (ख्याल) हीर राँझा और भक्त पूरनमल की होती है। इनमें ढोलक का काम खास होता है और नगाड़े भी बजते हैं। इसे पुश्कर ब्राह्मण विशेष करते हैं। यहाँ शैकिया रम्मत करने का भी चलन है। मंच भी बनाया जाता है।

रावलों के खेल

फुलेरा, आकोला की ओर रावल खेल करते हैं। पुराने जमाने में जब राजा और रानी रूठ जाते थे तब ये खेल कर उनका मेल करा देते थे। जयपुरी रंगत के ख्याल थोडे छपे हैं जैसे-निवाई, चौथ का बखाड़ा आदि।

बहरूपिये

सारे राजस्थान में बहरूपिये मिलते हैं। ये अपना

Scanned with OKEN Scanner

रूप और अभिनय आदि चरित्र के अनुसार बदलने में निपुण होते हैं ये प्रायः गाँव में शादी ब्याह या मेलों के अवसर पर पहुँच जाते हैं। यह किसी की भी नकल करने में दक्ष होते हैं ज्यादातर यह गाँवों के धनी लोगों की नकल उतारते हैं जैसे गाँव का बोहरा, सेठजी, गाँव के बनिया आदि इसके मुख्य जीवन पात्र होते हैं।

भाण्ड

राजाओं के काल में भाण्ड मण्डलियाँ राजस्थान में बहुत अधिक लोकप्रिय थीं। ये राजा महाराजा तथा सामन्तों द्वारा संरक्षित थे। जयपुर, कोटा, बूँदी, झालाबाड़ तथ उदयपुर में अब तक भी भाण्ड मण्डलियाँ मौजूद हैं। अब तो वे सिर्फ, शादी ब्याह तथा धनिक जनों के आश्रय मे दिखाई देती हैं।

रम्मत

बीकानेर की रम्मतों का अपना अलग-अलग ही रंग है। ये कुचामा, चिड़ावा और शेखावाटी के 'ख्यालों' से भिन्न होती हैं। 100 वर्ष पूर्व बीकानेर क्षेत्र में होली एवं सावन आदि के अवसर पर होने वाली लोक काव्य-प्रतियोगिताओं से ही उनका विकास हुआ है कुछ लोक कवियों ने राजस्थान के सुविख्यात लाकनायकों एवं महापुरुषों पर काव्य रचनाएँ की थीं जैसे मनीराम व्यास, तुलसीराम, फागू महाराज, सूआमहाराज, तेज कवि आदि। ये सभी रचनाएँ ऐतिहासिक एवं धामिर्क लोक चरित्रों पर रची गयी।

तेजकवि (जैसलमेर) रंगमंच के क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे सन् 1938 में जन्में इस कवि ने रम्मत का अखाड़ा श्री कृष्ण कम्पनी के नाम से चालू किया। सन् 1943 में उन्होंने 'स्वतन्त्र' बावनी की रचना की और उसे महात्मा गाँधी को भेंट कर दी। ब्रिटिश सरकार ने इस पर नजर रखी और उनकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला। जब तेज कवि को वारण्ट की सूचना मिली, वह पुलिस कमिश्नर के घर गये और उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी से कहा–

कमिश्नर खोल दरवाजा, हमें भी जेल जाना है,
हिन्द तेरा है न तेरे बाप का
हमारी मातृभूमि पर लगाया बन्दीखाना है।

इससे सिद्ध होता है कि रम्मत और ख्याल के खिलाड़ी सिर्फ मनोरंजन नहीं करते थे, बल्कि समाज में हो रही क्रांति के प्रति पूरी तरह से जागरूक भी थे। रम्मत की कुछ उल्लेखनीय बाते निम्नांकित हैं–

(1) रम्मत शुरू होने से पहले रम्मत के मुख्य कलाकार मंच पर ही आकर बैठ जाते हैं, ताकि हर दर्शक उन्हें अपनी वेश-भूशा और मेकअप में देख सके। संवाद विशेष गायकों द्वारा गाये जाते हैं जो मंच पर ही बैठे होते हैं और मुख्य चरित्र उन गाायकों द्वारा गााये जाने वाले संवादों को नृत्य और अभिनय करते हुए स्वयं भी बोलते हैं।

(2) रम्मत में मुख्य वाद्य, नगाडा तथा ढोलक होते हैं।

(3) कोई रंगमंचीय साज-सज्जा नहीं होती। मंच का धरातल थोड़ा-सा ऊँचा बनाया जाता है, मुख्य गीत गाये जाते हैं उसका सम्बन्ध निम्नांकित विषयों से है–

चौमासाः–वर्षा ऋतु का वर्णन

लावणीः–देवी-देवताओं की पूजा से संम्बन्धित गीत

गणपति वंदनाः–गणपति की वंदना

रामदेव जी का भजनः–रम्त शुरू होने से पहले रामदेव का भजन गााया जाता है। रम्मत के शेष तत्व, शेखावाटी ख्याल से मेल खाते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि शेखावाटी ख्याल पेशेवर ख्याल की गिनती में आ गए हैं और रम्मत आज भी सामुदायिक और लोकनाट्य का ही रूप लिए है इसमे कोई भी किसी भी जाति का व्यक्ति भाग ले सकता है।

रम्मत के कुछ विख्यात खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं–**स्वर्गीय श्री रामगोपाल मेहता, साई सेवग, गंगादास सेवग, सूरज, काना सेवग, जीतमल और गीडोजी**। यह सभी बीकानेर के हैं। गीडोजी अपने समय के बहुत विख्यात नगाड़ा वादक रहे हैं। बीकानेर के अलावा पोकरण, फलौदी, जैसलमेर, और आस-पड़ौस के क्षेत्र में खेली जाती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

गवरी

मेवाड़ में भीलों का यह सामुदायिक गीत नाट्य अत्यन्त चित्ताकर्षक है एवं पारम्परिक रीति–रिवाज से युक्त है। अरावली क्षेत्रों मे रहने वाले भील, प्रत्येक वर्ष 40 दिनों का गवरी समारोह उदयपुर शहर के आसपास के क्षेत्र में आकर सम्पन्न करते हैं। राजस्थान की आदिम जातियों में से भी जाति ने इस क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन काल से निवास किया हुआ है।

अगस्त के महीने में रक्षाबन्धन के दूसरे दिन भील और भोपा जाति के लोग किसी मन्दिर के आगे इकट्ठे होते हैं, और देवी 'गवरी' का आह्वान करते हैं। वे उसे अपना आतिथ्य ग्रहण करने की मनोती करते है। लकड़ी के मुखौटों आदिम मेकअप का साजो-समान, जवाहरात, वेशभूषा तथ रंगमंच की सामग्री सभी समाहोर के लिए एकत्र की जाती है।

मन्दिर के सामने समारोह के निष्पादन के लिए बॉस गाड़ दिया जाता है। यह बॉस या लट्ठा इस नाट्य का आधार बिन्दु होता है। गवरी की कथा में कथानक, युद्ध, पराजय मृत्यु तथा जीवात्मा के पुनः जीवित हो उठने से सम्बन्धि होते है, यह पुन जीवन, देवी की कृपा से मिलता हुआ दिखलाया जाता है।

गवरी की मुख्य विशेषताँए निम्नलिखित हैंः

(1) जुलाई, अगस्त के महीने में 'बुढ़िया देन' की पूजा के अवसर पर 'गवरी 'सम्पन्न किया जाता है।

(2) भील अपना घर छोड़कर सामुदायिक समारोह के विचारों से बंधकर 'गवरी' में भाग लेने आते है और 40 दिनों तक लगातार वहाँ रहते हैं।

(3) गवरी सुबह से शाम तक प्रतिदिन चलता रहता है।

(4) इसमें भाग लेने वाले नर्तक, अभिनेता, गायक सभी उत्साह और उल्लास से भरे होते हैं।

गवरी के कुछ मुख्य प्रसंग हैं–देवी अम्बड, नादशाह की सवारी, भिन्या-बड़, बनजारा, खाडलिया भूत तथा शेर-सुअर की लड़ाई।

तमाशा

जयपुर में तमाशे की गौरवशाली परम्परा है। यह लोक नाट्य 19वीं शती के पूर्व मध्यकाल में महाराजा प्रतापसिंह के काल में शुरू हुआ। इसके खिलाड़ी इस तमाशे को लेकर देश के सुदूर दक्षिण भाग में पहुँच गये। यह परिवार भट्ट परिवार कहलाता है इस परिवार के लोगों ने ही तमाशा थियेटर के रूप में जयपुरी ख्याल और ध्रुवपद गायकी का समावेश किया। पं. बंशीधर भट्ट इसके मुखिया थे। यह परिवार अभी भी विद्यमान है और यह परिवार परम्परागत विधि से आज भी तमाशा का लोक मंचन करता है। वे आज भी 'तमाशा' का हर साल आयोजन करते हैं। इस परिवार में गोपीचन्द्र भट्ट एक अच्छे रंगमंच अभिनेता तथा गायक है और वे इस परम्परा को जीवित रखने में सक्रिय हैं। 'गोपीचन्द' तथा 'हीर राँझा' इनके द्वारा खेले जाने वाले मुख्य 'तमाशे' हैं। यह तमाशे आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। तमाशे की मुख्य-2 विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

(1) भट्ट परिवार द्वारा प्रस्तुत 'तमाशा' महाराश्ट्र के तमाशे से भिन्न है।

(2) संवाद काव्यात्मक हैं तथा इन्हें राग-रागिनियों में निबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है।

(3) 'तमाशा' खुले मंच पर होता है, इसे 'अखाड़ा' कहा जाता है।

(4) इस भट्ट परिवार द्वारा 250 वर्षों पूर्व की इस परम्परागत लोकनाट्य शैली का प्रदर्शन आज तक लगातार हर साल किया जाता है।

(5) सारी संगीत रचनाएँ राग-रागनियों में निबद्ध हैं।

(6) संगीत, नृत्य और गायन, इन तीनों की 'तमाशे' में प्रधानता हैं।

(7) सिनेमा व टी.वी. के इस युग में भी, दर्शकों के बीच 'तमाशा' आज भी अत्यधिक लोकप्रिय है।

भोपा

भोपे पेशवर पुजारी होते हैं। उनका मुख्य पेशा किसी मन्दिर में देवता के आगे गाना, नाचना तथा

Scanned with OKEN Scanner

इस के अलावा विविध प्रकार के नटबाजी के करतब भी होते हैं। ये अपनी कला में माहिर होते हैं, और देवता के प्रति उनमें अधिक श्रद्धा होती है, तथा वे अपने देवी-देवता की दैनिक व चमत्कारी शक्ति में भी विश्वास करते हैं। पाबूजी और रामदेव जी के भोपों के अलावा और दूसरे प्रकार के भोपे भी होते हैं–

(1) गोगाजी का भोपा
(2) माताजी का भोपा
(3) भेरूजी का भोपा

रासधारी

'रासधारी' का सामान्य अर्थ, वह व्यक्ति है जो रासलीला करता है, जो भगवान कृष्ण के जीवन-चरित्र पर आधारित होता है। परन्तु आधुनिक काल में इस लोक नाट्य में अनेक और कथाँए भी जुड़ गयी। सबसे पहला रासधारी नाटक लगभग 80 वर्ष पहले मेवाड़ के मोती लाल जाट द्वारा लिखा गया। रास-धारीओं की लोक नृत्य नाट्य शैली ख्याल एवं अन्य लोक नाट्यों से हमेशा अलग है। यह विशिष्ट शैली उदयपुर तथा आस पास के क्षेत्रों में अभी भी प्रचलित है और सम्पूर्ण मेवाड़ इलाके में इसका प्रसार है। इसके मुख्य रसिया, वैरागी साधु लोग हैं। मूल रूप में 'रासधारी' लोक नृत्य नाटिका ही थी।

रासधारी अन्य शैलियों से भिन्न है क्योंकि सबसे मुख्य बात तो यह है कि इसमें किसी अखाड़े या मंच के निर्माण की जरूरत नहीं होती। रास में मुख्य कथाएँ रामलीला, कृष्णलीला, हरिचन्द्र नागजी और मोरध्वज की ही है। गॉव के लोग इस लोक नृत्य नृतिका को मुफ्त में देखते है। तथा साथ में

गाँव वालों के लिए खाने-पीने की व्यवस्था भी होती हैं किन्तु अब यह लोक नृत्य नाटिका धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है।

Scanned with OKEN Scanner

मिथिलांचल का लोकनाट्य : डोमकछ

मनोज कुमार झा*

लोक साहित्य की परम्परा किसी भी देश की एक बहुत बड़ी उपलब्धि होती है। वह एक विशाल सम्पदा है और उस पर जनमानस की अपार श्रद्धा होती है। जो समाज अपने लोकसाहित्य की जितनी रक्षा करता है, वह कालान्तर में उतना ही समृद्ध भी होता है। लोक-साहित्य का सबसे सघन संबंध अपने अंचल की हवा, पानी, और मिट्टी के साथ होता है, उसमें मिट्टी की सोंधी सुगंध होती है। लोक भावनाओं मान्यताओं, रीति-रिवाजों, आचार विचार, पर्व-त्योहारों की जितनी सीधी सच्ची अभिव्यक्ति लोकनाटयों में देखने को मिलती है, उतनी और कहीं भी नहीं।

वस्तुतः लोकनाट्य लोकजीवन में इतना घुला–मिला होता है कि उसे उस जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। लोकनाट्य का तिरस्कार सिर्फ इसलिए नहीं किया जा सकता कि वह अपने ग्रामीण मूल से जुड़ा होता है और नागर सभ्यता के विकास के साथ, यह परिदृश्य भी समाप्त होता है। वस्तुतः मानवजीवन चाहे वह कितना भी विकसित क्यों न हो चुका हो, अपने मूल से कभी पूरी तरह कट या हट कर नहीं रह सकता है। जिसतरह यह कहा जाता है कि नींव जितनी मजबूत होती है इमारत भी उतनी ही बुलंद होती है, उसी तरह जिस समाज और साहित्य की लोकनाट्य परम्परा जितनी समृद्ध होती है उसकी अन्य कलाऐं भी उतनीं ही विस्तृत होने लगती है। लोकनाटय एक सामंजस्यपूर्ण कला होती है। इस कला में अन्य कई लोक कलाऐं, स्वतः सन्निहित होती है। साहित्यिक नाटक की भाँति, लोकनाट्य भी, अन्य अनेक ग्रामीण कलाओं का एक अंतरंग और आकर्षण कला कोलाज होता है।

लोक साहित्य, लोकजीवन की अभिव्यक्ति का सबसे प्रथम और सबसे उत्तम रूप होता है। जिस तरह लोककथाऐं एवं लोकगीत मानव मन में रचे बसे होते हैं, उसी तरह लोक नाट्य भी लोक मानस में रचे बसे होते हैं, क्योंकि वे मूलतः लोक संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। लोक नाट्य को लोक संस्कृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जिसकी जड़ें उसकी संस्कृति में हों उसका महत्व कभी कम नहीं हो सकता है। लोकगीतों और लोककथाओं की तरह लोक नाट्य भी लोकजीवन से पूर्णतः सिंचित होते हैं। जब तक लोक नाट्यों को इस पृष्ठभूमि में समझनें का प्रयास नहीं किया जाऐगा और इस समूचे लोक संस्कृतिक परिदृश्य को लोकनाट्य परंपरा के साथ जोड़कर नही देखा जाऐगा तबतक लोकनाट्य को लेकर भ्रामक धारणाऐं बनी रहेंगी तथा उसकी परम्परा, प्रकृति और प्रभाव के साथ समुचित न्याय भी नहीं हो पाएगा।

लोकनाट्य की उपेक्षा इसलिए भी नहीं की जा सकती है कि किसी भी समाज में हम साहित्यिक नाटकों की जो समृद्ध और प्रबुद्ध परम्परा देखते हैं, उसका उत्स एवं उद्गम लोकनाट्य ही होता है। जिस साहित्य में नाटकों की साहित्यिक परम्परा जितनी विकसित दिखलाई पड़ती है, उसके पीछे वहाँ की लोकनाट्य परम्परा की उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका भी होती है। लोकनाट्य से ही मूलतः साहित्यिक नाटक निःसृत और विकसित होता है। लोकनाटक ही वह जमीन है जहाँ साहित्यिक नाटक

*शोध छात्र, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

का बीज पड़ता है वहीं से वह रस ग्रहण करता है और उसी जमीन पर वह पल्लवित और पुष्पित होता है। लोकनाट्यों के क्षेत्र में जितने रंग, जितने रूप जितनी शैलियां, जितने अंदाज और आयाम मिलते हैं उतने साहित्यिक नाटकों में नहीं दिखाई पड़ते हैं। लोकनाट्य जितनी सहजता के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध दर्शकों से बनाने में सफल होता है, उतना साहित्यिक नाटक के लिए सामान्यतःसंभव नहीं होता है।

मिथिला में डोमकछ एक लोकप्रिय लोकनाट्य है। मनोरंजन के साथ रात बिताने अथवा किसी प्रकार के भय को मनोरंजन के साथ काम करने की परंपरा 'रतजगा' के रूप में भारत की धरती पर प्राचीन काल से ही समान रूप से चली आ रही हैं। अति प्राचीन काल में दिन भर जानवरों का शिकार एवं उन्हीं जानवरों के भय से रात-रात भर जागना मानव की दिनचर्या थी, जिससे वे जानवरों की खाल पहनकर, वृक्ष के पत्ते पहन कर उनकी आवाज की उल्टी-सीधी नकल उतार कर आग के चारों ओर लट्ठ बजाकर नृत्य करते हुए रात जागकर गुजारा करते थे। धीरे-धीरे बौद्धिक और सामाजिक विकास के साथ जब परिवार का विस्तार हुआ, सभ्यता विकसित हुई, सामाजिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित रखने के लिए बहुरंगी रीति-रश्मों का विकास एवं विस्तार हुआ, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, पर्व-त्योहार, अनुष्ठान-महोत्सव के विकास के साथ ही परिवार विस्तार के लिए दो परिवारों के साथ संबंध स्थापना के लिए विवाह की मर्यादित परंपरा का शुभारंभ भी देवताओं के काल से ही प्रारंभ हुआ, यह सत्य है। सामाजिक मर्यादा का बंधन जबसे जीवन संस्कार के साथ बंधकर हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग बना तभी से शायद घर के पुरुष जन पुत्र-विवाह में बारात सजाने लगे और हर्षोल्लास के साथ लड़की वाले के घर बेटा ब्याहने जाने लगे, जिसमें सिर्फ लड़के वाले नहीं पूरा समाज गांव के पुरुष जन भी जाने लगे। इस समय तक ब्याह समाज की सामूहिक मर्यादा बन चुकी थी। ऐसे में स्वभावतः महिलाएं रात जागकर निर्विघ्न गुजारने के लिए मनोरंजक 'रतजगे' का आयोजन करने लगी। अतः पुत्र के बारात विदा करने के पश्चात् रतजगे का आनंद देनेवाला यही अवसरोचित सामाजिक मनोरंजन कालक्रम में 'डोमकछ' कहलाया। यह स्वांग मनोरंजन के साथ ही बारात गए पुरुषों की अनुपस्थिति में गांव-घर की रक्षा की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी उठाता है। यह परंपरा उत्तर बिहार, मध्य बिहार एवं नेपाल के साथ ही प्रायः सभी स्थानों और सभी भाषाओं में छिटपुट रूप से तथा स्थानीय रंगशिल्प के अनुसार खेला जाता है।

डोमकछ एक स्त्री प्रधान सामाजिक स्वांग है। इस स्वांग के माध्यम से विविध सामाजिक समस्याओं से पूर्व गीत कथा का मंचन किया जाता है जिसमें पुरुषों की हास्य शैली में नकल भी उतारी जाती है। यह सामाजिक रूपक हास्य व्यंग्य तथा जीवनगत समस्याओं और उससे उत्सर्जित दर्द को बड़े मर्मान्तक एवं सरस शैली में बांटता है। इस स्वांग नाट्य में पुरुषों का सजीव नकल, उनके संस्कार, उनकी दृष्टि में औरत होने का अर्थ उनकी उपेक्षा, स्त्रियों की वेदना सभी कुछ बखूबी प्रस्तुत किया जाता है। यह स्वांग सृष्टि रचना के बहुत बड़े तथ्य को अपनी प्रस्तुति के माध्यम से प्रस्तुत कर वैवाहिक बंधन की पवित्रता एवं उसके अर्थ को बड़े ही मनोरंजक रूप से प्रस्तुत करता है, जलुआ सृष्टि विस्तार का प्रतीक बनकर उपस्थित होता है। इसे कई जगह 'जलुआ' प्रधान नाटक भी कहा जाता है। इस प्रकार इस स्वांग नाट्य के माध्यम से सृष्टि विस्तार की कथा अनूठे ढंग से प्रस्तुत की जातीं है।

इस स्वांग की सारी भूमिकाएं स्त्रियां ही निभाती है। अभिनय करनेवाले पात्र अधिक नहीं होते है, परंतु इनके साथ सहगान गानेवाली स्त्रियां ढोलक, झाल आदि वाद्य बजानेवाली स्त्रियां दल के रूप में होती है। पात्रों में मुख्यतः डोम, डोमिन, धोबिन, चमारिन, डाक्टर, चमइन (नर्स), बच्चा, नौकर तथा मालकिन होते है।

देवताओं के काल में बारात की विदाई के बाद चाहे वह शिव का विवाह हो, राम या अन्य देवता का, राजा-महाराजाओं का, घर की स्त्रियां, बालाएं, किन्नर, गंधर्व, अप्सराएं, देव कन्याएं, नृत्य-गीत तथा विविध रंगी मनोरंजक उत्सव मनाकर रतजगा करती थी। किन्नर, गंधर्व, अप्सराएं तथा कला प्रवीणा स्त्रियां, लोकगीत प्रवीणा स्त्रियां तरह-तरह

Scanned with OKEN Scanner

का वेश धारण कर कथा आदि के माध्यम से स्वांग, गीत, नृत्य आदि प्रस्तुत करती थी। इस तरह सारी रात रसरंजक स्वांग चलता रहता था, वह भी एक रात नहीं, कई-कई रात, कहीं कहीं माह-माह भर क्योंकि पहले बाराती ब्याह के दूसरे दिन ही लौट कर नहीं आती थी, वे शादी तथा चौठारी के बाद ही कन्या की विदाई कराकर लौटती थी और कभी सामर्थ्यवान के घर से, राजाओं और देवताओं के घर से माह-माह भर आमोद प्रमोद कर वापस लौटते थे। अतः जबतक बाराती घर वापस नहीं आती थी स्त्रियां रात रात भर रतजगा कर आमोद-प्रमोद करती थी, धीरे-धीरे यह सामाजिक प्रथा बेटे ब्याह के घर का अनिवार्य मनोरंजन बन गई, देवताओं के काल के बाद राजाओं के काल में भी यह क्रम उसी तरह चलता रहा, कालान्तर में धीरे-धीरे छोटे-बड़ों के भेद-भाव ने इस मनोरंजक प्रथा को निम्न स्तर के लोगों तक सीमित कर दिया। संस्कृत काल में अहम ग्रस्त लोगों ने लोकनाट्य के कई लोकप्रिय प्रचलित रूपों को अपने मनोरंजन तथा उत्सव से बहिष्कृत कर दिया फलतः यह मनोरंजनपूर्ण स्वांग महलों की चौखट से उतरकर ग्रामीण अनपढ़ समाज में पोषित और पल्लवित होने लगा। संस्कृत काल के महाविद् अहंकारी पंडितों एवं नाट्यशास्त्रियों ने लोकनाट्य को गंवारों का मनोरंजन कहकर उसे तिरस्कृत कर दिया। उनके अहंकारपूर्ण पांण्डित्य को यह जानने की जरूरत नहीं रही कि लोकनाट्य ही नाट्य का जनक है तथा लोकमानस की उपज है और इसी के माध्यम से इतिहास और वर्तमान समाज की संस्कृति एवं समाज के जीवन व्यवहार की कड़ियां जुड़ती चलती है।

बाद में जमींदारी शासनकाल में, नवाबों, ठाकुरों, सामन्तों एवं धनाढ्य तथा उच्च वर्गो के काल में बेटे की बारात विदा करने के पश्चात् घर की स्त्रियों के मनोरंजन पूर्ण रतजगे के लिए निम्न वर्ग की स्त्रियां, किसानों, मजदूरों की स्त्रियां बेगार खटने वाले मजदूरों तथा जमींदार की जमीन पर बसनेवाली निम्न जाति की स्त्रियां रातभर स्वांग तमाशा करने लगी। इस तरह इनके काल में शादी-ब्याह के अतिरिक्त विशिष्ट समारोहों, उत्सवों एवं आयोजनों में भी निम्न वर्ग नेगाचार तथा जीविकोपार्जन तथा खुश करने के लिए नाच-तमाशे, बाजीगरी जादूगरी, बहुरूपिया, पमरिया नाच, नटुआ-नाच तथा पुतली खेल आदि करने लगे या फिर करने के लिए बुलाए जाने लगे। धनोपार्जन के साथ इनकी लोकप्रियता भी बढ़ने लगी। कालान्तर में इस तरह स्वांग तमाशे पिछड़ी जातियों के गरीब वर्ग तथा बचे-खुचे भ्रमणशील कलाकारों तक सीमित हो गए। निश्चय ही यह जाहिर हो गया है कि इस तरह के सांस्कृतिक विरासत का क्षरण होना लगातार जारी रहा, जिनमें एक समृद्ध सामाजिक स्वांग डोमकछ भी है।

आज की अति आधुनिकतावादी सोच, सतही उत्तेजक मनोरंजनों की चकाचौंध संस्कृति का शहरी करण, आधुनिक फैशन परस्त रीति-रश्में और परंपरा की उपेक्षा आज उबाल पर है। आधुनिकता में रंगी स्त्रियां अब पुरुषों के साथ बारात में जाने लगी हैं। ऐसे में अब बेटे के ब्याह वाले घरों में रतजगे के आनन्दोत्सव के बदले बड़े-बड़े ताले लटके नजर आते हैं, जो इस सांस्कृतिक विरासत की विस्मृति की सूचना देते हैं।

आज यह सामाजिक स्वांग शहरी एवं अति आधुनिक सोच वाले घरों से निष्कासित होकर भले ही हमसे बिछड़ रहा हो, परंतु गांव घरों में जहां पुरातन संस्कृति, संस्कार एवं परंपराएं जीवित हैं, यह स्वांग परंपरा अपने पूरे यौवन पर हैं। इतना ही इस स्वांग में कुछ तो चित्ताकर्षक एवं उत्कर्षपूर्ण है कि ये बड़े-बड़े राष्ट्रीय मंचों एवं नाट्य गृहों में मंचित होकर सम्मानित होने लगे है। कम से कम इस स्वांग की कुछ महत्वपूर्ण झलकी नृत्य गीत की सुर-सुधा से लोगों को मदहोश कर देती है, जैसे 'डोमकछ' की डोमिनी की विरह-वेदना डोमिनी के साथ लोगों को भी बरबस रुला देती है-

अनारवती डोमिनी तोहर डोम कहां गइलौ गे।
डोमरा गइले कलकतवा नगरिया उंहमे रम गइले
राजा के बेटिया बड़ी मोहिनिया से होसे लुमइले
अनारवती डोमिनी तोहरे डोम कहां गइले गे।

इस तरह यह नृत्य गीतात्मक डोमकछ स्वांग अपनी एक झलक से ही अपनी जीवन्तता का परिचय दे देता है।

Scanned with OKEN Scanner

'डोमकछ' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह स्वांग अति पिछड़ी जाति अर्थात् डोम-डोमिनों, नाइनों, कहारिनों, कुम्हारिनों, चमारिनों तथा धोबिनों आदि के द्वारा खेला जाता रहा होगा। ये लोग अपने घरों तथा उच्च वर्गों के घरों में अवसर-अवसर पर उनके मनोरंजन के लिए तथा नेगाचार के लिए खेलती होंगी, जिसका एक कारण अर्थोपार्जन भी रहा होगा। यह भी सच है कि शादी-ब्याह में डोम-डोमिनों, कम्हारिनों, नाइनों तथा चमारिनों का विशेष आनुष्ठानिक महत्व तब भी था और अब भी है। यह भी निर्विवाद है कि इनके सहयोग के बिना लड़के लड़कियों का संस्कारयुक्त विवाह संभव नहीं है, क्योंकि परंपरा से परिष्कृत विवाह में रीति-रश्मों के लिए डाला-हाला, पौती-पिटारी, डगड़ा-दौड़ी, सूप-मौनी, अटवासी-पटवासी, मौरी-माला आदि अनिवार्य है जो इनके द्वारा ही बनाये जाते है। जिसके लिए ये अनिवार्य रूप से नेगाचार लेते है। उसी प्रकार मिट्टी का शुभ कलश, हाथी-घोड़ा, चिड़िया-ढकना, चौमुख दीप आदि कुम्हारों के द्वारा ही बनाकर लाये जाते है। मंडप निर्माण के लिए हरे-हरे पल्लव सहित बांस, वंशवृक्ष के कोपल सहित छोटे बांस भी इन्हीं डोमों के द्वारा ही लाये जाते हैं। इन वस्तुओं के बिना परंपरा पोषित विवाह की रस्में असंभव है। इतना ही नहीं, विवाह के अवसर पर बेटी या बेटे के विशेष स्नान के समय पानी काटने की रस्म अनिवार्य है, जो धोबिन के द्वारा ही पूर्ण होती है। नाखून काटने की रस्म 'नेहछू' तथा पैर रंगाई की रस्म नाईन अथवा नाऊ करते है। स्नान के पश्चात् राई-जमाइन से पूर्ण अग्नि चुक्कड़ जो उनके सामने उल्टा रखा रहता है, लड़के लड़की द्वारा फोड़वाने की रस्म भी ये नाऊ ही निभाते है। इस अवसर पर चावल दाल का पूरौता तथा नेग लेते है। उसी तरह शादी के एक दिन या दो दिन पूर्व मटकोर अर्थात माटी कोड़ने की रस्म भी व्याह के घर की अनिवार्य रस्म है। इस रस्म में स्त्रियां कूड़खेत (कोड़े हुए खेत) तालाब तट या खुले हुए मैदान में माटी कोड़ने जाती है इस अवसर पर घर के बाहरी दरवाजे पर माटी कोड़ने जाती स्त्रियां के साथ विधकर्मी (विधि करनेवाली स्त्री) के द्वारा मानर को विधिवत् पिठार अक्षत सिन्दूर आदि से पूजा की जाती है, जिस ढोल की पूजा होती है वह चमार के गले में लटकी होती है अर्थात् वही ढोलकिया होता है। इस तरह मानर पूजा के बाद नेग न्योछावर से संतुष्ट होने पर ही चमार मानर पर पहला थाप देते हुये उसे बजाता है, तभी स्त्रियाँ गीत–नाद करती पीछे-पीछे साथ में वाद्य बजाते अन्य बजनिया तथ कुदाल कंधे पर रखे नाई भी होता है। माटी कोड़ने की शुभ विधि नऊआ द्वारा ही सम्पन्न होता है। इस तरह इन सबके बिना परम्परा पोषित विवाह हो ही नही सकती है चाहे वह उच्च वर्ग का हो या निम्न वर्ग का।

इन सभी उपर्युक्त आधारों से यह प्रमाणित होता है कि इस सामाजिक स्वांग में इन सभी जातियो की अहम भूमिका रही होगी और इनके द्वारा इन घरों में शादी-ब्याह के सुखद अवसर पर रतजगा के रूप में 'डोमकछ' खेला जाता रहा होगा। यह भी निर्विवाद है कि यह निम्न वर्ग या पिछड़ी जाति कहे जाने वाले लोग अति निर्धन रहे होगें, वेगार खटना, अवसरो पर गृह कार्योचित सामान बेचना इनका काम रहा होगा। खुशी के अवसर पर कीमत के अतिरिक्त ये दान, पुरौता के रूप में यथेष्ट चावल, दाल तथा नेग–जोग लेना इनकी जिविका का एक अंग रहा होगा। इस तरह ये निर्धन एवं निम्न वर्गीय लोग नेग-जोग के साथ सुस्वादु भोज-भात का आनन्द भी लेते रहे होंगे। इनका यह कार्य नेग-जोग मांगना आज भी जारी है। ऐसे में सामाजिक सहयोग का सुघड़ रूप भी देखने को मिल जाता है दूसरे इनके घरो के जवान पुरुष आर्थिक तंगहाली, उच्च वर्गे तथा जमीन्दारों के शोषण से घबरा कर नौकरी की जुगाड़ में बड़े-बड़े शहर जैसे कलकत्ता, मोरंग, आसाम आदि चले जाते थे। वैसे भारतवर्ष में अर्थोपार्जन के लिये शहर जाने का एक और बड़ा कारण रहा होगा, क्योकि कृषि प्रधान् देश भारत में कृषक लगभग छह माह बेकार पड़े रह जाते हैं। छह माह ही यह फसल काटते और बोते रहे है। दूसरे 'डोमकछ' के क्षेत्र उत्तर के अधिकांश क्षेत्र दर्जनो नदियों से घिरे हैं काशी, कमला, बागमती, गंडक, जीवछ, अधवारा समूह, आदि जो हर साल बाढ़ का भयावह उफान झेलती खेत-खलिहान बहा ले जाती है अपने साथ। ऐसे में पेट की आग बुझाने के लिये मजदूर किसान वर्ग अर्थोपार्जन के लिये बड़े

Scanned with OKEN Scanner

शहर भागते है। घर-परिवार को छोड़कर युवक का शहर भागना नव-ब्याहता पत्नी की असह्य वेदना का कारण हो जाता है, क्योकि ये वहाँ जाकर कल कारखाने में छोटी-मोटी नौकरी से लेकर, कुली गिरी, ठेलागिरि, रिक्सा-चालन तथा अन्य कार्य करते हैं, साथ ही वहाँ की फैशन परस्त गोारियों और वेश्याओं के जाल में इस तरह फंस जाते है कि घर-गाँव की राह ही भूल बैठते हैं। घर में मिलन !शयया! पर राह देखती नव-ब्याहता की याद सपने में भी नही करते। इस तरह अर्थ संकट से जर्जर ये ग्रामीण युवतियाँ बधूएँ उच्च घरों में अर्थोपार्जन कें साथ ही वेदना झुलसती मानसिक पीड़ा में वांचती है। अपना दुर्भाग्य बतलाते हुये ये यह भी समाज को बतला देती हैं कि भूख, दुःख, पीड़ा तथा विरह ताप से झुलसती हुई ये किस तरह अपनी पूरी जवानी वियोग में ही गंवा देती है।

इस स्वांग में रतजगा के अवसरोचित मनोरंजन के साथ-साथ नारी शोषण पति-वियोग का त्रास एवं पुरुषों की स्वेच्छा चरिता का मार्मिक एवं विडम्बना पूर्ण वर्णन भी खुल कर प्रस्तुत होता है। अस्तु, आज का यह मनोरंजन तथा उस काल अर्थात जमीदारी शोषण काल में जमीन्दारों, ऊँचे घरानों के सामने ढोल की थाप पर आधी रोटी का दर्द भी रात-रात भर इस तरह ग्रामीण गरीब स्त्रियों विशेषकर नवोढाओ का दर्द इस 'डोमकछ' स्वांग में करुणा जल से भींग कर, रिमझिम बारिश के हृदय को भींगा देता है। विशेष कर वह दृश्य जहाँ डोमिनि अपने अर्थात् पुरब देश कलकत्ता गये अपने पति की वाट हेरति रोती कलपति है–

अनार वति डोमिनी तोहर डोम कहां गइलौ गे
डोमरा गइले कलकता नगरिया, वोहमे रम गइले

उत्तर बिहार की लोक नाट्य कथाओं में इस तरह की करुण व्यथा बिखरी पड़ी है जिसे लोक कथा गायकों तथा लोकनाट्य मंचो ने सरस और सहज रूप में उभार कर लोगो को जीवन यर्थाथ का दर्शन करा दिया है ऐसे ही लोक कथा गायकों में अग्रज एवं वरेण्य महारथी 'भिखारी ठाकुर' ने भी नवयौवना पत्नी के इस वियोग से मर्माहत हो कर नाटकों में इस सामाजिक त्रासदी को सागर भर रोया भी है और लोगों को रुलाया भी है–

गवना कराई सइयां घरे बइठवले से
अपने गइले परदेस रे विदेसिया
कतहूँ ना देखी रामा सईयां के सुरतिया से
जियरा गईले मुरझाई रे विदेसिया

इस तरह बिहार के उन सभी सामाजिक लोक-नाट्यों में चाहे वह 'भिखारी ठाकुर' का 'विदेसिया' हो या 'अनिल पतंग' का 'जट-जटिन' हो; सोरठी वृजभाण हो या डोमकछ सामाजिक जीवन के सुख-दुःख, पीड़ा-शोक, यातना-शोपण, विरह-वियोग की तस्वीर प्रमुख रूप से झलकती है। डोमकछ की प्रमुखतः डोमिनि के इसी आर्थिक शोपण एवं मानसिक ताप का दर्द व्याह शादी के अन्य यथार्थवादी हास्य-व्यंग पूर्ण चित्रण एवं ब्याह के सामाजिक अर्थ के साथ दर्शाता है।

कथानक के रूप में शादी-ब्याह जैसे सामाजिक संस्कार का अर्थ अर्थात् वंश वृद्धि की भविष्यत खुशी, डोम का पुरब जाना, डोमिनि की विरह-वेदना, बारात से लौट कर आये नौकर द्वारा बेटी वाले के घर को लेकर हास परिहास आदि घटनाओं की झलकी क्रमबद्ध रूप में दिखलाई जाती है। सभी प्रसंग प्रस्तुति यथार्थवादी होती है जिसमें घर परिवार तथा सामाजिक व्यवस्था से पूर्ण सच्ची एवं व्यावहारिक घटनायें रूपक के रूप में प्रस्तुत की जाती है। कल्पना या अतिरंजना का नाट्य से कोई संबंध नही होता है, इस स्वांग रूपक के माध्यम से सिर्फ परिवारिक संबंध के द्वारा अर्थोपार्जन के लिये परदेश गमन, डोमिनि के विरह-वेदना भी प्रतुत की जाती है, जो अपने स्वांग प्रदर्शन के द्वारा भारत के गरीब वर्ग की त्रासद कथा का कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुति कर हमें सामाजिक व्यवस्था की सच्चाई से भी रु-ब-रु कराता है।

'डोमकछ' कई दृश्य खंडो में प्रसंगानुसार बँटा होता है। प्रथम दृश्य में झूमर के माध्यम से बेटे के ब्याह की खुशी का प्रदर्शन होता है, जिसमें कई झूमर के गीत गाये जाते है :

अनार दाग बगिया ना जईबो राजा
ओही बगिया में ससुरजी का डेरा

Scanned with OKEN Scanner

मैं बार-बार पईया न पड़बो राजा
ओही बगिया में भैंसुरजी का डेरा
मैं बार-बार घुंघटा ना कर वो राजा आदि

तथा ननद फुल बगिया से मारे
ओ गेन्दा गिरे हलवईआ दुकनवा
हलुआई हरामी डोंगा देखावे आदि

इस स्वांग रूपक के दूसरे दृश्य में परिवार-समाज में ब्याह का मुख्य उद्देश्य वंश वृद्धि की सुखद परिकल्पना बड़े सरस एवं खुले ढंग से प्रस्तुत की जाती है। चुँकि यह स्त्री प्रधान रूपक है। अतः प्रदर्शन में शिशु जन्म के साथ का हास-परिहास अश्लीलता के स्तर तक भी उतर जाता है। यहाँ एक स्त्री प्रसविनी बनती है दूसरी डॉक्टर। इसी तरह नर्स चमईन बनती है और हँसी मजाक में पुत्र जन्म का खेल प्रस्तुत होता है। प्रसव के समय शारीरिक वेदना की स्वभाविक नकल भी उतारी जाती है। इसके पश्चात् तीसरा दृश्य कमरे से आँगन में बने मंडप पर दर्शाया जाता है। इस दृश्य में मड़वे (मंडप) के बीच बेटे की माँ को बैठा दिया जाता है जिसकी गोद में काठ अथवा खटिया के टुटे पौवा को मानव आकृति प्रदान कर, कपड़ा आदि पहना कर तथा काजल टीका डाल दिया जाता है जिसे 'जलुआ' कहा जाता है। यह शिशु ब्याह का परिणति वंश वृद्धि का प्रतिरूप बन कर उपस्थित होता है। जलुआ का यह दृश्य बड़ा ही मनोहारी होता है। इस दृश्य में शेष स्त्रियाँ मंडप के चारो ओर घूम-घाम कर ताल देती हुई शिशु जन्म की खुशी में सोहर, बधैया तथा झूमर आदि गाकर पुत्र जन्म का महोत्सव मनाती है :

मचिया बइठल रानी कोशल्या राम मुख निरखली हो
मुखवा निरखी रानी कोशल्या त मने-मन हरशली हो
पनमा अइसन बाबू पातर कसैली अइसन हुरहुर हो
ललना हे फुलवा अइसन बाबू कोमल चान्द अईसन सुन्दर हो
अरे मोरा बाबू प्राण के आधार, नयने बीच राखव हो
कोशिल्या के भईले राजा रामचन्द्र कैकेयी के भरत नूहो
ललना हे सुमित्रा के लछुमन-शतरुधन महलिया उठे सोहर हों।

नाचती हुई स्त्रियाँ पांच-छह सोहर गाने के पश्चात् नृत्य करती हुई झूमर गाती हैं, जो बड़ा ही सरस और मन-भावन होता है। ढोल और झाल की संगति पर नृत्य-गीत का एक मनोरम समां बंध जाती है। इसमें दो मत नही है कि स्त्री प्रधान लोकनाट्यो में झूमर का एक अनिवार्य और विशेष स्थान होता है, झूमर का एक उदाहरण :

कहमा ही रामजी जनम भईले हरि झुमरी,
अरे कहमांही बाजे ला बधावा खेलव हरि झुमरी
अयोध्या में रामजी जनम भईले हरि झुमरी
अरे मिथिला में बाजे ला बधावा खेलव हरि झुमरी
केकरा माथे पे पगिया हरि झुमरी
अरे केकरा ही शोभे चुनरिया खेलव झुमरी
रामजी के माथे पे पगिया हरि झुमरी
अरे सिया जी के शोभे चुनरिया झुमरी
हरे केकरा ही हाथे अबीर खेलव झुमरी
रामजी के हाथे बुकवा हरि झुमरी
अरे सिया जी के हाथे अबीर खेलव झुमरी

इसके पश्चात् 'जलुआ' की बीमारी का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें माँ बेहाल हो कर पति से वैद्य बुलाने का आग्रह करती है। वैद्य के आने पर जलुआ की माँ और वैद्य में गये संवाद का आदान-प्रदान होता है। स्त्रियाँ पुरुषों जैसे कपड़े पहन कर इसमें अभिनय करती है, जिसमें बड़ा ही उन्मुक्त व्यवहार दिखाया जाता है।

ब्याह के दृश्य में कोई स्त्री चूड़ी का मोल भाव करती है, साथ ही उनके पति के बाकी छवि का परिचय देते हुये रीझने का अभिनय करती है।

स्त्रियाँ : कहां के ऊ जे लामू(लम्बा) लहेरिया (चुड़ीहारा)
झुलनियां वाली तोर चुड़ी कते में बिकाय

चुड़ीहारा : हमरो जे चुड़िया सांवरो लच्छ (लाख) रूपैया
तोर बहियाँ में घूमि-घूमि जाय

स्त्रियाँ : हमरो जे पियवा सांवरो बड़ रंगरसिया
बने-वने बसिया बजावे।

ब्याह में डोम-डोमिनि, सूप-डगरा, मौनि-पिटारी लेकर आती है। यह एक परम्परा पोषित सामाजिक विधान है। अतः अगला दृश्य जो डोमकछ का एक और अति महत्वपूर्ण दृश्य है, प्रस्तुत किया जाता है। इस दृश्य में डोम-डोमिनि बड़ा रसपूर्ण और नोक-झोक

लिये होता है, मान मुनहार चलता है, पर जब डोम अपनी डोमिनी से परदेश गमन की बात बतलाता है। तो नवेली डोमिन अचानक उदास हो जाती है। वह तरह-तरह से अपनी आंशंका व्यक्त करते हुये उसे रोकती है। इस तरह इस सामाजिक स्वांग में एक ओर पुत्र के जन्म की खुशी, पुत्र विवाह और दूसरी ओर नवब्याहता डोमिन को छोड़ परदेश पलायन की बात समाज की विडम्बना पूर्ण स्थिति का भी चित्र प्रस्तुत कर इस नाट्य की सामाजिक सार्थकता से हमें अवगत कराता है, जहाँ जीवन सत्य के दोनों पहलू सुख-दुःख से हमारा साक्षात्कार होता है। इस तरह डोमिनि की वेदना ब्याह की खुशी में भी हमें अनचाहे ही रुला देती है। इस तरह दृश्य में डोमिनि बनी स्त्री डोम को बार-बार समझा कर परदेश जाने से रोकती है। उसे अपने पति के स्वास्थ्य की बहुत चिंता है, जिसका जिक्र वह गेय संवाद के द्वारा प्रस्तुत करती है-

मति जाहू पियवा हे पुरब के देस
पुरब देश में जटिनी जोगनिया से
अपना ही फांसे फांस लेते है पियवा
पुरब के पानी पियवा से हो सड़ल बासी हो
वहां कहाँ भेटतो कोशी-रेवा हो मछरिया
सड़ल पाकल खयब पियवा देहवा सुखइतोत
झड़ि जयतो कंचन काया रूप हे मोर पियवा
पूरब दिशा मुख नाहि फेरअ हो मोरे पियवा
देहिया त जइतो मुरझाई हो मोरे पियवा
मति जाहु पुरब के देस मोरे पियवा आदि

डोम ठिठोली करते हुये चिढ़ता है :

सुने में जो आवय डोमिनि पूरब के कहनिया से
मेहिनि जोगनिया के
लामी लामी केसिया, भुईयां लोटय हे डोमिनि
नयना रतनार जेकर चाल हिरणिया जइसन
सोना जइसन दहकइत देह हे डोमिनि
वेलिया मधूर घोलल रूप चन्दरमा जइसन
सउतिन बनाय संगे लइबो हे डोमिनि

डोमिनि उसकी बात को सच मान कर रूठने का अभिनय करती है:

डोमिनि : जे तुहुँ आहो पियवा, जहरवा घोली
जइब कलकतवा से
जहरवा घोली पीयबो हो पियवा,
जहरवा घोली
जे तुहुँ आहो पियवा लयब सवतिनिया
से हमरो मरल मुख नाहि देखब हो
पियवा

और जब उसकी प्रार्थना ठुकरा कर डोम कलकत्ता चला जाता है और वर्षों लौट कर नहीं आता है, तो डोमिनि विरह-वेदना की आग में जलने लगती है। उसी समय बटोही आता है और डोमिनि से उसके पति के पर स्त्री प्रेम की चर्चा करता है, तो डोमिनि वेदना विह्वल हो उठती है :

अनारवति डोमिनी तोहर डोम कहां गइलौ गे
डोमरा गइले कलकता नगरिया वोही में रम गइल
आग लगाय राजा नौकरिया वही में रम गइले
अनार वति डोमिनी तोहर डोम कहां गइलौ गे
राजा के बेटिया बड़ी मोहनिया से ही से लुभइले
राजा के बेटिया बड़ी सुन्दिरया से ही से लुभइले
राजा के बेटिया हाथे मुदरिया (अंगूठी) से ही से लुभइले
राजा के बेटिया आँखे कजरा से ही से मुहइले
राजा के बेटिया नाके बेसरवा से ही फंस गइले
राजा के बेटिया डंक मारलकय से ही से डस गइले
अनार वति डोमिनी तोहर डोम कहां गइलौ गे

एक बार डोमिनि डगड़ा-सूप बेचने के क्रम में गुम हो जाती है। डोम खोजने के क्रम में राजमहल तक जाता है। दरवान से पूछता है।

डोम : बाबूराम-बाबूराम! डगड़ा बेचइते डोमिनि हेराईल रेकी।

दरवन : भैयाराम, भैयाराम, इहो रे महलिया डोमिनि न आयल रेकी।

डोम : बाबूराम, बाबूराम खोलेज वती का दरबजवा, डोनी के हेरब रेकी।

जब दरबान द्वारा नहीं खोलता है तो डोम बलपूर्वक दरवाजा खोलकर अन्दर प्रवेश करता है तथा डोमिन को खींचकर लाता है। डांट फटकार के बाद जब डोमिन उसे काफी पैसे देती है–तो वह पूछता है।

डोम : हाल कही गे डोमिनिया, हाल कही गे, अगे राजा हवेलिया के हाल कहरी गे।

डोमिन: मायर खैभी रे डोमा, मायर खैभी रे,

Scanned with OKEN Scanner

राजाक सिपहिया से मारि खैभी रे।

इस बात से स्पष्ट संकेत है कि राजमहल का हाल उस समय भी ठीक नहीं था।

गीत की वेदना मिश्रित कड़ियां और डोमिन का भावपूर्ण नृत्यात्मक अभिनय देखने वालो को भाव-विभोर कर रूला देता है। इस दृश्य के माध्यम से भारतीय समाज में गरीबों का त्रास, समाज में स्त्री का स्थान, उसकी अवमानना, उपेक्षा, भर्त्सना, अत्याचार, और यातना के साथ ही पुरुषों की स्वेच्छाचरिता का भी मार्मिक और अनगढ़ प्रदर्शन होता है। डोमकछ की तरह ही जट-जटीन, सोरठी वृजभान, लोरिकचन्दा तथा विदेसिया की नायिका सामान्यतः इसी वेदना से त्रस्त है।

लोकनाट्यो में ग्रामीण जीवन का स्वभावगत भोलापन और अभिनय की अनगढ़ता का अपना विशिष्ट स्थान है। 'विदेशिया' की तरह 'डोमकछ' में उसकी सहजता, दरिद्रता में टूटते बिखरते परिवार की कथा-व्यथा और उसके चरम उत्कर्ष से उपजी नारी जीवन की करुण कथा स्वच्छ दर्पण की तरह अपने अक्श में समाज को हू-ब-हू उतार लेती है। इस तरह 'डोमकछ' का यह दृश्य चरमोत्सर्ग होता है।

प्रत्येक लोकनाट्य की तरह इस स्वांग में भी बोझिल करुण दृश्य से भींगे मन को गुदगुदा कर हल्का करने के लिये बीच-बीच में प्रसंगानुकूल हास्य प्रहसन भी प्रस्तुत होता चलता है जो भारतीय दर्शन के दुःख में भी सुख की भावना का प्रत्यक्ष दर्शन करा देता है। इस तरह परिवारिक जीवन-व्यवहार की यह प्रस्तुति अपने रसपूर्ण परिहास एवं गुदगुदे चुहल भरे संवाद से लोगों को जी भर कर हँसाता है। जिसमें हँसी-मजाक का अवसरोचित परिवारिक वातावरण खुले रूप में उभर कर सामने उपस्थित होता है। इस महत्वपूर्ण परिवारिक व्यवहार के हास्य पूर्ण दृश्य में बारात से लौटकर आये नौकर हरिविशुना तथा मालकिन का प्रश्नोत्तरी शैली में गेय वार्तालाप प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें मालकिन हरिविशुन से इसी तरह 'डोमकछ' में भी डोम के साथ मालिक का गेय वार्तालाप जो प्रश्नोत्तरी शैली में प्रस्तुत किया जाता है। बड़ा मनोरम होता है। उदाहरण के लिए-

मालिक : कहवां से लइले रे डोमवां कहवां से लइले रे
अइसन सुनर रे डोमिनिया रे डोमवां कहवां से लइले रे
डोम : मेला से लइली ए मालिक मेला से लइनी जी,
अइसन सुनर रे डोमिनिया ए मालिक मेला से लइनी जी।
मालिक : कहवां रखवें रे डोमवां कहवां रखवें रे,
अइसन सुनर रे डोमिनिया डोमवां कहवां की खिअईबें रे।
डोम : खोआ खिलाइब ए मालिक खोआ खिलाइब जी
अइसन सुनर रे डोमिनिया मालिक खोआ खिलाईब जी।
मालिक : की पहिरइबें रे डोमवा, की पहिरइबें रे,
अइसन सुनरी रे डोमिनियां डोमवां की पहिरइबें रे।
डोम : चुनरी पहिरइबों ए मालिक लहंगा पहिरइबों जी,
अइसन सुनरी रे मालिक साड़ी पहिरइबों जी।
मालिक : गहना जेबर की पहिरइबें रे डोमवा, की पहिरइबें रे,
अइसन सुनरी रे डोमिनियां डोमवां की पहिरइबें रे।
डोम : आजु पहिरइवो, वाजु पहिरइबो, कंगना, हंसुली झुमका पहिरइबों
अइसन सुनरी रे मालिक झांझर पहिरइबों जी। आदि।

इसी तरह डोमकछ में रंग भरने के लिये डोमिन का श्रृंगार पूर्ण नोक-झोंक भी बहुत लोकप्रिय है उदाहरण के लिए-

डोम : डोमिनिया रे तोहके मियां बोलावे डोमिनिया रे तोहके मियां बोलावे
डोमिन : मियां संगे जाइव नथिया झमकाइव नथिया झुमका से अपना मियां के रिझाइव

Scanned with OKEN Scanner

डोम : गुलबिया रे तोहके मियां बोलावे
डोमिन: मियां संगे जाइव झुमका झमकाइव
झुमका, झुमका के अपना मियां के
रिझाइव कंगना, झुमका के तोहर
जियरा जराइब
डोम : डोमिनिया रे तोहके मियां बोलावे आदि।

बारातियो के स्वागत सत्कार का हाल पूछती है और हरिविशुनी मजाकिये ढंग से भावपूर्ण नृत्य मुद्रा तथा जायकेदार शब्द गीतो में मलकिनी से पूछे गये प्रश्नो का उत्तर कुछ इस प्रकार देता है–

मलकिनी : तू का का खइले बोल हरिविशुनि
हरिविशुनि : हम खइनी, हम खइनी, हम खइनी
अरे पूरी कचौरी, अदौरी-पनौरी,
कच्चा-पाकल, सुखल-साखल औरो
सूपारी के बदला में ओल, सुनु हे
मालिकिनि।
मलकिनी : तोहरा का का मिललो रे बोल,
सुन हे हरिविशुनि।
हरिविशुनि : हमरा मिलल, हमरा मिलल, हमरा
मिलल जोड़ा जामा, आंग गमछा,
धोती-ओती, टोपी रूमाल, अप्पल-
चप्पल
अरे इहे कुरता मिलल ढ़कलोल
सुनु हे मलकिनि।
मलकिनी : अरे तु का देखले बोल, सुन हे
हरिविशुनि?
हरिविशुनि : हम देखनी, हम देखनी, हम देखनी
अहरा देखनी, बहरा देखनी, दुअरा
देखनी, अगना देखनी, हम देखनी
पिछूओ देखनी करियो देखनी, गोरी
देखनी, बुढ़िया देखनी, जवनकी
देखनी
अरे लड़की के भाई बकलोल, सुनूहे मलिकिनि

बारातियों द्वारा लड़की वालो के साथ तथा लड़की के नाते रिश्तेदारो के लिये हास-परिहास तथा मनोरंजक मजाक करने की परम्परा कोई नयी चीज नहीं होकर उनके परिवारिक संबंधो से जुड़ा एक अति महत्वपूर्ण स्नेहपूर्ण व्यवहार होता है।

इस तरह 'डोमकछ' एक सम्पूर्ण सामाजिक एवं यथापूर्ण स्वांग है, जिसमें व्यवस्था उसका व्यवहारिक तथ्य डोम-डोमिन की कथा-व्यथा के माध्यम से समाज का सहज स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत होता है। यही डोमकच, कहीं डोमकथ (डोमकथा) तथा कहीं डोमकछ कहलाता रहा है। इसकी कोई विशेष सामाजिक या ऐतिहासिक कथा नहीं है, बल्कि यह समाज तथा व्यवहार में अवसर-अवसर पर घटित होती घटनाओं तथा परिवारिक संबंधो के ताने-बाने को लेकर प्रस्तुत होता है।

डोमकछ की प्रस्तुति में भी इसी तरह सहज अनगढ़ रूप से प्रसंगानुसार मंच घर-आंगन, देहरी दलान पर घूमता चलता है और उसके साथ आनन्द रस और वेदना रस में डूबी महिला दर्शको की टोली घूमती है, चूंकि यह स्त्री प्रधान स्वांग है। अतः अभिनय करने वाली तथा दशर्को दोनो ही स्त्री होती है। पुरुष प्रवेश वर्जित होता है। यद्यपि रसपूर्णता एवं लोक प्रियता के कारण डोमकछ की कई महत्वपूर्ण झांकी यथा डोम-डोमिनि-संवाद, डोमिनी का वियोग, हरिविसुनि एवं मालकिन-संवाद अब बड़े मंचो, राष्ट्रीय मंच पर भी प्रस्तुत होने लगा है जहाँ दर्शक पुरुष और स्त्री दोनो होते है।

प्रकाश व्यवस्था एवं साज-सज्जा सब कुछ साधारण होता है। प्रसाधन के लिये घर में उपलब्ध सामाग्रियो को व्यवहार मे लाया जाता हैं। पुरुषों की नकल उतारने के लिये फुलपैंट, कमीज, हैट, धोती, कुरता, पैजामा, बंडी, टोपी, छड़ी, मूंछ आदि घर में उपलब्ध सामाग्रियो का बड़ी सुलभता एवं सरलता से उपभोग कर लिया जाता है। आभूषण आदि के लिये विशेष व्यवस्था की जरूरत ही नहीं होती है, क्योकि ब्याह के घर की तथा गाँव की सभी स्त्रियाँ यथाशक्ति सुन्दर वस्त्र और गहने पहने होती हैं।

इस स्वांग का प्रमुख आकर्षण अभिनय की सहज-स्वाभाविक जीवन्तता, उन्मुक्ता, अनगढ़ता, हास-परिहास, स्वाभाविक घर-गृहस्थी का हँसी मजाक चुहल, जीवन व्यवहार की नकल तथा नारी जीवन की त्रासद कथा अंशो का रसपूर्ण एवं गेय संवादपूर्ण अनगढ़ अभिनय जो कभी रूलाता है, तो कभी हंसी-मजाक से लोट-पोट भी कर देता है। मिथिलांचल, भोजपुर एवं बिहार के अन्य कई क्षेत्रों के 'डोमकक्ष'

Scanned with OKEN Scanner

में नाट्य की प्रधानता होती है। अवध में इसे 'नकटौरा' या 'नकटा' कहा जाता है। कन्नौज में इसे 'नकटो' कहते हैं, ब्रज क्षेत्र में यह 'खोइया' कहलाता है, कौरवी क्षेत्र में 'खड़िया' तथा हरियाणा में इसे 'जोड़िया' कहा जाता है।

इस प्रकार रतजगा की यह परंपरा बेटे के व्याह में बेटेवालों के घर अपनी रीत एवं शैली के अनुसार आयोजित की जाती रही है, परंतु आज जीवन व्यवहार का यह अति पुरातन एवं रसपूर्ण स्वांग विलुप्त हो रहा है, कारण बहुत से है—अपसांस्कृतिक शहरी परिवेश अत्याधुनिक सुविधा परस्त विकृत एवं विलसित भौतिकवादी जीवन स्तर, पतनशील फैशन भोगी मानसिकता, पश्चिमी प्रभाव से ओत-प्रोत शहरी सभ्यता यथा कॉकटल पार्टियां, बड़े-बड़े होटलों एवं हॉलों में शादी ब्याह का आयोजन, रसना लोभी प्रीति-भोज का आयोजन, अब तो गांव भी शहर के मायावी रहन-सहन एवं शहरी मानसिकता के सतहीपन से ग्रस्त होने लगा है। सेक्स एवं ग्रीड (तृष्णा) ने आदमी को जानवर से भी बदतर बना दिया है। जीवन विलास की ओर अंधा होकर दौड़ पड़ा है। अवसरोचित सामाजिक परंपरा की घोर उपेक्षा, सतही एवं घटिया श्रृंगार से भरे चलचित्रों, दूरदर्शन द्वारा प्रस्तुत सतही एवं कामोत्तेजक प्रदर्शनों का गहरा प्रभाव, युवा पीढ़ी को अपने जाल में फंसा चुका है। ऐसे में संस्कार, संस्कृति, सांस्कृतिक परंपराएं, आदर्शपूरित सभ्यता का विस्मृत होना या जर्जर होना स्वाभाविक है। सामाजिक संस्कार अब आधुनिकता के रंग में रंग गया है। शादी-ब्याह जैसे पवित्र संस्कार युक्त समारोहों में अब स्त्रियां भी पुरुषों के रंग में रंगने लगी है। इस तरह आधुनिकता की, पाश्चात्य सभ्यता की चमक, मीडिया के प्रसारण का दुष्प्रभाव, मौज-मस्ती का ढंग सब कुछ हमारी सांस्कृतिक विरासत का जानलेवा नासूर बन बैठा है जहां भारतीय स्वर्णिम सांस्कृतिक कला रंगों की जगह पॉप संगीत का जादू, कैबरे और डिस्को का सम्मोहन, उत्तेजक और अपसांस्कृतिक प्रदर्शनों का आकर्षण एक ऐसी मायावी नगरी का मकड़जाल बुनता चला जा रहा है कि उसके पीछे मंत्रबद्ध सभी भागने लगे हैं। पूरी की पूरी नस्ल ही पगला गयी है, बच्चे, बूढ़े जवान सभी।

हमारी सांस्कृतिक विरासत एवं मानवीय आदर्शों के विलुप्त होने का इससे बड़ा कारण और क्या हो सकता है? सांस्कृतिक धरोहरों की एक से एक रत्नाम परंपरा रामलीला, रासलीला, विदापत, कीर्तनियां, पुतली नाट्य, बहुरूपिया, विदेसिया, कठघोड़वा तथा डोमकछ आदि अनेकानेक धार्मिक पौराणिक एवं सामाजिक नाट्य, नृत्य, गीत, वाद्य, गाथा गायन विस्मृत होने लगी है या फिर दिखावे के लिए सिर्फ अवसर पर प्रदर्शित होकर रह जाती है। अपने स्थानीय क्षेत्र में ही देश के दूसरे क्षेत्रों से इनका संपर्क सूत्र अब नहीं के बराबर है। अब तो नाट्यविदों, रंगकर्मियों, नाट्य निर्देशकों के हृदय में भी लोक परंपरा की विराट् और समृद्ध विरासत के संरक्षण और संवर्धन की बात उठती है। ऐसे में 'डोमकछ'—जैसी परंपरा का समाप्त हो जाना निश्चय ही अस्वाभाविक नहीं।

Scanned with OKEN Scanner

मिथिला का संस्कार गीत—सोहर

*आभा कुमारी

भारतीय जन मानस सांस्कृतिक मूल्यों का समुच्चय है—वैयक्तिक दृष्टि से भी और समष्टिगत रूप विधान के अनुसार भी। मनुष्य का जन्म होता है। सांस्कृतिक सिद्धांत उसके साथ जुड़ जाते है। मरणपर्यन्त तक यह सिलसिला अवरित चलता रहता है। सामाजिक जीवन में भी पग-पग पर विभिन्न सांस्कृतिक मूल्य कार्यरत रहते हैं। जन्म से ही संस्कार शुरू होते हैं और मरण तक चलते रहते हैं। सामाजिक क्षेत्र में संबंधों का सांस्कृतिक विश्लेषण होता है। पैतृक दायित्व, संतान के कर्तव्य, मातृभाव, भाई-बहन के पावन संयोग, अतिथि सेवा, शरणागत रक्षा मिल बैठकर सुख-दुःख बांटना, सामूहिक रूप से प्राकृतिक आनंद लेना प्राकृतिक दृश्यों का अनुशीलन, विभिन्न रीति-रिवाजों का सामूहिक परिपालन यहां तक कि जातीयता आध्यात्मिकता, देश-प्रेम आदि सभी क्षेत्रों में सांस्कृतिक चेतना सतत् क्रियाशील रहती है।

इस बहुमुखी सांस्कृतिक चेतना का प्राण है—संगीत। यही कारण है कि लोकगीतों में इस प्रकार की सभी विविधताएं पाई जाती है। वैयक्तिक दृष्टि से जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह और अंत में अन्त्येष्टि जैसे संस्कारों में लोकगीत सांस्कृतिक मूल्यों का सहयोग देते रहते हैं। समष्टि क्षेत्र में प्रेम संबंध विरह मिलन आदि आदि सभी क्षेत्रों में संस्कृति के साथ-साथ लोकगीत जुड़े रहते हैं। इन संबंधों पर प्राकृतिक दृश्यों का भी प्रभाव पड़ता है। बसन्त जो कि ऋतुराज है मिलन विरह की भावना को कैसे प्रभावित करता है, जीवन में आनन्द का कैसे संचार करता है।

बौराती हुई अमराईयां, विकसित नाना रंगों के सौरभमयी पुष्प, प्रातःकालीन मन्द शीतल वायु, प्रथम रश्मि के उदय के साथ पंचम स्वर में कुहुकने वाली कोकिल, वर्षा काल में मयूरों का नृत्य, उनकी मधुर ध्वनि, इस नाना रूपात्मक प्राकृतिक दृश्य मानव के सुख दुख के कैसे साथी है? पपीहे की पी.पी., रिमझिम करती बूंदनियां, दामिनी का दमकना और छिप जाना, उमड़-घूमड़कर घिर आनेवाली श्यामला घटा ये सभी दृश्य मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर अपना-अपना प्रभाव डालते हैं। वर्षा, ग्रीष्म, शरद्, हेमन्त, शिशिर, बसन्त आदि ऋतुएं किस प्रकार की प्रतिक्रियाएं दर्शाती है। बारह महीने अपने अपने भाव लेकर कैसे आते हैं? जीवन भर सप्ताह भर के प्रत्येक दिन का क्या महत्व है? ये सभी बातें प्रत्येक क्षेत्र के गीतों में मिलेगी। इन सभी स्थितियों के अनुरूप शताब्दियों से लोकगीतों की रचना होती चली आ रही है और वह अनवरत गति से जीवन में अपना स्थान बनाए हुए हैं। सरसता की दृष्टि से उनका कलात्मक महत्व है कलात्मक दृष्टि से भी उनकी स्वरावलियां अनूठी है और जीवन निर्माण की दृष्टि से तो वह अद्वितीय है ही। वस्तुतः समष्टि और व्यष्टि परस्पर अभिन्न है। अतः अनेक ऐसे गीत सुनने को मिलेंगे जिनका दोहरा दायित्व होगा उदाहरण के लिए रीति-रिवाज और संस्कार ये व्यष्टिगत भी है और समष्टिगत भी। अतः विभाजन की अनावश्यक पेचिदगियों में न जाकर यथाक्रम लोकगीतों के वैविध्य का परिशीलन बौद्धिक दृष्टि से सहज साध्य भी है।

जन्मस्थान मिथिलांचल होने के कारण मिथिला

*शोध छात्रा, ल. ना. मि. वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

के संस्कार गीत सोहर पर दृष्टिपात करना चाहूंगी।

सोहर गीत संतानोत्पत्ति के अवसर पर ही गाया जाता है। टोले भर की स्त्रियां एकत्र होती है और सोहर गाती हैं। जन्म से छै दिनों तक यह मंगल समारोह चलता रहता है। समाज में ऐसी भी मान्यता हो गयी है कि पुत्री पैदा होने पर प्रायः सोहर नहीं गाया जाता। कन्या के जन्म से घरवालों को अधिक व्यय भविष्य में करने की संभावना बन जाती है जिस कारण उनका हृदय संकीर्ण बन जाता है। परंतु जब पुत्र धन की प्राप्ति होती है तो उनका हृदय उदार बन जाता है। समाज मध्य एक ऐसी ही मान्यता बन गयी है।

मिथिला में सोहर के दो प्रकार मिलते हैं। एक में धार्मिक भावना भरी रहती है। इसमें राम, कृष्ण के जन्म के गुणगान संबंधी उक्ति रहती है। दूसरे प्रकार के सोहर गीत में जन्म, विवाह संस्कार आदि की उक्ति हुआ करती है। जो विभिन्न संस्कारादि पर गाये जाते हैं। मिथिला में जब स्त्रियां सोहर गाती रहती है तो हिन्दी के महाकवि तुलसीदास और सूरदास के नाम भी उन गीतों में सुनने को मिलते है।

संगीत तत्व

गीत की स्वरलिपि रूपक ताल में निबद्ध है। यह सात मात्रा का ताल है। इस गीत में संगीत के सातों स्वरों का प्रयोग हुआ करता है। अतः संपूर्ण जाति का यह माना जायेगा। कोमल निषाद स्वरों का प्रयोग स्वर-लिपि में दिखाया गया है। निषाद के इस प्रयोग से इसे खमाज थाट के अधिनस्त रखा जा सकता है। विशेषतया इस गीत का गायन रात्रि में ही हुआ करता है। ऐसे यह गीत समाज मध्य किसी भी समय संतानोत्पत्ति के अवसर पर गेय है।

सोहर गीत को जब दुगून एवं चौगुण धुन (लय) में गाया जाता है तो उसे छन्द पर आधारित सोहरगीत कहा जाता है। सोहर गीत गाने की प्रथा मात्र मिथिला में ही नही अपितु अनेक प्रान्तों में भी है। सोहर गीत की टेक है–'ललना रे", "हे", "आहे"।

सोहर के गीत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं–

मथुरा जब हरि जनमल, गोखुला प्रगट भेल रे
ललना रे करए मधुर स्वर गान, सुरंग मेघ बरिसय रे

सोहर गीत की स्वर लिपि

सोहर गीत–रूपक ताल

स्थायी

×			1		2	
सा	रे	रे	म	म	म	प
म	यु	ऽ	रा	ऽ	ज	ब
×			2		3	
ध	–	–	ध	प	प	ध
ह	ऽ	ऽ	री	ऽ	ज	न
×			2		3	
म	–	–	म	रे	रे	म
म	ऽ	ऽ	ल	ऽ	गो	खु
×			2		3	
म	म	म	ग	ग	रे	सा
मे	ऽ	ऽ				

अंतरा

×			2		3	
सा	सा	सा	म	म	म	प
ल	ल	ऽ	ना	ऽ	रे	ऽ
×			2		3	
प	सां	नि	म	ग	रे	रे
क	र	य	म	धु	र	ऽ
×			2		3	
प	म	ग	ग	रे	रे	सा
स्व	ऽ	र	ऽ	गा	ऽ	न
×			2		3	
सा	नि	ध	सा	रे	म	ग
सु	रे	ग	मे	ध	व	रि
×			2		3	
रे	रे	रे	सा	सा	सा	सा
स	य	ऽ				

Scanned with OKEN Scanner

छन्द पर आधारित सोहर

		1		2		×		2		3	
×		प	प	ध	म	प	प	प	प	ध	नी सां
प	प	प	इ	ऽ	ये	ऽ	म	धु	र	स्व	र सं ऽ
गा	0	0									
		1		2		×		2		3	
×		ध	प	म	ग	रे	म	म	म	–	म –
नी	ध	प	ध	रि	स	अ	पा	ऽ	र	यो	ऽ ऽ ऽ
मे	ऽ	ध	ब								
		2		3		×		2		3	
×		म	म	ग	रे	रे	ग	रे	सा	सा	नी नी
प	ध	प	दे	ब	की	ऽ	द	र	द	व्या	ऽ कु ल
रा	ऽ	नि									
		2		3		×		2		3	
×		सा	सा	ग	म	ग	ग	सा	सा	सा	सा –
प	नी	नी	मं	ऽ	ग	ल	गा	ऽ	इ	ये	ऽ ऽ ऽ
ह	र	षि									

Scanned with OKEN Scanner

ब्रज भूमि एवं संगीत

निहारिका*

ब्रज शब्द संस्कृत धातु 'बृज' से निर्मित है। महर्षि पाणिनी के अनुसार इसका अर्थ गतिशीलता है।[1] आर्य साहित्य का परिशीलन करने पर ब्रज शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही देखने को मिल जाता है। ऋग्वेद में यह शब्द गोशाला अथवा गायों के प्रकोष्ठ के लिए प्रयुक्त हुआ है।[2] यजुर्वेद में गायों के चरने के स्थान को ब्रज और गोशाला को "गोष्ठ" कहा गया है।[3] पुराण साहित्य में ब्रज शब्द की मूल चेतना तो पूर्ववर्ती आधार पर ही आश्रित रही है, किन्तु उसके अर्थ में विस्तार होकर वह भू-भाग वाचक हो गया। अर्थ विस्तार ने इसके स्वरूप को परिवर्तित किया है। हरिवंश पुराण में यह शब्द गोप ग्वालों की बस्ती के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा–

"तद ब्रज स्थान्मधिकम् शु शुभे कामनावृत।"
विष्णु पर्व 9. 30

कालान्तर में "ब्रज" शब्द के अर्थ में परिवर्तन और विस्तार हो गया और काव्य शास्त्रा में ब्रज शब्द का प्रयोग ग्वालों के रहने के स्थान के लिए होने लगा। "रघुवंश" महाकाव्य में "ब्रज" शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।[4] इसी प्रकार "शिशुपाल वध "नाटक के छठे अंग के छठे श्लोक तथा 14वें अंक के 33वें श्लोक में ब्रज को ग्वालों के रहने का स्थान बताया गया है। संस्कृत के कोषकार के अनुसार भी ये अर्थ मान्य है।

भौगोलिक दृष्टि से ब्रज भारत का हृदय स्थल है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत की दो–दो राजधानियों दिल्ली और आगरा के बीच अवस्थित ब्रज भारत की कर्मस्थली, योगस्थली, भक्तिस्थली और साधानास्थली ही नहीं, रंगस्थली और शक्तिस्थली भी रही है।

भारत में विद्या का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, ज़ो ब्रज के वैभव से चमत्कृत न हो। ब्रज के रूप रस की दर्शन और शास्त्र की, साहित्य और कला वैभव की, संस्कृति और सभ्यता की लोकमयी और लोकोत्तर जीवन पद्धति की अमिट कहानी इतिहास में सर्वत्र स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई है। कहीं पत्थरों पर उकेरी और तरासी हुई है तो कहीं विविध रंगों के संयोजन से युक्त चित्रांकनों में जैसे बोल रही है। कही वह संगीत की स्वरलहरियों में झंकृत है, तो कहीं ढ़ोल–ढ़ोलक और नक्कारों या ढप, मृदंग, बांसुरी और सारंगी के स्वरों में, नुपुरों की लयकारी के साथ उसे नृत्य की मुद्रा में देखी जा सकती है।

भारतीय कला एवं संस्कृति की चिंतनधारा सदैव से ही अध्यात्मवादी रही है। अध्यात्मवाद में "आनंदमय" की प्रतिष्ठा होती है। आनन्दमय की उपलब्धि का मूल संगीत है। इसी कारण ब्रज भूमि का कण–कण संगीतमय रहा है। संस्कृति एवं साहित्य के साथ–साथ कला का भी केन्द्र अत्यंत पुरातन काल से ब्रज बसुन्धरा ही है। नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर जैसे प्रमाणिक ग्रन्थों के युग के संगीत का यथार्थ स्वरूप जानने का साधन यदि हमें प्राप्त हो सकता है तो वह है–ब्रज का साहित्य एवं संगीत। ब्रज के भक्त संगीतज्ञ, कवि, सन्तों आदि ने युग-युग में संगीत का सांगोपांग विकास एवं प्रसार किया। इसी कारण भारतीय संगीत पर ब्रज वसुधा की अमिट छाप परिलक्षित होती है। शास्त्रीय संगीत के

*स्नातकोत्तर (संगीत), अंतिम वर्ष की छात्रा, ल.ना.मि.वि.वि., दरभगा

Scanned with OKEN Scanner

पद, ख्याल, ध्रुपद आदि ब्रज भाषा में ही सुने एवं रचे जाते हैं।

ब्रज के सभी मन्दिर राधा–कृष्ण के ही नहीं है, अपितु "सर्वदेव नमस्कृत्यम" की भावना के फलस्वरूप अनेक देवी-देवताओं के मंदिर हैं। ब्रज के मन्दिरों में साहित्य, संगीत और कला का जो पावन संगम हुआ है उसमें अवगाहन या तो रसिक जन करते हैं, अथवा साहित्य और कला के पारखी, जो मन्दिरों के कला सौष्ठव को, पालनों को, हिंडोलो को, विविध झांकियों और शृंगारों को लोक से लेकर शास्त्रीय गायन की बारीकियों को, मन्दिरों में छिपी और प्रकट साहित्य–निधि को चित्रावली को, अल्पनाओं और सांझियों को फूलबंगलों और छोटे–बड़े उत्सव या महोत्सवों के शाब्दिक, तात्विक, लौकिक और पारलौकिक रहस्यों को आज के यथार्थ की भूमि पर परख सकते हैं और उसके अनुसार अपने को ढाल सकते हैं।

ब्रज का अधिकांश संगीत साहित्य मन्दिरों की देन है। इन मन्दिरों में जिन भक्त कवियों ने गाया वे गीत अमर हो गए और गायक भी संगीत साहित्य की दुनियाँ में चिर अमरता प्राप्त कर गए। स्वामी हरिदास जी, तानसेन, सूर, गोविन्द स्वामी आदि संगीत के आचार्य थे, गायक थे और स्वयं सरस पद रचना के रचियता कवि थे।

ब्रज में शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत अथवा सरल संगीत आदि जो कुछ हमें आज सुनने के मिल रहा है, उसका सम्बन्ध रूपान्तर से या प्रत्यक्ष रूप में परम्परागत शास्त्रों के विचारों के साथ–साथ 15वीं, 16वीं, 17वीं, शताब्दी के भक्ति संगीत से अवश्य रहा है। चाहे वह राग योजना में हो, ताल योजना में पदगत साहित्य के रूप में अथवा गायन पद्धति के रूप में हो।

इस प्रकार ब्रजभूमि भक्ति एवं संगीत की ऐसी अगम, अगाध स्रोत वाहिनी है जिसका अवगाहन कर पाना कठिन है। ब्रजभूमि में भक्ति की अनेक सरिताऐ प्रवाहित होकर उस संगम की ओर जाती है, जहाँ श्रीराधा-कृष्ण-भक्ति का अपार समुद्र लहराता नजर आता है। इस समुद्र में भक्ति की पाँच प्रमुख सरिताओं का कल-कल नाद स्पष्ट कानों से सुना और भक्ति-लहरियों का तरंगित दृश्य आंखों से देखा जा सकता है। ये पंच प्रमुख भक्ति सरिता हैं–निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य (गौड़ीय) सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय और स्वामी हरिदास का सखी सम्प्रदाय। इस सभी सम्प्रदायों से सम्बन्धित विभिन्न मन्दिरों, मठों, देवालयों, देवस्थान सभी में राधा-कृष्ण की मनोहरी छवि के दर्शन पाकर भक्तगण आह्लादित होते हैं। इन ब्रज भक्त कवियों के पद अर्न्तसंगीत के शब्द, वर्ण–माधुर्य और भावानुकूल योजना के साथ संगीत, ताल मात्राओं के इतने समीप हैं कि उन्हें संगीत में निबद्ध कर सहज ही गाया जा सकता है। इन सम्प्रदायों के भक्त गीतों में संगीत की ध्रुवपद गायन व धमार शैली प्रयोग करते हैं क्योंकि कृष्ण भक्त कवि ध्रुवपद गायन में पारंगत थे तथा ध्रुवपद शैली ही शुद्ध भारतीय गायन प्रणाली समझी जाती थी। ध्रुपद गायन में मृदंग की संगत की जाती है। ध्रवपद के समान ही धमार गीत भी इस ब्रज के मन्दिरों में गाए जाते हैं। जिनमें प्रयुक्त लय योजना उत्सवों के उल्लास को मुखर करती है।

संदर्भ

1. अष्टाध्यायी, 8, 79, "व्रजति"।
2. गवामय ब्रजंवृद्धि कृणुष्वशधो आद्रिव, : ऋ 1/10/7
3. ब्रजं गच्छ गोष्ठानु, यजुर्वेद 1/ 25
4. "नेत्रवृजा पोरजनस्य तस्मिन विहाय"। रघुवंशम् 6, 7, 6, 67

Scanned with OKEN Scanner

राजस्थान के लोकनाट्यों में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट कथायें

रूपाली गुप्ता* एवं डॉ. सुधा सहगल**

लोकनाटक वह विधा है जो अभिनय काव्य एवं संगीत से युक्त होकर लोकानुरंजन हेतु प्रयुक्त होती है। लोक-नाटयों का आधार कथायें हैं जिन्हें काव्य रूप में गा-बजाकर लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इन लोकनाट्यों की कथावस्तु के विभिन्न स्त्रोत हैं जैसे-ऐतिहासिक कथाऐं, पौराणिक कथाऐं, प्रेम-गाथाऐं, लोक कथाऐं, देवी-देवताओं की कथाऐं, वीर-गाथाऐं, धार्मिक कथाऐं तथा स्वतंत्रता संग्राम सम्बन्धी कथाऐं भी सम्मिलित हैं। पौराणिक लोकनाट्यों में राजा हरिश्चन्द्र, भक्त पूरणमल, मोरध्वज, भरथरी पींगला, गोपीचन्द्र भर्तृहरि, भक्त प्रह्मलाद, मीरा मंगल, भक्त ध्रुव आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार धार्मिक कथाओं में रामायण-महाभारत के प्रसंगों को सम्मिलित किया जाता है। प्रेम गाथाओं पर आधारित लोक–नाट्यों में नागजी- नागवन्ती, ढोला-मरूवण, नौटंकी–शहजादी, हीर- रांझा, लैला-मजनूं आदि प्रमुख हैं।

यहाँ के लोक देवताओं में पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी, रामदेव जी आदि प्रसिद्ध हैं। लोकनाट्यों का एक मात्र उद्देश्य जनता को अनुरंजित करना है। अत्एव ऐसे दृश्यों को मंच पर प्रस्तुत नहीं किया जाता जो लोगों के मानसिक तनाव में वृद्धि करें। अतः जनरुचि के आधार पर सुखान्त की भावना से मूलकथा में परिवर्तन सम्भव है।

राजस्थानी लोकनाट्यों में लोकचेतना प्रभावशाली है जिसके फलस्वरूप लोकनाट्यों की अनेकानेक सृष्टि संभव होती है। राजस्थानी लोकनाट्य लोकचेतना को साकार करते प्रतीत होते हैं। इन लोकनाट्यों में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना का जीवन्त चित्रण चित्रित है तथा नैतिक उत्थान, धार्मिक आस्था, सामाजिक जागरण व नैतिक मूल्यों का सहज प्रस्तुतीकरण संभव होता है। विभिन्न कथाओं के पात्रों ने सामाजिक जीवन में चेतना का संचार किया है। राजस्थान में विविध प्रकार की कथाऐं प्रचलित हैं परन्तु यहाँ पर विशिष्ट कथाओं का वर्णन किया जा रहा है–

भक्त पूरणमल

यह कथा भक्त पूरणमल की भक्ति भावना पर आधारित है। स्यालकोट के वृद्ध राजा शंखभाटी ने शोडसी नवयौवन सुन्दरी लूणांदे से विवाह किया जो अपने सौतेले पुत्र पूरणमल पर मुग्ध हो गई तथा उसे बीमारी के बहाने एकांत में बुलवाकर उस पर अपनी आसक्ति प्रकट करते हुए कहा-

माता : "किसी बीमारी कहूं आपने पूरण राजकुंवार,
रोम रोम में छा रह्योस म्हारे जोबन को विस्तार।
जोवन को विस्तार हटायां ना हटे,
आज सेज के मांय मांण रंग तू अठेइ"

इस पर पूरणमल अपनी सौतेली मॉ को समझाते हुए कहते हैं-

पूरणमल : 'सुनले अरज माता, धर्म क्यूँ हटाये हातां,

* शोध छात्रा, संगीत गायन, दयालबाग़ ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा–282005
** रीडर, दयालबाग़ ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा–282005

Scanned with OKEN Scanner

ऐसी मत करे बातां, हात कांई आवसी।
पूरण है सतवादी, लाखों केई आईशादी,
पाप से क्यूँ होय आंदी, बात सुण मावसीङ्ग
ऐसी क्यूँ काया से बात, सतधर्म सारो जात,
मुझको लिवा के साथ, नर्क कुण्ड जावसी।
पूनमचन्द देवो ज्ञान, हरिशंकर कहे तान,
म्हारी मत गमाओ स्यान, हांत कांई आवसीङ्ग

पूरणमल की असहमति पर क्रुद्ध होकर सौतेली मां द्वारा उसे मौत के घाट उतरवा दिया जाता है परन्तु गुरु गोरखनाथ द्वारा पुनर्जीवन पाकर उन्हें संसार से विरक्ति हो जाती है। अतः गुरु गोरखनाथ की शिष्यता ग्रहण कर वे सन्यासी हो जाते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य कथानुसार चीन की राजकुमारी साधु सन्यासियों से अत्यन्त घृणा करती थी।

परन्तु पूरणमल को देखते ही उस पर आसक्त हो गयी। उसने गुरु गोरखनाथ को शिष्यों सहित भोजन कराने के पश्चात् उसने योगी पूरणमल को वरदान में मांग लिया अतः गोरखनाथ को वचनबद्ध होने के कारण उसकी बात माननी पड़ी। पूरणमल को महल में ले जाकर उसने कहा—"जोगी देखत थारो रूप, जियो अब म्हारो डुल गयो जी।"

जोगी पूरणमल ने योगशक्ति का प्रयोग किया। वे कहते हैं—

"मुझको राणी सुन्दरा वो महल अन्दर ले गई मैं तो हुआ अलोण राणी वहां की वहां रोती रही छलबल कर उस जगह भी मैंने अपना धर्म बचाया है।"

इस प्रकार जोगी पूरणमल द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग स्वयं की रक्षार्थ किया गया।

राजा हरिश्चन्द्र

यह कथा राजा हरिश्चन्द्र की सत्यधर्म की परीक्षा पर आधारित है। सत्यधर्म की परीक्षा हेतु विश्वामित्र राजाहरिश्चन्द्र के पास वेश बदलकर आते हैं तथा राजा सत्यधर्म की रक्षार्थ अपनी वचनबद्धता के कारण पूरा राजपाट विश्वामित्र को सौंप देते हैं। तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र रानी तारामती तथा पुत्र रोहितास को विश्वामित्र द्वारा काशी में बेच दिया जाता है। विश्वामित्र की परीक्षास्वरूप रोहितास की सर्पदंश से मृत्यु हो जाती है अतः रानी पुत्र का शव अंतिम क्रिया हेतु श्मशान ले जाती है। राजा हरिश्चन्द को दाह क्रिया हेतु कर वसूली के लिए नियुक्त किया जाता है अतः पत्नी को पहचानने के उपरान्त भी वह सत्यधर्म की रक्षार्थ उससे दाह क्रिया पूर्व कर मांगते हैं परंतु कर ना दे पाने के कारण मालिक के आदेश का पालन करते हुए तारामती को तलवार से मारने को तैयार हो जाते हैं।

रानी भी पति की मर्यादा, पतिव्रत धर्म एवं सत्य की रक्षा हेतु मरने को तैयार हो जाती है। राजा तलवार उठाकर रानी को मारने हेतु तत्पर होकर कहते हैं—

॥ टेर राजा की राणी से ॥

राजा—रानी नाड़ नीची कर मारूं, नहीं सत अपना मैं हारूं ॥ टेर ॥

रानी—पिया क्यूँ तरसा कर मारो, झटका से शीश उतारो ॥ टेर ॥

इसी समय भगवान प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लेते हैं तथा उनके मृत पुत्र को पुनर्जीवित कर उनके सत्यधर्म की जयकार करते हैं।

गोपीचन्द भर्तृहरिः

यह गोपीचन्द भर्तृहरि के संसार से वैराग्य उत्पन्न होकर सन्यासी हाने की कथा है। रानी मैनावती अपने इकलौते पुत्र का विवाह अत्यन्त रूपवान पाटमदे से करवा देती है। विवाहोपरान्त वह सांसारिक सुखों में खो जाता है। जब मैनावती को ज्योतिषी द्वारा पुत्र के अल्पायु होने का तथा एक वर्ष तक का जीवनकाल शेष रहने का ज्ञान होता है तो वह पुत्र की चिन्ता में डूब जाती है।

तत्पश्चात वह उसे सन्यास लेने को कहती है परंतु गोपीचन्द मॉ की नहीं सुनता अतः मैनावती

Scanned with OKEN Scanner

पुत्र को उपदेश दिलवाने हेतु अपने गुरु जलंधर को बुलवाती है अंत में गोपीचन्द गुरु से प्रभावित हो जोगी हो जाता है और मोह माया त्याग कर अपना नाम योग साधना द्वारा दुनिया में अमर कर लेता है। पुत्र के

योगी होने पर मां पुत्र से कहती है–

माता : धन्य धन्य गोपीचन्द बेटा तू है पूत सपूत।
राज छोड़ कर एक पल मांही रूप धर्‌यो अवधूत ॥

गोपीचन्द : कृपा भाव राखो सुत ऊपर भिक्षा दीजे हाथ।
नमस्कार अब आज्ञा पाऊं जाऊं गुरु के साथ ॥

जम्बुकुमार

यह भी एक राजकुमार के योगी बनने की कथा है। महाराजा श्रेणिक के समय में ऋषभदत्त नामक श्रेष्ठि राजगृही नगरी में निवास करते थे। ऋषभदत्त की पत्नी धारिणी अत्यन्त गुणवान व रूपवान थी। विवाहोपरान्त लम्बे समयान्तराल पश्चात उनको एक महातेजस्वी पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है तथा उसका नाम जम्बुकुमार रखा जाता हैं। युवा जम्बुकुमार का विवाह आठ श्रेष्ठ व अत्यन्त सुन्दर कन्याओं से तय होता है।

राजग्रही नगरी में उन्ही दिनों सुधर्मास्वामी भगवान महावीर के दिव्य संदेशों के प्रसारण हेतु गुणशील उद्यान में चैत्य में पधारे। जम्बुकुमार अपने मित्रों के साथ वहाँ पहुँचा तथा सुधर्मास्वामी के मर्मस्पर्शी वचनों को सुन उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया तथा वैराग्य धारण हेतु माता-पिता से आज्ञा मांगी तो माता-पिता के समझाने पर वह उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है। जम्बुकुमार व उनकी माता के

वाद-सम्वाद इस प्रकार हैं–

माता : जम्बू! कह्यो मानले जाया, मत ले संजम भार।

जम्बू : माता मोरी सांभलो मैं तो, लेस्यूं संजम भार।

माता : ज्यूं आंधा रै लाकड़ी जम्बू ! तू म्हारै प्राण आधार। तुझ बिन म्हारै जुग सूनो जाया !
जननी जीतब राख ॥

जम्बू : रतन जड़त रोपिंजरो, माता! सुवो जाणै सोई फन्द। काम भोग संसार ना, माता!
ज्ञानी जाणै झूंठा फन्द ॥

माता : पंच महाव्रत पालणा, जम्बू! पांच ही मेरू समान।
दोष बयांलीस टालणा, जम्बू! लेणों सूझतो आर ॥

जम्बू : पांच महाव्रत पालस्यूं, माता ! पांचूं ही मेरु शिखर समान।
दोष बंयालीस टालस्यूं, माता ! लेस्यूं सूझतो आर ॥

माता : संजम मारग दोहलो, जम्बू ! चालणो रवांडैरी धार।
नदी किनारे रूंखड़ो, जम्बू ! जद कद होवै छार ॥
चांद बिना किसी चांदनी, जम्बू ! तारां बिना किसी रात।
वीर बिना मंदिर सूनो, जम्बू ! झूरसी बार तिंवार ॥
दीपक बिन मंदिर सूनो, जम्बू ! पुत्र बिना परिवार।
कंथ बिना किसी कानणी, जम्बू ! झुरसी बारूं ही मास ॥

जम्बू : माता पिता मेलो मिल्यो, माता ! मिल्यो अनन्ती बार।
तारण समरथ को नहीं माता ! पुत्र पिता परिवार ॥
मोह मत करो म्हारां माताजी ! मोह किया बंधै कर्म।
हालर हूलर कांय करो माता ! करज्यो जिनजी रोधर्म ॥

अमरसिंह राठौर

यह कथा अमरसिंह राठौर की वीरता की कहानी कहती है। वीर एवं पराक्रमी अमरसिंह नागौर के राजा थे। दिल्ली के मुगल बादशाह भी उनकी वीरता

Scanned with OKEN Scanner

का लोहा मानते थे। एक बार अमरसिंह की बादशाह के साले सलामत खाँ ने भरे दरबार में चुगली की अतः बादशाह ने अमरसिंह को धोखे से दरबार में बुलाकर पकड़वाने का हुक्म दिया परंतु अमर सिंह ने दरबार में सैनिकों से वीरतापूर्वक लड़कर उन्हें मार गिराया। यह देख बादशाह भी भाग निकला। तत्पश्चात उन्हें पकड़ने का बीड़ा अजुर्न गौड़ नामक व्यक्ति ने उठाया। अतः अमरसिंह को पुनः दिल्ली बुलाया गया तथा अपनी रानी के रोकने पर उसे समझाते हुए कहते हैं–

कांई करेला सिंह को सरे भेड़ां बीस हजार,
हाथ्यां पर हाथल फिरै कुण लेवे सिंह ने मार॥

राजपूतानी आन की शिक्षा देते हुए वह आगरा जाने पर मना करती हुई पत्नी से कहते हैं–

लाजे हमारी जात जावां म्हे आगरे!
मारां चुगल ने जाय जी म्हारे पागड़े॥

अमर सिंह द्वारा रास्ते में अजुर्न गौड़ द्वारा छल से पकड़ने के प्रयास पर नाक कान काट लिये जाते हैं तथा अंत में अजुर्न गौड़ द्वारा छल से उनकी हत्या कर दी जाती है। इस पर क्रुद्ध हो बादशाह अजुर्न गौड़ के इनाम मांगने पर उसे मुंह काला कर गधे पर बिठाकर पूरे शहर में घुमाने को कहता है तथा कहता है कि अमर सिंह द्वारा नाक-कान काटना ही उसका इनाम है। अर्जुन गौड़ द्वारा इस सजा का कारण जानने पर बादशाह कहता है कि वह अमरसिंह को मरवाना नहीं बल्कि उसे पकड़कर अपना सेनापति बनाना चाहता था। अमरसिंह की मृत्यु की सूचना पाकर उसका भतीजा बदले की भावना से दिल्ली आता है तो बादशाह अपनी गलती की क्षमा मांगकर उसे अमरसिंह का पद प्रदान करता है।

अमरसिंह के वीरतापूर्ण कार्यों को कठपुतली के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है।

ढोला-मरूवण

यह राजस्थान की एक लोकप्रिय प्रेमकथा है तथा एक प्राचीन उत्कृष्ट लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य के विषय में कहावत है–

मारू थारा देश में निपज्या तीन रतन।
एक ढोलो दूजी मरूवण तीजो कसूमल रंग॥

अतः यह पूगल नरेश पिंगल की पुत्री मरूवण तथा नरवर नरेश नल के कुंवर ढोला की प्रेम गाथा है।

इसमें ढोला मारू के माता-पिता द्वारा उनका जन्मपूर्व ही विवाह तय कर बचपन में ही विवाह करा दिया जाता है। पंडित द्वारा ढोले की जन्मपत्री बनाकर बताया जाता है कि–

टेवो बांच ज्योतिषी पंडित वचन कह्यो विकराल।
पत्थर शिला दरवाजा भीतर है ढोले को काल।
इतनी सुण पूगल को रहणो
तजदियो नल भूपाल॥

मरुवण के लिए यह भविष्यवाणी अभिशाप बन जाती है तथा युवा होने पर ढोले के पिता उसका विवाह अन्यत्र मालवणी नामक स्त्री से कर देते हैं। युवा होने पर एक बार मारू ढोले को स्वप्न में देखकर अपनी माता से पूछती है कि उसका पति कौन है। इस पर उसकी मां उसे बताती है–

तेरे कारण काल ढोल को विप्र बतायो।
सांची ले अब मान पीव तेरो यों नहीं आयो॥

दुःखी मरूवण शुक के हाथ ढोला के पास संदेश भेजती है परंतु मालवणी उसे ढोला के पास पहुंचने से पूर्व ही मरवा देती है। तदुपरान्त वह कविजन के हाथ संदेश भेजती है जिसमें वह अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती है–

कविजन हाथ संदेसड़ो, जाय ढोला ने दीज्यो।
म्हें तो हिमालय हालशां, थे नरवरगढ़ रीज्यो॥

या प्रेम पत्रिका दीजो, म्हारा मारू ने जाई कीज्यो।
कर कर चिन्ता काली पड़ गई, सूख सूख तन छीज्यो॥

ढोला यह सब पढ़कर मारू के पास जाने को बेचैन हो उठता है–

लगी चाह चितमांय चौगणी उस मरवण मतवारि की।
अन जद खाँऊ जाकर के मैं तपत बुझाऊं प्यारी की॥

मालवणी के रोकने के विभिन्न उपाय करने के बावजूद भी वह मारू के महल पहुंच जाता है। इधर मरूवण के पिता ढोला के पास संदेश भेजते हैं तथा

Scanned with OKEN Scanner

कहलवाते हैं कि निम्न शर्तें पूरी होने पर मरूवण से मिल सकोगे—

॥ हलकारा ढोले से कहता है—छप्पय ॥
नल सुत छोतो आप डरो मत मन में जायो।
दरवाजा होय बड़ो हुक्म बुधसिंह फरमायो॥
फिर काला गैंडा पलाण कुंवर बन मांय पधारो।
पथर सिला पर जायतीर से सिंघाँनें मारों॥
इता काम करल्यो कुंवर जद मारूवण ने पावस्यों।
नीतर बिल्कुल थे सुणो बंदीखाने जावस्यों॥

ढोला सभी शर्तें पूरी करते हुए विभिन्न बाधाऐं पारकर मारू के उद्यान तक पहुँच जाता है। सूचना पाकर मरूवण भी साखियों साथ पहुँचती है। ढोला द्वारा पानी मागनें पर वे उससे प्रेम पहेली करती हैं-

॥ टेर पांचों साखियों और ढोला की परस्पर ॥

सखियां—प्यारी ने पिछाण पिया जल पीजिये ॥ टेर ॥

ढोला—क्यों जुल्म जणावे मुझको जल भावे मारु नार का ॥टेर ॥

एक साखी—प्यारी लो पहचान पियाजी थे होकर हुशियार।

हथलेवा की चोर बणा मोहि क्यों छोड़ी मंझधार ॥
अब तो दया धार पीवो जल थे बांका सिरदार।

दोहा

थे रेवा पर रीझ के ना मेरी पूछी बात।
माली की की सेज में स थे मोज करो दिन रात॥
पीर नहीं जाणी म्हारी ॥ प्यारी ॥

अंततोगत्वा ढोला सफल होता है तथा राजा बुधराज बेटी को दान दहेज के साथ विदा कर देते हैं। परंतु नरवरगढ़ जाते समय रास्ते में जादूगरनी चील बनकर मारू के ऊपर सर्प गिरा देती है जो उसे डस लेता हैं। तत्पश्चात भगवान स्वंय मारु की वैध बनकर रक्षा करते हैं और ढोला मारू को अपने साथ ऊंट पर बिठा कर ले जाता है—

"मारू चढ़ी पास प्रीतम के फूली अंग ना समावे है।"

ढोला के आगमन पर उसके माता पिता हर्षित होते हैं तथा नगर में खुशिया मनाई जाती हैं।

हीर-रांझा

हीर-रांझा के प्रेम पर आधारित यह अत्यंत लोकप्रिय लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य में हजार देश का रांझा स्वप्न में अपनी प्रेमिका को देख अधीर हो उठता है। उसकी व्याकुलता निम्न पंक्तियों से ज्ञात होती है—

राजपाट और मुलक परगना, मेरे मन नहीं भावे हैं।
इश्क लहर से शहर हजारा, मुझकूं जहर लखावे हैं।

इसी प्रकार हीर भी रांझा को स्वप्न में देख व्याकुल हो उठती है—

॥ टेर हीर अकेली की ॥
सुपने में मेहबूब मिल्या मोय, वो नहीं दरस दिखावे है।
उस जानी क्या करूं मोहे, अन्न पानी ना भावे है॥

प्रेम विवश होकर रांझा चरवाहा बनकर हीर को देखने के लिए उसके नगर में रहता है। यहां हीर भी पागलपन का नाटक करती है अतः फकीर लोगों को झाड़-फूंक के लिए बुलाया जाता है अतः रांझा भी फकीर वेष धारण कर हीर के घर पहुँच जाता है। तथा उसे मंत्रादि सुनाकर झाड़ फूंक के बहाने बुलवाता है। अंत में दोनों जोग धारण कर जंगलों में चले जाते हैं। रांझाहीर से कहता है—

"आप कही तो धार फकीरी, अठे खड़ो मैं आस्यूं।
थारे कारण मैं शहजादी, घर घर अलख जगास्यू॥
तूं हो जावे बावलीस प्यारी, फैल हिये में धार। झाड़ां
के मिस बुला पास मोय, तू होलीजे लार॥"
इश्क फकीरी दोनों साधो, सफल करो यह काया॥
जन्म सुधारो कामनीस थे, काम क्रोध ने जीत॥
प्रीत पूरबली पालो॥

लैला मंजनू

यह एक दुःखान्त प्रेमकथा है। इस कथा में लैला-मजनूं के एक दूसरे के प्रेम के प्रति त्याग एवं वियोग का मार्मिक वर्णन दृश्टव्य होता है। इस कथा का अन्त दुःखान्त है। इसमें जुलकरण बादशाह की पुत्री लैला बचपन से ही अपने उस्ताद के यहाँ पढ़ने वाले मजनू को प्रेम करती थी। मजनूं लैला से निम्न पंक्तियों में कहते है—

Scanned with OKEN Scanner

मजनूः—मैं दरस दिवाना घूमूं मस्ताना तेरे इश्क में,
जी चाहता है सभी सुणो, अभी जहर विष खा मरूं।

लैला के माता-पिता अत्याधिक धनवान थे अतः उन्हे गरीब मजनूं से उसका प्रेम रास ना आया अतः उसकी मां उसे समझाते एवं प्रताड़ित करती हुई कहती हैं—

॥ छप्पय ॥

क्या नाम कमाया है लैली, नांव लजाया बाप का
नांव लजाया बापकास री तू लैली नादान।
पज बैठी मजनूं से पल में तू तज कर कुल आन॥
मान घटाया पेट पड़री पाली गोद खिलाय।
जो मैं ऐसा जानती तो देती जहर पिलाय॥

लैला की हठ से उसके पिता उसकी शादी अन्यत्र राजकुमार से कर देते हैं। लैला जब डोली में बैठकर विदा होती है तो जंगलों से निकलते समय वह मजनूं की पुकार सुन बहाने से डोली रूकवाकर चली जाती है। इसी बीच भयानक तूफान आने से पूरा काफिला अस्त व्यस्त होने के साथ ही लैला मजनूं भी एक दूसरे से मिलकर भी अपना जीवन तूफान की भयंकरता में खो देते हैं।

नौटंकी-शहजादी

यह कथा पंजाब की लोकप्रिय कथा है। राजस्थान में नौटंकी ख्यालों का प्रचलन सर्वप्रथम भरतपुर एवं डीग में भुर्रीलाल ने किया। इस ख्याल में सूरत का शहजादा अपनी भाभी का ताना सुनकर नौटंकी शहजादी को पाने हेतु उसकी मालन को धन का लालच देकर उससे मिलवाने का आग्रह करता है। मालन शहजादे को अपनी बहू के वेश में नौटंकी-शहजादी से मिलवाने ले जाती है—

॥ मालण—शहजादे से ॥

मतलब कारण भेष बनाओ क्यूं ऐसा डरलावो,
नाजुक ओढ़ो ओढनीस तुम नवला भेष बनाओ।
प्यारी मिलवा कारणेस तुम संग हमारे आओ॥

नौटंकी मालन की पुत्रवधू को हमउम्र होने के कारण महल में रख लेती है। कुछ समय पश्चात नौंटकी को उसके पुरुषहोने का पता चल जाता है तथा शहजादा भी उसका दिल जीतने में सफल रहता है।

परंतु नौटंकी के द्वारा पिता को सबकुछ बताए जाने पर बादशाह क्रोधित होकर युवक को सूली पर चढ़ाने का आदेश दे देता है। परंतु नौटंकी क्षमा याचना करती है तथा शाहजादे को क्षमा कर उसे फांसी लगाने को कहती है—

॥ रंगत खड़ी चौबोला ॥संवाद-नौटंकी का बादशाह से॥

तुझे पिता ललकार मारकर मैं नौटंकी मरती हूं।
कफन ओड़ शीश पर आई नहीं डराई डरती हूँ॥
तू सूली दिलवाय देखले मैं भी वादा करती हूं।
नहीं मानो पिता अभी तलवार कंठ पर धरती हूं॥

अंत में पुत्री प्रेम में विवश बादशाह दोनों को क्षमा कर विवाह करा देता है।

मूमल महेन्द्रः

यह कथा जैसलमेर की मूमल तथा अमरकोट के राजकुमार महेन्द्र की प्रेमगाथा है। इस कथा का अन्त भी दुःखान्त है। मूमल एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी। उसकी शर्त थी कि जो भी

राजकुमार उसकी उलझी हुई रेशम सुलझा देगा तथा प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर देगा वही उसको प्राप्त करने में सफल हो सकेगा। विभिन्न देशों के राजकुमार आये परंतु सफल ना हो सके अंत में अमरकोट का राजकुमार महेन्द्र वहां आया तथा उसने मूमल की सभी शर्तों को पूरा किया तथा प्रश्नों के उत्तर भी दिये। राजकुमारी उसको सर्वप्रथम देखते ही मुग्ध हो गयी थी अतः वह प्रसन्न हुई।

तत्पश्चात राजकुमार प्रति रात्रि अमरकोट से जैसलमेर आता तथा प्रातः ही लौट जाता।

राजकुमार महेन्द्र एक दिन किसी प्रतिद्वन्दी द्वारा घायल किये जाने पर मूमल से मिलने चार दिनों तक नहीं आ सका अतः इस सबसे अनजान राजकुमारी राजकुमार के ना आने से व्यथित हो

Scanned with OKEN Scanner

उठी। इसके उपाय स्वरूप राजकुमारी की छोटी बहिन सूमल महेन्द्र का रूप धारण कर मूमल के पास पहुंच गयी। इधर महेन्द्र स्वस्थ होकर मूमल के पास पहूंचा तो उसे पर-पुरुष के साथ देखते ही लौट गया और कभी वापस नहीं आया।

मीरा मंगल

यह कथा मीरा के जीवन पर आधारित है। मेड़ता में एक साधु द्वारा मीरा को बाल्यावस्था में गिरधर गोपाल की मूर्ति प्रदान की गयी। जब मीरा बड़ी हुई तो उनका विवाह चित्तौड़ के राजा भोजराज के साथ तय कर दिया गया। परंतु मीरा विवाह के लिए तैयार नहीं हुई। परंतु विभिन्न प्रयत्नों द्वारा विवाह भोजराज से हो गया। एक बार भोजराज युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हुए तो मीरा पूरी तरह से कृष्ण भक्ति में डूब गईं। राणा जी को उनकी कृष्ण भक्ति पसंद ना थी अतः उनके मना करने के बावजूद भी वे कीर्तन, सत्संग करतीं। अंत में वे महल छोड़कर संतों के साथ वृन्दावन में बस गईं। एक बार स्वप्न में उन्हें भगवान कृष्ण के दर्शन हुए तथा द्वारिका में उन्होंने अपना शरीर सदैव के लिए छोड़ दिया। इस प्रकार राजस्थान के लोकनाट्यों की इतनी समृद्ध परम्परा है कि वर्तमान में भी इसका व्यवहार भले ही अल्प हो गया है किन्तु संस्कृति को सहेजने में अत्यन्त सक्षम हैं।

मध्यकालिन मिथिला में संगीत चिंतन

रजनीगंधा*

भारतीय संगीत इतिहास का काल विद्वानों ने 9वीं ई. से 17वीं ई. तक का माना है। भारतीय संगीत के अध्ययन की दृष्टि से इस अवधि को विद्वानों ने महत्वपूर्ण माना है। मिथिला के राजा भी संगीत चिंतक, विद्वान तथा संरक्षक हुए हैं, जिनमें कर्णाट वंश में राजा नान्यदेव से लेकर हरिसिंह देव तक छह पीढ़ियों में संगीत चिंतन की परम्परा रही। जिसे महाकवि विद्यापति ने अपनी पुस्तक "पुरुष परीक्षा" में इस प्रकार इस वंश के संगीत संरक्षण और ज्ञान की चर्चा की है :–

हरो वा हरि सिंहो वा गीत विद्या विशारदौ
हरिसिंह गते स्वर्गम् गीतवित् केवलं हरः।

अर्थात्–संगीत के दो ही आचार्य हैं :–"हर" यानि महादेव या "हरिसिंह देव"। हरिसिंह देव के स्वर्गवास के पश्चात् अब केवल महादेव ही इस विद्या के आचार्य रह गये हैं। मिथिला में कर्णाट वंश के संस्थापक राजा नान्यदेव थे। इनका काल इतिहास-कारों ने 1097 ई. से 1135 ई. माना है। इन्होंने मिथिलेश्वर की उपाधि धारण की। ये अपने समय में महान संगीतवेत्ता और कला संरक्षक थे। संगीत पर इनकी लिखित दो ग्रन्थों की चर्चा मिलती है :–(1) सरस्वती हृदयालंकार (भरत-भाष्यम) (2) ग्रंथ महार्णव (नान्यदेव लिखित यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है)। "भरत भाष्यम" यह ग्रंथ भरत लिखित नाट्य-शास्त्र की टीका है जो संगीत संबंधी अपनी चिंतन के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। इस ग्रंथ की मूल प्रति पूना के "भन्डारकर रीसर्च इंस्टीच्यूट" में सुरक्षित है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। संगीत की बातें को श्लोकों में निबद्ध किया गया है, श्लोकों की संख्या सात हजार के करीब है। भरत के द्वारा अप्रचलित कहे गये गांधार ग्राम के परिचय के साथ उसकी मूर्च्छनाओं तथा उससे उत्पन्न जातियों की चर्चा की गयी है। रस निष्पत्ति हेतु निर्धारित लय ताल और राग के उपयोग की बात कही है– *"कियतो नियता रागालयेषु प्रतिपादित रसानुरोधादन्येऽपि रागाः कार्या मनीषिभिः।* हास्य एवं शृंगार रस के लिऐ मध्य लय, करूण के लिऐ बिलम्बित तथा वीर, रौद्र, अदभुत और भयानक रसों की उत्पति के लिऐ द्रुत लय के व्यवहार के लिऐ इस ग्रंथ में कहा गया है। रागों का समय के साथ संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ में अनेक दक्षिणात्य रागों के भी वर्णन हैं। तालों पर स्वतंत्र रूप से पुष्कराध्याय लिख कर दर्दुर, पुष्कर आदि ताल वाद्यों का वर्णन तथा उनकी वादन विधि की चर्चा है। अपने काल में प्रचलित प्राचीन और नवीन मिलाकर कुल उनतीस प्रकार के वीणाओं का उल्लेख किया है तथा उनकी तारों की संख्या का भी वर्णन है। संवादिनी, वितंत्री, किन्नरी, परिवादिनी और घ्रासकत्ता नामक वीणा में नान्यदेव ने क्रमशः एक, दो, तीन, चार और दस तारों के संबंध में कहा है। इक्कीस तारों वाली वीणा का नाम नान्यदेव ने "महती वीणा" कहा है, जिसे नारद बजाते थे। "चित्रवीणा" में सात तार होते थे तथा इसे मतंग मुनि बजाते थे। नान्यदेव का कथन इस प्रकार है :– *"मातङ्गेनवादकहस्तस्था श्चैत्रिकोनाम्नापरः"।*

*शोध छात्रा, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

मिथिला में कर्णाट वंश के अंतिम राजा हरिसिंह देव (राज्य काल 14वीं सदी) के दरबारी विद्वान ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने "वर्णरत्नाकर" नामक अपने ग्रंथ में संगीत सम्बन्धी अनेक मौलिक बातों का वर्णन किया है। जिनमें रागों तथा श्रुतियों के वर्णन के साथ, सात प्रकार के गान दोष, चौदह प्रकार के गीत दोष का उल्लेख किया गया है। इन्होंने कौशिक, भैरवी, हिण्डोल, रामकली, श्री, दीपक, गुजरी, धनाश्री, मलार, देसाखी, बसंत, कामोद, कर्नाट, गौड़, बंगला, मनसाई, मुलकी, बराली टोकी, पटमंजरी, खंवावती, गंधार पंचम आदि रागों के नाम बतायें हैं। इन्होंने नृत्य नाम के एक राग का भी वर्णन किया है। वर्णरत्नाकर में गमक के सात प्रकार बताये गये हैं—लील, कंपित, स्फुरित, त्रिभिन्न, तिरिप, हाथत, आंदोलित। इन्होंने श्रुति संख्या बाईस, जाति संख्या अठारह तथा इक्कीस मूर्च्छना की चर्चा की है। ज्योतिरीश्वर ने तालों की चार जाति जैसे चतुस्त्र, त्रयस्त्र, मिश्र तथा शहक बताया है, तथा तालों के प्रकार आदि के आधार पर इनकी तालिका दी गयी है। वर्णरत्नाकर में 26 प्रकार की वीणाओं का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के वादयों का भी वर्णन है जैसे—भेभच, हुलुक, डाक, डौकी, डेगड़ी, डमरू, मजीरा, कठताल, किदला, चंगु, चुटुकुल, वांसी, पुहिल, सींगा, डफिला, बेलि, चोचली आदि।

मिथिला में मध्य काल में गीत संगीत के साथ नृत्य विषय पर भी चिंतन किये गये हैं। खड़ौरेवंशीय मिथिला नरेश शुभंकर जिनका कार्य काल 1516 ई. से 1607 ई. तक माना गया है, ने "श्री हस्त-मुक्तावली" नामक नृत्य की हस्तक एवं मुद्राओं से संबंधित शास्त्र की रचना की थी। इस ग्रंथ की पांडुलिपि नेपाल के दरबार लाईब्रेरी में सुरक्षित हैं। लेखक की दूसरी संगीत कृति "संगीत दामोदर" है, जिस ग्रंथ में शुभंकर ने 101 तालों की चर्चा की है। जिसमें 60 को ही प्रमुख माना है। शुभंकर ने "संगीत दामोदर" में वीणाओं के 29 प्रकार बताने के साथ "सुभग" राग की चर्चा की है, जिसका वर्णन तत्कालीन तथा बाद के किसी भी शास्त्रकार ने नहीं किया है। शुभंकर चाचपुट ताल का परिचय इस प्रकार देते हैं— "गुरुर्लघुः प्लुतश्चैव भवेच्चाच- पुटमिघे। षट्पितापुत्र नामक ताल के संबंध में शुभंकर कहते हैं— *"गलगा गलाश्चैव षट्पितापुत्रा- केमताः* इसे बारह मात्राओं का ताल बताया है। वर्णरत्नाकर में उल्लेखित अनेक ऐसे ताल जिनका लक्षण लेखक ने नहीं दिया था, लगभग 500 वर्षो बाद उन तालों का परिचय शुभंकर ने अपनी ग्रंथ "संगीत दामोदर" में दिया।

मिथिला के संगीत शास्त्री महाकवि लोचन का काल विद्वानों ने अलग-अलग बताये हैं। आचार्य बृहस्पति ने अपनी पुस्तक "खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार" में लोचन का काल चौदहवीं शताब्दी माना है, वहीं संगीत समीक्षक गजेन्द्र नारायण सिंह ने इनका काल 1650 ई. से 1725 ई. तक माना है। लोचन का संगीत चिंतन मध्यकालिन भारतीय संगीत पर इरानी संगीत के प्रभाव को प्रदर्शित करता है, ऐसा कई विद्वानों ने स्वीकार किया है।

लोचन कृत "राग तरंगिणी" में ललित, विभास, अहीरनी, गोपीबल्लभ, केदार, भूपाली, राजविजय आदि चौदह रागों का उल्लेख किया है, साथ ही विभास, अहीरनी, गोपीबल्लभ सारंगी, केदार, धनछी, गौड़माल, राजविजय, नाट आदि रागों को तिरहुत में विकसित संकीर्ण राग कहा है—

मिथिलादेश विख्यातो गोपीबल्लभस्सऽतु
मिथिलायामयन्तावत्सहवस्समुदाहृतः,
मिथिला गीति गोष्ठीषु धनछीपंचसुस्वराः
यत्पढ़ार्ध्दे स तु प्रोक्तो मिथिला गौड़ मालवः।

"राग तरंगिणी" में कुछ रागों का वर्णन मिलता है, जिसे इनसे पहले के ग्रंथकर्त्ता के द्वारा नहीं किया है। जैसे—अडाना, इस राग की उत्पत्ति के संबंध में लोचन कहते हैं—

बड़ारी बंगपालाभ्यां विभासमिलनादपि।
अडाना रागिणी फिरोदस्ताद छनेन च॥

अर्थात :—बड़ारी और बंगपाल से विभास के मिलने पर तथा फिरोदस्त से मेघराग के मिश्रण से अडाना राग बनती है।

अडाना राग के संबंध में लोचन की यह उक्ति उनके संगीत संबंधी गंभीर चिंतन को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त लेखक ने मुलतानी राग का उल्लेख किया है, इनसे पहले मुलतानी राग का वर्णन किसी अन्य ग्रंथकर्त्ता के द्वारा नहीं मिलत है। पं. भातखण्डे

Scanned with OKEN Scanner

जी ने लिखा है कि लोचन ने उस काल में उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित करने का प्रथम प्रयास किया था। राग वर्गीकरण की जो पद्धति इस ग्रंथ में बतायी गई है, आगे चलकर उत्तर भारतीय संगीत में उसी आधार पर रागों को व्यवस्थित किया गया। लोचन ने "ठाठ" को हीं "संस्थान" कहा, आचार्य बृहस्पति के अनुसार "संस्थान" 'मुकाम' का ही अनुवाद है। लोचन ने "भैरवी" को शुद्ध थाट माना था, स्वरों के कोमल और तीव्र नाम इसी ग्रंथ में पहली बार आये हैं। लोचन के बाद के रामामात्य, पुंडरीक, श्रीकंठ, कल्लिनाथ आदि संगीत विद्वानों ने "ठाठ" के लिये "संस्थान" शब्द का प्रयोग किया है। लोचन कृत "राग तरंगिणी" में वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत के भैरवी, काफी, आसावरी, पूर्वी, विलावल, खमाज, भैरव और कल्याण आदि रागों का वर्णन है, परंतु मारवा और तोड़ी दिखायी नहीं देता है।

राग तरंगिणी पाँच अध्यायों (तरंग) में लिखी गयी है। प्रथम तरंग में रागों के स्वरूप का वर्णन है। द्वितीय तरंग में रागिनियों का उल्लेख है। तृतीय तरंग में इनकी उत्पत्ति, नाद, निरूपण, तथा तिरहुत देश में प्रचलित राग, छन्द, गीत, ताल आदि का उल्लेख हुआ है। चतुर्थ तरंग में तिरहुत (मिथिला) में प्रचलित संकीर्ण रागों का विवरण है। पाँचवें तरंग में स्वर प्रकरण वीणा का उल्लेख, श्रुति, राग, संस्थान, राग-गायन का समय, नायिका के भेद आदि है। लोचन ने हनुमत मत के अनुसार छह राग और तीस रागिनियों का विवेचन किया है। प्रसिद्ध संगीत समीक्षक श्री गजेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार मध्यकालिन उत्तर भारतीय संगीत के सम्यक् स्वरूप को समझने के लिये राग तरंगिणी एक मानक ग्रंथ है।

इस प्रकार तत्कालीन एवं परिवर्ती साहित्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन मिथिला में अनेक ऐतिहासिक उथल-पुथल के बाद भी संगीत विषय के अंतर्गत गायन, वादन तथा नृत्य पर पर्याप्त कार्य किये गये हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कीर्तिलता—महाकवि विद्यापति
2. खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार—आचार्य बृहस्पति
3. वर्णरत्नाकर—ले. ज्योतिरीश्वर ठाकुर, संपादक एस0 के0 चटर्जी
4. राग तरंगिणी—ले. कवि लोचन
5. मिथिलाक संगीत परम्परा—ले. डा. चण्डेश्वर झा
6. बिहार की संगीत परम्परा—ले. गजेन्द्र नारायण सिंह
7. सरस्वती हृदयालंकार (भरत-भाष्यम्) ले. नान्यदेव, संपादक—चैतन्य देसाई
8. राग परिचय भाग 1 एवं 2 ले. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

Scanned with OKEN Scanner

कार्यालय : 233657
आवास : 221551

नागेन्द्र झा महिला महाविद्यालय

लहेरियासराय, दरभंगा

दिनांक....07/09/09

पत्रांक....147/09.....

(दरभंगा प्रमंडल मुख्यालय लहेरियासराय में नारी उच्च शिक्षाक उत्तम व्यवस्था, नियमित अध्यापन, उत्तम परीक्षाफलक हेतु एक मात्र उत्तम.शिक्षण संस्थान)

महाविद्यालय परिवार दिस सँ मिथिलांचल संगीत परिषदक तत्वाधान में प्रकाशित होभय वाला संगीत शोध पत्रिका प्रथम अंकक सफलता हेतु हार्दिक

शुभकामना!

07/09/09

प्रधानाचार्य
नागेन्द्र झा महिला महाविद्यालय
लहेरियासराय (दरभंगा)

डा0 ऋषि कुमार राय

प्रधानाचार्य

लोकरूचि के अनुसार परिवर्तित होनेवाला संगीत देशी है। शास्त्र पूर्णतया इस संगीत का नियामक नहीं है। शास्त्रकारों ने कला और उससे उत्पन्न होनेवाले आनंद में कार्य-कारण-संबंध ढूंढ़ने की चेष्टा की है - उन्होने आनंदजनक नियमों का निर्माण नहीं, अन्वेषण किया है। नाद-सौन्दर्यजनित आनंद अनन्त है। नाद-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के साधन भी अनन्त है। फलतः शास्त्रकारों ने निरंतर चिन्तन और अनुसंधान के परिणामस्वरूप जिन नियमों का निर्देश किया है वे हमारे लिए सीमा रेखा या बंधन नहीं, अपितु सौन्दर्य की नवीन अभिव्यक्तियों और उससे उत्पन्न आनंद में कार्य-कारण-सम्बन्ध खोजने के लिए प्रेरक मात्र है। हमारे लिए ज्ञान-दीपक है। नवीन चिन्तन के स्नेह से इनके प्रकाश में वृद्धि करना हमारा कर्तव्य है और ऋषि-ऋण से मुक्त होने का उपाय है।

- आचार्य बृहस्पति

Scanned with OKEN Scanner

भोजपुरी लोकगीत : एक समृद्ध लोकसंगीत परंपरा

कुमार चंदन*

लोकगीत, भारतीय संगीत की अमूल्य निधि है। संगीत एवं साहित्य दोनों क्षेत्रों में इसका विशेष महत्व है। लोकगीतों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, कहना मुश्किल है। हजारों वर्ष पहले, मानव जब असभ्य था, वह अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त करने हेतु कुछ अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करता था। वहीं अस्पष्ट शब्द उसकी भाषा और उसका संगीत था। समय के साथ-साथ उसका विकास हुआ और तब मनुष्य ने भाव-भंगिमा एवं भावनाओं की गहराई को समझते हुए शब्दों एवं गीतों के प्रयोग को सीखा। यही संगीत 'लोकगीत' के नाम से प्रचलित हुआ।[1]

'लोकगीत' शब्द अँग्रेजी के 'Folk song' शब्द का अनुवाद है। 'चैम्बर्स डिक्शनरी' में Folk song' का अर्थ है—"Any song or ballad originating among the people and traditionally handed down by them". (ऐसा कोई भी गीत ; जिसका उद्‌गम लोक में हो और जो परम्परागत रूप से ज्ञात हुआ हो)[2]

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लोकगीत को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—"किसी क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा गाया जाने वाला गीत, जो उक्त क्षेत्र की सभ्यता-संस्कृति, विचार, रीति-रिवाजों आदि का वर्णन करता है, लोकगीत कहलाता है।" जहाँ एक ओर इन गीतों में ग्रामीण जीवन ग्रामीण परंपरा, एवं ग्रामीण भावनाओं का स्वभाविक चित्रण मिलता है वही दूसरी ओर भारतीय संगीत (शास्त्रीय संगीत आदि) के मूल स्त्रोत की झाँकी भी मिलती है।[3]

भोजपुरी लोकगीत में गाँव की संस्कृति युग-युग से चली आ रही है। भोजपुरी एक समृद्ध भाषा है, जिसमें शब्दों का अकूत भंडार है। लगभग 20 करोड़ लोगों के द्वारा भोजपुरी बोली एवं समझी जानेवाली भाषा है। बिहार, उत्तर प्रदेश आदि भारत के प्रदेश ही नहीं वरन् विश्व के कई देशों यथा—मॉरीशस, फिजी आदि में भी भोजपुरी बोली एवं समझी जाती है।

भोजपुरी लोकगीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में ढोलक, माँदर अथवा 'मानर', झाल, झांझ, हारमोनियम (भोजपुरी क्षेत्र में इसे 'हरमुनिया' भी कहा जाता है।) बाँसुरी, शहनाई, करताल आदि प्रमुख है। भोजपुरी भाषा वाले क्षेत्र जैसे बिहार के छपरा, सिवान, गोपालगंज, मोतिहारी, बक्सर, भोजपुर आदि, उत्तर प्रदेश के बलिया आदि जिलों के लगभग प्रत्येक घर में कोई न कोई लोकवाद्य तथा वादक, गायक कलाकार मिल जायेंगे। बिना किसी विशेष तालीम के दक्षतापूर्वक रसपूर्ण और भावानुकूल गाने वाले गायक, हारमोनियम, ढोलक आदि बजाने वालों की इन प्रदेशों में कोई कमी नहीं है।

भोजपुरी लोकगीत के अंतर्गत विविध प्रकार के गीत पाये जाते हैं। पूर्वी, निर्गुण, जतसारी आदि के अलावा विभिन्न मौसमी गीत यथा—बारहमासा, चौमासा, कजरी, झूला, चैती, घाँटो आदि, पर्वों के गीत यथा—छठ पूजा के गीत, देवी पूजन गीत, फगुआ आदि, संस्कार गीत यथा—सोहर, मुण्डन के गीत, यज्ञोपवीत गीत, विवाह गीत आदि, कृषि गीतों में—फसल गीत, रोपनी गीत, कटनी गीत आदि, अन्यान्य प्रकारों में विकास गीत, जनजागरण गीत,

*शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा।

Scanned with OKEN Scanner

योजना गीत आदि भोजपुरी लोकगीत के अंग हैं।

कुछ भोजपुरी लोकगीतों की पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं-

पूर्वी

'पूर्वी' शब्द 'पूरबी' का अपभ्रंश है। पूरबी से तात्पर्य पूरब क्षेत्र की गायकी से है। अधिकांश लोगों द्वारा मान्य है कि जिन क्षेत्रों यथा—बलिया, छपरा, सिवान, गोपालगंज, बक्सर, भोजपुर आदि में भोजपुरी लोकगीत की यह विशिष्ट शैली गाई जाती है, वे प्रदेश भारतवर्ष के पूरब में स्थित हैं, जिनकी वजह से इस विशिष्ट गीत के प्रकार को 'पूर्वी' कहा जाता है। भोजपुरी भाषा के लोकगीतों में 'पूर्वी' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गीत है। इस गीत में विरह भाव की प्रधानता होती है। बीसवीं सदी के सर्वोच्च पूर्वी रचनाकार जलालपुर (छपरा) के पं. महेन्द्र मिश्र द्वारा रचित एक पूर्वी देखिए—

मधुबनवा से मोर मोहन अइहें कि दू ना॥
सांवली सुरतिया फेरू देखइहें कि दू ना,
हमरा अंगना में बंसिया बजइहें कि दू ना॥

निर्गुण

गीत का यह काफी प्राचीन प्रकार है। भोजपुरी के अलावा अन्य भाषाओं में भी 'निर्गुण' गाये जाते हैं। यह भजन का ही एक प्रकार है जिसमें एक ओर तो निर्गुण ब्रह्म की उपासना होती है वहीं दूसरी ओर मृत्यु के अकाट्य सत्य का वर्णन मिलता है। 'कबीर दास' रचित एक निर्गुण देखें—

कवनो ठगवा नगरिया लूटल हो॥
चन्दन खाट के बनल खटोलना,
तापर दुल्हिन सूतल हो॥
चार जने मिल खाट उठाये,
चहुं दिशी धू-धू उठल हो॥

जतसारी

ग्रामीण महिलायें 'हाथचक्की' (जाँता या जाँत) चलाते समय जिन गीतों को गाती हैं, उन्हें 'जतसारी' कहा जाता है। यह विलम्बित लय में गाया जाता है।

एक त में बारी भोरी, दूसरे पिया के चोरी,
आरे सजनी रे आरे सजनी रे,
तीसरे बिरहिया जे रसबा के मातल रे की॥

झूमर

'झूमर' शब्द से ही स्पष्ट है—खुशी से झूम जाना, गा उठना, नृत्य करना आदि। यह एक प्राचीन परम्परागत शैली है। इसे झूमर, झुम्मरि, झुमरि, झुमुर, झुमरा, धूमड़ आदि एक ही अर्थ के कई नामों से जाना जाता है। प्रत्येक आनन्द के उत्सव में इसे गाया जाता है। इसे गाने का न कोई विशेष अवसर है, न कोई निश्चित समय। जब भी जी चाहे, प्रसन्नता प्रकट करनी हो, 'झूमर' गाया जाता है।

भोजपुरी क्षेत्र में 'झूमर' नाम से प्रचलित यह शैली अत्यंत मोहक है। प्रायः सभी माँगलिक अवसरों पर 'झूमर' गाया जाता है। झूमर का साहित्य नारी-प्रधान है। महिलाएँ समूह में झूम-झूमकर नृत्य करती हुई गाती हैं। विभिन्न टेकों की पुनरावृति से एक विशेष सौन्दर्यानुभूति होती है, जो अद्भुत है। छोटे-छोटे लालित्यपूर्ण बोलों का मोहक सौजन्य गीत को सरसता प्रदान करता है।[4]

बगिया में फूले रामा बेली हो चमेलिया,
कोइलिया बनवा बोले हो सांवरिया॥
आमवा के डारी में रेशम के डोरिया,
झूला झूलावे मोरा संग के सहेलिया,
पपीहरा रट लावे सांझ सबेरिया॥

सांझा

संध्याकाल में गाये जाने की वजह से इसे 'सांझा' कहा जाता है।

सांझा सनझाई गइलें, बेदिया बिसर गइलें,
बन में के चंदवा छपित भइलें, बास लेहू सुगवा नू हे॥[5]

पराती

जिस प्रकार संध्याकाल में 'सांझा' गाया जाता है, उसी प्रकार प्रातः काल में पराती गाया जाता है। 'प्रातः' शब्द ही विकृत होकर 'पराती' बना है।

Scanned with OKEN Scanner

ओरियानी-ओरियानी कउवा बोले,
केहू नाहीं जागेला हे,
एक त जागेले घरवइया बाबू,
उनका घरवा जग होला हे ॥

बारहमासा

गीत के इस प्रकार में बारहों महीनों का वर्णन होने के कारण इसे 'बारहमासा' कहा जाता है। भोजपुरी के शेक्सपियर कहे जाने वाले भिखारी ठाकुर द्वारा रचित एक 'बारहमासा' एवं उसकी स्वरलिपि देखें–

आवेला आषाढ़ मास, लागेला अधिक आस,
बरखा में पिया घरे रहिते बटोहिया ॥
पिया अइतन बुनिया में, राख लेती दुनिया में,
अधिक सतावेला सवनवा बटोहिया ॥

स्वरलिपि (दीपचंदी ताल)

स्थाई

सां सां –	सां – सां –	नि सां ऽ	नि̲ ऽ ध प
आ वे ऽ	ला ऽ आ ऽ	षा ढ़ ऽ	मा ऽ स ऽ
प ध ऽ	प ध प म	म ग ऽ	रे ग रे सा
ला गे ऽ	ला ऽ अ ऽ	धि क ऽ	आ ऽ स ऽ
रे म –	म – प –	म ग –	रे ग रे सा
ब र ऽ	खा ऽ में ऽ	पि या ऽ	ध ऽ रे ऽ
सा सा –	सा रे रे ग	रे सा –	सा – - –
र हि ऽ	ते ऽ ब ऽ	टो हि ऽ	या ऽ ऽ ऽ
×	2	0	3

अंतरा

सा ध़ –	सा – सा –	सा रे –	सा रे सा रे
पि या ऽ	अ इ त न	बु नि ऽ	या ऽ में ऽ
रे ग –	रे ग रे सा	रे सा –	रे सा रे सा
रा ख ऽ	ले ऽ ती ऽ	दु नि ऽ	या ऽ में ऽ
रे म –	म – प –	म ग –	रे ग रे सा
अ धि ऽ	क ऽ स ऽ	ता वे ऽ	ला ऽ स ऽ
सा सा –	सा रे रे ग	रे सा –	सा – – –
र हि ऽ	ते ऽ ब ऽ	टो हि ऽ	या ऽ ऽ ऽ
×	2	0	3

चौमासा

तीन मुख्य ऋतुओं गर्मी, बरसात एवं ठंढ को चार-चार महीने का माना जाता है एवं उनका वर्णन जिस गीत में होता है, 'चौमासा' कहलाता है।

नई झुलनी की छैंया,
बलम दुपहरिया बिता ल हो ॥
चार महीना के गरमी पड़त है,
टप-टप चुएला पसीनवा,
बलम तनी बेनिया डोलाई द हो ॥

कजरी

वर्षा ऋतु में गाये जाने की वजह से इसे 'बरसाती गीत' भी कहते हैं।

झम-झम बरसे रे बदरवा,
अइलें मास सवनवा ना ॥
दादुर मोर पपीहा बोले,
बिरहिन छतिया में माहुर घोले,
कलपे जियरवा ना ॥

झूला गीत

गीत का यह प्रकार भी वर्षा ऋतु में गाया जाता है। इसमें अधिकतर कृश्ण-राधा के झूला झूलने का वर्णन मिलता है।

झूला लागे कदम के डारी,
झूले कृष्ण मुरारी ना ॥
राधा झूले कृष्ण झुलावे,
कृष्ण झूले राधा झुलावे,
बारी-बारी ना ॥

होली अथवा होरी

भोजपुरी क्षेत्र में इसे 'फगुआ' के नाम से जाना जाता है। माघ पंचमी से लेकर पूरे फागुन मास तक होली अथवा होरी गाई जाती है।

शिवशंकर खेलत फाग, गौरा संग लिये ॥
केकर भींजे लाली चुनरिया, केकर भींजे पाग ॥
गौरा के भींजे लाली चुनरिया,
शिवजी के भींजेला पाग ॥

Scanned with OKEN Scanner

फगुई

फगुआ का ही दूसरा रूप 'फगुई' है। गाँवों में इसे सामूहिक रूप से गाया जाता है। इस गीत में सिर्फ दो पंक्तियाँ होती है। अंत में 'होरी हो' की टेक लगाई जाती है।

राम खेले होरी लक्ष्मण खेले होरी,
लंका गढ़ में रावण खेले होरी,
होरी हो ऽ ऽ ऽ होरी हो ऽ ऽ ऽ

चैता/चैती

चैत मास में गाए जाने के कारण इसे 'चैता' अथवा 'चैती' कहा जाता है। इसमें 'हो रामा' की टेक लगाई जाती है।

चारो भइया लिहलें जनमवा हो रामा,
नवमी शुभ दिनवा ॥
केकर हउवें राम, केकर हउवें लक्ष्मण,
केकर भरत ललनवा हो रामा ॥

घाँटो

यह गीत भी चैत मास में गाया जाता है। साथ ही इसमें भी 'हो रामा' की टेक लगाई जाती है। परन्तु, इस गीत में सिर्फ दो पंक्तियाँ होती है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि जो अंतर होली और फगुई में है, वही अंतर चैता एवं घांटो में है।

जलवा चढ़ावते में उड़ेला
अंचरवा हो रामा, शिव बाबा ॥
मने-मने मुस्कइले हो रामा, शिव बाबा ॥

देवी गीत

ग्रामीण अंचलों में देवी पूजन के समय यह गीत गाया जाता है। इसे 'देवी पचरा' के नाम से भी जाना जाता है।

निमिया के डाढ़ मैया लावेली
हिलोरवा कि झूली-झूली ना,
मैया गावेली गीत कि झूली-झूली ना ॥

छठ गीत

महान पर्व 'छठ पूजा' के अवसर पर गीत के इस प्रकार को महिलाओं द्वारा गाया जाता है।

कांपी-कांपी बोलेली छठी मइया,
सुनऽए सेवक लोग,
ए मोरा घटिया दूभिया उपजी गइलें,
मकड़ी बसेरा लेले ॥

सोहर

'सोहर' भोजपुरी की अत्यंत लोकप्रीय गायन शैली है। यह बालक के जन्म तथा जन्म के विभिन्न संस्कारों; यथा—मुंडन, उपनयन आदि के अवसरों पर गाया जाता है। इस गीत को महिलाएँ सामूहिक रूप में गाती है। 'लालन', 'ललना', 'ए ललना' आदि टेके सोहर की परिचायक हैं।

सोहर शब्द की व्युत्पत्ति 'शुभकर' शब्द से है। इसे सोभर अथवा 'सोहिलों' भी कहा गया है। प्रायः कहरवा एवं रूपक तालों में इसे गाया जाता है। वात्सल्य रस से परिपूर्ण यह लोक-गायन-शैली अत्यंत मधुर एवं हृदयस्पर्शी है।[5]

शुभ मुहुर्त शुभ दिन, बाजेला मन बीन नू हे,
ए ललना, खुशीया में सभे बाटे लीन,
अमीर आउर दीन नू हे ॥

बधैया

सोहर गाने के बाद इसे गाया जाता है। नवजात शिशु के माता-पिता एवं परिवारजनों को इस गीत के द्वारा बधाई दी जाती है।

यशोदा का भइलें ललनवा,
हाली-हाली चलऽ हो जनानावा ॥
कपड़ा रूपया नंद लुटावे,
यशोदा लुटावेली गहनवा ॥

मुंडन गीत

मुंडन संस्कार के समय यह गाया जाता है।

पांच रे बरिस बाबु केसवा रखिले,
आजू बाबा मुंडनवा करीहे हे ॥

यज्ञोपवीत/जनेउ गीत

ए पाट के जनेउवा लिहलें, पंडीजी खाढ़ बाड़े,
बाबू के जनेउवा होइहें हे ॥

Scanned with OKEN Scanner

विवाह गीत

इसके अंतर्गत विवाह की प्रत्येक विधि के गीत जैसे–माटृ पूजा, देवपूजा द्वार पूजा, मटकोर, बरनेत, सिंदूरदान, विदाई आदि के सुंदर गीत भोजपुरी भाषा में मौजूद है। सिन्दूर-दान की रस्म का एक गीत प्रस्तुत है–

लालका सिन्होरवा में सेनूर भरल बाटे हे,
उठी राजा रामचन्द्र करी सेन्दूर दान हे ॥
हाथ में लेवे ताग पात कि गोद लिये लालन हे,
सुहाग सेनूर पड़ गइलेंऽ सीता के भरल मांग हे ॥

कृषि गीत

गीत के इस प्रकार में कृषि का वर्णन होता है–

खेतवा के मेंड़वा पर झूमे खुशी में मस्त किसान हो,
झूम-झूम के गावे गेहूँआ गजबे सुरीला तान हो ॥

रोपनी गीत

धान के रोपनी का वर्णन इस प्रकार के गीत में होता है–

लौटल किसनवा में जान हो भइया,
रोपऽना अब तू हूँ धान ॥

कटनी गीत

गीत के इस प्रकार में फसल कटाई का वर्णन मिलता है–

पाकी गइले खेतवा, जरन लागे रेतवा,
झनकी बाजे ना, धनी खेत-खेत चूड़िया ॥
होते भिनुसार धनी लिहली हँसुअवा से,
चली भइली ना, खेत काटे हो सहेलिया ॥

जनजागरण गीत

जन-चेतना फैलाने के उद्देश्य से रचित गीत 'जनजागरण गीत' कहलाते हैं–

जाग रे जाग, देशवा के चमकल सोहाग।
खेत खरीहनियन में कुटियन पलनियन में,
फूटल जिनिगिया के गान ॥

लोक धुन का रूतबा देखना है तो भोजपुरी की बात करनी होगी। लोक मनोरंजन में 'बिदेशिया' और 'सामा-चकेवा' को कैसे भुलाया जा सकता है। आज भी, जब दिल बहलाव के उपकरणों और कल्पनाशील आयोजनों से मनोरंजन के नये मुहावरे गढ़े जा चुके हैं, हर साल बिहार के गाँवों में आयोजित होने वाले बिदेसिया नाच में दर्शकों की संख्या कई हजार हो सकती है। कुचीपुड़ी नृत्यांगना अरूणिमा कुमार की भोजपुरी लोकगीत पर कुचीपुड़ी नृत्य की तमन्ना इस प्रादेशिक लोक शैली को और अधिक महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय बनाती है।[6]

फिल्मों में भी भोजपुरी लोकशैली का भरपूर प्रयोग हुआ है। इस संदर्भ में जो नाम सबसे पहले मानस पटल पर आता है। वह है चित्रगुप्त। "हिन्दी फिल्मों के अतिरिक्त चित्रगुप्त ने भोजपुरी फिल्मों में भी अभूतपूर्व संगीत दिया। सर्वप्रथम भोजपुरी फिल्म 'हे गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो' एक चिरस्मरणीय फिल्म सिद्ध हो गई। इसके बाद ही भोजपुरी फिल्मों के निर्माण में भी तेजी आई। चित्रगुप्त (जिनका जन्म बिहार के गोपालगंज जिले के कमरैनी गाँव में हुआ था) की भोजपुरी फिल्में निम्नवत हैं–

गंगा
गंगा मइया तोहें पियरी चढ़इबो
लागी नाहीं छूटे राम
बलम परदेशिया
रूस गइले सैयां हमार"[7]

भोजपुरी लोकगीतों का साम्राज्य अपरिमेय है। इसके शब्द, शब्दों में प्रयुक्त स्वर और तालों में गठित लय भोजपुरी परिवेश के जनजीवन को मर्मस्पर्शित करता है। इसकी धुनें एवं प्रस्तुतियाँ सहज ही हृदय को भावमय बना देती है। परन्तु, आधुनिक उथल-पुथल के दौर में शब्द और संगीत का धूम-धड़ाका पूर्ण प्रस्तुतिकरण इसे अपने अस्तित्व से कहीं दूर ले जा रहा है। अश्लील शब्दों का खुला प्रयोग, संगीत में सिन्थेसाइजर एवं पाश्चात्य यंत्रों का प्रयोग इसकी आत्मा को कठोर बना रहा है। आशा है, जल्द ही यह लोक संगीत अपनी पूर्व विरासत को संभालेगा और हम आनंद में लीन हो जायेंगे।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ सूची

1. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, संगीत निबन्ध संग्रह, पृ. सं. 131
2. लोक संगीत अंक, जनवरी 1966, हाथरस प्रकाशन, पृ. सं. 9
3. पं. जगदीश नारायण पाठक, संगीत निबन्ध माला, पृ. सं. 140
4. डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', लोक-संगीत : झूमर, 'संगीत' अक्टूबर 2007, पृ. सं. 6
5. डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या', लोक-गायन शैली : सोहर, 'संगीत' दिसम्बर 2005, पृ. सं. 12
6. कुमार बिनय मोहन सिंह, सारण की सांगीतिक-सह-सांस्कृतिक परम्परायें : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध) पृ. सं. 126
7. वही पृ. सं. 137

– (श्रीमती) रीता देवी एवं श्री संत कुमार सिंह (छपरा) के सौजन्य से प्राप्त।

Scanned with OKEN Scanner

लोकगीत का संक्षिप्त परिचय

श्रीमती नीतु सिंह

लोकगीत सामान्य जनजीवन के बीच गूंजनेवाली बाँसुरी की तान है, उसके अंदर की धड़कन है और है उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद तथा संस्कृति की एक साफ सुथरी तस्वीर। वैसे तो सम्पूर्ण लोक-गीत या लोक साहित्य ही लोकजीवन की परम्परागत विरासत है परन्तु उसके लोकगीत अपने माधुर्य एवं प्रभावोत्पादकता के कारण अधिक महत्वपूर्ण है। यदि किसी समुदाय, वर्ग या जाति की भावनाओं, आस्थाओं एवं संस्कारों को जानना हो तो उसमे लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि लोकजीवन की वास्तविक भावनाओं की वास्तविक तस्वीर लोकगीतों में ही मिलती है। लोकगीत हृदय के खेत मे उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे-प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश है। लोकगीत शास्त्रीय नियमों का विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिये मानव आनन्द तरंग में छन्दोबद्व वाणी सहज उद्भूत करता है वही लोकगीत है।

लोकगीत ग्राम्य संस्कृति की प्रहरी होते हैं ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। उनमें अलंकार नही केवल रस हैं, छन्द नही केवल लय है। मेरे विचार से ये लोकगीत मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन प्रधान होते हैं।

महत्व—किसी भी देश के राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में वहां के लोकगीतों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। लोक की वास्तविक संस्कृति, धर्म, सदाचार और समाज का असली रूप ऐसे ही मौखिक साहित्य में विद्यमान है। लोकगीत में किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती है अर्थात जो वस्तु जैसी है उसका यथातथ्य रूप में वर्णन होता है। ये स्वतंत्र है तथा खुली हवा की भांति ताजी है। मनुष्य जब सामाजिक लोकजीवन के धरातल पर अपने को व्यक्त करता है तब उसकी संचित अनुभूति एवं ज्ञान का अनन्त वैभव लोकगीतों में उतर आता है।

लोकजीवन एवं लोकभाषा के मूल रूप को जानने में लोकगीत जितने सहायक है, उतने ही ये सामाजिक जीवन में भावात्मक एकता कायम करने में है। अनेकता के धागों के बीचोबीच गूंथी हुई एकता ध्वनि चमत्कार और भाव-व्यंजना की विभिन्न गलियों के बीचोबीच चतुर्दिक फैली हुई एकता, जड़, जीव-जगत, आन्तरिक, आकाश, भूत-प्रेत, पूजा- बलि और सुख-दुःख सभी कुछ तो हमारे लोकगीतों में है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों की सरल तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोकगीत में जितनी मिलती है, उतनी और किसी में नही है, इसलिए लोकगीतों का काफी महत्व है।

ऐतिहासिक दृष्टि से लोकगीतों का विशेष महत्व है। लोकगीत के प्राचीन स्वरूप को जानने का सर्वोत्तम साधन है क्योंकि इसमें बनावटीपन नही होता है। लोकगीत के माध्यम से इतिहास की अनेक टूटी कड़ियां जोड़ी जा सकती है आज भी हमारे गांव में बड़े उत्साह के साथ लोकगीतों में इतिहास की

*शोध छात्रा, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

भूमिका गाया जाता है। ऐसे बहुत से गीत है जिनका आधार कोई न कोई ऐतिहासिक पुरुष या स्त्री का भी वर्णन किया गया है ऐसे विषयों पर जो परपरागत गीत है वे समाज को अपनी दिशा में आत्मशक्ति देते रहे है,

भौगोलिक दृष्टि से लोकगीत का वर्णन ज्यादातर स्थानीय भूगोल इनमें बहुत सी नदियां, गांवों तथा नगरों का उल्लेख किया जाता है। कोशी क्षेत्र में कोशी मैया, कमला, बागमती आदि का वर्णन कर गीत गाया जाता है और नगरो में गंगा-जमुना आदि का वर्णन किया जाता है।

कोशी लोकगीतों में अनेक स्थानों का वर्णन भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन गीतों को गाने से स्थान विशेष पर विशिष्ट वस्तु के मिलने का ज्ञान प्राप्त होता है। लोक साहित्य में भूगोल संबंधी बहुत बातों की जानकारी प्राप्त होती है। शहर, नदी देश घटना आदि का वर्णन इन गीतों के माध्यम से मिलता है।

लोकगीतों में आर्थिक पक्ष की झलक सुनने को मिलता है। लोकगीतों के माध्यम से बच्चों की सुलाने की पालना चांदी का है जिसमें रेशम की डोर लगी है लोकगीतों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के पकवानों और सोने चांदी का बर्त्तन का वर्णन किया जाता है।

लोकगीतों के माध्यम से लोगों के हर्ष-विषाद, उत्सव-त्योहार, विभिन्न संस्कार आदि का वर्णन किया जाता है। यदि इन गीतों का अध्ययन किया जाय तो उनसे सम्बद्ध समाज या लोगों की आर्थिक खुशहाली आदि का पता आसानी से लगाया जाता है।

लोकगीतों का सामाजिक दृष्टि से काफी महत्व है। इनमें मानव-जीवन का जितना सजीव और स्वाभाविक चित्र उपलब्ध होता है, उतना अन्यत्र नही अगर समाज का वास्तविक चित्र जानना चाहते हैं तो हमें उसके लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए। लोकगीत में वर्णित मानव जीवन के हन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, ंस्कृति, धार्मिक विश्वासरुढ़ि, आपसी संबंध आदि ा वास्तविक वर्णन मिलता है।

लोकगीतों में पारिवारिक संबंधों के स्नेह, प्रेम र करुणापूर्ण व्यवहार का चित्र हमारे मन में कभी प्रेम तो कभी करुणा का भाव भर देता है। बेटी का पवित्र प्रेम, वहीं पुत्री की विदाई हृदय में करुणा और ममता की लहर उत्पन्न कर देती है।

धार्मिक महत्वः—किसी भी समाज एवं जाति में धर्म का बड़ा महत्व होता है। लोकगीतों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं से सम्बन्ध तथा विभिन्न व्रत त्योहार जो उनकी धार्मिक भावना को व्यक्त करते हैं।

लोकगीतों के माध्यम से जन-मानस की धार्मिक भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं। गंगा माता, तुलसी माता, कोशी माता, शीतला माता, षष्ठी माता के महत्व की गाथा लोकगीतों में गाई गयी हैं। समाज के मनु के वनों या आदर्शों का प्रभाव भले ही न पड़े पर, इन लोकगीतों एवं लोक कथाओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। धार्मिक दृष्टि से लोकगीतों का बड़ा महत्व है।

सांस्कृतिक महत्वः—लोकगीतों का आधार सांस्कृतिक है। लोक साहित्य के सांस्कृतिक पक्ष को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है। लोक साहित्य के अध्ययन से उसके उद्धार से कृत्रिमता का कवच हम तोड़ सकेगें और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में हिलने-डोलने की शक्ति प्राप्त कर लेगें। स्वाभाविकता से ही आत्मशुद्धि संभव है।

संस्कृति की आधारशीला पुरातनता होती है। इसके मूल तत्वों के संबंध में जो तत्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है, वह है अतीत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। झूला झूलते, चक्की पीसते यात्रा करते राम-लक्ष्मण के पुण्य चरित्र ही हैं। यही लोकगीत का सांस्कृतिक पक्ष है।

लोकगीत भी एक कला है, इसलिए यह एक ओर समाज के लोगों की भावना, सोच, परम्परा तथा विश्वास को प्रतिबिम्बित करता है तो दूसरी ओर उनके अन्दर आनेवाले परिवर्तन एवं उनके धारणा के बदले स्वरूप को उजागर करता है।

लोकगीतों के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि इन लोकगीतों को अधिकांश नारियों के द्वारा ही गाया जाता है। लोकगीतों को संजोये रखने तथा उचित अवसर पर उन्हें प्रयोग में लाने

Scanned with OKEN Scanner

...स्त्रीत्व नारियों के उपर ही आ गया है। ...आज भी पारम्परिक और संस्कृति की रक्षक ...हुई है। वैसे भी नारियां का सम्पूर्ण जीवन ही ...माना जाता है, क्योंकि उन्हें अपने भावों की ...क्ति का यही एक सुगम रास्ता है। अपने ...उठनेवाली भाव-लहरियां को लोकगीतों के ...से वातावरण को सरस, सुन्दर या कारुणिक ...होती है।

...समाज आज भी पुरुष प्रधान है। यदि घर में ...क्रियां होती है तो ज्यादातर नारियां ही चिन्तित ...है। ऐसे में वे उनकी मंगलकामना के लिये कभी देवी-देवता को गुहारती है तो कभी व्रत त्योहार करती हैं। ऐसे सारे अवसरों पर वे लोकगीत गा-गाकर अपनी प्रार्थना करती है। लोकगीत भी एक तरह की कला है जो समाज का सही चित्र प्रस्तुत करती है, इसलिए इन सारी दुःस्थितियों का विस्तृत बखान लोकगीतों में मिलता है। लोकगीतों में पारम्परिकता तो है, पर नई ज्योति, नये बोध का अभाव है। भाषा में कहीं-कहीं आधुनिकता की झलक अवश्य है पर अधिकांश ग्राम्य भाषा या लोकभाषा ही हैं। आज भी गांवों में लोकगीत, लोकनाट्य तथा लोकगाथा प्रचलित है।

Scanned with OKEN Scanner

मिथिला के विस्मृत मधुरोपासक गीतकार श्री मोदलता

डा. सुनील कुमार ठाकुर*

घटना 1920 ई. की है। बेगुसराय के भक्तों के सत्प्रयास से वहां श्री सीताराम विवाहोत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव के संचालक थे मधुरोपासना विवाहोत्सव के मुख्य प्रवर्तक संतशिरोमणि श्री रामाजी महाराज। भॉवरि की विधि सम्पन्न हो रही थी। विधि के लिए राम चरित मानस की चौपाई की मदद ली जा रही थी—"कुअॅरूकुअरि कल भॉवरि देही, नयन लाभ सब सादर लेही।" रामाजी महाराज इस चित्ताकर्षक क्षण को लंबा खींचकर इससे अधिकाधिक रसास्वादन करना चाहते थे। इन्होने साथ मे मिलकर गानेवाले को आदेश दिया कि भॉवरि के और भी पद गायें जाए। उपस्थित सभी गायक आदेश पालन में असमर्थ हो रहे थे।

आशु कवि की भांति मोदलता जी भावरि-पद की रचना भी कर रहे थे और गा भी रहे थे। पद इस प्रकार था—

"चारू दुलहा देत भॅवरिया ए
संग सोहति दुलहि नगरिया ए।
श्याम गोरी, गौर श्यामा,
चारो जोड़ा जोड़िया ए॥"

पद रचना से ऐसा लगता था मानो कवि भॉवरि लीला का साक्षात् दर्शन कर रहे हों और उसी का वर्णन अपनी महावाणी में करते जा रहे हो। पद गान के समय श्रोता-दर्शक समाज भाव समाधि में निमग्न हो चुके थे। इस गान की समाप्ति पर चारों ओर से जय-जय! बलिहार! बलिहार! की हर्ष ध्वनि होने लगी। कवि पर सुमन वृष्टि होने लगी। श्री रामा जी महाराज ने तो लपककर आपको अपने हृदय से चिपटा लिया। उसी समय श्री रामाजी का आदेश हुआ कि आप समस्त विवाह विधियों पर पद रचना कीजिए। रामाजी के नेतृत्व मे संपूर्ण उपस्थित दर्शक समाज के द्वारा मोदलताजी का श्री सीताराम विवाह पद्धति के आचार्य पद पर मंगलाभिवेचन हुआ और इस प्रकार आपके कवित्वकृति का शुभारंभ हुआ।

आपके विवाह गीतों का संकलन 'मोदलता-विवाह पदावली' के रूप में प्रकाशित है। इसका प्रकाशन श्रीमती ललिता देवी ने इनके जन्मशती के अवसर पर 1990 में किया तथा संपादन इनका सुयोग्य सुपुत्र जानकी रमण शरण ने किया। मुद्रण का कार्य नी राम प्रिंटिग प्रेस अयोध्या (उ.प्र.) में किया गया। प्रकाशित कृति के तीन भाग है—प्रथम भाग में श्री गुरुदेव वंदना, श्री गणेश वंदना, श्री मारूति वंदना, फुलवारी प्रसंग, स्वयंवर, जयमाल, मड़वा छड़ावन, सुमंगली, धनबट्टी, मटकोर, हरदी बुकावन, उवटावन, चुमावन, आरती, तिलक चढ़ावन, मंगलदेवाराधन, बारात आगमन, जनवासा के गीत, मात्रिका पूजन, बरियात परिछन, दुलहा छवि वर्णन, दुलहा परिछन, छुरछक, बटगमनी, गाल सेकाई, अंदर परिछन, मंडप परिक्रमा, कन्या-निरीक्षण, अठोंगर, श्री जूनहछु, दुलहा नहछु, गोत्राध्याय, पाणि-ग्रहण, वर-कन्या, प्रतिज्ञा, कन्यादान, सप्तभामरि, सिन्दुर दान, दुर्वाक्षत मंत्र, लहकौरी, मंडप झांकी, घोंघट, मंडप पर समधी गारी, मंडप सॅ कोहबर प्रस्थान, द्वार छेकाई, कुलदेवता पूजन, जुआ, बत्ती मिलावन, कोहबर

*एम.ए. (नाट्यशास्त्र) पीएचडी, पूर्व वरीय शोध अध्येता, संस्कृति मंत्रालय (भारत सरकार), नई दिल्ली

Scanned with OKEN Scanner

हास्य, पाटी धराई, भेड़ा नथाई, पहेली बुझौअल, जेवनार, आचमन, पान-होली हेरान, दुलहा के हार, निन्दिया, विहाग, आरती, मोदित व्याह रहस्य, मंगल मधुर्पन जगावनी, चौठारी, आरती, अम्बा के उपेदश, बारह मासा, विरह ज्वर, आरती, कवित्त, गजल-गुंजन आदि के पद है।

दूसरे भाग में गौनोत्सव (पौष), शिवरात्रि (माघ), होली (फागुन), श्री राम जयन्ती (चैत्र), श्री जानकी नौमी (वैशाख), यज्ञोपवित उत्सव (वैशाख), साकेत दिग्दर्शन (वैशाख)ए श्री चन्द्रकला जयंती (वैशाख), फूल बंगला (ज्येष्ठ), रथ यात्रा उत्सव (आषाढ़), झूला (श्रावण), पचीसी (श्रावण), जल-विहार (भाद्र पद), श्री कृष्ण जन्मोत्सव (भाद्र पद), सॉझी (आश्विन), शरद पूजनोत्सव (आश्विन), श्री हनुमान जयंती (कार्तिक), सामा चकेबा (कार्तिक) के गीत है। इस प्रकार दूसरे भाग में विवाहेत्तर पदों का समायोजन किया गया है।

तीसरे भाग में प्रार्थना एवं मोद मंदिर से संबंधित पदों का संकलन है। इस प्रकार कवित्त एवं गीत दोनों को मिलाकर श्री मोदलताजी ने कुल 519 गीतों की रचना की।

आपका जन्म 1889 ई. में जानकी नवमी के दिन मुजफ्फरपुर जिला अंतर्गत हरिपुर गांव मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री रघुनाथ लाल था। आप दो भाई थे। आपका नाम लक्ष्मण लाल था। बचपन में ही माताजी की मृत्यु के कारण आप दोनों भाई अपनी पीसी (फुआ) के यहां खरका गांव चले आये। फुआ की भी मृत्यु कुछ दिनों बाद हो गयी तब दोनों भाई 1901 ई. में अपने ननिहाल पहसौल चले आये और वहीं का आप स्थायी निवासी हो गए। पहसौल कान्या पाठशाला में शिक्षक पद पर आपकी नियुक्ति हुयी। आपके जीवन में एक मार्मिक घटना घटी। घटना 1944 ई. की है। ग्रामीणों ने शिक्षा विभाग के अधिकारियों से शिकायत की कि मोदलताजी विद्यालय कभी नहीं जाते और हमेशा ही विवाहोत्सव में भाग लेने बाहर चले जाते है। अधिकारी ने तत्कालीन उपनिरीक्षक श्री ब्रजेन्द्र बहादुर सिंह को औचक निरीक्षक करने के लिए कहा। उन्होने औचक निरीक्षण किया। विद्यालय में सबकुछ ठीक-ठाक पाया और शिक्षक लक्ष्मण लाल (मोदलता जी) को वर्ग संचालन करते हुए पाया। उपनिरीक्षक महोदय अपने घोड़े पर सवार होकर विद्यालय से लौट रहे थे। दूसरी ओर श्री लक्ष्मण लाल 'मोदलताजी' पहसौल के समीप ही सहनौली गांव में विवाहोत्सव मना रहे थे वहीं उन्हें जानकारी मिली कि आपके विद्यालय में उपनिरीक्षक महोदय गए है सुनते ही वहां से भागते-भागते आप विद्यालय की ओर आ रहे थे। रास्ते में ही आपकी मुलाकात उपनिरीक्षक महोदय से हुयी आपने अभिवादन किया। उपनिरीक्षक महोदय ने कहा—"आप यहां? अभी-अभी मैं देखकर आ रहा हूं आप वर्ग संचालन मे लीन थे। मोदलता जी ने कहा—"नहीं हुजूर, नहीं। मै तो दो दिनों से सहनौली गांव में विवाहोत्सव संपन्न करा रहा था।" उपनिरीक्षक महोदय को आश्चर्य हुआ। तत्क्षण मोदलता जी को ज्ञात हुआ कि आपके लिए स्वयं प्रभु को कष्ट उठाना पड़ा। आपने उसी दिन नौकरी छोड़ दी और मधुरोपासना में निमग्न हो गए।

एक मैथिली पत्रिका मे एक सज्जन ने किंवदंती के रूप में इस घटना को 'स्नेहलता' के साथ जोड़ दिया है। मैंने उनसे इसकी शिकायत भी की और उनसे कहा भी कि किसी के जीवन मे घटी घटना को दूसरे के जीवन से नहीं जोड़ना चाहिए। लेखकों, निबंधकारों को तथ्यात्मक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। भ्रामक स्थिति पैदा करके हमें समाज को दिगभ्रति करने का कोई अधिकारी नहीं है।

मुझे अपनी परियोजना के लिए शोध-कार्य संपन्न करते समय सीतामढ़ी, विसनपुर, परिहार एवं सुरसंड के आस-पास दर्जनों ऐसी मंडलियां मिली है जो राम-सिय विवाह कीर्तन के गीतों को साभिनय प्रस्तुत करती है। मिथिला के मध्य युगीन कीर्तनियां की छाप इस प्रदर्शन विधा पर स्पष्टतया झलकती हैं कीर्तनियां के अवशिष्ट के रूप में मैंने इस प्रदर्शन-विधा की खोज की है। प्रायः 'राम-सिय विवाह' कीर्तन का प्रदर्शन लगातार तीन रातों में संपन्न होता है। पहली रात फुलवारी, धनुष यज्ञ एवं मटकोर, दूसरी रात परिछन, विवाह एवं कोवर प्रसंग तथा तीसरी रात कलेवा प्रसंग का प्रदर्शन होता है। मिथिला के घरों में जिस विधि-विधान से बेटी की शादी की

Scanned with OKEN Scanner

जाती है, ठीक उसी तरह 'राम-सिय विवाह कीर्तन' को साभिनय प्रस्तुत किया जाता है। दशरथ से सखियों का हास-परिहास इस प्रदर्शन विध को जीवंतता प्रदान करता है, कलेवा प्रसंग में डोम-डोमिन संवाद चित्ताकर्षक होता है।

मोदलता जी के गीतों को रागनिबद्ध करके गाने का अच्छा अभ्यास लखनपुर (मुजफ्फरपुर) निवासी अनिरूद्ध झा 'सुंदर भगवान' को था। मेरे चाचा स्व0 चन्द्रदेव प्रसाद ठाकुर 'भोला बाबू' को भी मोदलता जी के गीतों की मंचीय प्रस्तुति देने का अच्छा ज्ञान था। मैंने गुरुदेव डॉ. चण्डेश्वर झा (जो इस संगोष्ठी के संयोजक है।) की द्वितीय आत्मजा के परिणयोत्सव के समय स्व. विदुर मल्लिक जी को मोदलता जी की रचना को गाते हुए सुना था। गीत इस प्रकार है–

घोड़वा छमकावत आवै सांवला पहुनमा।
देखु सहेलिया मोरी हे, मौरिया के रे अजब रे बहार ॥दे.॥

पद्मश्री शारदा सिन्हा भी आपकी कतिपय रचनाओं को गाती है। इनमें सभी चर्चित हैं, विशेषकर अठोंगर के पद को देखा जाय–

चित चोरवा आजु बन्हौलनि ए।
सब सान गुमान गमौलनि ए।
चोरवा के आठो अंग बान्हू कसि डोरवा।
उधम अथोरवा मचौलनि ए ॥

इसी प्रकार परिछन के पूर्व के पद को देखा जाय। कितनी अप्रतिम रचना है, ये–

वर में बड़-बड़ बात सजनी बर में बड़-बड़ बात।
मिथिला में नहि आयल कहियो एहन अजब बरियात ॥
पहिनहि आबि कॅ सासुर बसला ई सबके अछि ज्ञात।
हिनके वेद पुकारि कहै छथि पुरुष पुराण अजात ॥
स ॥

मिथिला में दुल्हा (पाहुन) को मीठी-मीठी गाली देने की प्रथा है। इसकी मिठास का अनुमान इस गाली के माध्यम से हम सहज ही लगा सकते हैं–

एकटा बात हमर कनै सुनि लिअ।
इ विध कए आगां पैर दिय।
अइ ठामक ई विध प्रसिद्ध अछि।
माय-बहिन के नाम लिय ॥

मिथिला में गायन के साथ-साथ कवित्त कहने की भी परंपरा रही है। यहां की यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है–

"गीत-कवित्त सभै बिसरी, जिनगी में यादि अछि नोन तेल लकड़ी। " मोदलताजी ने लगभग 114 कवित्तों की भी रचना की। इनकी कवित्तो का एक संग्रह इनके सुयोग्य पुत्र श्री जानकी रमण शरण ने 'मोदलता कवित्त-कुंज' के नाम से 2003 में प्रकाशित करवाया है। कवित्त की एक वानगी देखा जाय–

जनक लली की सहेलिन की सुषमा लखि
अवध ललनान की छक्का छूटै लगै।
भागन-सुहागन पै बार-बार बलि गई
उमगी उमंगन आंगी बंद टुटै लगै।
होती मिथिलानी तो भेंट लेती भुजान भरि
पड़े जो प्राण धर्म संकट ते छुटै लगै।
"ललित सुमोद" सुनि लिजें अब रघु लाल
मिथिला के मजा अवध ही में लुटै लगै।

श्री मोदलता जी की प्रभु-प्रेम पिपासा ने भी पूर्व में आकुल-व्याकुल होकर श्री कृष्णोपासना की रसधारा मे ही तृप्ति पाने की विवशता झेली थी और प्रेमाभक्ति के श्री रामोपासक सिद्ध संतों एवं आचार्यो से उपदेशित हो–"महामंत्र जो ई जपत महेसु। कासी मुकुत हेतु अपदेसु ॥" के प्रमाण स्वरूप श्री सीताराम जी की उपासना में आप उपनीत हो गए। वैसे तो मिथिला में मधुरोपासना की अक्षुण्ण परंपरा प्राचीन काल से दृष्टिगत होती है। याज्ञवल्क्य ने वृहदारण्यक उपनिषद में मधुविद्या का विस्तृत विवेचन किया है।

शिक्षा जगत के परिवेश में आपका सुयश-सौरभ वातावरण में तो आच्छादित था ही, दूसरी ओर आपके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक साधना का भी प्रकाश चतुर्दिक व्याप्त था। आपकी रचना मिथिलांचल के गांव-गांव में लोगों के कंठ में है। परंतु बिडंबना है कि आपके व्यक्तित्व को यथोचित स्थान न तो मैथिली साहित्य में ही मिला और न ही रचनाकार के रूप संगीत के क्षेत्र में कोई विशिष्ट पहचान ही मिली।

Scanned with OKEN Scanner

सन् 1962 ई. के अश्विन मास कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को आपका साकेत गमन हुआ। आपके सीताराम कभी मिथिला से अलग नहीं होते– मोदलताजी को अयोध्या, चित्रकूट, दण्डक वन के सीता रामजी से कोई प्रयोजन नहीं था। उनके सीता रामजी मिथिला में ही थे, मिथिला में ही है और मिथिला में ही रहेंगे। श्री मोदलता जी का मिथिला प्रेम विलक्षण था।



Scanned with OKEN Scanner

ज्ञात गीतों के अज्ञात रचनाकार संत ''श्रीनिधि''

फणीश कुमार*

अपने बड़े बाबा स्व. चन्द्रदेव प्रसाद ठाकुर के श्रीमुख से 'श्रीनिधि' जी की रचनाओं को गाते हुए बार-बार सुना करता था। मेरे मन में इस गीतकार के प्रति जिज्ञासा जगी। मैंने बाबा से पूछा तो उन्होने मात्र बताया कि ये अमर गीतकार का जन्म मधुबनी जिलान्तर्गत पूरबारी बररी गांव में हुआ था। इसी गांव के कमतौल महाविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष डा. सुरेश मिश्र है, वे मेरे पिताजी के मित्र भी है। मै उनके साथ सूचनाए एकत्रित करने उनके गांव बररी, 2007 ई. के नवंबर माह में गया था। उस गांव में मुझे जो सूचनाएं मिलीं उसे मैं यहां प्रस्तुत कर रहा हूं।

आपका जन्म मधुबनी जिला के अंतर्गत बेनीपट्टी प्रखंड के बररी गांव में अनुमानतः 1916-1917 ई. में हुआ था। क्योंकि 1948 मे हैजा का जब प्रकोप हुआ था तब आपकी उम्र 28-30 वर्षो की थी। आपके पिता का नाम स्व. बहादुर मिश्र तथा आपके पितामह का नाम स्व. अधीन मिश्र था। आप तीन भाई थे—स्व. रामनंदन मिश्र, श्री रामविलास मिश्र एवं स्व. रामचरित्र दास 'श्रीनिधि'। दोनों बड़ी बहन के बाद आप तीनों भाई का जन्म हुआ था। जन्म के तीन महीने बाद ही आपको माता-पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा। आपका नाम रामचरित्र मिश्र था, संत होने पर रामचरित्र दास कहलाये और रचनाओं में 'श्रीनिधि' नाम का प्रयोग आपने किया।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के प्राथमिक विद्यालय में ही हुआ। छठी कक्षा के बाद आप 7वीं कक्षा की पढ़ाई के लिए साहपुर मध्य विद्यालय में दाखिला लिया किन्तु 7वीं कक्षा की वार्षिक परीक्षा के पूर्व आपने पढ़ाई छोड़ दी और ईश्वर की प्रेरणा से भगवत भजन की ओर उन्मुख हुए। इसी किशोरावस्था में आपने अपने सहपाठियों—स्व. कुलदीप मिश्र, स्व. बलदेव मिश्र, स्व. रामपवित्र मिश्र, स्व. जगदीश मिश्र आदि के साथ भगवत् भजन से संबंध आयोजनों में विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण किया। 20-21 वर्षो की अवस्था में अयोध्या आदि स्थानों का परिभ्रमण करते हुए लगभग 25 वर्षो तक संस्कृत एवं मानस का गहन अध्ययन किया। 1944 ई. जितवारपुर गावं के कुलगुरु से दीक्षा प्राप्तकर वैरागी हुए।

बाल्यावस्था से ही आपको भजन-कीर्तन के प्रति बड़ी आस्था थी। आपने विभिन्न वाद्ययंत्रों का सफल अभ्यास भी किया। स्व0 कुलदीप मिश्र तत्कालीन कीर्तन समाज में ख्यातिलब्ध तबला वादक एवं ढोलक वादक थे। बररी गांव से सटे उत्तर गंगा सागर पोखरा है जिसे लोग दैता पोखर भी कहते है। 1950 ई. में इसी पोखरा के पश्चिमवाड़ी भिण्डा पर अपने ठाकुरवाड़ी का विधिवत् निर्माण किया। स्व0 रामावतार पुजारी वर्षो तक उस ठाकुरवाड़ी के पुजारी रहे, जो स्वयं भी मानसमर्मज्ञ ही नहीं बल्कि गोस्वामी जी के अन्यान्य ग्रंथों के भी मर्मज्ञ थे। 1987 की प्रलयंकारी बाढ़ में मंदिर के क्षतिग्रस्त होने के उपरांत उनके अग्रज स्व. रामनंदन मिश्र ने ग्रामीणों के सहयोग से इसका पुनः जीर्णोद्धार करवाया।

1955-1957 तक जनकपुर बिहार कुंड में दुल्हा भवन कुटी मे निवास किया। फिर वहीं जमीन खरीदकर 1957 के बाद स्वयं 'मानस-मंदिर' नामक

*एम.ए. संगीत, ल.ना.मि.वि.वि. दरभंगा

Scanned with OKEN Scanner

कुटी की स्थापना की। वहीं से वे रामायणी जी के नाम से चर्चित हुए। कालान्तर में अन्यान्य महात्माओं ने मानस के प्रति असीम अनुराग एवं श्रद्धा का अनुभूत करते हुए उन्हें 'श्रीनिधि' की उपाधि से अलंकृत किया।

इनकी विलक्षण रचनाओ का प्रकाशन 'श्री मैथिली प्रेम प्रकाश पदावली' के रूप में चर्चित है। इसका प्रकाशन त्रिलोक बंधु पुस्तकालय जनकपुर रोड, पुपरी की ओर से सत्यनारायण प्रसाद के संचालन में किया गया। इस पदावली में तुलसीदास की कुछ रचनाओं के साथ लगभग दो सौ मौलिक गीत कवि के नाम से हैं। इन गीतों के अतिरिक्त कवित्त एवं सवैयों की भी भरमार हैं। बहुत सारे गीतों को पद्मश्री शारदा सिन्हा भी गाती हैं परंतु पद के अंत मे रचनाकार के नामों को छोड़ देती है। कुछ रचनाओं को यहां उद्धृत करना प्रासंगिक जान पड़ता है—

लखनपुर निवासी प्रख्यात संगीत के ज्ञाता स्व. सुंदर भगवान को इनकी इस रचना को राग भीमपलासी या असावारी मे गाते हुए सुना जाता था—

गीत[1]

चरणन की बलि जाऊं किशोरी तेरी।
नुपूर शब्द करत न भावन,
सुनि-सुनि तन पुलकाऊं ॥1 ॥

ललित-ललित नख पदज मनोहर,
देखि जनम फल पाऊं ॥2 ॥

कोमल पद निरसत मन मोहे,
श्रीनिधि तेहि रज पाऊं ॥3 ॥

इसी प्रकार फुलवारी प्रसंग का यह गीत उत्तर बिहार के लोक कंठों में रच-पच-बस गया है—

गीत[2]

घन-घन किशोरीजी का फुलबगिया,
जहं आये समलिया ॥टेका ॥
माथे मुकुट शोभे, काने कुण्डल डोले,
आखिन में शोभत कजरिया ॥ जहं आवे ॥
हाथो में दोना शोभे, देखिते में मन मोहे,
बार-बार जाऊं बलहिरिया ॥जहँ ॥
मृदु मुंस्कान करे, तिरछी तकान मारे,
भौंरे कमान खैंचि धनुहिया ॥जहँ ॥
जुलफन कपोल सोहे, मालिनी के मन मोहे,
श्रीनिधि प्रान धनु धरिया ॥ जहँ ॥

इसी प्रकार मटकोर के चर्चित पद को देखा जाए—

गीत[3]

सब सखियन मिली चलली पोखरिया
हे सुहावन लागे
जनक लड़ैत संग सोहाय ॥ हे सुहावन ॥
मंगल के कलशा लिहले तेल
वो अंकुरिया हे सुहावन लागे
मंगल बजवा बजाय ॥ हे सुहावन ॥
मंगल गीत गावे अति मनहरिया
हे सुहावन लागे,
सुनिकल कंठ ल जाय ॥ हे सुहावन ॥
आनंद बधावा बाजे बड़ अनमोलिया
हे सुहावन लागे,
सुर सब फुल बरसाय ॥ हे सुहावन ॥
श्रीनिधि हाय लिहले मनि के
कोदरिया हे सुहावन लागे,
मटिया कोरन चलि जाय ॥ हे सुहावन ॥

इसी प्रकार बारात आगमन का यह चर्चित गीत जिसे श्रीमती शारदा सिन्हा ने भी गाया है, इनके विलक्षण गीतो में से एक है—

गीत[4]

अवध नगरिया से आये बरिअतिया हे सुहावन लागे,
बाजन बजैये घनघोर ॥ हे सुहावन ॥
डफला खुरदक बाजै, अंग्रेजी बजवा हे सुहावन लागे,
रसन चौकी बाजै बरजोर ॥ हे सुहावन ॥
हथिया चौदन्ता शोभी तेहि पर अमरिया हे सुहावन लागे,
तेहि पर चढ़ल चितचोर ॥ हे सुहावन ॥
सुन्दर पहुनमां देखि मोहे मोर मनमा
हे सुहावन लागे,
सिर में सोहत मनि मौर ॥ हे सुहावन ॥
ऊंट पर नगारा बाजे बड़ा घर घरिया
हे सुहावन लागे,

Scanned with OKEN Scanner

सुनि-सुनि कपइ छतिया मोर ॥ हे सुहावन ॥
एहन बरिअतिया हम कबहु न देखलि
हे सुहावन लागै,
श्रीनिधि कहे करजोर ॥ हे सुहावन ॥

इसी तरह सर्वाधिक चर्चित व्याह गीत इस प्रकार है—

गीत[5]

घन-घन सुनैना जी के भवनमां, जह राजे पहुनमा ॥ टेक ॥

जेहने अपन किशोरी, तेहने मिलल भल जोरी,
श्याम गोर अंग है सुहनमा ॥ जहाँ ॥
मृदु मुसकान मारे, तिरछी तकान मारे,
हिय बिचे करे कतल नमां ॥ जहाँ ॥
पाहुन के रूप देखि, सुधि बुद्धि गेलै भुलि
अब नहि भावे घर अंगनमा ॥ जहाँ ॥
मिथिला के नर-नारी तन मन धन वारी,
श्रीनिधि पग पर लोटनमा ॥ जहाँ ॥

इसी तरह से इनका यह झूला गीत भी सर्वाधिक लोकप्रिय है—

झूला गीत[6]

देखु-देखु-देखु सखि झूला के बहार हे,
राम सिया झूलि रहे, गरेभुज डार हे ॥1 ॥

नान्हि-नान्हि बुन्दिया के परत फुहार हे,
चहुदिशि सखी सब गावत मलार हे ॥ 2 ॥

बड़ी-बड़ी झोका दिन्हे, पिया दिलदार हे,
सखी सब देखिइरे सिया सुकुमारि हे ॥ 3 ॥

कमला किनारे आजु, आनंद बहारे हे,
श्रीनिधि देखे ठाढे, छवि एक तार हे ॥ 4 ॥

इनके कतिपय होली गीतों में मधुरोपासना की विलक्षण छंटा देखने को मिलती है। इनमें सर्वाधिक चर्चित होली गीत निम्नवत है---होली गीत[7]

मोपे डारो न रंग बरजोरी, किशोरी के साजनमां।
तुमतो हो रघुवंश दुलारे, मैं निमिवंश दुलारी ॥
किशोरी ॥

जो सारी पर रंग पड़ेगी, सुनिहो गारी हमारी ॥
किशोरी ॥

तुमतो श्याम काम मतवारे, बहिनी है तेरी छिनारी ॥ किशोरी ॥

अवध की नारी बड़ी खेलाड़ी, मिथिला छैल पियारी ॥ किशोरी ॥

शान्ती बहिन तेरी बड़ी सुकुमारी, श्री निधि तन मन वारी ॥ किशोरी ॥

यह मिथिला की अनुपम मधुरोपासना है, इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम की मर्यादा का ख्याल न रखते हुए भी मिथिला की नर-नारी गालियां देती है। उपर्युक्त गीतों से यह स्पष्टतया पता चलता है कि लोककंठों से गीतों के रचनाकार श्री रामचरित्र दास 'श्रीनिधि' को आंचलिक साहित्यों में चर्चा तक नहीं मिलती। शायद यह मेरा प्रथम प्रयास है। इससे पूर्व न तो इनके व्यक्तित्व या कृतित्व पर चर्चा देखने या सुनने को नहीं मिलती। आपने 5 अप्रैल, 1993 चैत्र पूर्णिमा को सुबह 4 बजे, स्वनिर्मित कुटी जनकपुर धाम में शरीर त्याग किया। इस समय आपकी उम्र 75 वर्ष की थी। आज आवश्यकता है ऐसे रचनाकारो को प्रकाश में लाने की।

संदर्भ

1. श्री मैथिली प्रेम प्रकाश पदावली, पृ. 15
2. वही, पृ. 26
3. वही, पृ. 38
4. वही, पृ. 40
5. वही, पृ. 55
6. वही, पृ. 72
1. मोदलता विवाह पदावली, पृ. 50, प्रकाशिका लाड ली सखी पहसौल, कटरा, मुज0, 1990
2. वही, पृ. 58-59
3. वही, पृ. 44-45
4. वही, पृ. 27
5. वही, पृ. 39
6. मोदलता कवित्त कुंज, पृ. 28, मोद मंदिर पहसौल, भाया-कटरा-मुजफ्फरपुर, 2003

Scanned with OKEN Scanner

Theory of Rasa in Indian Art

Dr. Jai Shakar Mishra*

According to the Indian literatures aesthetic means 'Satyam, Shivam and Sundaram'. Philosophically it set up three goals: 1. Truth-*satyam*, 2. Goodness-*shivam*, and 3. Beauty- *sundaram*. Beauty is a joy (anand) which comes from liberation from the bondage of individual self-sense. In visual arts beauty depends upon Rasa, Rhythm and Sadanga. "*Rasa is different from beauty.*"[1] The balance of these elements in a painting or in a sculpture can give endless joy and pleasure. Many Indian literatures have focused upon these elements of beauty. Here I am going to explain about the *rasa* in brief:

RASA

One of the most important concepts in the Natyasastra is the experience of *Rasa*, it translated sometimes as emotion, sentiments or flavor. *Rasas* are the emotional states that the refined & educated Sanskrit Drama audience member experiences as they watch the play. Aesthetic experience transforms the individual personality as a whole. This aesthetic delight impregnates all aspects of life. The rasas experience is different from other experience and these are all the elements of the being, mental as well as sensual are transformed. Rasa theory– "*Rasa is achieved when everyday feelings (bhava) are purified, on the one hand through the medium of art and on the other through the imaginative faculty of spectator.*"[2]

The word Rasa has several meanings, which have been used in Indian classical literatures:

- Rigveda-the word rasa occurs several times in various contexts, like water, juice of plant, liquor drink etc.
- Yajurveda- sence of joy
- Samveda- liquor
- Atharvaveda- juice of plant
- The Upanisadas also used the word rasa in the sense of supreme reality of universe.-God, only supreme reality.

In detail rasa is found in the Natyashastra was written by Bharatmuni, he was an ancient Indian writer. Natyashastra primarily deals with stage craft; it has come to influence music, dance, literature as well as foundation of the fine art in India. It was directly inspired by the God Brahma. It is believed that it was written during the period between 400 BC. to 200 AD. The text is written in the Sanskrit language and

* Sr. Lecturer, Department of professional Art, M.G.C.G. University, Chitrakoot, Satna (M.P.)
È09451004521É 05198-224533 e-mail—artistjsm@sify.com

Scanned with OKEN Scanner

consists of 6,000 *sutras,* or verse stanzas, incorporated in 36 chapters. There are some passages that are composed in a prose form i.e.

> *"Shringarhasya, karun, raudraveerbhayanakah!*
> *Vibhatsadbhuta, shantshch chitra navarasaihsmritah!!"*[3]

In this stanza we can see the NINE RASA of Indian aesthetic. Here I am going to explain its *sthayi-bhav*, meaning and colour which are defined in Indian literatures:

Rasa	*Sthayi bhava*	*Meaning*	*Colour*
Shringar (erotic)	Rati	Delight	Pale light green
Hasya (humorous)	Hasyal	Laughter	White
Karuna (pathetic)	Shoka	Sorrow	Grey
Raudra (terrible)	Krodh	Anger	Red
Veera (heroic)	Utsaha	Heroism	Pale orange
Bhayanaka (fearful)	Bhaya	Fear	Black
Vibhatsa (odious)	Jugupsa	Disgust	Blue
Adbhuta (wondrous)	Vismaya	Wonder	Yellow
Shanta (peaceful)	Shanti	Calm	White

1. Shringara rasa (love, erotic): Shringara receives the most detailed and enthusiastic treatment by early rhetoricians and later writers on poetics. It is referred to as the king of sentiments (rasaraj). It is also lord of all sentiments (rasapati).

2. Hasya rasa (comic): Laughter or hasya according to Bharata is of six different verities. To persons of the superior type belong the slight smile and the smile. To those of the middling type, the gentle laughter and the laughter of ridicule and to those of the inferior type the vulgar laughter and excessive laughter.

3. Karuna rasa (pathetic): Karuna arises from the enduring emotional state of sorrow. The determinants spoken in the context of *shoka* includes such things as affliction under a curse separation from dear ones loss of wealth, death, capacity, flight, accidents or any other misfortune. The *anubhaas* (experience) according to bhava are –shedding tears, lamentation, dryness of mouth, change of colour, dropping limbs, being out of breath, and loss of memory.

4. Raudra rasa (furious): The furious sentiment arises from the enduring emotional state of anger. It's originated from evil *-rakshasas, danavas* and naughty men and stage that it is caused by fights. The determinants that give rise to it include, rape, abuse, insult untrue allegations, exercising threatening revengefulness, jealousy and the like its actions consist of beating , breaking, crushing, fighting, drawing of blood and similar other needs. Expressions- red eyes, knitting of eyebrows, defiance, biting the lips, movement of cheeks, pressing one hand with the other and the like other.

5. Vira rasa (heroic): *Vira*, the heroic, arises from the enduring emotional state of energy and is conceived as related to superior persons. It expression on the stage is such as steadiness, munificence, boldness etc. Other consequents are firmness, charity, diplomacy.

6. Bhayanaka rasa (terrible): Fear-*bhaya* is the enduring emotional state that leads to the experience of *bhayanaka*, the terrible sentiments. It's determinants are-

Scanned with OKEN Scanner

hideous nose, sight of ghost, panic and anxiety due to jackals and owls, staying alone in an empty house or forest, sight of death, captivity of dear ones or news of it.

7. *Vibhatsa rasa* (odious): Not far from the emotion of fear is that of disgust or aversion (*jugupsa*) which lead to the odious sentiment *bibhatsa*. The state is described as being created by determinants – like hearing of unpleasant, offensive, impure and harmful things or seeing them or discussing them. The consequents for the purposes of representation on stage are, stopping movement of all the limbs, narrowing down of mouth, vomiting, spiting, shaking the limbs etc.

8. *Adbhuta rasa* (marvelous): *Adbhuta* has its basis in *vismaya*, the enduring emotional state of astonishment. Bharata defined this rasa as eide opened eyes, looking with fixed gaze, horripilation, tears of joy, perspiration, joy, uttering words of approbation, making gifts, crying incessantly ha. These complementary emotional states that moods as weeping, paralysis, perspiration, choking voice, horripilation, agitation, hurry, inactivity, death and the like

9. *Shant rasa* (quiescent): Earlier classifications of *rasa* do not mention *shant*, but later authorities accept *shant* as the ninth *rasa*. According to Abhinavgupta has described *shant* as the most significant *rasa*. The enhancers of this mood are – holy hermitages of, sacred places, places of pilgrimage, pleasant groves, and the society of great men. *Shanta* is that in which there is neither pain, nor pleasure, nor thought, nor hatred, nor affection, nor any desire.

Now in these days aesthetic sense and criteria are totally changed. In modern painting and sculpture you can't find the aesthetic elements which were traditionally used but the other hand today we are very kith and kin about aesthetics and beautifications of our surroundings. We always keep interest to decorate ourselves, our houses where we live, offices where we work, neighbors and societies. Now we want a painting or a sculpture according to our house and office even we want to match an art piece with the colour of our wall, rather then aesthetic sense or criteria. We want to buy a curtain or a sofa set and other furniture too, according to the colour of our wall and floor, like an art piece. We never think or bother about aesthetic criteria which were traditionally used. We can easily found the red colour near the blue colour and also green with red in paintings and in other objects. Sometimes we can not see any figure or any object in contemporary art, which is known as modern or creative art. But they all have beauty, expressions and feelings inside them, which attract the viewers.

References:

1. Saundarya-P-137-(Jaganath) ——— Rajendra Bajpai
2. Bharatiya Chitrakala-P-54——— Vachaspati Gairola
3. Chitralakshan——— ——Nagnajit

Scanned with OKEN Scanner

Classical Music in Shabad Kirtan of Sikhism

Dr. Sudha Sahgal*

The word "Shabad" literally means "The Word". As such it represents the verbal description of the nature of God. This is sung from the Guru Granth Sahib which is the holy book of the Sikhs. The shabad is also referred to as "Gurbani" which literally means "Message of the Teacher". Shabad is a style similar to bhajan. However, this religious style is popular among the Sikhs, while the bhajan is found among the Hindus.

The philosophy of the shabad and its relationship to spiritual growth is extremely sophisticated. It is said that it takes a tremendous amount of study, devotion, and meditation to truly understand the significance of the Gurbani.

Singing shabdas of Gurbani is the art and science of singing and playing on the musical instruments the hymns of the sacred scripture Siri Guru Granth Sahib in the prescribed Raga, and with the original string instruments created and promoted by the Sikh Gurus in the historic times. Siri Guru Granth Sahib is the holy scripture of Sikh Dharma. It consists of shabads (hymns) composed by 40 enlightened masters, six of the ten Sikh Gurus among them. With the exception of the first prayer "Jap" (also known as "Japji Sahib"), the titles of all hymns give the rag in which the hymn is to be sung. The scripture was first compiled in 1604 by Guru Arjan Dev, the fifth Guru of the Sikh lineage, who elaborated the Raga system applied therein.

The philosophy of the Sikh Gurus describes the concept of a positive entity and a negative entity within humans. The Sikh philosophy names these entities as the mun(mind) and the atma (conscience or soul). Whereas the mind represents the selfish and impatient side of an individual, the soul represents the honest and sincere side. It is central to the belief of the Sikhs that all humans have these two sides to their character, and that both sides are equally important for understanding oneself and becoming one with the creator. The Shabads of the Sikh Gurus are examples and lessons for the mind and soul to dialogue with each other, so that they can work together rather than against each other. This is indicative of the thoughts, discussions and debates that everyone partakes in on a daily basis inside their head. Much research has been done regarding the effects of music on one's emotional wellbeing. Thoughts, feelings and emotions are highly influenced by listening to music. The emotional experience derived from music

* Sr. Lect. Vocal Music, Dayalbagh Educational Institute, Agra (U.P.) E-mail: sudhasahgal@gmail.com

Scanned with OKEN Scanner

is a powerful effect on the formation of one's moral and intellectual outlook. Music faces us with the realization that there are two worlds: the inner and the outer. The inner is often incommunicable, a spiritual world which is difficult to enter from the outer world where we normally speak to one another. Music is bridge for us. Music and psyche have been inherently linked in creation myths, obscure thought, legends, and now science. All of us intuit and theorize that the origin of the world/universe is in vibration, sound, or music. Psychologically, what does this mean? In the presence of certain music and composed feelings, a person can more fully explore the inner world with its archetypal and symbolic character.

Kirtan (derived from Sanskrit to praise, celebrate or glorify), a commonly accepted mode of rendering devotion to God by singing His praises, is a necessary part of Sikh worship. Music plays a significant role in most religious traditions. In Sikhism it is valued as the highest form of expression of adoration and counts as the most efficacious means of linking the soul to the Divine Essence. Kirtan in the Indian tradition can be traced back to the Vedic chant in the second millennium B.C., the impulse behind it being the realization of the effect on the individual of joining the sound of music to the religious text. In Vedic rites, recitation was employed emphatically to bring out the meaning of the verses.

Kirtan as we now understand it was popularized in medieval India by Vaisnava bhaktas and Sufi saints who sang usually their on compositions which not only produced in them a feeling of spiritual ecstasy but also led their followers into a mood of fervour. Jayadeva, a twelfth century Bengali poet who composed the famous Gita Govinda, is generally considered to be the first in line, although centuries earlier Vaisnava poetsaints of South India, the Alvars, had earned much popularity with their devotional songs called Nalayiradivyaprabandham. Along with the Vaisnavites of the Bhakti cult who sang lyrics about the sacred love of Krishna and Radha, appeared holy men of the Sant tradition like Gyandeva (1275-1296) and Namdev (1270-1350), who addressed their songs and adoration to the Formless God. In Islam in India, Sun mystics such as Shaikh Farid (1173-1265) composed and sang songs to express their longing for the Divine Being. The Vaisnavitc saint Chaitanya (1485-1533) and his contemporary Sufi saints also popularized Sankirtana and Quwwali, respectively, as forms of group singing. Guru Nanak founder of the Sikh faith, and the succeeding Gurus promulgated, besides repetition and contemplation of the Divine Name, Inrtan as a form of worship. Guru Nanak in one of his verses thus figured forth the ecstasy of kirtan : "Raga ratan pand parvdr, tisu vichi upajal amritu so music is a jewal born to the (supernatural) fairy family: from it rises upto the essence of nectar"(GG.351). They who follow the Guru's instruction are saved. The remedy lies in chanting God's praises"(GG,832). Likewise, according to Guru Amar Das, Guru Nanak : "Singing of Raga Bilaval becomes acceptable only when one finds utterance through it with "Bhava" for the holy Word".

A Raag is a framework comprising a specifically designed scale of notes with affiliated rules. Any song composed according to this framework will evoke a

Scanned with OKEN Scanner

mood in listener and performer which is characteristic for this "Raag". This effect can be used very efficiently for healing purposes. The word "Raag" can be translated as "affinity, mood, deep loving-longing".

The shabad has historically been performed in very traditional styles. The Guru Granth Sahib, is very specific in the Raags that the various shabads are to be sung in. These are very typical of the more classical raags of north Indian music (Hindustani Sangeet).

Poetry and music are two sides of the same coin. They are independent and yet complement each other. Music versifies and provides melody, uniformity and cadence to poetry. The factor that binds music and poetry is their metrical-form (ghar of beat). Raag is based on swar-notes and a combination of notes produce distinct musical effects. Poetry is determined by Shabad which communicates a message to the mind. Raag on the other hand conveys a feeling to the heart and is therefore universal. Spirituality, after all, is striking the right balance between mind and heart. Therefore, when the poetic Gurbani is complemented with raag and bound by ghar (beat), the resulting effect on mind and heart can become a catalyst for spiritual transformation. The raag conveys a feeling and Shabad a message. Every raag is capable of touching the heart with feelings like joy, sorrow, detachment, etc. Upon studying the structure of Guru Granth Sahib it can be seen that Shabads relating to common themes are generally placed under each raag. When the broad themes of Shabads are overlaid with feelings conveyed by these raags, there emerges a reason behind grouping of Shabads under a broad classification of thirty-one ragas.

Themes of Shabads in Ragas of Guru Granth Sahib

1. **Soohi** – Being away from home. The soul being away from the House of Lord and the joy of meeting the true 'husband'.
2. **Bilaaval** – beautification and soul, happiness.
3. **Gaud** – Separation, union, surprise.
4. **Sri** – Maya and detachment.
5. **Maajh** – yearning to merge with Lord, giving up of negative values.
6. **Gauri** – Principles, serious, thoughtfulness, composed.
7. **Aasa** – Hope
8. **Gujri** – Prayer (Pooja)
9. **Devgandhari** – Merging with spouse, self – realization.
10. **Bihaagra** – Yearning due to separation of soul and happiness due to meeting the Lord.
11. **Sorath** – Merits of God.
12. **Dhanasari** – Multiple themes relating to the mortality of world.
13. **Jaitsree** – Stability
14. **Todi** – Separation from Maya
15. **Bairagi** – motivation to sing praises of Lord
16. **Tilang** – many words from the vocabulary of Islamic origin are used, sadness, beautification.
17. **Raamkali** – to give up the life of a wandering Jogi.
18. **Nat Narayan** – Joy of meeting the Lord.
19. **Maali Gaura** – Happiness.
20. **Maaru** – Bravery, profound philosophy.
21. **Tukhari** – Separation and union with Lord.
22. **Kedara** – Love.

Scanned with OKEN Scanner

23. **Bhairav** – Man's state of hell.
24. **Basant** – Happiness.
25. **Sarang** – Thirst to meet God.
26. **Malaar** – State of separated and united soul.
27. **Jaijawanti** – Vairaag (Detachment)
28. **Kalyaan** – Bhakti (Prayer) Ras
29. **Vadhans** – Vairaag (Detachment)
30. **Prabhati** – Bhakti (Prayer)
31. **Kaanra** – Bhakti (Prayer)

Tala: Rhythms

In connection with Tala or musical beats/rhythms and the 'Ghar' in the Guru Granth Sahib, the following can be concluded.

Ghar 1 - Dadra Tal (6 Matras)
Ghar 2 - Rupak Tal (7 Matras)
Ghar 3 - Teen Tal (16 Matras)
Ghar 4 - Chaar Tal (12 Matras)
Ghar 5 - Punj Tal (15 Matras)
Ghar 6 - Khut Tal (18 Matras)
Ghar 7 - Mut Tal (21 Matras)
Ghar 8 - Asht mangal Tal (22 Matras)
Ghar 9 - Mohini Tal (23 Matras)
Ghar 10 - Braham Tal (28 Matras)
Ghar 11 - Rudra Tal (32 Matras)
Ghar 12 - Vishnu Tal (36 Matras)
Ghar 13 - Muchkund Tal (34 Matras)
Ghar 14 - Mahashani Tal (42 Matras)
Ghar 15 - Mishr baran Tal (47 Matras)
Ghar 16 - Kul Tal (42 Matras)
Ghar 17 - Chrchari Tal (40 Matras)

Tradition of Sikh Shabad Kirtan

The tradition of shabad kirtan developed over the period of the ten Gurus is being given below :-

- Hymns are permitted in shabad kirtan from the compositions of Adi Granth, Dasam Granth, vaars and kabits of Bhai Gurdas, Bhai Nandlal's poems.
- The shabad kirtan-group is generally seated on the right side of the seat (palki) of the Guru Granth Sahib. No special seats or cushions are provided for the singers though in big assemblies (diwan) the use of a platform or dais is allowed provided it is lower than the seat of Guru Granth Sahib.
- In the morning, shabad kirtan of entire Asa-di-var (24 chants, salokas and pauris) is completed. The singing of Asa-di-var is not to be interrupted by any katha or lecture.
- Appropriate compositions of Gurbani are sung at certain functions. For example at the time of Anand Karaj (Sikh Wedding) Lavan, Anand and suitable shabads ar sung. At the funeral of a Sikh, appropriate shabads relating to death are sung. Kirtan Sohila is recited before cremating the dead body.
- Every hymn should be sung in the indicated Raga and Tala. The singer should use the appropriate laya, tan and palta. However, he must not forget the appropriate ethos, mood and spirit (rasa) of the hymn.
- Vars should be sung as indicated in the Scripture. For example Asa var should be sung in Asa raga, Kalyan var in Kalyan raga, with appropriate dhuni if indicated.
- Display of musical skill and excess of alap (free improvisation) and tan are not

Scanned with OKEN Scanner

23. **Bhairav** – Man's state of hell.
24. **Basant** – Happiness.
25. **Sarang** – Thirst to meet God.
26. **Malaar** – State of separated and united soul.
27. **Jaijawanti** – Vairaag (Detachment)
28. **Kalyaan** – Bhakti (Prayer) Ras
29. **Vadhans** – Vairaag (Detachment)
30. **Prabhati** – Bhakti (Prayer)
31. **Kaanra** – Bhakti (Prayer)

Tala: Rhythms

In connection with Tala or musical beats/rhythms and the 'Ghar' in the Guru Granth Sahib, the following can be concluded.

Ghar 1 - Dadra Tal (6 Matras)
Ghar 2 - Rupak Tal (7 Matras)
Ghar 3 - Teen Tal (16 Matras)
Ghar 4 - Chaar Tal (12 Matras)
Ghar 5 - Punj Tal (15 Matras)
Ghar 6 - Khut Tal (18 Matras)
Ghar 7 - Mut Tal (21 Matras)
Ghar 8 - Asht mangal Tal (22 Matras)
Ghar 9 - Mohini Tal (23 Matras)
Ghar 10 - Braham Tal (28 Matras)
Ghar 11 - Rudra Tal (32 Matras)
Ghar 12 - Vishnu Tal (36 Matras)
Ghar 13 - Muchkund Tal (34 Matras)
Ghar 14 - Mahashani Tal (42 Matras)
Ghar 15 - Mishr baran Tal (47 Matras)
Ghar 16 - Kul Tal (42 Matras)
Ghar 17 - Chrchari Tal (40 Matras)

Tradition of Sikh Shabad Kirtan

The tradition of shabad kirtan developed over the period of the ten Gurus is being given below :-

- Hymns are permitted in shabad kirtan from the compositions of Adi Granth, Dasam Granth, vaars and kabits of Bhai Gurdas, Bhai Nandlal's poems.
- The shabad kirtan-group is generally seated on the right side of the seat (palki) of the Guru Granth Sahib. No special seats or cushions are provided for the singers though in big assemblies (diwan) the use of a platform or dais is allowed provided it is lower than the seat of Guru Granth Sahib.
- In the morning, shabad kirtan of entire Asa-di-var (24 chants, salokas and pauris) is completed. The singing of Asa-di-var is not to be interrupted by any katha or lecture.
- Appropriate compositions of Gurbani are sung at certain functions. For example at the time of Anand Karaj (Sikh Wedding) Lavan, Anand and suitable shabads ar sung. At the funeral of a Sikh, appropriate shabads relating to death are sung. Kirtan Sohila is recited before cremating the dead body.
- Every hymn should be sung in the indicated Raga and Tala. The singer should use the appropriate laya, tan and palta. However, he must not forget the appropriate ethos, mood and spirit (rasa) of the hymn.
- Vars should be sung as indicated in the Scripture. For example Asa var should be sung in Asa raga, Kalyan var in Kalyan raga, with appropriate dhuni if indicated.
- Display of musical skill and excess of alap (free improvisation) and tan are not

Scanned with OKEN Scanner

permitted as they tend to make the minds of singers and listeners mercurial and unstable.

- Correct pronunciation and intonation of Gurbani is essential so that the devotees may understand the wording and the meaning of the hymn. The singer is not supposed to introduce any words of his own or make interpolations in Gurbani. The use of extra words like ha, ji, wahwah, oh, etc., is against the spirit of Gurmat.
- The raga-technique and the sounds of instruments are subordinated to the singing of the hymn. What is brought out prominently by the musician is the Gurbani and its rasa.
- Any hymn that has been commenced should be completed. Lack of time is no reason for stopping the singing of a hymn in between.
- No kirtan is permitted during Akhand Path (continuous reading of the Scripture).
- The listeners should not make offerings (donations) to the musicians while the shabad kirtan is in progress.

Musicians in Sikhism

There are three types of Sikh musicians namely—Rababis, Raagis, and Dhadhis—who flourished during the period of the Gurus. Guru Nanak started the rababi tradition by engaging Bhai Mardana as his accompanist. The Muslim singers were formerly called mirasis, Nanak called them "Rababis", because they played on the rabab (rebec). Some notable rababis after Mardana were his son Shahjada, Balwand and Satta. Rababis used to perform with shabads regularly at Amritsar before the partition in 1947, after which the rababis migrated to Pakistan. The last rababi was Bhai Chand.

The second type of musicians are "Raagis" who were amateur singers and whom Guru Arjan encouraged to perform kirtan in order to avoid dependence on professional rababis. Some of the bards (bhatts) became ragis and did kirtan before the congregations at different centres at the Court of Guru Arjan Dev, whose compositions are included in the holy Sikh Scripture,. Bhai Jassa Singh Ahluwalia performed kirtan at Mata Sundri's residence at Delhi after the death of Guru Gobind Singh in 1708. Shabad Kirtan at the Golden Temple, Amritsar, was discontinued (on account of persecution by Muslim rulers) for much of the eighteenth century. When the Sikh missals (confederacies) obtained control of Amritsar, shabad kirtan was restarted there. Bhai Mansa Singh ragi performed shabad kirtan there during the regime of Maharaja Ranjit Singh and Bhai Sham Singh Adanshabi did likewise for more than seventy years. Outside Amritsar Sant Attar Singh, Bhai Sujan Singh, Bhai Randhir Singh and his groups were Sikh shabad kirtan musicians who did missionary work.[7]

Guru Hargobind first employed the third types of musicians, called dhadhis, early in the seventeenth century. He instructed them to sing heroic ballads (vaars) in his court to inspire the Sikhs to acts of valour and heroism. Bhai Abdulla, expert in playing the Sarangi, and Bhai Natha, player of the dhadh (a small hand-drum), were popular. These groups subsequently became very popular

Scanned with OKEN Scanner

all over the Punjab on account of the use of folk tunes and their zealous and emotional style of singing. The singers had hardly any knowledge of Hindustani classical music but appealed to the masses. A dhadhi group consists of two or three singers, one playing on the sarangi, another playing on the dhadh, and the third, maybe the leader, discoursing on the contents of their songs. Though they are expected to sing vars of the Scripture, they usually sing their own poetic compositions also on the daring exploits of Sikh warriors and martyrs. One of the famous dhadhi-jathas was that of Bhai Kishen Singh Kartar. Sohan Singh Seetal was also a well-known dhadhi.

A modern Raagi group generally consists of three persons: one plays the tabla or jori (pair of drums), as well as a dholak and seldom participates in the singing; another plays the harmonium, while the third plays a stringed instrument, harmonium or cymbals. The leader of the group sits in the centre and the group is known by his name. Today ragi-groups are employed by the Shimani Gurdwara Parbandhak Committee to perform kirtan in relays at the Golden Temple and other historic Gurdwaras in the Punjab. Some travelling ragi-parties perform kirtan in parts of the world where there is a concentration of Sikh residents.

An example of Rehras (Prayer of Nitnem) which is sung by musicians is being given below :-

Rehras (The Prayer) : Raag Goojree Mehla[5]

The hymn, "Kaahae Rae Man", composed by Guru Arjan Dev, is a selection from Guru Granth Sahib and is one of the shabads which makes up Rehras, a set of prayers recited by Sikhs as part of their nitnem. It is a reminder that one need have no worries as everything is managed by the supreme divine power of the Creator. If, like most parents, you worry about your children, you may find this shabad to be of particular comfort as Guru Arjan says even the young of flamingos are cared for by the creator.

"Kaahae rae mun chitveh udam jaa aahar har jee-o par-i-aa

Why O mind do you deliberate and scheme with such enterprising effort, when God himself is busily engaged in your care.

Sail pathar meh jant up-aa-ae taa kaa rijak aagai kar dhare-i-aa[5]

Rocks and stones have in them created beings, whose sustenance the Lord provides there.

Mere maadhou jee, sat sangat milae so tar-i-aa

O my cherished Lord, the true congregation's company one is saved.

Gur parsaad param pad paa-i-aa, sookae kaastt har-i-aa rahaa-o

By the Guru's grace the supreme state (of Union with One) is reached, and like a slip of dry wood, blossoms forth (when wetted). Pause.

Janan pitaa lok sut banit-aa ko-e na kis kee dhar-i-aa

Mother, father, people, son, and wife, support not one another.

Sir sir rijak sanbaahae tthaakur kaahae man bhoo kar-i-aa[2]

To each individual the support of the Lord reaches, why should one's soul or mind fear ?

Ooddae oodd aavai sai kosaa tis paachhai bachrae char-i-aa

Scanned with OKEN Scanner

Flamingos fly hundreds of miles; their young are left behind them.

Tin kavann khalaavai kavann chugaavai man meh simran kar-i-aa[3]

Who feeds, and who causes them to peck? O inner heart-mind remember that One.

Sabh nidhaan das astt sidhaan tthaakur kar tal dhar-i-aa

All the nine treasures and eighteen supernatural powers (are contained) and held in the palm of the Lord's hand.

Jan naanak bal bal sad bal jaa-ee-ai tayraa ant na paaraavar-i-aa[4]

Slave Naanak is devoted, dedicated, and ever a sacrifice to the Lord whose extent has no bounds."

This shabad is composed in Raga Gurjan Todi. According to the main Ragi of Gurdwara Sees Ganj, Delhi Bhai Mohan Singh "the usage of Ragas in shabdas is very simple unlike of the classical music shabdas are recited on the specific notes pertaining to raga but intricacies are not allowed". The composition of the previously mentioned shabda is being given below so that it can be shown clear how the notes of Raga Gurjari Todi are used –

G - - R - - S - - R G - - R S S S R G M - G - -
Ka - - he - - Re - - Mu - - - n Chi - - t - Ve -

R - - S - - - - M - - G R - - G - - R -
U - - d a - - m j aa - - Ah - - a a - r

S - - - - Dh - - M - G R - - G - R - - - S
Ha - - - r Jee - - - O - - Pa - - ri - ya - -

M - - Dh - N SS - SS - SS R - - G - R - S -
Sai - - l Pa - th - er Me - h - ja - nt

R - - N - Dh M - G R - - SSSS - S
Upa - - ee Ta - - Ka - Ri - ja - K

SSS - - NN Dh - - M G R - G - R - - - S - -
Aga - - ee Ka - r - Dha - ri - - yaa

Thus, there are numerous examples of this kind and it can be concluded that religious in India announce numerous references of Naad, Raga, Vibration, Sound, Music, Rythm, spirituality and Sikhism is one of them.

Having realized the ability of music to inspire the listener and performer, the Sikh Gurus harnessed these effects of Raags to convey their teachings. In order for the message of the Shabad to remain as the Sikh Gurus intended, each Shabad has been set to a predefined raga, which is included in the title of the Shabad along with its author. Thus, when a Shabad is sung in its title raga, its true nature and feelings are conveyed. The title raga enhances our understanding of the Shabad by providing us with emotions that go along with the teaching in the particular shabad.

The Sikh Gurus use themes and emotions that all humanity can relate to, such as love, devotion, wisdom, pain, ambition, hope, friendship, desire, determination, ego, duty, liberation, regret, faith and sadness. The Shabads thus encourage the realization of one's true self, regardless of race, gender or creed.

Scanned with OKEN Scanner

Ragas and Raginis

Dr. Reena Sahay*

Expression is an essential quality of raga, which means that each raga and melody expresses a particular emotion. So based on these expressions the Ragas-Ragini classification took place. In general the ragas reflected different rasa (emotion) which are eight in number according to Bharat Natya Shastra—

शृंगार-हास्य-करूणा रौद्रवीर : भयानका :
बीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्यरसा : स्मृता (6/15)

The most famous treatise which discussed for the first time the classification Ragas as male and Ragini as female is "Sangeet Markarand" by Narad (14th-15th cen.). He not only divided the melodies as male, female and neutral but also highlighted the point that a Raga should be sung in an appropriate time, if not done so, the effect could be violent and dreadful.

Nrad categorises the ragas as male-female and neutral ragas ascribed to the different rasas:

रौद्रकद्भुते तथा वीरे पंचरागिह परिगीयते
शृंगार-हास्य-करूणा स्त्रीरागिश्च परिगीयते
भयानके च बीभत्से सन्ते गायननपुसकै।

Mythological Interpretation

Besides an emotional interpretation there is mythological analysis too. In vedic literature sam is described as:

त्वचं दृग्रूपा पत्नीति सान्तट्टमत्तफया सहसम्बद्धः।
अमोनामस्वरः षड्जर्षभादिताथरूपो यत्रावर्त्तते तत्साम॥

Here sa is related to Rig mantras, Rig mantras are the wives and Am-Sadja, Rishabha are husbands. Just as for any creation Mayabrahma, Shakti-Shiva, male-female, both are essential, for creation of music ,.the male and their female ones (वीरांगणा) have been given due importance. It is also stated that jati was born from Rig- the mother and Svara the father. From jatis the ragas were divided, so the origin and the ancestor of Raga is Sama.

Ragas and Raginis were mentioned as direct derivatives of supreme power. Some of the text during medieval period emphasise upon this point:

Damodar Pandit in "Sangeet Darpan" states:

शिव-शक्तिफ-समायोगाद्राणां संभवोभवेत्।
पत्रङ्गस्यात् पंचरागा षष्ठस्तु गिरिजामुखम्॥

With the union of Shiv and Shakti were ragas born. Five of them came out of Shiv and the sixth one by Goddess Paravati

Narad in Pancham Sar Samhita states—

रागाः षड्जरागिण्यः षट्त्रिंशतः चारूविग्रहाः।
आगता ब्रह्मसदसि ब्रह्माणम् समुपासते॥

*HOD, Music, Shri Arvind Mahila College, Patna

Scanned with OKEN Scanner

The six major Ragas and thirty six Raginis with their beautiful bodies emanated from the abode of Brahma itself.

In tantra and yoga the source of music is Nada-Prana and Agni."The spiral configuration of sound conforms to the latest scientific opinion as we are told that it is propogated in the air by means of small whirlwinds and not spherical waves.The existence of spiral norm in sound obviously has right handed (dakshinavarta) and left handed (vamavarta) polarity and a neutral form where the two types are equally balanced." (Prof O'Goswami, The Story of Music) As the sounds are classified into male, female and neutral ones so were the melodies.In the words of Swami Prajnananand 'Ancient Indians conceived the idea of Twin God-Shiva parwati, Narayan Laxmi ie Purusha-prakriti under the influence of Tantra and vaishnavism, side by side the philosophical ideasof Music evolved.'

The ancient musicians and musicologists of India believed that real music exists in the depth of subconcious mind in the form of Divine Energy----' Kundalini', in an unmanifested form.When it is manifested, it is transformed into tones and tunes tinged with colour of Aesthetic sentiments. and emotions. Sarangdeva also gave the livision of unmanifested consciousness s Shiva and Shakti :

नादरूपा परा शक्तिफनर्दिरूपो महेश्वरः (वृहद्देशी)

It can be concluded that all that is anifested and transformed into tones d tunes, as melodies owe their origin the twin God.

We now move to the emotional side classification. This subject was widely accepted in the Northern India. The reason being that the aesthetic side of music was highlighted. Although the musicians differed from each other in classifying a raga or rgini. One raga was ragini to some other school of thought. Working on this there were different schools known as-

Shivmata, Krishnamata, Hanumat-mata, Rgrnavamata and Bharatmata.

Ragas	*Raginis*
Shivamata	
Sri	Mlasri, Triveni, Gauri, Kedri, Madhumdhavi, Pahri
Basant	Desi, Devgiri, Varti, Todik, Lalit, Hindoli
Bhairav	Bhairavi, Gurjari, Rmkali, Gunakali, Bangli, Sandhavi
Pancham	Vibhsa, Bhupli, Karnti, Badahansik, Mlavi, Patmanjari
Megha	Mallr, Sorathi, Sveri, Kaushiki, Gndhri, Hrsingr
Natanrin	Kmodi, Kalyni, Abhiri, Ntika, Srangi, Natahabir
Hamumatamata	
Bhairav	Madhyamdi, Bhairavi, Bangali, Vartik, Sandhavi
Kaushik	Todi, Khambvati,Gauri, Gunakri, Kakubh
Hindola	Belvali, Rmakri, Deshkhya, Patamanjari, Lalit
Deepak	Kedri, Knhara, Desi, Kmodi, Ntika •
Sri	Vasanti, Mlavi, Mlashri, Dhansika, Asvari
Megha	Mallari Deshakri Bhupali Gurjari, Tanka
Ragrnavmata	
Bhairav	Bangli, Gunakri, Madhyamdi, Basant, Dhansri
Pancham	Lalit, Gurjari, Desi, Varri,

Scanned with OKEN Scanner

	Rmkri
Nata	Natanrin, Gndhr, Slang, Kedr, Karnt
Mallr	Meghmallri, Mlav, Kaushik, Patamanjari, Asvari
Gaur	Hindola, Trivan, Andhari, Gauri, Badahansik
Deshkhya	Bhupli, Kdori, Kmodi, Ntik, Belvali

The interesting part in the classification is that the male ragas have been six in all schools of thought. All these schools differed from each other regarding the number of Raginis ascribed each raga and time when they were different regarding the sons attributed to raga and raginis. What has been constant is the number of male ragas to be six. Man has been close to the nature from primitive times. Seasons and agriculture occupied a valuable place in their lives. They were also the centre points for celebration of religious festivals. So the main six male ragas were meant to be sung in six seasons of the year. Prof. Goswami in his book 'The story of Music' has beautifully related the seasons with the six Ragas.

Six Male Ragas and Six Seasons

1. Bhairav: Bhairav has always been taken as the worship of Lord Shiva and this rite was held during the month of Ashwin (September-October). With the revival of Tantric cult this was replaced by Duraga, the consort of Shiva. Shiva worship thereafter shifted to the month of Baiskh (April-May) which is current even now in certain parts of North India and the melody too was assigned to summer time.

2. Megha: This is a melody of Rainy season-during the month shda and swan (June-July). Most of the compositions found in Raga Megha are description of the beautiful clouds, the birds chirping, the peacock dancing etc. Its an important season for the agriculturists.

3. Raga Sri: Sri is associated with goddess Laxmi, the deity for wealth. Time attributed to Raga Sri is agahan (October-November)

4. Raga Basant: This describes the beautiful spring season in the month February-March- Phgun.There are many love songs of Krishna and Radha set to Raga Basant. The popular festival Holi also falls during this time. There have been musical pieces on Holi festival too. Folklore by the name of 'Phgun' also is popular in North India.

5. Raga Hindola: As it sounds Hindola is a raga synchronizing with swing. It is related with "Jhulan" festival. "Many texts refer to the Hindola either as the generic tune of vasanta or treat the two ragas as one and the same. But with the rise of Krishna cult, Hindola was shifted to the month of Sravana to synchronize the swing (Jhulan or Hindola) festival of Krishna.

6. Pancham: Raga Pancham is associated with the cookoo singing on the note pancham the month is autumn. This is also the time when Navaratri festival takes place.

As said earlier, each raga is associated to a bhva because melody is expression of emotion. With emphasis on aesthetic aspect, the Sringra (erotic) raga got the prime position. There were various moods and emotions ascribed to various ragas. The ragas depicting wonder, courage, anger and bravery were classified as male ragas those depicting softness, love, laughter etc were classified as ragini. There were also neutral ones depicting fear and disgust.

Along with raga-ragini system, nyak

Scanned with OKEN Scanner

nyikbheda also developed side by side which gave access to the nyika representing various moods and also different situations. This subject or theme was widely penned down by the writers of both Hindi and Sanskrit literature. A number of musical and literary pieces have been based on this theme. A particular ragini would be reflecting a particular nyika. One important feature of medieval period has been that music and literature go hand in hand. Our intuitive poets would visualise the ragas and put them down in words. The concept of Dhynmantra has been written in many texts of music. The theme of classification of raga and ragini were also depicted in paintings. These paintings were visual representation of musical modes (ragas). The artists created Ragmala which combined music, poetry and painting. Not only could the poets of medieval period feel the emotion of a raga and put in words but also could the painters present it through colours. The main centres of these unique visual music inspired by the musical melodic compositions were Mewar, Bundi, Sirohi, Koth, Mrwr, Jaipur, Rajasthn, Kulu, Bhossli, Kngr, Mlw in Central India, the plains of Ganga and Jamuna and in Deccan.

So the system of ragas and raginis flourished in Northern India and could draw attention of musicians, poets as well as the painters. This was one of the most popular subjects of medieval period in the History of Hindustani Music.

Scanned with OKEN Scanner

Music -The Philosophy of life

Prof. (Dr) Satyanaryan Thakur*

In history, music is a very old art. It is as old as the humanity it self. In east it began with Lord Shiva 's shutra of life from his Damru as described by panini the fonder of vyakaran ie, the grammer of Dev Bhasa Sanskrit. He writes –"The first verse appeared once without a break was Aai ing, Lang, Lit, Khapat, Jhapat, Panchat". He described it in the following form calling it –

"Nanad Dhakka nanat Gyanam". Later on these seven words took the shape of Tarshaptak, the seven echo' of sargam namely sare, gama, padhani, sa, sa, ni, dha pa, ma ga re sha, "and gave the birth of music ending the noise of he formation of orbit with the great star wars murmur as described by the scientists in their big bang theory of the worlds formation.

No doubt music is far different of noise. But here noise is not my subject. So I again come over the point. Point, that is music.

Music, in western world too began with the origin of the man kind and they called the same in their own words of roman script, so, do me, so, doh, "No doubt the sylabi is of five words only, so, this must have emerged in later course, when the society had begun to be moderate.

In both the ways music is nothing but the joy for ever. Famous poet shakespeare[3] has written on a place-

"In sweet music, such an art
Killing care and grieves of heart
Fall a sleep or hearing die."

seems hundred percent correct. It is a complete definition of music in my view.

No doubt all of us know it better that music is attached to almost all the parts of our life so, a man sings when he runs in gay as words worth has described it in his two famous poem "Rainbow" "see my heart lift up with joy come over the point. Point, that is music.

"My heart lift up with joy,
when I behold a rainbow in the sky".

But, it does no mater hat we only sing a song in pleasure we sing much more superior songs in pens and panthers. See the feelings in the lines of P.B. shelay[5]. He explains it in a very much stress—

"our sweetest songs are those
that tell of saddest thought".

So in the beginning music were of two types only. One expressing the gay and another the sorrow. In later course, we gave it many shape. Some one called

*Head of the P.G. Department of history, C.M. College Darbhanga

Scanned with OKEN Scanner

it nature poem, while the other the sounds of patriotism and yet another gave it the noun of bravery. But most of the poets divided it in two common forms only. They called the first the love songs and the rest the songs of woe. The second form of poetry is full of measuries. the measuries of separation from their lovers. The same was named virah songs in Sanskrit literature. In India the greatest poet kalidas's[6] poems are its best example. In his famouse odd on solitude in meghdootam he rights –"Asti Kaschit virah kanta".

This can be said without any if and but that the word separation, the mother of love songs created history in literary world and gave the birth of poem as described by a famous Hindi poet Makhan lal Chaturvedi[7] when he said about the entity of the poets.He said "–Viyogi hoga pahla kavi aah se upji hogi gan. Nikal drig koro se chup chap wahi hogi kavita anjan."

It matters little whether "Vahihogi" our "Banihogi". In both the verbs, the separation froms love. I mean "Viyog" is common and that is the mother of poetry.

This is The ideology for which Kavikokil Vidyapatti[8] of Mithila and Kavi guru Ravindra Nath Tagore[9] of Bengal became as much popular as Wordsworth in west. They both selected to write the songs of separation. One Radha Birah and the other the Ratan in his post master. In post master novel laurite Ravindra says in a deep melancholy voice to Ratan the beloved of post master who is to be separated from each other. –"Ratan, meetings and partings are the natural things in the life." But the narrative definition we find In mahadevie's[10] songs where she writes–

"Yeh sangh usha ka Angan,
Alingan veerah Milan ka
chirhas ashru maya Aanan
Re is Manav Jeevan Ka".

Here we must understand that the main stream of life is the love and the expression of love is the music. Without music the life Seems dull and drary. Thus, one can say it loudly that if life is the root , music is the fruit. So true to the Kindered Point of life and love music is a must. Here I again remember Shakespeare[11] in his famous drama Julius Caesar had pointed it in a heart touching voice when going to the pompay he said his friend Brutus.-"Brutus, Caska is a dangerous man.He does not sing. He does not talk and he never laughs." Such man are never a man in the eyes of this great dramatist and poet. So, this is a quite remarkable fact that music is the nature of the life and they are as much related to each other as the soul and the body on the earth.

The power of music is so great that it can even melt a stone in waters as we find the story of Baiju Babra in 1556. It was the reign of Akbar the great of mughal India when he defeated the greatest singer of Akbars crown Mian Tansen.

In modern times science has proved that a real music can cure a patient of heart and mind without any medical aid. Perhaps this power of music was very well known to some poets.So , words worth[12] had called once–

"A voice so thrilling never was heard,
in spring time from the cuckoo bird
Breaking the silence of the seas
among the farthest Hebrides."

To conclude the whole, I would like to say–the love and truth.The music either in Orpheus lute or the lute of Lord Krishna played the same role and the music which comes from emotions either from joy or sorrow creates a vibration

Scanned with OKEN Scanner

which not only effects the nature but all the men in the same direction. I mean, it is common for both the man and woman in the society. this has been very well described by Sir W. Scott[13] in hunting songs–

Louder, louder, chant the lay,
waken, lords and ladies gay!
Tell them youth and means mirth and glee
Run a course as well as we."

Some times the effect of music is so deep that one is bound to draw it till one dies as said by W. Wordsworth14 in his famous poem The reaper-

"The music in my heart I bore,
Long after it was heard no more."

So, music is love and love is music.That is all one earth we need to know.

Reference

1. Shiv Shutra:- From Shiv Tandav
2. Paninies's Natya Shutra
3. Shakespeare's Sonnet.
4. W. Wodsworth- Rainbow
5. P.B.Shelley –To a Skylark.
6. Kali das- Meghdootam.
7. Chatruvedi Makhanlal.
8. Vidyapati –Radha virah.
9. Rabindra Nath Tagore-Postmaster.
10. Mahadevi Verma- Nirjhar.
11. Shakespeare- Juliusceasar "Drama"
12. W. Wordsworth-The solitary reaper
13. Sir W. Scott- A Hunting Song
14. W. Wordsworth- The Reaper

Scanned with OKEN Scanner

Music The Gate Way Treatment

Dr A D N Singh

Sangeet Hai Shakti Ishwar Ki,
Har Sur Mein Base Hain Ram
Ragi Jo Sunaye Ragini,
Rogi Ko Mile Aaram.

In this modern fast age, when every day a new disease is detected, every day new medicines are invented, by reading above lines, certain question may certainly crop up as to how a patient can get relief from the disease by hearing music ? Is it possible for any patient to get cure by hearing music only? What is music therapy? There may be so many questions, which can not be easily answered by any musician or doctor bur rarely anybody can deny that musical tunings create self feelings among audience. It is being witnessed and certified in the history that the great musician T A N S E N had liquidated the stones with the power of his music, had brought water from the sky by singing MEGH RAAG and by singing DEEPAK RAAG had burnt the fire.

In fact Music has frequently been used as a therapeutic agent from the ancient times. Music is a kind of yoga system through the medium of sonorous sound, which acts upon the human organism and awakens and develops their proper functions to extent of self-realisation. This is the ultimate goal of Hindu Philosophy and religion. Melody is the key-note of Indian Music. The 'Raga' is the basis of melody. Various 'Ragas', have been found to be very effective in curing many diseases.

Music Therapy is an established healthcare profession that uses music to address physical, emotional, cognitive, and social needs of individuals of all ages. Music therapy improves the quality of life for persons who are well and meets the needs of children and adults with disabilities or illnesses. It is an interpersonal process in which the therapist uses music and all of its facets—physical, emotional, mental, social, aesthetic, and spiritual—to help patients to improve or maintain their health. In some instances, the client's needs are addressed directly through music; in others they are addressed through the relationships that develop between the patient and therapist. Music therapy is used with individuals of all ages and with a variety of conditions, including: psychiatric disorders, medical problems, physical handicaps, sensory impairments, developmental disabilities, substance abuse, communication disorders, interpersonal problems, and aging. It is also used to: improve learning, build self-esteem, reduce stress, support physical

Medical Officer, Jharkhand Govt. Dumka

Scanned with OKEN Scanner

exercise, and facilitate a host of other health-related activities.

Music has been used in medicine for thousands of years. Ancient Greek philosophers believed that music could heal both the body and the soul. Native Americans have used singing and chanting as part of their healing rituals for millennia. The more formal approach to music therapy began in World War II, when U.S. Veterans Administration hospitals began to use music to help treat soldiers suffering from shell shock. In 1944, Michigan State University established the first music therapy degree program in the world.

Scientific studies have shown the value of music therapy on the body, mind, and spirit of children and adults. Researchers have found that music therapy, when used with anti-nausea drugs for patients receiving high-dose chemotherapy, can help ease nausea and vomiting. A number of clinical trials have shown the benefit of music therapy for short-term pain, including pain from cancer. Some studies have suggested that music may help decrease the overall intensity of the patient's experience of pain when used with pain-relieving drugs. Music therapy can also result in a decreased need for pain medicine in some patients, although studies on this topic have shown mixed results.

In hospice patients, one study found that music therapy improved comfort, relaxation, and pain control. Another study found that quality of life improved in cancer patients who received music therapy, even as it declined in those who did not. No differences were seen in survival between the 2 groups.

A more recent clinical trial looked at the effects of music during the course of several weeks of radiation treatments. The researchers found that while emotional distress (such as anxiety) seemed to be helped at the beginning of treatment, the patients reported that this effect gradually decreased. Music did not appear to help such symptoms as pain, fatigue, and depression over the long term.

Music Therapy has been proven to be a useful and effective technique for easing and curing many medical illnesses and conditions. Medical professionals especially tout the effectiveness of music therapy in dealing with several varieties of deadly cancer. Music therapy can aid cancer

One problem often seen in cancer patients undergoing various forms of treatment is loss of cognitive function. This can be addressed by having patients make up their own songs to sing or play on the music therapist's instruments. Another technique for improving the patient's cognitive function is playing different songs and having the cancer patient try and recognize it and name the song, artist, and anything else about the music that he or she can remember.

Even if the cancer patient experiences few side effects, he or she will probably have to deal with high levels of stress. A music therapist can help ease this stress through playing relaxing music, providing relaxing music on Cd's or mp3s, and allowing cancer patients to participate hands-on by playing instruments and experimenting on new instruments. The music therapist can also write songs specifically for the patient, about his or her individual circumstances. This could be about the treatment the patient faces, the hospital environment, the patient's symptoms, or any other topic. The music therapist can also get the cancer patient's

Scanned with OKEN Scanner

family and friends involved, as a group activity tends to be even more beneficial for easing stress. Even allowing the patient to choose music and then having a music therapist play that music is beneficial, as it helps the cancer patient take his or her mind off the pain, fear, stress or loneliness her or she is feeling.

Music therapy can be beneficial for cancer patients and their families alike, in that it helps ease pain, depression, loneliness and other feelings. It also allows the patient and his or her family and friends express their emotions and communicate with one another. Finally, music therapy can be a wonderful aid during the grieving process. If you or a loved one is suffering with cancer, you should consider including music therapy as an approach to aid in cancer treatment. Patients in many areas, including pain tolerance, chemotherapy, radiation, immunotherapy, other cancer treatments, easing fears and loneliness, expressing emotions, and even the bereavement process for the family and friends of the cancer patient. These benefits and others make music therapy treatment an essential part of the treatment process for most cancer patients.

Other clinical trials have revealed a reduction in heart rate, blood pressure, breathing rate, insomnia, depression, and anxiety with music therapy. No one knows all the ways music can benefit the body, but studies have shown that music can affect brain waves, brain circulation, and stress hormones. These effects are usually seen during and shortly after the music therapy.

In western countries, studies have shown that students who take music lessons have improved IQ levels, and show improvement in nonmusical abilities as well. Other studies have shown that listening to music composed by Mozart produces a short-term improvement in tasks that use spatial abilities. Studies of brain circulation have shown that people listening to Mozart have more activity in certain areas of the brain. This has been called the "Mozart effect." Although the reasons for this effect are not completely clear, this kind of information supports the idea that music can be used in many helpful ways.

The great Indian Sitar Maestro Pandit Ravishankar has also mentioned that he has seen tears flowing out of the eyes of his audience by hearing his Sitar. Thereby it is settled that music not only gives excitement to a person from outer side, rather it vibrates the internal minute peculiarities and specialties and leaves impression on every item of human body and mind in the musical form a man is hypnotised. Even today, the conventional farewell song SAMDAUN of Mithila, an audience gets tears out of his eyes. It is not an exaggeration if it is said that this is due to the miracle of music.

Indian classical music is categorized under two genres. These are Hindustani and Carnatic. Broadly speaking, Hindustani developed in the northern regions of the country, while Carnatic music is indigenous to the south.

Hindustani music have three main components to the classical music of North India - Drone, Raga, and Tala.

The Drone

Unlike western musics, indian music is not based on harmony. The harmonic principle of contrast between simultaneous sounds is foreign to the Indian conception of music. The concept of modulating (or changing) keys is also

Scanned with OKEN Scanner

absent. Instead, the music is based on a drone, a continual pitch that sounds throughout the concert. This acts as a point of reference for everything that follows, a home base that the musician returns to after a flight of improvisation.

Raga - organization of Melody

"Raga" is one of those annoying words which has no equivalent in English, and is thus also frustratingly difficult to define. Terms like "generalized melody" or "melodic framework" are perhaps the best English descriptions, although they are only somewhat helpful. I like to describe a raga as being about halfway between a scale and a tune. A scale is just a set of notes, which can be used in any way you want. A tune leaves no room for spontaneous creation of melody. A raga lacks the total freedom of a scale, but has much more freedom than a tune.

A raga may be characterized in a number of ways. It is built out of a specific selection of tones from the octave (at least five), like a scale. But in a scale all notes are equal. Ragas have more and less important notes. There may be characteristic phrases that are used in the performance of the raga, or specific ways in which the notes cannot be used. Each raga is also associated to a particular mood, and to a particular time of day or season of the year.

The result is a melodic structure that is easily recognizable, yet infinitely variable. No two performances of the same raga, even two performances by the same musician, will be identical. Indeed the same raga may be played by the same musician one night for half an hour, the next night for an hour and a half. Yet the character of the raga, the mood it creates, will still be the same.

Tala - organization of Rhythm

In the same way that ragas are melodic structures, talas are rhythmic structures. The tala can be thought of a cycle, divided into equal beats which are collected into subgroups. So, for example, Rupak tala consists of seven beats, a group of three beats followed by two groups of two beats (sometimes represented 3+2+2). The tala is usually represented by a series of strokes (called "bols") on the Tabla, reflecting the subgroupings within the tala. The tabla player will vary the strokes that he plays, but will do so in a manner consistent with the basic rhythm of the tala. In particular, he will be careful to differentiate between the khali (off-beats) and tali (on-beats), which are defined for each tala.

The most important beat of the tala is the first one, called "sam". In performance, the soloist may go off on a long improvised phrase that may last for many cycles of the tala, but will always return to the composition on the sam. (From Mr Andrew Buhr's A Beginner's Guide to North Indian Classical Music)

Carnatic music is the music of South India, different in many of its terms and formal demands, although similar in overall outline. The two share some common origins, but the details of these relationships can be contentious. The basic form is a monophonic song with improvised variations. There are 72 basic scales on the octave, and a rich variety of melodic motion. Both melodic and rhythmic structures are varied and compelling.

Carnatic music is considered one of the oldest systems of music in the world. Imbued with emotion and the spirit of improvisation, it also contains a scientific

Scanned with OKEN Scanner

approach. This is mainly due to the contributions of such inspired artists as Purandara Dasa, known as the Father of Carnatic Music, and other scholars who codified the system and gave it a clear format as a medium of teaching, performing, prayer and therapy.

Like Hundustani music,the basis of Carnatic music is the system of ragas (melodic scales) and talas (rhythmic cycles). There are seven rhythmic cycles and 72 fundamental ragas. All other ragas are considered to have stemmed from these. An elaborate scheme exists for identifying these scales, known as the 72 Melakarta Ragas.

Carnatic music abounds in structured compositions in the different ragas. These are songs composed by great artists and handed down through generations of disciples. While the improvised elaboration of a raga varies from musician to musician, the structured portion is set. These compositions are extremely popular, with a strong accent on rhythm and lively melodic patterns. Three saint composers of the nineteenth century, Tyagaraja, Muthuswami Dikshitar and Shyama Shastri, have composed thousands of songs that remain favourites among musicians and audiences.

An important element of Carnatic music is its devotional content. The lyrics of the traditional compositions, whether mythological or social in nature, are set entirely against a devotional or philosophical background.

In fact, music helps in the treatment of actual diseases in the following manners:-

1. One obvious use of music is that of a sedative. It can replace the administration of tranquillizers, or at least reduce the dosage of tranquillizers.
2. Music increases the metabolic activities within the human body. It accelerates the respiration, influences the internal secretion, improves the muscular activities and as such affects the "Central Nervous System" and Circulatory System of the listener and the performer.

Music Therapy is not the subject of an article only. The entire subject is now in the experimental and implementation stage, and data are rapidly accumulating. And the ancient system is gradually being transformed in to a modern science. Since -1993, I am a practitioner of Music Therapy. After, more then five thousands patients , I have observed that - India classical 'Ragas' have been acclaimed to have healing effects.They stimulate the brain, ease tension and remove fatigue. The effect of Music Therapy may be immediate or slow, depending upon number of factors like the subject, his mental condition, environment and the type of Music, selected for having the desired effect. Music Therapy largely depends on individual needs and taste. The use of Music as therapy is based on scientific and clinical approach and has to be used with great care and deep study of the nature of illness. We can call it "The study of Individual- Modality Theory". Before using music as Therapy it must be ascertained which type of music is to be used? The concept of Music Therapy is dependent on correct intonation and right use of the basic elements of music. Such as notes [swara] rhytym, volume, beats, and piece of melody. There are countless 'Ragas' of course with countless characteristic peculiarities of their own.. That is why

Scanned with OKEN Scanner

we can not establish a particular Rag for a particular disease. Different types of Ragas are applied in each different case.

Why does music have tremendous effects on your physiology? This is because the roots of the auditory nerves are more widely distributed and have more connections than any other nerves in the body.

1. Sustained chords lower your pressure
2. Crisp, repeated chords raise your blood pressure.
3. Music having the tempo of a normal heart beat (60-80/minute) soothes.
4. Rhythm which are slower than heart beat build suspense, since the body tends to anticipate that the music will speed up.
5. Fast rhythms raise the heart beat and excite the whole body.

Relationship between Chakras and musical notes.

Chakra is the Sanskrit word for wheel. They are the fast moving vortices of energy containing colors. These dynamic centers of energy make the aura brighter or dimmer depending on their activities.

Each of the chakras has a characteristic frequency of vibration. It is associated with a musical note that corresponds to the frequency of its basic vibration. Color and sound can have therapeutic effect, because they can help to stimulate and balance the activity of the particular chakras. The chakras are interrelated with the endocrine glands and they should function in a balanced manner to maintain normal bodily functions.

The modern revival of music therapy has not yet sufficiently progressed to indicate its full utility. Several problems immediately invite further research. Under existing conditions, it would seem advisable to broaden the foundation of musical research. Not only to advance the ethical and moral rights of the human being, but also to prevent, if possible, the negative and destructive influences which may be due to ignorance of the laws governing the effects of sound and rhythm. The Indian would regard it as a sacrilege to profane his magic music, and would further insist that such profanation would destroy the healing power of the rites. It is obvious that the psychological effect of the therapeutic music would be greater if the patient understood that the scientific foundation of the procedure had been thoroughly established.

Now days, it is always felt that a man becomes resistant to drugs after using for long time and in such cases too, the treatment by music may be ridiculed and this may not be surprised. It is alsoproven that Music Therapy is especially effective in three key medical areas.

1. Pain, Anxiety and Depression,
2. Mental, Emotional and Physical handicaps,
3. Neurological disorders & mesothelioma.

It has also been found that listening to various appropriate music lowers Blood Pressure, stabilizes irregular heart rate, reduces pre-treatment anxiety, relieves depression and related mental ailments, enhances concentration, reduces the need for sedatives and pain drugs (in an event of surgery), reduces vomiting tendency after chemotherapy and also improves stability of those with Parkinson's disease and mesothelioma. The Appolo hospital group, the largest of its kind in Asia is now having a Medical

Scanned with OKEN Scanner

Music Therapy course and obviously, it is the first of its kind in Asia.

Ancient Indian music has devised a special therapy based on the 72 ragas. It is appropriate to define Raga at this point. Raga is neither melody alone, not notes; neither scale nor mode. It's an ensemble of all these. According to an ancient Indian text, Swara Shastra, the seventy-two melakarta ragas (parent ragas) control seventy-two important nerves in the body. It is believed that a person who sings/ performs a raga bound to the raga specifications (lakshanas) and with purity in pitch (swara shuddi) will have complete control on the corresponding nerve.

To quote a few, for those who suffer from hypertension, ragas such as Ahirbhairav and Todi are prescribed. To control anger and bring down violence within oneself, Carnatic ragas like Punnagavarali, Sahana and so on, come handy. Not only psychological, but the somatic or physiological impact of ragas have come to light in recent research. For instance, stomach-related disorders are said to be cured with some Hindustani ragas such as Deepak (acidity) and Jaunpuri (constipation) and Malkauns or Hindolam (intestinal gas and fever). Simple iterative musical rhythms with low pitched swaras, as in bhajans are capable of relaxation, as observed with the alpha-levels of the brain waves. They may also lead to favourable hormonal changes in the system.

On the therapeutic side, nothing new is to be invented.We just have to know how to knock the hidden goldmine.There is an urgent need for a detailed enquiry based on scientific parameters and the medicinal effects of Music. No doubt,its a long journey,but worth to start off. There is a growing awareness that ragas could complement or even be a safe alternative for many medical interventions. For this purpose, it is necessary that exponents in Indian ragas join experts in medicine to help evolve a scientific system of raga therapy for the various illnesses of modern times.

Now a days, while walking around any high school in the leisure, you'll see evidence of the profound connection teens have with music - cell phones featuring ring tones from the hottest stars, iPods buzzing in every ear, the latest gadgets playing the latest tunes as cars pull away from the school parking lot. Follow those same adolescents home and you'll see more of the same - bedroom door shut, music blaring, drum beats reverberating rhythmically through the floor.

Music therapy is a new form of approach to help children and adults, who have problematic behaviors, to make effective adjustments toward social , emotional, mental and educational aspects, where brain plays a dominant role.Many of the imbalances in the so called normals may also be made set right by regular exposure to certain raagas with special empahasis on certain notes. Music Therapy acts on the human beings before being transformed into thought and feelings.

Music Therapy is of two modes of presentation. One is passive mode or passive form of music therapy which give importance to listening, the other one is active mode or active form of music therapy, which give importance to particpating. Passive form of MT may be beneficial to almost all forms of ailments. Active form of music therapy will be of

Scanned with OKEN Scanner

immence help in neurological problems , like neurological aphasia,- receptive aphsia, expressive aphasia- in the segment of alternative medicines to help children to reduce speech problems- to enhance speech fluency, in hyperactive children to reduce hyper activity and so on. Passive form of music therapy more helpful in enhancing the concentration and memory, to reduce the stress and strain, to cope up with series of heart problems, like hypertension,in bringing down the blood pressure and normalize the patients.

The music which is being presented in the therapeutic sessions does the difference on patients.Classical Music is a direct experience before being transformed into thought and feelings. It acts as vibration, which does the wonder on patients.

The results are proven scientifically, many of my research papers are published. Music therapy is a complementary form of medicine, in few situations it functions as alternative medicine also.

Listening to music can be a mood-altering experience, complete with the endorphin rush and natural euphoria teens are constantly seeking. In addition, music can be therapeutic. Research has shown that the rhythm of a song can stimulate brainwaves, impact breathing and heart rate, reduce stress, lower blood pressure, boost immunity, and improve overall health.

"I think music therapy is useful at any program if it's used the right way by the right people because music connects people in ways other things don't," he says. "Everyone in the world has a deep connection to music - we all operate in frequencies, and we all hear our mother's heartbeat as our first introduction to music."

When used therapeutically, music can also improve an addicted individual's coping mechanisms and distress tolerance skills. Many recovering addicts can learn to write a song or listen to poignant lyrics rather than turning to drugs or alcohol. Through music-assisted relaxation and guided therapy, patients learn healthy ways to cope.

Though the therapeutic values of music have been recognized and employed from a very early stage in the history of mankind, not enough work has been carried out scientifically to evaluate the efficacy of traditional Indian classical music in healing various ailments. Music is known to alleviate both acute and chronic ailments because of the power of sound vibrations in affecting the mental and emotional states and in producing multiple physiological changes in the body.

Music can lead a person to a state of harmony. As all illness is caused by a disharmony, music can help in the healing process in the fullest sense, harmonizing all aspects of the being - the physical, emotional, mental and spiritual.

Music has the power to access deep emotions. Healing is concerned with bringing the body into a natural state of balance. A blend of musical tones can lead to such a balance more easily. Musical therapy is a method of psychotherapy where a patient listens to music which affects his moods and feelings. The aim is to restore, maintain, and improve emotional, physical, physiological, and spiritual health and

Scanned with OKEN Scanner

well-being. Music is known to affect both the mood of the patient as well as his physiological functions.

I would finally like to mention these lines, keeping its importance, while planning Music Therapy - ***Musical intervention by untrained people can be ineffective or can even cause increased stress and discomfort.*** Relying on this type of treatment alone and avoiding or delaying conventional medical care for cancer may have serious health consequences.

In this way it is clear that RAGA – RAGINIS can be good Medias for perfect and fruitful treatment, but the most important thing is availability of efficient doctor cum musician.

Scanned with OKEN Scanner

Music and Its Effects

Dr. Pushpam Narain

Music is both an art and a science since it deals with the expression of one's feeling and emotions through sound, in melody and harmony, may be through its composition and execution. On the other hand, it is a science concerned with the systematic management of sound at all levels in the universe. Music term has been used equivocally in a wider sense as synonymous with sangit and it has been defined in the Sanskrit texts as follows –

> *"Gitam, Vadyam tatha Nrityam, tryam sangitamuchyate"*
>
> Sangit Ratnakar

> *"Gitavaditranrityamam trayam sangitamuchyate,*
> *Ganasyatra pradhananatvat tat sangitamitiritam."*
>
> Sangit Parijat

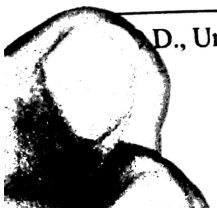
According to Sangit Ratnakar, singing, playing musical instruments and dancing are the three components of music while according to Sangit Parijat, singing, playing of musical instruments, dancing are called music but out of these three, singing is the most important. These definitions clearly indicate that music is the combination of the three arts viz. singing (Geet), playing of musical instruments (Vadya) and dancing (Nritya). These three arts are generally referred as fine arts and are closely connected with one another in such a way that it is almost impossible to separate them.

Music is bestowed upon mankind by Nature for influencing the inner world (spiritual) and moral characters. It is the art of combining sounds for reproduction by voice or by various kinds of musical instruments, in rhythmic, melodic and harmonic form to express through or feeling. According to Webster's New Collegiate Dictionary, "Music is the science or art of incorporating intelligible combination of tones into composition having structure and continuity."

Since the dawn of civilization, music has been an integral part of social and cultural life of the human beings. Music in one guise or another permeates every human society. Throughout history, music has been an important adjunct to ritual and drama and has been credited with a capacity to reflect and influence the human emotions. Various musicologists and psychologists have acknowledged that music is a powerful source of making all-round development in the personality and intelligence of human beings.

In Indian tradition, the 'OM' is the primary cosmic sound energy that created the entire universe. This is described as a humming sound (Anahat Nada) that saints

D., University Department of Music & Dramatics, L.N.M.U., Darbhanga.



Scanned with OKEN Scanner

are able to hear during medition. The 'VAK' or human speech is a manifestation of Saraswati in our culture. The many legends about saints (Rishis) pronouncing a curse or bendiction which would become a factual evet, show the great belief in the power of human sound. The Vedic chants were intoned with utmost care as each intonation and inflection of the voice could have beneficial or adverse effects. There was a great but powerful belief in the power of sound among our forefathers and so our mythological stories are full of legends that affirm their faith. Our Gods are also closely associated with music, it is believed that the five primary Ragas of the Indian Classical Music owe their origin to Lord Shiva while the sixth one to Goddess Paravati. Saraswati, the Goddess of learning and music is always shown with the Veena. The charismatic effects of Lord Krishna's flute are well known. Spiritual music frees us from our baser self, speakes to us of man at peace with himself and God. It reflects the rhythm of a society which has established its faith and security. This is music standing on the pinnacles of human discovery and invention. Music is a mirror of the process of throught itself. The repeated rhythms and sequences of tones clearly helped to establish the principle of recognition and comparison, drawing on memory and on trial and error. All the various symbolic methods we use o investigate the nature of the world and urselves are to be found within music.

Effect of music in different forms on very aspect of human life, plants, nimals and even non-living things has een studied. In ancient mythology, Lord anuman is said to have melted rocks ith the rendering of particular Raga. The mpelling charm of Lord Krishna's flute is also legendary. Historically, we have the legends about Tansen, creating a raging fire by singing the Deepak Raga. Dikshitar invoked rain on the porched countryside by rendering Amritvarshini Raga. We can not be sure how much all this is fact, but the fact that people believe in the dynamic power of music is proved by the popularity of such tales.

Physiological Effects

Music increases the metabolic activities within the human body: it accelerates the respiration, influences the internal scretions, improves the muscular activities and as such affects the nervous and circulatory systems of the listener and the performer. Singing organizes the individual's vocal apparatus, improves speech and develops vocal-auditory co-ordination. Farnswarth (1967) stated that music may bring physiological changes. He found significant reduction in the fatigue, and a stimulation to the depressed feelings among the mentally and physically handicapped persons when they were subjected to music listening and participation. Pathak (1969) while discussing the effect of music as a means of relieving tension suggested that music can reduce tension of nerves and so the listener feels happy, courageous and energetic.

Music can develop the individual's response system to the impact of sound. There are basically two ways to consider the impact of music of human beings on biological development of human beings on biological development, (1) loud music arouses as indicated by elevated pulse rate, muscle tones, blood pressure, blood glucose levels etc. (2) rhythmic, soft and familiar music produces opposite physiological responses as it relaxes the

Scanned with OKEN Scanner

tension and at times can lead to sleep; it relieves hypertension.

Functioning of different organs within the human body is affected by music and it has definitely a regulartory effect on physicological processes such as digestion, blood circulation, metabolism etc. Actually rhythm enhances muscular tonus and most likely creates a desire for physical activity. Our bodies are capable of following music to a remarkable extent that promotes growth and physical fitness. It is a fact that structure and functions of the human body are maintained through exercise, without which it degenerates the fucntioning of human body system. Speaking from physiological point of view, activities like playing the music, primarily drums and other rhythmic exercises enrich the speed of motor responses by enhancing the speed of signal transmission along nerve fibres and in terms of bio-chemical functioning, this activity increases the individual's ability to liberate free fatty acids from its fat deposits to fuel muscular work.

Psychological Effects

Among the psychological effects of music, the most pronouonced ones are on the behaviour and temperament of the individual. Emotions, feelings and thoughts have been reported to be greatly influenced by music listening or participation. Joy is born both in the process of actively participation in music making and in the process of listening to it. Emotional experience derived from muscle has a powerful effect on the formation of one's moral and intellectual outlook. Music activities lead to development of imagination and creative thinking. Singing, playing a musical instrument or rhythmic movements provide better sense of proportion, a finer perception and a happier world outlook. Shyness, aggressiveness and many other such characters of individuals have been normalized by music. Mere humming of musical tones may enable a person to overcome loneliness. Music has a great ability to inspire and enthuse the listener and the performer. Thus, it is used as an important and forceful weapon for arousing the will power of the army.

Sledzinski (1970) had outlined the role of art including music in the life of man and found that it shapes integrity, moulds feelings and imagination, induces creative abilities and enables to overcome loneliness, boredom and discouragement among the individuals. It has been reported by Attri (1981) that every living being is affected by music which may or may not be assessed immediately as its effect is though slow but is long-lasting on the feelings, mood, emotions and behavior of both the applicator and the receptor. Goswami (1977) observed that all the three states of mind i.e. conscious, sub-conscious and unconscious, are involved during the process of learning music by an individual. Conscious mind is at work during learning and then the learnt piece of music goes to the sub-conscious mind which is then passed on to the unconscious mind. Conscious and sub-conscious mind may become inactive due to high frequency of unconsciousness and as the consciousness may be lost and the affected person behaves in an abnormal way which causes mental disturbance, mental depression and mental retardness. Their cure or improvement is possible through music. She further reported that music is the sound expressed as feelings, even before

Scanned with OKEN Scanner

the discovery of any script or language.

According to Thanvi (1982) music has limitless effects on human beings and it affects their mental behavior. She had also observed that mind is very closely related to music. Due to this fact, attempts have been made with the help of music to improve the behavior of the individual from the ancient times.

Slack (1970) studied the effect of music education on the slow learner pupils and found that music education on the slow learner pupils and found that music education had a positive psychological effects in the normalizations of their pent-up emotions and developed their abilities to the full.

Doron Kemp Antrin says, "Psychologists have found that music does things to you, whether you like it or not. Fast tempos invariable raise your pulse rate of, respiration and blood pressure; slow music loers them," This quotation depicts the tremendous beauty of the influence of music on human physiology and psychology. Music acts to dull pain (mental) and put or transform a person into a mild trans. Thus, music has tremendous impact on human biology. In certain cases children deprived of parental affection or proper home environment are obsessed with the power of music.

Physical Effects

Music may directly or indirectly affect the physical changes in an individual. Exercise done in music provide the individual with a good posture and improves his motor coordination. It also improves his walking and running habits. Aerobic exercises combined with music are the good examples of these effects. Apart from these, expression of joy, happiness and other feelings which appear on the face during participation in music either as listening to or making music, brings indirect physical changes in the individual. It is the inherent nature of man that at the time of fear or anxiety, he feels secure by hearing or playing music. In situations of depression, he feels a great relief by hearing or playing music. Sound has a marked but immediate effect on the physiology of the body. The regular motion of the heart and lungs reinforces the sense of rhythm. And, dance is but the response of the body as a whole to the natural instinct of the rhythm. Similarly, the gradual development of the vocal acts originally involves the intellectual correlation of behavior just as any other physiological process.

Prenatal Effects

Amazing diversities of tone justifies the claims that the effects of music have been experienced since the onset of humanity. From ontogeny it is known that a foetus is sensitive to stimuli from the sixth month on and reacts to perceptions. It senses the mother's heart-beat, respiration and intestinal sound via 'vibration hearing,', a combination of mechanical and tactical stimuli transmitted through the amniotic fluid. Other messages are conveyed by mother's voice. The swing of her body while walking, of external noises that a foetus participates in the tonal events or situational emotions, its a fact well known to female musicians who are often unable to continue in their profession during the last three months of pregnancy because of their offspring's too vigorous expressions of pleasure or displeasure.

Some of our ancient beliefs are strongly supported by modern scientific discoveries. Abhimanyu, the son of

Scanned with OKEN Scanner

Arjuna while he was still in his mother's womb, is said to have listened to the first phase i.e. how to fight in the "Chakravyuha" which was complex formation in warfare. Later, her mother fell asleep so he could not listen the remaining part as how to come out of the "Chakravyuha" After birth, as an adult, when he entered the 'Chakravyuha', was not able to come out, so was killed. 'Ashtavakra' who is the author of 'Ashtavakra Gita', is said, got eight deformities of his limbs because he had heard the Vedas recited wrongly eight times while he was still a fetus. In support of these views, recent researches have established that the sense of hearing is the only sense that develops even before the birth of the baby and the baby is capable of absorbing knowledge conveyed through sound while in womb.

The soothing effect of right tunes is evident when we look at lullabies. These are simple turns and rhythms which instil the child to sleep. The main technique or effect of these lullabies is that of repetition which has a sedative effect. Here the quality of voice or expertise in singing is not as important as the familiarity of the voice and music. The child feels secure and reassured by hearing the familiar voice of his mother even though it may be a cracked voice.

References

1. Sharangdev, Sangit Ratnakar, Anand Mundranalay, Mumbai 1896
2. Ahobal, Sangit Parijat, Sangit Karyalaya, Hathras
3. Farnsworth, P., Review. J.A.A.C. 26(1) : 142, 1967
4. Pathak, S, Swasthya Par Sangit ka Prabhav, Sangeet, 35(12), 30-32, 1969
5. Sledzinski, S. Music in the life of the new generation of the polish people's Republic Report made at the Plennary session of IX conference of International Society for Music Education. In Music Education in the Modern world. progress publishers, Moscow, 1974, 135-140
6. Arti Sitaram, Sangit ka Manovigyan, Sangeet, 47 (3) 26-38
7. Goswami R, Man Aur Sangit, Sangit, 43(5), 1977 26-27
8. Thanvi P., Mansik Aswasthya Aur Sangitik Upchar, Sangit, 48 : 5, 5-11, 1982
9. Slack R, The role of music in the lives of children and young people, In Music Education in the Modern world, Progress Publishers, Moscow, 1974, 252-255.

Scanned with OKEN Scanner

Musicological Study in Medieval Bengal : A Brief Survey

Bisakha Goswami

Musicology is a branch of study which deals with the scientific study of music in all its aspects. Today, it is amply clear that music is to be considered not only as a subject of artistic creation but also as a part of science. This is because of its medium which is sound or Nada. It is a fact that study of musicology started in various parts of the world with practical music since early days of civilization. Lots of interesting topics in the sphere of knowledge are connected with this particular subject, such as – history and evolution of musical forms, system of sound production, structural patterns of lyrics, tones and tunes, aesthetics and its application in music and various other technical aspects including textual traditions and the practice of giving proper explanation of musical texts. Musicologists are carrying the responsibility of cultivating the aforesaid theoretical and analytical parts of music. Here lies the importance of musicological texts. During different ages, the subject musicology occupied various names in Indian sub-continent, like – Gandharva Vidya, Nada Vidya, Sangita Vidya etc. But whatever be the terminology, renoned scholars like-Narada, Bharata, Matanga, Sarangadeva etc. made a vast tradition to work on the subject and nriched the stock of Indian musicological literature with their valuabl writings. Musicologists of Bengal region also joined hands in this task and they contributed lots of texts to the literatur of this subject. Excellent works like – Sangita Damodara, Gitachandrodaya, Bhaktiratnakara, Sangitasarasangraha, Sangita Taranga etc. prove this fact with certainty. A study on the musicological texts written by the authors of this region is undoubtedly a part of the overall study of the history of Indian musicology. Considering the vastness of the area, only a brief survey on important texts written during 14th to 18th century will be discussed here. The present paper is therefore, a humble attempt to concentrate on the search of musicological texts written in Bengal in the medieval period of Indian history.

Since very early time Gouda-Vanga flourished as a distinct cultural zone in India. Historical records prove notable development of the tradition of classical music in the eastern part of India including Gouda-Vanga in early days. Many ancient musicological texts like – Natyashastra , Brihaddeshi, Sangitaratnakara etc. and other historical documentations like – Rajatarangini, Sekasubhodaya etc. present ample evidence in this respect. Muni Bharata in his Natyashastra (approx. 400 B.C.), mentioned four types of Pravritti – Daksinatya, Avanti, Panchalamadhyama and Odromagadhi. Pravritti refers to

Scanned with OKEN Scanner

regional style or culture. Those wre applicabl to dramatic music on or before his time. Among these pravrittis, Odramagadhi type was practiced in eastern India –

अंगा वंगा उत्कलिंगा
वत्साश्चैवौड्रमागधाः।[1]

In the later period, emergence of various regional classical (or Abhijata Desi) music is seen accepting the technical rules narrated in Natyashastra. The text Brihaddeshi sincerely represent the names of few such Abhijata Deshi Ragas practiced in Gouda-Vanga at the time. These are Gouda Raga, Goudakaishiki Raga, Goudapanchama Raga etc. Not only that Matanga Muni mentioned the name of one Bhasa Raga – Bangali supposd to be originated from Vanga Desha. Raga Bangali, found in the ancient musical text Brihaddeshi proves the contribution of Bengal in forming the extensive stock of classical Ragas.[2] Besides this we find strong evidences supporting the culture of classical music in the line of Natyashastra of Bharata in ancient Bengal. The following lines from the text of Rajatarangini by Kalhana (written during 6th-10th century A.D.) may be quoted here for evidential reference

गौडराजाश्रयं गुप्तं जयन्ताख्येन भूभुजा।
प्रविवेश क्रमेनाथ नगरं पौण्ड्रवर्धनम्॥
यस्मिन्सौराज्य रम्याभिः प्रीतः पौरविभुतिभिः।
लास्यं स दृष्टम् विशः कार्तिकेयनिकेतनम्॥
भरतानुगमालक्ष्यन त्यगीताद्दिास्त्रवित्।
ततो देवगृहद्वारशिलामध्यास्त स ऋणम्॥[3]

["In course of time, he now entered the city of Paundravardhana which was subject to the king of Gouda under the protection of a ruling prince named Jayanta.

---------Verse 421.

Delighted with the citizen's prosperity which good government had made charming he, to witness a dance accompanied by vocal and instrumental music, entered the temple of Karikeya.

..... Verse 422.

There on the slab at the door of the temple he, who was versed in the histrionic arts of the dance, song and the like in accordance with Bharata, sat himself down for a while.

..... Verse 423."][4]

In this text a description of Pundravardhana city in Gouda reveals that classical music and dance were used to be cultivated following the system of Natyashasrta. Side by side with this performing culture, the tradition of writing valuable texts on contemporary music also continued in this part of India.

Since 8th century and onwards we got Sekasubhodaya, Rajatarangini, pavanadutam, Charyapada and few other texts carrying many remarkable features of contemporary music in Gouda-Vanga. But we are in the dark of any text composed in this locality at that time. The present study shows that, proper musicological texts written in Gouda-Vanga are evident from 14th century onwards. In later part of 14th century one Bengali author named Bhuvanananda wrote a text named 'Visvapradip'. In this book, he discussed contemporary musical theory in a particular chapter. So, we may consider Bhuvanananda as the first Bengali musicologist, until further documents are available. We found the name of three more musicologists between 13th to 18th century. Among them, one is Damodara Sen, another Subhankara and the last one is renowned Vaishnava author Ghanashyam Das or Narahari Chakravarty. Both Damodara

Scanned with OKEN Scanner

Sen and Subhankara wrote musicological texts named Sangita Damodara. Among many texts written by Narahari Chakravarty, 'Gita Chandrodaya' (18th century) is remarkable work on contemporary musicology. After him, the next remarkable work on musicology was done by Radhamohan Sen Das. His musical treaty was named as 'Sangita Taranga' written sometimes during the last part of 18th and first part of 19th century A. D. But it was first published in 1814 by the Samskrita Sahitya Parishad, Kolkata.[5] The following texts are known to be written in Gouda-Vanga during 14th to 18th century

- **Sangita Damodara** (by Subhankara) ..... written in the 15th Century A.D. (approx)
- **Sangita Damodara** (by Damodara Sen) ..... written in the 16th Century A.D. (approx)
- **Panchamasarasamhita** (by Narada) ..... written in the 16th Century A.D. (approx)
- **Bhaktiratnakara** (by Narahari Chakravarti or Ghanshyam Das) ..... written in the 18th CAD.(approx)
- **Gitachandrodaya** (by Narahari) ..... written in the 18th Century A.D. (approx)

Discussions made by those authors in their respective texts reflect contemporary trends of musicological thoughts and culture in Bengal. The present paper is a humble attempt to tress the trend and tradition of musicological study in medieval Bengal with the help of these aforesaid texts.

The text Visvapradip is mentioned by Dr. P. K. Ghosh in a published work of State Music Academy, Kolkata. Dr. Ghosh states that, he witnessed the manuscript of the text in Navadwip. But unfortunately no manuscript or published copy of the text has yet been available to the present scholar. Because of the lack of proper documents, we have nothing to do except depending on the information given by Dr. P. K. Ghosh about the text Visvapradip for the present study.[6] According to chronology, the text Sangita Damodara by Shubhankara comes next. Sangita Damodara is a widely known treatise of Indian music and dramaturgy. The work contains matter relating to both music and dramaturgy. Prof. Gourinath Shastri and Prof. Govindagopal Mukhopadhaya edited the text in 1960 with the help of two manuscripts discovered by Pandit Jagadish Tarkatirtha in Sanskrit College Library and of two others one collected from Indian office library London and another from Bibliotheque Paris. Late Prof. D. C. Bhattacharya fixed A. D. 15 hundred as the date of Shubhankara. Besides this, we may ascertain the age of Shubhankara on the basis of several internal evidences and references to this work elsewhere. Shubhankara quotes the names of two earlier works on music, Sangita Chudamani and Sangita Rantakara in the opening verses of his works. The Sangita Damodara is a work of five chapters or Stabakas. The text contains several unique and rare topics. In chapter five Shubhankara cites Bhaluki as an authority on Rasa. With this he has mentioned a number of Rupakas and Uparupakas in chapter-IV, like-धूर्तसमागम, दमयन्तीसंहार, वालीवध ा, सत्यभामा, मायाकापालिक etc. of which Dhurtasamagama, a Prahasan in one act by Kavishakhara of the 14th century A.D. and the other two, Balibadha and Mayakapalik have been mentioned by Visvanatha in his Sahitya Darpana (14th

Scanned with OKEN Scanner